मुजरिम हाज़िर

विमल मित्र

द्वितीय खण्ड

बंगला उपन्यास 'आसामी हाज़िर' का हिन्दी अनुवाद
रूपान्तरकार : हंसकुमार तिवारी
प्रथम संस्करण 1979 © बिमल मित्र

मूल्य : द्वितीय खंड, 40.00 (चालीस रुपये)

MUJRIM HAZIR, Part Two (Novel), by Bimal Mitra

'मुजरिम हाज़िर' के सम्बन्ध में

'मुजरिम हाज़िर' 1971 के नवम्बर से साप्ताहिक 'देश' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होता रहा। तब से 1973 के मार्च तक मैं आदि से अन्त तक इस उपन्यास का नियमित पाठक रहा। पढ़ते-पढ़ते यह देखकर मैं मुग्ध हो गया कि विमल मित्र की कलम से एक सक्रिय भला आदमी (positive good man) किस सहजता से जीवंत हो उठा है। उनके हाथों इस तरह का यह चरित्र पहला अवश्य नहीं है। उनके यहाँ की जययात्रा शुरू होती है, भूतनाथ चरित्र से। तब से लेकर उनके हरेक उपन्यास में विभिन्न नाम, विभिन्न रूप में इस सक्रिय भले आदमी का आवागमन हम देखते रहे हैं। सच तो यह है कि लेखक के प्रतिवाद का यह सबल स्वर सदा ही मुखर रहा है। हताशा, ग्लानि, अन्याय को वह निर्ममता के साथ हमारी निगाहों के सामने ला रखते हैं; आँखों में उँगली गड़ाकर वह हमें दिखा देते हैं कि हमारे समाज-जीवन, राष्ट्र के रंध्र-रंध्र में कितनी दुर्नीति, कितना दुराचार फैला हुआ है। लेकिन वह महज उस दिशा को दिखाकर ही चुप नहीं बैठ जाते। उनकी दृष्टि प्रकाश की ओर भी है। सब लोग जब बिना किसी शर्त के अंधकार के आगे आत्मसमर्पण कर रहे हैं, उन्होंने प्रकाश के लिए अपने दोनों हाथ फैला रखे हैं। इस घोर निराशा में भी वह विश्वास के दीए को इस तरह से आगे धर देते हैं कि उसी क्षण यह प्रतीत हो आता है, वह मनुष्य के सदा के अकृत्रिम बंधु हैं। तभी तो जनता से उन्होंने लोकप्रियता का सिरोपा इस आसानी से पा लिया है।

आज जब दूसरे-दूसरे साहित्यकारगण अंधकार को ही हमारी अनिवार्य नियति बता रहे हैं—विमल मित्र की यह प्रकाश की ओर, विश्वास की ओर फैली हुई अतंद्र दृष्टि क्रमशः और भी प्रखर हो रही है : हम देख रहे हैं कि जो 'भले मानुस' चरित्र अब तक असहाय, भटक रहे लोगों के अगल-बगल हाथ में दीया लिए रोशनी दिखाते चल रहे थे, वही सब सीमित और खंडित चरित्र क्रमशः प्रगट और सम्पूर्ण होने के क्रम से उनके उपन्यासों में नायक की भूमिका लेने लगे हैं। मसलन 'राजा बदल' का पंडित जी, 'अंतिम पन्ने पर देखिए' का लोकनाथ और आलोच्य उपन्यास का सदानन्द।

सक्रिय भले आदमी (positive good man) को नायक बनाकर उपन्यास लिखना, दॉस्तायेव्स्की ने कहा है, सबसे कठिन काम है। इस काम में जो सफल होते हैं, वही श्रेष्ठ कलाकार हैं। कलाकार की इस श्रेष्ठता को समझना आसान नहीं है। "On the Modern Element in Literature" ग्रंथ में Mathew Arnold ने कहा है

"And everywhere there is connexion, everywhere there is

illustration; no single event, no single literature is adequately comprehended except in relation to other events to other literature.

'मुजरिम हाज़िर' को पढ़ते हुए मैंने मैथ्यू आर्नल्ड की इस उक्ति के तात्पर्य को हृदय से समझा है। मुझे ऐसा लगा कि positive good man के बारे में यदि पाठक को थोड़ी-बहुत धारणा पहले से नहीं हो तो 'मुजरिम हाज़िर' के नायक को ठीक से समझ सकना सम्भव नहीं होगा। एक सीधा-सादा, बेवकूफ़, पगला-सा आदमी—बहुत ज्यादा तो वह एक न्यायनिष्ठ आदमी-सा प्रतीत होगा। इस बिखरे-बिखरे-से चरित्र में जो एक grotesque beauty, एक रहस्यमय ख्याली सौंदर्य है, वह अनसमझा ही रह जाएगा। वैसे में उपन्यास के दूसरे चरित्र ही मन पर सदानन्द से ज्यादा छाप छोड़ेंगे : पाठक के पल्ले ऐसे दुरूह शिल्पकृतित्व का कुछ भी नहीं पड़ेगा।

Positive good man को बहुतेरे लेखक सम्यक् रूप से आयत्त नहीं कर सके। Positive good man कहने से हमें सबसे पहले चैतन्य महाप्रभु या रामकृष्ण परमहंस की याद आएगी। यूरोप का ईसाई जगत् सीधे ईसा मसीह को स्मरण करेगा। परन्तु वैसे महामानवों के अनुरूप चरित्र-चित्रण करना चाहें तो वह उपन्यास महामानव पर आधारित उपन्यास होगा, वह रस-साहित्य नहीं रहेगा। दॉस्तॉयव्स्की का कहना है, रस-साहित्य का काम है, साधारण मनुष्यों में से ऐसे एक मनुष्य को उपस्थित करना, जो 'साधारण नहीं' है। वह होगा शिशु जैसा सरल, पवित्र और स्वाभावतः सत्, लेकिन वह (चूंकि महामानव नहीं है) रहेगा 'screened with human weakness'। पाठक उसके सम्बन्ध में जितना ही जानेंगे, उतना ही उसके आत्मीय हो उठेंगे और उतना ही यह अनुभव करेंगे कि यह आदमी उनकी जात का नहीं है, उससे घनिष्ठ नहीं हुआ जा सकता, यह कैसा तो अलग-थलग, निःसंग, अकेला-सा है। उसे मित्र, समाज, मां-बाप, यहां तक कि आख़िरकार उसकी अपनी पत्नी भी छोड़कर चली जाती है। वह किसीके भी साथ सह-अवस्थान नहीं कर सकता, समझौते पर नहीं आ सकता। यह समझौता नाम की जो चीज है, वह गोया उसके अभिधान में है ही नहीं।

लेकिन ऐसे जटिल चरित्र की शुरू में ही किसी लेखक ने कल्पना नहीं की। पहले उनकी कल्पना में positive good man के नाते एक सरल विश्वास का अटल आदमी ही आया था। संसार के साहित्य के इतिहास में उससे हमारी पहली मुलाकात सोलहवीं सदी में हुई। लेखक थे एक स्पेनिश कवि, नाटककार, औपन्यासिक सार्वांते अपनी अनवद्य सृष्टि, 'डॉन क्विक्जॉट' के लिए अमर हो गए। दॉस्तॉयव्स्की ने लिखा—"...of all the good characters in Christian Literature, Don Quixote stands as the most finished of all. But he is good solely, because he is ludicrous at the same time comical." Comical होने से चरित्र का वजन बेहिसाब कम हो गया है। उसकी सत्यता, सरलता और निष्ठा

पाठक पर अपना प्रभाव-विस्तार नहीं कर सकी। तथाकथित हीरोइज़्म के प्रति स्नेह के रूप में ही पाठकों ने चरित्र को प्यार किया, लेकिन उसकी 'पाज़िटिव गुडनेस' किसीकी नज़र में नहीं आई। Tom Jones को भी उसी कराउन की ही सोसवियता नसीब हुई। नाम-चरित्र के उस उपन्यास के लेखक हैं हेनरी फील्डिंग। सन् 1740 के आस-पास प्रकाशित इस पुस्तक में एक सरल आदमी के सहज विश्वास के क्रिया-कलाप पर ऐसा व्यंग्य-कौतुक किया गया है कि उस भोंड़ेपन के नीचे एक विशुद्ध सच्चरित्र एकबारगी दब गया है। दूसरी ओर डिकेन्स का 'पिकविक' अनुपम चरित्र होते हुए भी डॉन क्विक्ज़ॉट के मुकाबले बहुत कमज़ोर है। फिर भी मोटा-मोटी इन चरित्रों ने अपनी चारित्रिक विशुद्धता के कारण पाठकों के हृदय को छीना है। सत् और सरल मनुष्य को सभी प्यार करते हैं। सब लोग जिसकी खिल्ली उड़ाते हैं या ह्यूगो के 'ला मिज़रेबल' के नायक जाँ वालजाँ की नाईं जो बदकिस्मती से केवल अत्याचार ही बटोरता है, किसीसे ज़रा भी स्नेह-ममता नहीं पाता, स्वभावतया उस अनन्योपाय आदमी के लिए पाठक का मन करुणा से भर उठता है। उस युग के ह्यूमर का छिपा लक्ष्य भी यही था—"to arouse compassion," यानी पाठकों के मन में करुणा जगाना।

लेकिन दॉस्तॉयव्स्की ने असहायों के प्रति इस करुणा को बड़े भय की नज़रों से देखा है, "नायक के प्रति पाठक में करुणा का उद्रेक होने से उसका अंतर्निहित सत्य स्वरूप करुणा के नीचे दब जाता है। पाठक लक्ष्यभ्रष्ट होते हैं और वैसे में सारा आयोजन ही चौपट हो जाता है। इसलिए ह्यूगो की 'horrible beauty', येट्स की 'terrible beauty' की अपेक्षा 'grotesque beauty' में ही दॉस्तॉयव्स्की ने 'avenue to spiritual reality in art' को देखा।

Positive good man के सिलसिले में जब कला में यथार्थवाद का प्रश्न आया, तभी इस good man के चरित्र में जटिलता आई। चरित्रों से बुद्धूपना और भोंड़ेपन का धन छूट गया और उसकी जगह मानसिक दुर्बलता और accentricity जुड़ गई। उन्नीसवीं शताब्दी में इस जटिल positive good man के चरित्र का सफल चित्र जिन्होंने हमें सबसे पहले दिया, वह है दॉस्तॉयव्स्की। और चरित्र है 'ईडियट' का प्रिंस मिशकिन। तब से इस पाज़िटिव चरित्र में बहुतों ने हाथ लगाया, कोई-कोई लेखक कामयाब भी हुए, परन्तु तब तक साहित्य ने भी अपना केन्द्र-बिंदु बदल दिया। युद्ध और एटम बम की मार से मनुष्य का विश्वास चूर-चूर हो गया है, अवलंबहीन मनुष्य का जीवन ज़बरदस्ती लादा गया अनचाहा बोझ हो उठा है और जीना हो उठा है एक हास्यकर अवास्तव व्यायाम। इस चिंतन के प्रतिफलन वाले साहित्य में जीवन ने नीतिवाद के अंधेरे में अपना निजस्व चरित्र खो दिया है। फिर भी इसी अवस्था में वज्रप्रभा की तरह दो-एक पाज़िटिव चरित्र हमारी आँखों के सामने उजागर हो आते हैं। ऐसा ही एक चरित्र है, 1959 में लिखे इयोनेस्को के नाटक 'राइनोसेरस' का नायक बेरेंजेर। मित्र, समाज, अंत तक पत्नी भी

उसे छोड़कर चली गई, फिर भी बेरेंजेर ने आत्मसमर्पण नहीं किया। व
अमानव होने के खिलाफ अंतिम दम तक लड़ता गया है। अकेला। अकेले
की लड़ाई में फांसी की गुंजाइश नहीं रहती। इसीलिए पाजिटिव चरित्र मे
फांसी देने का मौका नहीं है। और रियलिज्म में उसकी गुंजाइश भी कहां!

पाजिटिव चरित्र की और भी विस्तृत आलोचना से पहले ज़रा यह
देख लेने की ज़रूरत है कि यह रियलिज्म है क्या! पाठक ने यह
ज़रूर ही गौर किया होगा कि 'राजा बदल' का पंडित जी, 'अंतिम पन्ने पर
देखिए' का लोकनाथ और 'मुजरिम हाजिर' का सदानन्द—इन चरित्रों ने
विभिन्न कोणों से हमारे हृदय पर जो छाप छोड़ी है, वह छाप हकीकत में
एक मनुष्य की ही छाप है; वह मनुष्य 'a positive good man' है। साधारण
मनुष्यों में से यह जो एक अन्य साधारण मनुष्य को खोज लेना है, जो हर
तरह से साधारण होते हुए भी उत्केंद्रिकतावशतः असाधारण है—दॉस्तॉयव्स्की
के शब्दों में—यही कला में 'realism in a higher sense' है। यानी 'to
find the man in a man' है।

प्रसिद्ध समालोचक कांस्टैंटिन मोचुल्स्की ने रियलिज्म की व्याख्या के
प्रसंग में कहा है "···the new reality created by the artist of genius
is real, because, it reveals the very essence of existence."

यहां यह कह देना ज़रूरी है कि 'रियलिस्टिक' और 'रियलिज्म' में फर्क
है। रियलिस्टिक रचना वास्तव की फोटोग्राफी है (कार्बन कापी)। और
कला में रियलिटी दूसरी चीज है। इसमें लेखक महज़ उन्हीं घटनाओं का
विवरण नहीं देते, जो दुनिया में, समाज में नित्य घटती हैं, बल्कि वैसी
घटनाएं घट सकती भी हैं। उस घटना के भाष्य में से एक चरित्र क्रमशः
विशिष्ट होकर उभरता आता है। अंत तक वह एक निर्दिष्ट अपार्थिव
वास्तविकता के राज्य में पहुंच जाता है। लेकिन उस राज्य में पहुंच जाने की
बात जिस आसानी से कही गई, वह व्यापार उतना आसान नहीं है। इसके
साथ कला-शिल्प की सभी संभाव्य दिशाएं जुड़ी हुई हैं। विशेष रूप से
सोचना पड़ेगा कि किस तरह से कहें। जिस ढंग से कहने से आइडिया,
घटनाओं के घात-प्रतिघात से, वास्तव तथा युक्तिसंगत हो उठे, कहानी के
अंत में नायक के बदन पर से घटनाओं की नामावली हटाकर निःसंग वह
निरावरण आदमी पाठकों के मन की दीवाल पर तसवीर होकर झूलता
रहे—उसीको सार्थक रचना कहेंगे। लेकिन यह उतना आसान काम नहीं
है। अपनी पुस्तक 'War and Peace' को समाप्त करके तॉलस्तॉय ने अपनी
डायरी में लिखा था:

"I cannot call my composition a tale, because, I do not
know how to make my characters act only for the sake of
proving or clarifying anyone idea or series of ideas."

तॉलस्तॉय ने जो नहीं कर सकने की बात कही है, 'मुजरिम हाजिर'
के लेखक वह कर सके हैं। इन्होंने अपनी प्रत्येक घटना को एक मूल घटना

में केंद्रीभूत किया है और एक प्रत्यय को प्रमाण अथवा प्रांजल करने के लिए सभी चरित्रों एवं घटनाओं को उसी ओर सक्रिय कर दिया है। बहुतेरी शाखा-प्रशाखाओं में फैलती हुई घटनाएं चारों ओर से आकर अंत में उद्दिष्ट केंद्र-बिंदु में मिल गई हैं। इसीको 'Proust and Rilke' गवेषणा-ग्रंथ के लेखक Jephcott ने Plot कहा है और कहा है—"an essential requirement of the novel, that is a unified narrative, a chain of significant incident. This in turn implies character, for in the words of Henry James : What is character but the determination of incident ? What is incident but the illustration of character ?...Plot, incident and characters will be taken as necessary criteria for a novel." इस सम्बन्ध में आलोच्य लेखक के कृतित्व का अंत नहीं है। उनका "···composition satisfies all of the rules of classical poetics (exposition, complication, rising action culmination, catastrophe, denouement, epilogue)." इस 'classical poetics' की दक्षता का हस्ताक्षर तो उनके प्रत्येक उपन्यास में है, और तिसपर उसे वह अपनी एक निजी विशेषता तक भी ले जा सके हैं, उस उत्कर्ष की विदग्धता और निजी पैटर्न तथा टेक्सचर के चढ़ाव-उतार से। 'मुजरिम हाज़िर' में भी उन्होंने अपना 'फिक्शनल युनिवर्स' यानी कहानी का विशाल जगत् तैयार कर दिया है। इस बात में बालज़क, डिकेंस, गोगोल, दॉस्तॉयव्स्की से इनकी तुलना की जा सकती है। खास करके grotesque beauty के मामले में तो दॉस्तॉयव्स्की से अवश्य ही। पॉजिटिव गुड मैन के चरित्र से व्यंगात्मक अंश को जब बाद देकर उत्केंद्रिकत को जोड़ा गया, तभी व्यंगात्मक उपस्थापना के सूने स्थान को अनैसर्गिक उपस्थापना ने पूरा कर दिया है। जैसे 'अंतिम पन्ने पर देखिए' का नायक लोकनाथ ईश्वर के साथ तर्क करता है। जैसे 'मुजरिम हाज़िर' के सदानंद ने अपनी दूसरी सत्ता का खून किया। इन्हीं अनैसर्गिक घटनाओं के समावेश से तब के दॉस्तॉयवस्की और आज के बिमल मित्र को बहुतेरे समालोचकों ने अतिरंजना दोष का दोषी ठहराया है। लेकिन यह जो दोष नहीं, बल्कि एक विशेष प्रकार का गुण है, अपने जीते-जी दॉस्तॉयव्स्की ही इसका जवाब दे गए हैं। जिन्हें इसकी याद नहीं है या जो नहीं जानते हैं, उनकी जानकारी के लिए वह बात यहां उद्धृत किए दे रहा हूं। उन्होंने कहा है :

"All art consist in a certain portion of exaggeration provided...one does not exceed certain bounds."

इस सीमा-रेखा का निर्देश करना बड़ा कठिन है। लेकिन सीमा का लंघन हुआ है या नहीं, लेखक की निर्दिष्ट अपार्थिव वास्तविकता के लक्ष्य का अनुधावन करने से यह समझ में आ जाता है। यदि यह देखने में आता है कि लेखक अपने उस लक्ष्य पर पहुंच सके है, तो अतिरंजना अतिरंजना नहीं रह जाती।

पाठक और समालोचक के स्मरण के लिए कह दूं, अतिरंजना की जरूरत तभी होती है, जब परिवर्तनशील ऊपरी सतह के नीचे के अपेक्षाकृत स्थिर और स्थितिशील मानविक अस्तित्व को दिखाना आवश्यक हो उठता है—केवल अपेक्षाकृत सूक्ष्म अथवा धुंधली वस्तु नजरों के सामने लाने के लिए उसे मैगनिफाइ या बड़े आकार में करना ही पड़ता है। डिकेंस ने कहा है, "What is exaggeration to one class of mind perception, is plain truth to another." दॉस्तॉयेव्स्की ने कहा है—"The important thing is not in the object, but in the eye. If you have an eye, the object will be found. If you don't have an eye—if you are blind—you wo'nt find anything in any object."

जिन्हें विषय के अंतर्निहित इस गुण को देखने की आंखें हैं, वही रियलिज्म के शिल्पी हैं। उन्हींके हाथों युग-युग तक positive good man मूर्त होता रहेगा। विमल मित्र ने निस्संदेह यह प्रमाणित किया है कि सत्य-दर्शन की वह दूरासद दृष्टि उन्हें है।

कलाकार की इस दूरासद दृष्टि में आने वाले positive good man के सम्बन्ध में Mochulskey ने कहा है—"In the 'world of darkness' comes a man not of this world...He is not an active fighter contending in the struggle in the evil forces, not a tragic hero challenging fate to combat, he does not judge and does not accuse, but his very appearance provokes a tragic conflict. One personality is set in opposition to the entire world."

उपर्युक्त आलोचना के परिप्रेक्ष्य में अगर हम 'मुजरिम हाजिर' के नायक सदानन्द की ओर देखें तो उसके तीनों ही डाइमेंशन (स्तर) एक साथ हमें दिखाई पड़ेंगे। एक ही अवयव में हम तीन सदानन्द को देखेंगे। आंखें फैलाते ही जो दिखाई पड़ेगा, वह उसका साधारण चेहरा है। दूसरे दस हमउम्रों जैसा आचार-आचरण। वह पढ़ता-लिखता है, स्कूल जाता है। कुदरती नियम से औरों की तरह उसकी भी उम्र बढ़ती है। लेकिन ऊपर की इस परत के नीचे का सदानन्द दरअसल और ही है। उसका सवाल साधारण का सवाल नहीं है, उसकी देखने की नजर भी साधारण की नजर नहीं है। उसकी निगाहों में और भी कुछ, ऐसा कुछ नजर आ जाता है, जो औरों की निगाहों में नहीं नजर आता। और आता भी है तो उसका मतलब कोई नहीं समझता। अंतिम स्तर के सदानन्द का यह जो तीव्र बोध और भ्रष्टता के सम्बन्ध में यह जो तीखी सचेतनता है, इसीसे उसके अहं का उत्तरण होता है। किन्तु सदानन्द के ये तीनों स्तर आपस में अलग-अलग नहीं हैं, इन तीनों स्तरों को मिलाकर ही सदानन्द एक पूर्ण मनुष्य है। कैसे जाना? क्या विमल मित्र ने सदानन्द के बारे में दार्शनिक व्याख्यान दिया है? नहीं। तो? हां, इसी बात में विमल मित्र की कला-विदग्धता है। वह व्याख्यान नहीं देते। मोपासां के शब्दों में—"To produce the effect he seeks, that is, the feeling of simple

reality, and to bring out the lesson he would draw from it, *that is the revelation of what contemporary man really is to* him, he will have to employ facts of constant and unimpeachable veracity...*the achievement of such a good consists, then* in giving the complete illusion of reality following the ordinary *logic of facts, and not in transcribing slavishly in the pell mell* of their occurance. (Preface to 'Pierre et Jean') अर्थात् विमल मित्र रोजमर्रे की जिन्दगी की घटनेवाली सीधी-सादी घटनाओं द्वारा ही अपने चरित्रों को उपस्थित करते हैं, परन्तु वे सीधी-सादी घटनाएं भी हकीकत में मोपासां के शब्दों में—वास्तव का भ्रम (illusion of reality) तथा बिलकुल कुछ विशृंखल व्यापार-मात्र नहीं होतीं। विमल मित्र द्वारा उद्भावित घटनाएं या सिचुएशन वास्तव में घटना नहीं, इलस्ट्रेशन यानी उदाहरण हैं। और उनके भी सदा तीन स्तर होते हैं—प्रतिक्रिया, तात्पर्य और प्रभाव।

मसलन, कपिल पायरापोड़ा की घटना को ही लें। पांच साल की उम्र का सदानन्द कैलास गुमाश्ता के साथ हाट गया। वहां कपिल बैलून बेच रहा था। सदानन्द ने बैलून मांगा। उसने यों ही उसे एक बैलून दे दिया, उसकी कीमत नहीं ली। लेकिन कैलास गुमाश्ता ने रोकड़ में चार पैसे का खर्च लिख दिया, वे चार पैसे उसने रख लिए। दो दिन के बाद वह बैलून पिचक गया, तो सदानन्द दूसरे बैलून के लिए मचला। कुल के एक ही चिराग की जिद के सामने कंजूस जमींदार नरनारायण चौधरी के मन में कंजूसी का नाम भी नहीं रह जाता। फौरन नौकर को रेल-बाजार भेजा गया। नौकर दो पैसे में एक बैलून खरीदकर ले आया। बैलून का दाम दो पैसा है, यह सुनते ही नरनारायण चौधरी आग-बबूला हो उठे। उन्होंने फिर से रोकड़-बही को देखा। हां, कपिल पायरापोड़ा ने उनके पीछे से दो पैसे के बैलून का चार पैसा लिया। कपिल ठग है, वह धूर्त है। कपिल को पकड़ लाने का हुक्म हुआ। सेंत में मिले बैलून की कीमत रोकड़ में लिखकर जिसने चार पैसे की चोरी की थी, वही कैलास गुमाश्ता ही उसे पकड़ लाने के लिए दौड़ा।

फिर ? कपिल की चीख सुनकर सदानन्द दौड़ता हुआ वहां गया था, परन्तु उसकी बात पर, उसके प्रतिवाद पर, किसीने कान ही नहीं दिया, एक नाबालिग लड़के की बात को किसीने सुनना ही नहीं चाहा। उसे कमरे से खींचकर बाहर ले आया गया। कपिल पायरापोड़ा सिर्फ पिटा ही नहीं, तीन बीघा मात्र जो जमीन उसकी थी, वह भी छिन गई। जमींदार के बेरहम गुस्से ने उसे बेघरबार का बना दिया। एक दल बच्चों का बाप कपिल बेचारा निरुपाय होकर आखिर फांसी लगाकर मर गया। वह नजारा दो दिन के बाद सब लोग भूल गए। रोजमर्रे की ये घटनाएं लोगों के लिए ऐसी आम हो गई हैं कि उस घटना को किसीने याद नहीं रखा। लेकिन सदानन्द ने कहा, "देखो प्रकाश मामा, उसकी बात आज सब भूल गए।'''बरवारी-थान में पेड़ में फांसी लगाकर जब वह आत्महत्या करके मरा, तो सबने देखा, देखकर सभी

सिहर उठे, पर आज वह बात किसीको भी याद नहीं।"

सुनकर प्रकाश मामा ठठाकर हंस पड़ा। बोला, "तू तो बिलकुल पागल है। अरे, इतनी बात याद रखने से आदमी का चल सकता है भला! तूने तो मुझे अवाक् कर दिया, सदा!"

सदा ने कहा, "लेकिन मैं कुछ भी भूल क्यों नहीं सकता हूं मामा? मुझे क्यों सब कुछ याद आ जाता है?"

सदानन्द को सिर्फ याद ही नहीं आता। उसके तीव्र बोध के निकट, पैनी अवहिति के निकट चौधरी परिवार के पाप का इतिहास सांझ की धुमैली छाया में पोखरे के पानी से निकलकर उसके सामने आ खड़ा होता। उसे उस परिवार के पाप का इतिहास सुनाता।

कपिल पागलापोड़ा की इस प्रासंगिक बात में, मैंने ऊपर जिनका उल्लेख किया है, ये तीन स्तर क्रम से इस तरह सजे हुए हैं—(1) जमींदार के सरिश्ते के लोग इतने ही गिरे हुए हैं कि चार पैसे की चोरी से भी बाज नहीं आते, (2) जमींदार का क्रोध कितनी छोटी-सी बात पर चरम पर पहुंच जाता है और (3) उसके फलस्वरूप एक नन्हे बच्चे के सामने इस जगत् और जीवन के ऊपर का पलस्तर किस तरह से उधड़ जाता है, किस तरह से अन्दर का घिनौना चेहरा बाहर निकल आता है। यों विमल मित्र नाहक ही किसी घटना का जिक्र तो नहीं ही करते, बल्कि तीन डाइमेन्शन नहीं रहने से उसकी अवतारणा भी नहीं करते। उनकी निगाह सदा उन घटनाओं की ओर होती है, जिनसे बंगाली-मन की पीड़ा प्रतिफलित होती है, प्रतिफलित होता है उसका नैतिक संकट। अंधकार जितना ही गहरा होता है, प्रकाश के लिए ललक उतनी ही ऐकांतिक होती है। लिहाजा उनके द्वारा उद्भावित घटनाओं में अंत तक प्रकाश का एक आभास भी झलक उठता है।

सदानन्द के ढुलमुल मनोभाव और इतरे-बिखरे आचार-आचरण को निरापत्ति रास्ते पर स्वस्थ करने के लिए एक ओर तो प्रकाश मामा उसके मां-बाप से सदानन्द के ब्याह की सिफारिश करता है और दूसरी ओर उसे रसिक बनाने के लिए यात्रा, कविगान, रूप-कीर्तन सुनाने के लिए ले जाता है, ले जाता है, बाजारू औरतों के घर। कभी जिसके हाथों आठ-दस लाख रुपये की सम्पत्ति आएगी, उसे आखिर उन रुपयों का उपभोग करना तो सीखना होगा। और उस समय उसे भी क्या लाख-दो लाख रुपया हाथ नहीं लगेगा। दुनिया का हर इन्सान ऐसा ही एक-एक प्रकाश मामा होता है।

सदानन्द की अंतर्दृष्टि ने प्रकाश मामा को पहचानने में भूल नहीं की—प्रकाश मामा भी एक आदमी है। सदानन्द सोचता, प्रकाश मामा को आदमी के सिवाय कोई जानवर नहीं कहेगा। उसे आदमी जैसे ही दो हाथ, पांव, आंख, नाक हैं। आदमियों जैसी ही भाषा है उसकी। दुनिया में लोग ऐसों को आदमी ही समझते हैं। मगर प्रकाश मामा क्या वास्तव में आदमी है!

वास्तविक आदमी तो उसका दादा नरनारायण चौधरी भी नहीं, और उसका बाप भी नहीं। नरनारायण चौधरी कालीगंज के जमींदार हर्षनाथ

चक्रवर्ती के पन्द्रह रुपये माहवार के नायब थे। जीवन के अंतिम दिनों में हर्षनाथ चक्रवर्ती में चैतन्य का उदय हुआ, उन्होंने होश रहते ही गंगा में अपना शरीर छोड़ा और नरनारायण चौधरी की खुशकिस्मती से कुछ दिनों में ही हर्षनाथ के उत्तराधिकारियों की भी मृत्यु हो गई। रह गई अकेली उनकी विधवा—कालीगंज की वहू। उस विधवा का तिल-तिल करके सर्वस्व हड़पकर नरनारायण चौधरी कालीगंज और नवाबगंज—इन दो जमींदारियों के एकछत्र जमींदार बन बैठे। जीवन के अंतिम दिनों में नरनारायण चौधरी अपंग हो गए थे, फिर भी रुपयों के संदूक को—चुन्नी-पन्ना-हीरा-जवाहरात-भरे संदूक को अगोरे रहते थे। अपने एकमात्र वंशधर सदानन्द का व्याह कराकर यह विशाल सम्पत्ति और वह भारी संदूक अब उसके कंधे पर चढ़ा दे सकें, तो वह निश्चिन्त हों। पर, पाप का बीज इधर जो एक विशाल महीरुह बन गया है, उसे उन्होंने मानना ही नहीं चाहा। लेकिन सदानन्द ने नहीं छोड़ा। उसे जब यह मालूम हुआ कि दादाजी ने चूंकि दस हज़ार नकद देने का वचन दिया, इसलिए कालीगंज की वहू ने मुकदमा उठा लिया, तो उसने दादाजी को घर दबाया—तुम्हारे संदूक में तो रुपया ही रुपया है, फिर तुम उस बेचारी बुढ़िया को क्यों टरकाया करते हो, उसके रुपये दे दो।

मगर दादाजी की दलील यह कि दे दो कहते ही क्या दिया जा सकता है? मैं यह थोड़े ही कह रहा हूं कि नहीं, दूंगा, दूंगा, जरूर ही दूंगा। तू व्याह कर आ···

पर, जिसके लिए हिसाब ही धर्म हो, हिसाब ही मोक्ष हो, स्वर्ग भी जिसके लिए रुपया ही हो, वह भला कभी आसानी से रुपया दे सकता है। अथच मुट्ठी-मुट्ठी वही रुपया पुलिस को खिलाना पड़ा। एक खून को छिपाने के लिए और भी पांच खून करने पड़े, क्योंकि आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्वार्थ क्रमशः आदमी को एक निदारुण भंवर में खींचे लिए जा रहा है, फलस्वरूप मनुष्य अपने ऊपर अपना वश खो बैठा है। वह अपने को जितना ही बेबस समझता है, उतना ही वह पापियों की जमात बढ़ाता है, उस दल को पुष्ट करता है। एक तरफ इस तरह से प्रतिक्रियाशील शक्ति प्रबल हो रही है और दूसरी तरफ बेसहारे लोग उसीके शिकार होकर आत्म-विसर्जन कर रहे हैं, या नहीं तो उनके ही दलाल बनकर उस दल को भरकम बना रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में 'पाज़िटिव गुड मैन' धीरे-धीरे दूर हटता जा रहा है, हटता जा रहा है 'निगेशन' की ओर, वैराग्य की ओर इसीलिए सुहागरात के मीठे क्षणों में ही एक निष्पाप नवेली वहू के जीवन में अंधेरा उतर आया।

शोषण की नींव पर खड़े समाज में जो शोषण नहीं करता, वह शोषित होता है। और जो इस शोषण को पाप कहकर उसका विरोध करता है और शोषितों के लिए दुःखी होता है—समाज उसे अपनी मुट्ठी में करना चाहता है। अगर इसमें कामयाब नहीं होता, तो उसे वहां टिकने नहीं देता। असल में उसका अपना विवेक ही उसे समाज से दूर हटा ले जाता है। हुआ भी ऐसा ही था। नरनारायण चौधरी यह सोचकर खुश हुए थे कि उन्होंने सदानन्द को

अपनी मुट्ठी में कर लिया। वह अपनी नई दुल्हिन के कमरे में गया और अंदर से उसने दरवाज़ा बंद कर लिया। अब चिंता किस बात की? अब बेटा-पोता की परंपरा में वह अमर रहेंगे, अपने रक्त की धारा में अनंत काल तक अखंड परमायु लाभ करेंगे। लेकिन उन्हें खबर नहीं रही कि उन्हीं लोगों के पापों का प्रतिवाद और प्रायश्चित्त करने के लिए वह सुहागरात की फूलों की सेज से उतरकर सबकी नजरों की ओट में आसमान के नीचे कांटों का बिस्तर बिछाने के लिए निकल पड़ा। लेकिन पाप के खिलाफ जिहाद बोलकर किसीके घर से निकल पड़ने से ही तो विश्व-ब्रह्माण्ड का सभी काम रुक नहीं जाता। नरनारायण चौधरी के लायक बेटे हरनारायण चौधरी ने रुक जाने देना भी नहीं चाहा। इसीलिए उन्होंने स्वयं ही पतोहू के पेट से संतान पैदा करने की ठान ली। यहां पर लेखक के संयम और शिल्प-निपुणता को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। सुपरिचित और संपर्कयुक्त शब्दों के माध्यम से वह साधारण-ग्राह्य युक्ति का रास्ता अपनाकर अनायास ही एक कठिन संकट को पार कर गए।

सत्य को देखने एवं उस सत्य को सामाजिक तथा व्यक्तिगत वास्तव रूप देने की क्षमता श्रेष्ठ शिल्पि का लक्षण है, इसमें संदेह नहीं, पर, संकट के सत्य को टुकड़ा-टुकड़ा करके देखने में जैसे संकट का पूरा चेहरा नहीं दिखाई देता, वैसे ही, 'पाजिटिव गुड मैन' को भी पूर्णतया नहीं पाया जा सकता, जिसको केंद्र बनाकर संकट प्रकट होता है। लेखक की श्रेष्ठता का और एक प्रमाण यह है कि यह तात्विक सत्य न सिर्फ उन्हें मालूम है, बल्कि उसका स्वरूप भी अनायास उनके आयत्त में है। जभी तो वह सदानन्द के माध्यम से स्तर-स्तर में विन्यस्त सामाजिक संकट के जटिल रूप को सामाजिक रूप से निखार सके हैं। और, सामाजिक संकट के सामग्रिक भाव से निखर आने के कारण सदानन्द का चरित्र भी स्वच्छंदता से स्वतः ही पूर्णरूप से विकसित हो सका है।

चित्र और चरित्र का यह जो युगपत अंकन है, यह एक दुर्लभ गुण है। लेखक युग-संकट को हमारे सामने लाना चाहते हैं, लेकिन किस तरह से? युग-संकट को हम स्वयं देखना भी चाहते हैं कि कोई दिखाए और हम देखें? दैनंदिन जीवन में हम असंख्य अन्यायों को देख और भोग रहे हैं कि हमारी बोधशक्ति ही भोथरी हो गई है, नजरों की जोत जाती रही है। अब कोई असंगति ही हमें दिखाई नहीं पड़ती, कोई भी मार्मिक घटना हमारे दिल पर दाग नहीं छोड़ती। लिहाजा- लेखक को ऐसे एक आदमी को लाना पड़ा है, जो इस समाज-संसार में आगंतुक है। आगंतुक की निगाहों में सब कुछ आता है। परन्तु चुनांचे आगंतुक समाज-संसार के सुख-दुःख में शरीक नहीं, इसलिए वह सब कुछ को खुली दृष्टि और सादे मन से, निरपेक्ष आंखों से देखेगा। इसीलिए उसके इस देखने में कहीं गांभीर्य या गुरुत्व नहीं है। हो भी तो चूंकि 'पाजिटिव गुड मैन' राजनीति नहीं समझता, इसलिए आंखों देखे दुरूह व्यापार भी भारी नहीं होते। कौतुक-श्लेष मिल-जुलकर वह एक उपादेय रसवस्तु बन जाता है, जिसे कहते हैं grotesque beauty। पाठक गौर करके देखें, यह श्लेष और कौतुक मिली रचना की grotesque

beauty न सिर्फ नायक सदानन्द में, बल्कि उपन्यास में तमाम, सभी चरित्रों और घटनाओं में सूक्ष्म रूप से मौजूद है।

तो क्या सिर्फ कौतुक-विद्रूप से इस युग-संकट के अंधकार को दिखाने के लिए ही 'पाज़िटिव गुड मैन' के माध्यम का उपयोग किया जाता है ? नहीं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'—उपनिषद् की यह प्रार्थना ही लेखक की शिल्प-प्रेरणा है। 'पाज़िटिव गुड मैन' इसी प्रकार का प्रदीप है। युग-संकट में ही इनका आविर्भाव होता है। ये आते हैं, तभी संकट का सामग्रिक रूप हमारे सामने प्रकट होता है, हम सिहर उठते हैं, प्रकाश में पहुंचने की प्रार्थना में हम घुटना टेक देते हैं। वही तो हमारा परित्राण है।

ससुर की लालसा को धिक्कारकर, उनकी मर्यादा के मुखौटे को खींचकर जनता के सामने पैरों से रौंदकर नयनतारा सदा के लिए अपने पति को घर छोड़कर चली जरूर आई थी, पर तभीसे उसे दो परस्पर विरोधी प्रवणता का शिकार होना पड़ा था। बीमार सदानन्द को रास्ते से उठा लाकर उसने जी-जान देकर उसकी सेवा-सुश्रूषा की और उसके चलते मिलनेवाली लांछनाओं को सहकर भी उसे भला-चंगा किया, अथच उस समय वह निखिलेश की पत्नी थी। निखिलेश ने इतने दिनों में उसे पढ़ाया-लिखाया, दफ्तर में उसे नौकरी दिलाई। निखिलेश ने उसे आड़े वक्त में बचाया था। इसीलिए वह निखिलेश को चाहती थी। परन्तु सदानन्द को ?

सदानन्द ने अप्रत्याशित रूप से नयनतारा को बहुत बड़ी रकम जो दी थी, क्या इसलिए कि उसने बीमारी में उसको तीमारदारी की थी ? या कि इसलिए कि उसने नयनतारा को बिना कसूर के छोड़ दिया था ? या कि···

ईश्वर ने शैतान के सामने फाउस्ट की बाजी रक्खी थी। शैतान ने कहा था, "धरती को मैंने घर-द्वार, धन-दौलत, नारी-संपद और खिताब-खैरात देकर दखल कर लिया है। व्यभिचार, युद्ध और महामारी फैलाकर सबको ऐसा काबू कर रखा है कि सभी षोड़शोपचार से मेरी पूजा कर रहे हैं लिहाजा यह दुनियादारी मेरी है।" ईश्वर ने कहा, "तुम अगर पवित्र-ः फाउस्ट की आत्मा को भी कब्जा कर ले सको, उसके कलेजे में जलनेव आत्मा को भी कब्जा कर ले सको, उसके कलेजे में जलने वाली प्रेम की ः शिखा को बुझा दे सको, मैं तभी मानूंगा कि यह पृथ्वी तुम्हारी है।" शै ने फाउस्ट की आत्मा को खरीद लिया था, उन्हें भोग-सुख तथा दुनिय सारे विलास-व्यसनों में डुबाकर रख सका था। मगर फाउस्ट ने अपने प्र की उस प्रेम-शिखा को हरगिज बुझने नहीं दिया। इसीलिए अंत में फाः *की ही जीत हुई। शैतान इस दुनिया का एकछत्र अधिपति नहीं बन सका*

शायद हो कि फाउस्ट के पवित्र प्रेम की उसी शिखा को दोनों आंखों दृष्टि-प्रदीप में रखकर दुनिया के अंधेरे को पा-पा करके पार करके सदा भी अपनी मंजिल की ओर जा रहा था। और उधर, कलकत्ता के अभि मुहल्ले में, थिएटर रोड के एक सुरम्य सौध में यों ही मिल गए विपुल अ खरीदे हुए सुख की कुष्ठव्याधि से ग्रस्त थी नयनतारा।

दिव्य प्रेम की पावन जोत लिए आज से एक हज़ार नौ सौ तिहत्तर साल पहले संसार में पहला 'पाज़िटिव गुड मैन' आया था। वह भी सदानन्द की ही तरह दुनिया के रास्तों पर पैदल चला था। उसने भी मनुष्यों का भला ही चाहा था। मनुष्यों के कल्याण के लिए उसने अपनी सारी ज़िन्दगी की तपस्या का फल मनुष्यों को उत्सर्ग कर दिया था। तपस्या के उस फल ने मनुष्यों का क्या-क्या मंगल किया, सदानन्द की नाईं वह भी उस समय यह देखने के लिए निकला था। चलते-चलते एक दिन वह भले सज्जन उस समय के थिएटर रोड के एक सुरम्य सौध में पहुंचे। उस समय वहां राजकीय उत्सव में सभी फरिशीय पुरोहित उपस्थित थे···'दीयतां भुज्यतां' का शोर मचा था चारों ओर। उस माहौल में एकाएक एक फटेहाल आदमी की मौजूदगी ने सहसा सब गुड़-गोबर कर दिया। कोई उन्हें बरदाश्त नहीं कर सका, किसीने उन्हें मानना भी नहीं चाहा। यहां तक कि नयनतारा ने भी नहीं। सिर्फ समवेत पाप का हिंसक क्रोध उनकी ओर मुट्ठी तानकर बढ़ आया—उनको लहू-लुहान कर छोड़ा। मरे हुए उस आदमी के लहू से नहाकर उस समय नयनतारा पवित्र हुई। नयनतारा के सुख का कोढ़ झूठ की केंचुल-सा उसी क्षण उसके तन से उतर गया। वह प्रेम से ज्योतिष्मती हो उठी। पत्थर से दबा पाप का सत्य कंठ में मुक्त हुआ—नयनतारा ने बेखटके सबके सामने यह घोषणा की कि "ये मेरे पति हैं।"

लेकिन इस युग का ईसा उस समय भी चीखा जा रहा था, "मैं तुम लोगों जैसा नहीं हो सका, तुम लोग मेरी उस अक्षमता का विचार करो, मैं तुम लोगों के आगे आत्मसमर्पण नहीं कर सका, मेरे इस कसूर का विचार करो। मैं मुजरिम हूं···मैं हाजिर हूं।"

ऐसा ही एक सुर हम इयोनेस्को के 'गंडार' (गैंडा) के नायक के मुंह से सुनते हैं··· "I am the last man left, and I am staying that way untill the end. I am not capitulating."

विमल मित्र ने अपने इस उपन्यास में जिस विशाल जगत् की सृष्टि की है, उसका प्रत्येक घटना, उसका प्रत्येक चरित्र ऐसा ही विश्वास योग्य और हृदयग्राही है कि हम अपने अनजाने ही इस जगत् में शामिल हो जाते हैं या कि कब तो, कैसे तो मानो यह जगत् हमारा ही जगत् बन जाता है। यहां के सब कुछ में हम अपने आप ही देख पाते हैं, अवहित हो उठते हैं। और इस तरह से जो हमें अपने आपसे परिचित करा देते हैं, निस्संदेह वह हमारे ही लेखक हैं, हमारे प्रिय लेखक।

9 अप्रैल, 1973

—यज्ञेश्वर राय

मुजरिम हाज़िर
(द्वितीय खण्ड)

याद है, इसके बाद से ही सदानन्द के जीवन में सब कुछ उलट-पलट हो गया। इसके बाद से ही शुरू हो गया उसका वह संघर्ष—अपने आप से संघर्ष और फिर औरों से संघर्ष। सच पूछिए तो इसके बाद से सारी दुनिया से ही सदानन्द का संघर्ष छिड़ गया।

जो लोग साधारण हैं, वे पारिपार्श्विक अवस्था से अपने को मिला लेते हैं। लेकिन जो पारिपार्श्विकता की परवाह किए बिना चलना चाहते हैं, मुसीबत असल में उन्हींको होती है। वैसे लोग न तो अपने आपको माफ करते हैं, न ही पारिपार्श्विकता को। पारिपार्श्विकता जब उनसे बदला चुकाने लगती है, तो वे अपनी सारी ताकत लगाकर उसका सामना करने में या तो बिलकुल मटियामेट हो जाते हैं या कभी-कभी इतिहास के पन्नों पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ जाते हैं। मगर यह बन ही कितनों से पाता है? अधिकांश लोग तो पारिपार्श्विकता के दबाव से पिसकर कहां गायब हो जाते हैं, कोई जान भी नहीं पाता। इतिहास में इतनी जगह नहीं होती कि ऐतिहासिक उन-पर दो-चार पंक्तियां लिखें। उनके लिए जगह होती है सिर्फ उपन्यास के पन्नों पर। केवल उपन्यासकार ही शायद उनके लिए एक बूंद आंसू बहाते हैं।

दुनिया में एक बूंद आंसू की कीमत ही क्या कुछ कम है!

उस दिन की उस आधी रात से ही नयनतारा को इसका ख्याल आया। ख्याल आया कि आंसू वह नहीं बहाएगी। दुनिया में आंसू की कीमत जितनी भी क्यों न हो, जो उसको मर्यादा नहीं देता, उसके लिए वह भी अपने आंसू का अपव्यय नहीं करेगी।

उसे पता नहीं, वह कब तक बेहोश पड़ी थी। सारी रात ही बेहोश पड़ी रही शायद। सारी रात उसे जरा देर के लिए भी कुछ ख्याल नहीं हुआ होश आया, तो देखा, सवेरा हो गया। बगल की खिड़की से एक टुकड़ा धूप अन्दर आई है। आहिस्ता-आहिस्ता पिछली रात की घटना भी उसे याद आने लगी। याद आया, उस आदमी ने उसकी नजरों के सामने ही दवातदानी से किस कदर अपने कपाल को पीटा था। उसका सारा शरीर किस कदर अपने लहू से नहा गया था। उसके बाद से कुछ भी याद नहीं।

अब उसे अपने पिता की याद आई। इस समय अगर पिताजी एक बार आ जाते, तो वह यहां नहीं रहती। उनके साथ कृष्णनगर चली जाती। लेकिन कृष्णनगर गई तो क्या! वहीं क्या सुखी रहेगी वह?

फिर जी में आया, तो क्या हार ही मान लेगी? अपनी सास को तो उसने वचन दिया था कि बिहुला की तरह वह अपने पति को लौटा लाएगी। लेकिन लौटा तो नहीं सकी।

कि सास कमरे में आई, "वहूरानी, अच्छी हो?"

नयनतारा को लगा, उसकी मां ही फिर उसके पास सदेह लौट आई

सास ने कहा, "इस दवा को पी लो वहू! उफ, तुम्हारे लिए कैसी चिं हो पड़ी थी मैं।"

ज़रा रुककर फिर वोली, "तुम्हारे वदन में दर्द तो नहीं है?"

दवा पीकर नयनतारा ने कहा, "लेकिन मैं आपकी वात जो नहीं रख मां, उन्होंने मेरी हरगिज़ नहीं सुनी। आपने जो-जो कहा था, जैसे-जैसे व था, मैंने सव कुछ तो किया, वैसे ही वैसे किया। अव मैं क्या करूं?"

सास ने कहा, "अभी वह सव न सोचो वहू! तुम्हारी तवीयत अभी ट नहीं है। अभी चुपचाप सो रहो।"

नयनतारा ने पूछा, "वे अभी कैसे हैं?"

"किसकी कह रही हो? मुन्ना? मुन्ना ठीक है।"

"खून का वहना वन्द हो गया? वुखार···वुखार तो नहीं आया?"

सास ने कहा, "नहीं।"

नयनतारा ने कहा, "मैं सोच भी नहीं सकी थी मां कि वह इस तरह से सारी सज़ा अपने मत्थे ले लेंगे। मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकी थी। नहीं तो दवातदानी को टेवल पर से पहले ही हटा लेती।"

सास ने कहा, "इसमें तुम्हारा दोप भी क्या है वहू, एक औरत होकर जो कर सकती थी, तुमने किया। तुमने मेरे कहे का पूरा-पूरा पालन किया। दोप अगर कुछ हुआ है, तो वह हमसे हुआ है। आज जो कुछ भी वीता, सवकी ज़िम्मेदार मैं हूं।"

नयनतारा ने कहा, "दोप आपका क्यों है मां, दोप मेरे भाग्य का है। आपने जो कुछ भी किया, मेरे भले के लिए ही तो किया। मेरे भाग्य में सुख ही नहीं लिखा है, तो आप क्या कर सकती हैं?"

थोड़ा रुककर वोली, "अभी वो कहां हैं?"

सास ने जाने क्या तो ज़रा सोचा। वोली, "दुतल्ले के कमरे में है।"

"अच्छे तो हैं न?"

"हां, अभी कुछ अच्छा है। डाक्टर साहव आकर माथे पर पट्टी वांध गए हैं। मैं वहीं से तो आ रही हूं। अव सिर में दर्द भी नहीं है। ज़रा देर पहले उसे एक गिलास दूध पिला आई थी।"

नयनतारा ने पूछा, "उन्होंने मेरे वारे में कुछ पूछा?"

सास ने कहा, "हां-हां, अभी-अभी तो तुम्हारे वारे में पूछ रहा था।"

"क्या पूछ रहे थे?"

"पूछ रहा था, तुम कैसी हो?"

"तो आपने क्या कहा?"

सास ने कहा, "मैंने कहा कि तुम अव कुछ ठीक हो।"

नयनतारा ने कहा, "मैं आपकी वात नहीं रख सकी मां, आपकी साध नही पूरा कर सकी। मैं हार गई। आप वहू वनाकर मुझको क्यों ले आई

थीं। और कोई लड़की होती तो वह शायद आपके सारी साध पूरा क
सकती। मैं आपके किसी काम नहीं आ सकी।"

नयनतारा मुंह ढंककर झर-झर आंसू बहाने लगी।

अपने आंचल से उसकी आंखें पोंछते हुए सास ने कहा, "रोओ मत बहू तुम क्या करोगी? तुम्हारा क्या दोष है? तुम चुप रहो। तुम्हारी जैसी पत्नी पाकर भी जो सुखी नहीं हो सका, उसके भाग्य में बहुत दुःख लिखा हुआ है—"

नयनतारा ने पूछा, "मैं अभी एक बार उनके पास जाऊं मां?"

"किसके पास? मुन्ना के पास? क्यों?"

नयनतारा ने कहा, "मैं उनसे ज़रा यह पूछूंगी कि उन्होंने ऐसा क्यों किया? सारी सज़ा अपने मत्थे लेकर उन्होंने किसको दण्ड देना चाहा? जिसने वास्तव में दोष किया है, उनको दण्ड देने का साहस अगर उन्हें नहीं है, तो उन्होंने यह कायर जैसा काम क्यों किया? मैं उनसे पूछूंगी—इसीका नाम क्या पौरुष है? यही क्या वीरता है?"

बोलते-बोलते नयनतारा उठ बैठी। बोली, "मैं इसी समय एक बार उनके पास जाऊंगी मां, आप मुझे रोकिए मत।"

"नहीं बहू, इस समय मुन्ने के पास जाने की कोई ज़रूरत नहीं। उसकी भी तबीयत ठीक नहीं है और तुम भी कमज़ोर हो। गुस्से में जाने क्या कह बैठे और तुमसे भी शायद बरदाश्त न हो, वैसे में और ही मुसीबत होगी—"

नयनतारा बोली, "मैं तो जाऊंगी ही मां! मैं चूंकि औरत होकर पैदा [illegible]ई, इसलिए इस तरह ठुकराएंगे मुझे? आखिर मैं भी तो आदमी हूं। वह [illegible]ो भी कहे, सब मुझे होंठ सीकर सहना होगा?"

"लेकिन तुमने तो उसकी सब बात सुनी है बहू! उसकी नाराज़गी कुछ तुमपर तो नहीं है, उसको जो भी नाराज़गी है, हमपर है, अपने बाप पर, अपने दादाजी पर है। तुम जाकर कहोगी भी तो कोई नतीजा नहीं निकलेगा—"

"परन्तु, प्रत्येक अपराध की ही तो क्षमा है मां।"

सास बोली, "क्षमा ही रही होती, तो कोई उस तरह से अपने आपको ही मार डालने की कोशिश करता? अपनी आंखों ही तो देखा तुमने। दवात-दानी के बजाय वहां छुरा रहा होता तो क्या गुज़रा होता, कहो? उसे सोचते हुए भी मेरा कलेजा कांप उठता है—"

नयनतारा ने कहा, "फिर भी मुझे एक बार जाने तो दीजिए मां! जितना चाहे मेरा अपमान करें, उसमें कुछ जाता-आता नहीं। लेकिन यह मुझसे सहा नहीं जा रहा है कि मैं हार गई? अपने पति को मैं वश में नहीं कर सकी, यह तो मेरे ही लिए शरम की बात है। लोगों को मैं यह मुंह कैसे दिखाऊंगी? आप ही अपना मुंह देखने में मुझे लाज लगती है।"

सास ने कहा, "तुम इतने आवेश में न आओ बहू! कमज़ोर शरीर को इतना आवेश नहीं बरदाश्त होगा। तुम थोड़ी देर सो जाने की कोशिश करो।

मैं अभी जाती हूं, फिर आऊंगी। तुम लोगों के इस झमेले से मेरी भी तबीयत ठीक नहीं रह रही है। और, तबीयत का ही कौन-सा कसूर है। अकेली, मैं, किधर-किधर देखूं ?"

नयनतारा को लिटाकर प्रीति बाहर आई। अपने कमरे में पहुंची, तो देखा, चौधरी जी वहीं परेशान-से चहलकदमी कर रहे हैं। पत्नी को देखते ही उसकी तरफ बढ़ आए। बोले, "क्या हुआ ? बहू क्या कह रही है ?"

पत्नी ने कहा, "मुन्ने के बारे में पूछ रही थी कि अब वह कैसा है !"

"बहू को शायद पता नहीं है कि मुन्ना घर में नहीं है ?"

पत्नी ने कहा, "मैंने उससे कहा है कि वह यहीं है। ऊपर के कमरे में सोया हुआ है। मुन्ने से मिलने के लिए जिद कर रही थी।"

"अरे ? इतना कुछ होने के बावजूद ?"

प्रीति ने कहा, "हां। वह बहुत कुछ कह रही थी। उसके आत्म-सम्मान को बड़ी ठेस लगी है। कह रही थी, इतना बड़ा अपमान मैं नहीं सहने की। बेचारी को बड़ी शरम आई है। फिर एक बार कोशिश कर देखने की कह रही थी।"

चौधरी जी ने कहा, "पर जब जानेगी कि मुन्ना घर में नहीं है, तब ? वैसे में कभी अगर ऊपर के कमरे में जाए ?"

प्रीति ने कहा, "जब जाएगी, तब देखा जाएगा। मैं ज्यादा सोच नहीं पा रही हूं। मेरा माथा ठिकाने पर नहीं है।"

"और मुन्ना अगर लौटकर नहीं आए ?"

"नहीं लौटे तो फिर कोई और तरकीब ढूंढ़ी जाएगी। कहीं मैं कह देती कि मुन्ना नहीं है और वह रोने-पीटने लगती, तो ? कैसे सम्भालती मैं। तुमने तो कह दिया और छुट्टी पा गए। झेलने के लिए तो बस मैं ही हूं। अभी कुछ हो-हवा जाता, तो दोष तो सब मेरे ही मत्थे आता। मैंने जो कुछ किया है, सब सोच-समझकर ही किया है।"

चौधरी जी ने कहा, "तो सबसे कह देना, जिसमें बहू से कोई उलटी बात न कह दे। खतरा प्रकाश से ही है। वह इतना बक-बक करता है कि जाने बहू के पास कब सब राज़ फाश कर दे। प्रकाश है कहां ?"

प्रीति ने कहा, "और कहां होगा ? उसे मुन्ने की खोज में भेजा है। सुबह से ही निकला है। मुंह में पानी तक नहीं डाला। उसीकी राह में तो मैं बैठी हुई हूं—"

सुना-सुनाकर चौधरी जी कुछ निश्चिन्त-से हुए। आधी रात से ही वह कभी घर और कभी बाहर कर रहे थे। बाहर-भीतर, तमाम बेचैनी। बेटे के ब्याह से पहले खास कुछ झंझट नहीं थी। जी लगाकर काम-काज कर पाते थे। तहसील-वसूली में ही उनका समय बीतता था। मगर यह कैसी मुसीबत सिर पर सवार हो गई। और कुछ दिन ऐसा ही चलता रहा, तो हो गया। जमींदारी करना ताक पर धरा रह जाएगा। इतने कष्ट की कमाई लोग लूट खाएंगे।

वह बोले, "तो मैं चलता हूं। यहां खड़े रहने से मेरा काम नहीं चलेगा। बहुत सारे काम पड़े हैं—"

वह बाहर चले गए।

बहुत दिन पहले, कालीगंज के जमींदार के यहां नायबी करते समय बूढ़े चौधरी ने सीखा था कि परचा, खतियान, जमाबन्दी, लेनदार, महाजन, तमस्सुक, नजराना आदि किसे कहते हैं।

उन्हें साध थी कि कभी मैं भी अपनी नई जमींदारी करूं और जैसे चक्रवर्ती बाबू पराई कमाई का भोग-दखल करते हैं—मैं भी करूं। मैं भी रैयतों को दखल दिया करूंगा, उन्हें बेदखल किया करूंगा, महाजन बनकर रैयतों को कर्ज दिया करूंगा, लगान वसूली के समय नजराना लिया करूंगा।

उनकी ये सारी साध पूरी हुई थी। सच पूछिए तो हर्षनाथ चक्रवर्ती से भी उन्हें ज्यादा ही हुआ था। अपने लड़के को भी बूढ़े चौधरी ने इन सारी बातों की तालीम दी थी। लड़के ने भी मन लगाकर सब कुछ सीखा था। लेकिन आदमी की आशा का तो अन्त नहीं होता। लगता है, लड़के ने तो खैर सीख लिया, लेकिन पोता? और मान लो पोते ने भी सीखा, जायदाद की आय भी बढ़ी, लेकिन पोते का पोता? इतना ही नहीं, जब तक चांद-सूरज उगता है, तब तक यह सब रहेगा तो?

बूढ़े चौधरी के बाद चौधरी जी को भी वही चिन्ता थी। इतना जतन-परिश्रम आखिर किसलिए? इतना अर्थ उपार्जन किसलिए? बेटा अगर गृही न बने, उसका अगर वंश न हो—तो क्या होगा?

आखि र उस दिन भी रात हुई।

करोड़ों वर्षों से पृथ्वी पर जाने कितनी करोड़ रातें हुईं। लेकिन उस दिन अगर रात नहीं होती, तो किसका ऐसा क्या नुकसान होता!

चौधरी जी उस रोज भी ऊपर के कमरे में सोने के लिए जा रहे थे। जाने से पहले बोले, "आज मैं जरा पहले ही सोने के लिए जाऊंगा।"

ऊपर सोने के लिए वह कई दिनों से जा रहे थे। लेकिन आज उनको जैसे कुछ ज्यादा जल्दी थी। कई दिनों से उन्हें ऐसा लग रहा था कि बड़ी देर होती जा रही है। उंह, अब नहीं।

प्रीति ने कहा, "अब कब तक इतना कष्ट उठाते रहोगे?"

चौधरी जी ने कहा, "तुम्हें तो मेरे शारीरिक कष्ट की ही चिन्ता है मगर यह तो एक बार को भी नहीं सोचती कि मेरे कितने रुपये बरबाद हो गए। रुपया बरबाद होना और लहू बरबाद होना एक ही है। लहू बरबाद होने पर कभी बनता है, घी-दूध खाने से बढ़ता है, मगर रुपया निकल जाने पर क्या लौटता है? पानी की तरह मेरे रुपये बह रहे हैं और मैं कुछ कर नहीं पा रहा हूं।"

प्रीति ने कहा, "सो हो, मगर आदमी को मार तो नहीं डाला जा सकता—"

चौधरी जी बिगड़ उठे। बोले, "क्यों ? मार क्यों नहीं डाला जा सकता ? जो आदमी कष्ट ही कष्ट पा रहा है, उसे गला दबाकर मार डालने में कौन-सा अन्याय है ?"

प्रीति ने कहा, "यह तुम कह क्या रहे हो ? ज़िन्दा आदमी को तुम गला दबाकर मार डालोगे ?"

"क्यों नहीं ? उससे रोगी भी बच जाएगा, मेरे रुपये भी बच जाएंगे।"

"हज़ार हो, हैं तो आखिर तुम्हारे पिताजी। उन्हें मार डालने में तुम्हें कष्ट नहीं होगा ?"

चौधरी जी ने कहा, "काहे का कष्ट ? पहले होता तो कष्ट होता भी, अब क्यों होगा ? अब मैं पत्थर हो गया हूं। अब मुझमें दया-माया कुछ रह नहीं गई है। बूढ़े मालिक ने ही तो मुझे दया-माया करने को मना किया है। दया-माया करूं, तो यह जगह-जायदाद बचा पाऊंगा मैं ?"

कहते-कहते चले जा रहे थे। फिर लेकिन उलटकर खड़े हो गए। बोले, "वह कहां है ?"

"और कहां रहेगी, अपने कमरे में।" प्रीति ने कहा।

"और प्रकाश ? वह अभी तक लौटा नहीं ?"

"लौटा होता तो तुम अपनी आंखों ही देख पाते।"

सुनकर चौधरी जी मानो अपने आप ही कहने लगे, "मैं समझ ही नहीं पाता कि किधर-किधर देखूं। एक आदमी कितनी तरफ सम्भाले। एक लड़का था, वह भी नालायक निकल गया। उससे कुछ भी होने-हवाने का नहीं। अब या तो मैं पागल हो जाऊंगा, या आत्महत्या करूंगा।"

चौधरी जी कहकर बाहर चले गए। प्रीति को बड़ी देर तक लेकिन नींद नहीं आई। सदा की तरह उस रात भी धीरे-धीरे चारों ओर शान्ति हो गई। प्रीति बिस्तर पर लेटी-लेटी बड़ी देर तक ऊपर के कमरे की ओर कान लगाए रही। कहीं कोई आवाज़ हो ! किसीके रोने की आवाज़। किसीके घुटे गले का आर्त्तनाद। सोचते ही प्रीति को लगा, उसका भी गला किसीने धर दबाया है। गला घोंटने से कैसी पीड़ा होती है, प्रीति ने यह भी कल्पना करने की कोशिश की। किन्तु किसीको अगर पता चल जाए ! और, अगर मारना ही हो, तो डाक्टरी दवा से काम लेना ही तो ठीक है। नींद की दवा खिला दी जाए। वह नींद फिर कभी खुलेगी नहीं। चुपचाप आराम से मर जाएं। खून के गुनाह से छुटकारा मिले।

अचानक बाहर खट् की-सी आवाज़ हुई।

प्रीति कान खड़ा किए रही। किसीको गला घोंटकर मारने से क्या ऐसी ही खट् से आवाज़ होती है ! लेकिन क्यों ? वह समझ नहीं सकी कि खून करने की ज़रूरत ही क्या है ! इसीसे तो मुन्ना ऐसा हो गया है। प्रीति को लेकिन यह पता नहीं चला कि इस घर के और एक कमरे में और भी कोई

जमी हुई है।

सदा की तरह नयनतारा उस दिन भी आँखें बंद किए पड़ी थी। लेकिन उस तरह से पड़े नहीं रहा गया। चारों तरफ जब सन्नाटा हो गया, तो उसने समझा, घर में अब कोई जाग नहीं रहा है। यही मौका है। किवाड़ खोलकर ""र वह ऊपर जाएगी, जाकर उसके कमरे के दरवाजे में धक्का देगी।

शायद हो कि वह दरवाजा नहीं खोले। या हो सकता है, दरवाजा ला ही हो। आमतौर से बीमार के कमरे का दरवाजा तो खुला ही रहता।

नयनतारा जाकर उससे सिर्फ पूछेगी, 'तुमने यह क्या किया? तुमने अपने रर ऐसा दंड क्यों लिया, यह बताओ। किसके लिए?'

आधी रात में एकाएक नयनतारा को देखकर सम्भव है वह अवाक् रह ाए। हो सकता है, किसी बात का जवाब नहीं दे सके।

वह कहेगी, 'तुमने क्या मुझको दंड देने के लिए अपने ऊपर यह ज़ुल्म ज्या?'

वह शायद नयनतारा की बात का कोई जवाब नहीं दे। परन्तु नयनतारा से छोड़ेगी नहीं। जवाब लेकर ही रहेगी।

अन्दर महल के बाद बाहरी दालान। नयनतारा की शादी हुए इतने दिन । गए, वह बाहरी दालान में इस तरह से कभी नहीं आई। बाहर जाने के क रास्ते के पास ही ऊपर जाने की सीढ़ी। दुतल्ले पर जाने के लिए इसी ीढ़ी से जाना पड़ता है।

नयनतारा दबे पाँवों दीवाल पकड़-पकड़कर ऊपर चढ़ने लगी।

यह भी नहीं मालूम कि वह कहाँ, किस कमरे में है। सास ने तो र्फ इतना ही बताया कि वह ऊपर के कमरे में है। ऊपर कितने कमरे हैं! ड़े मालिक का कमरा तो ऊपर ही है। शायद अगल-बगल दो कमरे हों। एक : दादाजी, एक में उनका पोता। दोनों ही बीमार। इसलिए दोनों ऊपर हते हैं।

नयनतारा को बड़ा डर लगने लगा। एक तो सर्दी के मारे यों ही बदन ांप रहा था। ऊपर से यह डर कि अगर कोई देख ले। कोई अगर सन्देह करे। ोई यदि कुछ पूछ बैठे, तो वह क्या जवाब देगी?

बगीचे की ओर एकाएक एक उल्लू बोल उठा। उल्लू की बोली सुनते ही ायनतारा सीढ़ी के बीच तक पहुँचकर ठिठक गई। सीढ़ी के दोनों तरफ ोवाल। वह दोनों ओर की दीवाल के सहारे सावधानी से चढ़ रही थी।

एक बार जी में आया, क्या जरूरत है। लगा, जैसे चुपचाप कमरे से निकलकर आई थी, वैसी ही लौट जाए। यह कंगलापना उसे अच्छा नहीं लगा। जो शख्स उसकी शक्ल देखना नहीं चाहता, जबरन उसे अपना मुह दिखाना, इससे बढ़कर शरम की बात और क्या हो सकती है! शादी की है तो क्या इतनी ही छोटी हो गई है वह? वह इतनी हिकारत के योग्य है।

नयनतारा लौट ही पड़ी थी। परन्तु फिर ऊपर चलने लगी। न, हार

जाने के लिए वह इस घर की बहू बनकर नहीं आई है। क्यों हारे? पिताजी ने तो उसे सिर ऊंचा करके ही खड़ा रहने को सिखाया है। वह ससुराल में भी सिर ऊंचा किए ही रहेगी।

वह फिर ऊपर चढ़ने लगी। सीढ़ी जहां खत्म होती है, वहां पर एक बरामदा-सा। उसीके पास एक कमरा-सा लगा। लगा, कमरे के अन्दर टिम्-टिम् करके लालटेन जल रही है।

यह किसका कमरा है? इसी कमरे में तो वह नहीं है?

नयनतारा को फिर कैसा संकोच-सा होने लगा। कहीं मुझे देखकर वह फिर नाराज़ हो उठे। फिर वह अपने आप को ही दंड देने लगे। फिर कहीं वह वहीं बेहोश हो जाए। फिर तो सारा भेद खुल जाएगा।

रात काफी हो चुकी थी। सारा नवाबगंज उस समय सो रहा था। कहीं कोई शब्द नहीं।

दरवाज़ा बंद था। नयनतारा बरामदे से जाकर खिड़की के पास खड़ी हुई। खिड़की का आधा पल्ला खुला हुआ था।

वहीं से उसने झांककर देखने की चेष्टा की।

हलकी रोशनी में उसे लगा, कमरे में कोई डोलता फिर रहा है। किसका कमरा है यह? बूढ़े मालिक का कमरा यही है क्या?

कि उसने देखा, उसके ससुर हैं।

इतनी रात को ससुर जी क्यों घूम रहे हैं? कमरे में जगे क्या कर रहे हैं वह?

नयनतारा की छाती धड़क रही थी। फिर भी वह आंखें बंद करके नहीं रह सकी।

देखा, चौधरी जी धीरे-धीरे आगे की तरफ बढ़ रहे हैं। उनसे कुछ आगे फर्श पर एक बूढ़ा आदमी सोया हुआ है। सोए हुए बूढ़े आदमी का सारा शरीर चादर से ढका है।

यही शायद बूढ़े मालिक हैं। बूढ़े मालिक का वह नाम ही सुनती आई है, उन्हें कभी देखा नहीं है। एक, सिर्फ एक बार देखा था। वह भी ठीक से नहीं। नई बहू होकर आई थी। ऊपर जाकर घूंघट में मुंह छिपाए बूढ़े मालिक को प्रणाम किया था। उसके बाद से बस, आज ही।

नयनतारा की आंखें बेतरह उत्सुक हो उठीं।

उसने देखा, ससुर जी बूढ़े मालिक के मुंह के पास झुककर बैठे। उनके मुंह की ओर क्या तो देखने लगे। उसके बाद दोनों हाथ उनके गले की ओर बढ़ाया। शायद कुछ आगा-पीछा करने लगे।

एक अजाने विपद के भय से नयनतारा आर्तनाद कर उठना चाहती थी। न-न-न, तुम सभी खूनी हो। तुमने ठीक ही कहा था, तुमने ठीक ही किया था। इस वंश के रक्त में पाप के जीवाणु हैं। इन लोगों ने कपिल पायरापोड़ा को फांसी लगाकर मरने को मजबूर किया था। इन लोगों ने माणिक घोष के मुंह के आगे की थाली पैरों से ठेल दी थी। और उसके छप्पर का टिन उतार लिया

था, इन लोगों ने फटिक नाई को पागल बना छोड़ा था। तुम इन लोगों को माफ मत करना। इन लोगों की सजा तुमने अपने ऊपर ले ली, अच्छा ही किया।

नयनतारा अचानक चीख उठी, "नहीं-नहीं-नहीं—"

उसके गले से आवाज़ निकलने से पहले ही पीछे से आवाज़ आई, "बहू—"

नयनतारा उसी क्षण वास्तव में लौट आई।

देखा, पीछे उसकी सास खड़ी है।

सास ने कहा, "आओ बहू, यहां आओ, इधर—"

और वह खुद सीढ़ी से आगे-आगे उतरने लगी। नयनतारा भी सास के पीछे-पीछे नीचे आई। नयनतारा को उसके कमरे में ले जाकर सास ने कहा, "इतनी रात को तुम ऊपर किसलिए गई थीं?"

नयनतारा बुत-सी बनी रही। उसकी आंखों के आगे उस समय भी मानों वह दृश्य दिखाई दे रहा था। चौधरी जी बूढ़े मालिक के गले के पास दोनों हाथ बढ़ाए हुए हैं…"

"क्यों बहू, बोलती नहीं हो? ऊपर किसलिए गई थी?"

नयनतारा ने कहा, "आपने तो कहा था कि वे ऊपर के कमरे में हैं। मैं उनको देखने गई थी।"

"देखने? इतनी रात को? तुम्हें क्या अक्ल से कोई वास्ता ही नहीं। जाने से पहले तुमने मुझसे पूछा क्यों नहीं? मैं क्या तुम्हें जाने को मना करती? एकाएक तुम ऊपर चली गई, पहले कभी ऊपर गई थी?"

नयनतारा ने कहा, "लेकिन मुझसे रहा जो नहीं गया मां! उनसे एक बार भेंट करने के लिए मैं छटपटा रही थी।"

सास ने कहा, "नहीं। फिर कभी ऐसा हरगिज मत करना। तुम इस घर की नई बहू हो, मुझसे कहे बिना तुम अब कहीं मत जाना, समझीं?"

फिर बोली, "झरोखे से उझककर तुम देख क्या रही थीं?"

नयनतारा क्या जवाब दे, कुछ समझ नहीं सकी।

"बताओ, क्या देख रही थीं?"

सास की निगाहों को देखकर नयनतारा डर गई। बोली, "मैंने कुछ नहीं देखा—"

"नहीं देखा? मैंने तो देखा? तुम खिड़की से अन्दर झांक रही थीं। दूसरे के कमरे में झांकना, यह कैसा स्वभाव है तुम्हारा?"

नयनतारा बोली, "मैं उनको खोज रही थी—"

"उनको यानी? मुन्ने को? मुन्ने से मिलने की तुम्हें इतनी ही बेचैनी थी, तो तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा? मैं खुद तुम्हें ले जाती। तुम्हारी यह आदत तो अच्छी नहीं है बहू—"

इसी प्रसंग में सास शायद और भी कुछ कहती। लेकिन बाहर किसीके पैरों की आहट हुई।

"कहां हो?"

सास ने बीच में ही वह बात बंद करके कहा, "अच्छा, मैं आती हूँ"

सास बाहर चली गई।

और, नयनतारा बिछौने पर बैठी-बैठी सोचने लगी, यह कैसा घर है ! कैसे घर में उसका ब्याह हुआ ! यह कैसी सासा, कैसे ससुर, कैसा परिवार ! फिर तो उसके पति ने जो कुछ भी कहा था, कुछ भी झूठ नहीं ! कालीगंज की बहू का तब तो यहीं खून किया गया है ! आखिर क्या कालीगंज की बहू का शाप ही फला ?

बाहर की एक आवाज़ से नयनतारा हठात् चौंक उठी। लगा, दीनू का गला है। दीनू बाहर से ही कह रहा था, "छोटे बाबू, जल्दी चलिए, बूढ़े मालिक कैसा तो कर रहे हैं···"

जीवन का यदि कोई भी अर्थ होता हो, तो वह अर्थ यही है कि ज़ीवन रुकता नहीं, वह चलता है। चलते-चलते कभी तो अचलायतन में जाकर वह खत्म हो जाता है, या कभी अनन्त में जाकर परिपूर्णता पाता है। दरअसल यही परिपूर्णता पाना ही असली पाना है। सदानन्द ने भी एक दिन इसी तरह से चलना शुरु किया था। चौधरी परिवार में पैदा होने के साथ उसका चलना शुरु हो गया था। हर कोई तो इसी तरह से चलना शुरू करता है। लेकिन किसी-किसीके बीच रास्ते में ही अचलायतन आकर क्यों खड़ा हो जाता है पथ रोककर ? सदानन्द को भी बीच रास्ते में ही एक दिन बाधा आ खड़ी हुई। बाधा भी ऐसी कि उसे लगा, आगे जाने की अब कोई राह नहीं रह गई है।

मगर नहीं, भागकर तो इन्सान को रिहाई नहीं मिलती। भाग जाने का मतलब ही रुक जाना है। रुकने के लिए तो उसने जन्म नहीं लिया। रुक गए थे बूढ़े मालिक, रुक गए थे चौधरी जी। सदानन्द भी यदि नयनतारा से समझौता करके, ताल-मेल मिलाकर घर-गिरस्ती करता, तो वह भी शायद रुक जाता। चौधरी जी की तरह ही वह चंडीमंडप में बैठकर सरिश्ते की खाता-बही देखा करता। उसकी जगह-ज़मीन बढ़ती और वंश-परम्परा से वह जायदाद को भोगता।

लेकिन वह नहीं हुआ।

नवाबगंज के लोगों को उस समय औरों के लिए मगजपच्ची की फ़ुरसत नहीं थी। कौन तो जाने कहाँ से खबर ले आया कि लड़ाई छिड़ गई। बरवारी-थान में निताई हालदार की दूकान के चौतरे पर उस दिन भी ताश चल रहा था।

खेलते-खेलते केदार ने पूछा, "किससे किसकी लड़ाई छिड़ी जी ?"

बगल में ही परमेश मौलिक था। बोला, "खेल के वक्त जो-सो मत बोला कर केदार, खबरदार ! पहले पत्ती बांट—"

लड़ाई का ज़िक्र वहीं रह गया। जिस लड़ाई से सारी दुनिया का भूगोल-

इतिहास-राजनीति-अर्थनीति—सब कुछ में वैसा उलट-फेर हो गया, उस लड़ाई के लिए किसीने सिर नहीं खपाया। नवावगंज में जैसा चल रहा था, वैसा ही चलता रहा। दशहरे के समय यात्रा, कवि-गान, पांचाली। और बाकी बारहो महीने खेत-खलिहान।

उस दिन कवि-गान चल रहा था। खासी भीड़ थी। कवियाल गा रहा था :

चैत महीने चलता मीठा
मीठी पीकी पुकार,
पेड़ तले की छाया मीठी
मीठी दखिन बयार।
कत्था मीठा पान में भैया
चून से मीठा पान,
उमर हुए पे औरत मीठी
नमक से घी को जान।

दिन-भर की मेहनत-मशक्कत के बाद सब महफिल जमाए बैठे थे। मजा आ रहा था। दुनिया में कहां, किस कोने में लड़ाई छिड़ी है, मार-काट, गोला-बारूद चल रहा है; कहां इंगलैंड, कहां जर्मनी और कहां जापान—हमें यह सब जानने की क्या गरज पड़ी है। लड़ाई छिड़ी तो वही, न छिड़ी तो वही। हमारे लिए सब समान है। हमें तो एड़ी-चोटी का पसीना बहाकर ही खाना नसीब है। जब हमें मशक्कत से ही कमाना-खाना है, तो इस राजे-रजवाडों के मामले में दिमाग खपाने से क्या हासिल ! उससे तो यात्रा, कवि-गान, पांचाली में मस्त रहना ही बेहतर है। और फिर ताश। ताश खेलकर ही रातें गुजार दें—

महफिल के एक छोर से एकाएक फरमाइश आई, "अब जरा रस का गीत हो, रस का—काश, सखी मैं जान जो पाती।"

फिर सरस गीतों का ही सिलसिला शुरू हो गया :

"काश, सखी मैं जान जो पाती
प्रेम श्याम का गरल मिला है
कानों में यह बात जो आती।
कुल की बाला, मन की सरला
तो क्या भूले वह विष खाती !"

गाना हुआ कि महफिल में जान आ गई। तारीफ और वाह-वाह। नवाबगंज के लोगों ने यह गीत बहुत बार सुना है। फिर भी उनके लिए जैसा यह गीत पुराना नहीं होने का। जब भी कवियाल आते, लोग तुरन्त फरमाइश करते, "अजी, वह गीत रहे, वही—काश सखी मैं जान जो पाती—"

भीड़ में दुबका एक किनारे एक आदमी बड़े ध्यान से इस गीत को सुन रहा था। गीत के साथ वह राधा की सोच रहा था। बचपन में उसने राणाघाट की राधा से ही पहली बार इस गीत को सुना था।

बगल से कौन तो बोल उठा, "अरे ! सदा ? तू है ? इतने दिनों के बाद कहां

े टपक पड़ा तू ?"

सदानन्द ने अब तक अपने को छिपाए रक्खा था। किसीको भी उसका पता ाहीं था। इतने दिनों के बाद वह चुपचाप नवाबगंज आया था।

बगल ही में केदार बैठा था। उसने भी देखा। वह भी पहचान गया, "अरे ू ? कहां से आया ?"

अकेले केदार ही नहीं—केदार, गोवर्धन, निताई हालदार, गोपाल षाट—ाभी एक साथ हो-हो कर उठे। चौधरी परिवार में इतना कुछ हो-हवा गया, ौर जिसके लिए इतना कुछ हुआ, वही इतने दिनों के बाद आज सदेह आकर ़ाज़िर हो गया।

"इतने दिनों तक था कहां तू ?"

सबका वही एक सवाल ! सदा की हालत क्या हो गई है ! इन कई ालों में सदा ने बिलकुल चोला ही बदल दिया। चेहरे पर कांटों-सी उगी ोटी-छोटी दाढ़ी। बदन पर मैला कुरता, पैरों में फटी चप्पल।

सदानन्द हंसने लगा।

केदार ने कहा, "अरे, हंस रहा है ?"

सदानन्द ने कहा, "वह गीत सुनकर। उस गीत के सुनते ही मुझे दूसरी बात याद आ जाती है। लगता है, यह आदमी गलत गा रहा रहा है। 'प्रेम श्याम का गरल मिला है' यह पंक्ति ठीक नहीं, वह होगी—'प्रेम टके का गरल मिला है'।"

कहकर वह फिर हंसने लगा।

निताई ने पूछा, "अपने पिताजी से भेंट की ?"

सदानन्द ने कहा, "हां। पिताजी ने घर में नहीं घुसने दिया। घर से निकाल दिया—"

इतना कहकर वह फिर हंसने लगा।

परमेश मौलिक भी सुन रहा था। सुनकर वह हैरत में आ गया। बोला, "चौधरी जी ने तुम्हें घर में घुसने ही नहीं दिया ?"

परमेश मौलिक की नौकरी चली गई थी। उसीकी नहीं सिर्फ, सबकी ही नौकरी जा चुकी थी। कैलास गुमाश्ता, दीनू—कोई नहीं रह गया था। ये तीनों बिहारी पाल की आढ़त में काम कर रहे थे।

इन कई वर्षों में नवाबगंज में इतना परिवर्तन आ गया है, यह सदानन्द को नहीं मालूम था। वह जब नवाबगंज आया था, तो किसीको भी मालूम नहीं था। बहुत वर्षों के बाद आया। एक युग ही कहिए। इस एक युग में कितना कुछ हो गया, यह सोचा भी नहीं जा सकता जैसे। सारी पृथ्वी ही सदानन्द देख गया। जीवन के इस प्रदक्षिणा-पथ में वह क्यों जो फिर अपनी जन्मभूमि में आ निकला, यह बात वही जानता था। सोचा होगा, जाकर देखूं तो सही कि मैंने जो अपना सिर फोड़कर उतना खून बहाया, उसका क्या नतीजा हुआ। जिन बूढ़े मालिक ने अपने वंश की रक्षा के लिए इतना कुछ किया, उनका अन्त भी देखने की इच्छा थी। पर, केवल उन्हींका अन्त नहीं,

लौटकर सदानन्द बहुत कुछ का अन्त ही देखा। देखा, जिस घर में वह पैदा हुआ था, वह घर ठीक कालीगंज के ज़मींदार के घर जैसा ही मुतहा मकान बन गया था।

सदानन्द धीरे-धीरे बाहर के अहाते में दाखिल हुआ। उसी अहाते में जहां विधु डंडीदार का बेटा शशी सदा चावल-धान सरसों तौलने में जुटा रहता था। दाएं चंडीमंडप। उसके पास ही बंशी ढाली का कमरा। सब खाली पड़ा। चारों ओर जंगल-झाड़ी। आने-जाने का रास्ता तक बंद, उसके बाद हवेली। हवेली में जाने में सदानन्द को डर-सा लगने लगा। लगा, किसीने मानो पीछे से पुकारा—"मुन्ना—"

सदानन्द सिहर उठा, कौन ?

हूबहू मां का गला। सदानन्द ने भी पुकारा, "मां —"

सदानन्द का गला सुनकर फर्र-फर्र करके चमगादड़ों का एक झुंड उड़ गया। बरामदे में बहुत दिनों से झाड़ू नहीं पड़ा। बहुत दिनों से जैसे घर को किसी-के पैरों का परस भी नहीं मिला। चारों तरफ बेतरतीबी, उजाड़-सा। अन्दर जाने के दरवाज़े पर ही बाधा पड़ी। दरवाज़े में ताला लटक रहा था। आगे नहीं जाया जा सका। वह लौट आ रहा था। वहीं पर ऊपर जाने की सीढ़ी थी। उसके जी में जाने क्यों तो हो आया, ऊपर जाकर भी देखे। इस सारे मकान का ही उत्तराधिकारी तो वही है। नरनारायण चौधरी का पोता है वह, हरनारायण चौधरी का इकलौता बेटा। उसे इस घर में जहां भी चाहे, जाने का अधिकार है।

आधी सीढ़ी चढ़ा होगा कि लगा, ऊपर के कमरे से रोशनी की बड़ी हल्की-सी रेखा आ रही है। यानी ऊपर जरूर कोई है। उसके पैरों की हल्की-सी आहट हुई होगी। उसी हल्की-सी आहट से अन्दर कोई मानो सजग हो गया।

"कौन ?"

सुनते ही समझ गया, गला चौधरी जी का है। इस वीरान और सन्नाटे में किसी जीते-जागते आदमी के चलने-फिरने ने उन्हें विचलित किया था।

कोई जवाब नहीं मिला, तो उन्होंने फिर पूछा, "कौन ? कौन है ?"

सदानन्द ने साफ़ आवाज़ में कहा, "मैं हूं—"

जवाब सुनकर चौधरी जी शायद प्रसन्न नहीं हुए। बोले, "मैं कौन ?" नाम नहीं है ?"

सदानन्द ने कहा, "मैं सदानन्द।"

कहना था कि चौधरी-भवन पर जैसे गाज गिरी। लमहे में सदानन्द के सामने कमरे का दरवाजा खुल गया और सदानन्द ने देखा, उसके सामने नंगे बदन उसके पिताजी खड़े हैं।

जरा देर दो में से किसीके भी मुंह में बोली नहीं। दोनों ने मानो अपने सामने भूत देखा हो। एक दिन इसी सदानन्द को केन्द्र करके जिस आदमी की चिंता, आनन्द, अशान्ति का अन्त नहीं था, उसीको सामने देखकर वह सोच नहीं सके कि क्या करें ! इस सदानन्द ने एक दिन अपने कपाल पर चोट करके इस

घर के कपाल पर भी चरम आघात पहुंचाया था। आज चौधरी जी का सब गया। सदानन्द की खातिर उन्होंने गांव-भर के लोगों के सामने चरम कलंक का बोझा अपने सिर पर उठाया था। इसीलिए उनका सर्वस्व गया, उनकी मान-मर्यादा, वंश---सब कुछ धूल में मिल गया। इसीलिए वह एक अभिशाप ग्रस्त की नाईं अपने दिन बिता रहे थे। और वह जब सर्वनाश की अन्तिम सीढ़ी पर आ पहुंचे, ठीक उसी समय यह फिर आकर हाज़िर हो गया।

"क्यों आए हो ? क्यों आए हो, कहो ?"

सदानन्द ने जवाब नहीं दिया, सिर्फ होंठों में हंसा।

"हंस रहे हो ? शरम नहीं आती ? तुम मेरे यहां फिर क्यों आए ?"

सदानन्द ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। जैसा हंस रहा था, हंसता रहा।

"हंस क्यों रहे हो, जवाब दो ?"

सदानन्द अब और भी खुलकर हंसने लगा। जैसे चौधरी जी की इस बरबादी और तबाही से उसे खुशी हुई हो। जैसे वह कहना चाह रहा हो कि मैंने तो पहले ही सावधान कर दिया था। कहा था कि कालीगंज की बहू की भविष्यवाणी सच होगी। उस समय तो आप लोगों ने मेरी सुनी ही नहीं। उस समय तो आप लोगों ने मुझे कमरे में ठूंसकर रूपवती पत्नी को ललकार कर बाहर से दरवाजे की सांकल चढ़ा दी थी। उस समय तो सोच लिया था कि पत्नी का सलोना मुखड़ा देखकर मैं भूल जाऊंगा। लेकिन दस हज़ार रुपये का वह चकमा कहां गया ? दस हज़ार का हरजाना देना नहीं चाहा था। अब तो दस लाख की सलामी देकर उसका हरजाना गिनना पड़ रहा रहा। फिर भी, दस लाख की सलामी देने के बाद भी कालीगंज की बहू के लहू का ऋण चुका सकेंगे आप ? अभी भी तो बहुत चुकाना बाकी है।

"बोलो, तुम क्यों आए हो ? जवाब दो। बोलते क्यों नहीं हो ?"

जवाब देते-देते भी सदानन्द रुक गया। मगर तो भी उनके मन की बातें आंखों की भाषा में साफ झलक आई। उसकी आंखों ने कहा, मैं क्यों आया हूं ? आया हूं यह देखने के लिए कि आदमी लोहू का ऋण कैसे चुकाता है ! कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, फटिक नाई, कालीगंज की बहू—इन सबका लोहू क्या बेकार जाएगा ?

चौधरी जी से और रहा नहीं गया। बोले, "मेरी बात का जवाब नहीं दोगे, तो यहां से निकल जाओ। निकल जाओ मेरे सामने से—जाओ—"

सदानन्द और खड़ा नहीं रहा। सदानन्द के निकल आने के पहले ही उसके सामने धड़ाम से दरवाज़ा बंद हो गया। वह सीढ़ी से नीचे उतर रहा था कि एकाएक फिर वही पुकार, "मुन्ना—"

सदानन्द पल-भर के लिए ठिठक गया। चारों ओर एक बार देखा। कहीं तो कोई नहीं। फिर उसे पुकारा किसने ?

"मुन्ना, तू आया है ?"

सदानन्द को अब बड़ा डर लग आया। उसने तेज़ी से कदम बढ़ाकर

बरामदा पार कर जाने की कोशिश की कि काली छांह-सा कोई आकर उसका पाव सूंघने लगा।

"कौन ? कौन ? कौन ?"

न, कोई नहीं है। नाहक ही डर गया था सदानन्द। वह छाया कुछ नहीं, कुत्ता था। उसीके घर पलने वाला कुत्ता। बाहर बैठकर घर में पहरा दे रहा था। *गरचे यह अबोला जीव बेचारा नहीं जानता था कि पहरा देने लायक अब* इस घर में कुछ भी नहीं है। अब तक पहरा देकर ही तू क्या कुछ रोक सका! सर्वनाश जब आता है, तो हजार पहरा देने पर भी आता है और पहरा न देने से भी आता है। प्यारा-सिपाही, लाठी-बन्दूक-राइफल से भी उसे रोका नहीं जा सकता। इसका कारण और कोई जाने चाहे नहीं जाने, सदानन्द भली-भांति ही जानता था। तुम हजार कोशिश करो, जीवन की तरह मृत्यु को भी नहीं रोका जा सकता। संसार में एक मृत्यु ही है, जिसकी मृत्यु नहीं। मृत्यु ही संसार में एकमात्र अविनश्वर है।

वहां से भागकर वह सीधे बरवारी-थान में आकर रुका। वहां उस समय बेशुमार लोगों की भीड़ थी। लालटेन जलाकर कवियालों की महफिल जमी थी। कवियाल उस समय बड़े दर्द के साथ वही उसका जाना हुआ गीत ही गा रहा था :

"काश, सखी मैं जान जो पाती।
प्रेम श्याम का गरल मिला है
कानों में यह बात जो पाती
कुल की बाला मन की सरला
तो क्या वह विष भूले खाती!"

सदानन्द वहीं भीड़ में चुपचाप बैठ गया।

बहुत दिनों की बात हो गई वह। सदानन्द को मालूम न हो चाहे, गांव के *किसीसे भी छिपी नहीं थी।* सबसे पहले *बिहारी पाल की पत्नी को ही मालूम* हुआ था। उसके बाद बूढ़े, बच्चे, औरत-मर्द—सभी जान गए।

सदानन्द के चले जाने के बाद से रहस्य मानो और गहरा होता आ रहा था।

बूढ़े मालिक के मरने के बाद कोई समझ जरूर नहीं सका था। मर गए, मर गए। जो आदमी इतने दिनों से खाट पर पड़ा था, उसके मरने में कोई क्या संदेह करता? ज़मींदार घर में जैसे होता है, धूमधाम से उनका श्राद्ध हुआ। लोगों ने खाया भी खूब और बहुत लोगों ने खाया। कुछ लोग बांधकर भी ले गए। ब्राह्मणों ने दक्षिणा पाई और नौकर-चाकरों ने कपड़े। गरज कि नवाबगंज के लोगों ने कई दिनों तक खूब आनन्द मना लिया।

सिर्फ एक आदमी की याद किसीको नहीं आई—इस घर के लाड़ले

सदानन्द की। विहारी पाल ने एक वार पूछा था, "सदानन्द की कोई खब मिली क्या चौधरी जी?"

सुनकर चौधरी जी को सुहाया नहीं। फिर भी मन की खीज को दबाकर ही वोले, "उसकी खवर मिली भी तो क्या! उसका रहना न रहना बरावर ही है।"

विहारी पाल ने कहा, "हज़ार हो, आखिर लड़का ही तो है। वह हज़ार कसूर करे, वाप होकर आप क्या उसे छोड़कर रह सकेंगे? आप न सही, कम-से-कम उसे जन्म देने वाली उसकी मां तो उसे नहीं भूल सकेंगी?"

चौधरी ने इस विषय पर ज्यादा वात नहीं की। वह जैसे उसके वाद से और ही आदमी हो गए थे। और भी चिड़चिड़े, और भी गंभीर। उस समय बूढ़े चौधरी का ऊपर वाला कमरा खाली ही पड़ा रहता था। उन्होंने वहीं अपने रहने का इंतज़ाम कर लिया था।

चंडीमंडप में कोई आता और उनके वारे में खोज-पूछ करता, तो सरिश्तेदार कहता, "वह तो अव नीचे नहीं उतरते, ऊपर ही रहते हैं—"

मगर मामूली-सी मर्जी पेश करने के लिए बहुतेरे लोग ऊपर नहीं जाना चाहते। इस तरह चौधरी जी भी वहुत झमेलों से वच जाते। लेकिन जव शाम हो आती तो जैसे किसी आतंक से उनका कलेजा सिर-सिर कर उठता। रात में डर के मारे कभी-कभी दम घुट जाने जैसी हालत होती। कोई मानो उनका गला धर दवाता। हड़वड़ाकर उठकर वह रोशनी जला लेते। एक गिलास पानी पीते। उसके वाद फिर सो जाने की कोशिश करते।

कभी-कभी वगल में सोई पत्नी की नींद खुल जाती। कहती, "क्या हुआ? नींद नहीं आ रही है?"

चौधरी जी कहते, "प्यास लगी थी—"

फिर पूछते, "बहू कहां है?"

गृहिणी कहती, "क्यों, वहू की क्यों पूछ रहे हो? वह अपने कमरे में सो रही है—"

रात में बस यहीं तक।

सवेरे लेकिन घर का और ही चेहरा हो जाता। घर में आदमी कहने को तो दो ही जने—चौधरी जी और उनकी पत्नी। इसके सिवाय एक और—पराए घर की वेटी। बूढ़े मालिक भी नहीं और सदानन्द भी नहीं। दो अदद कम। परन्तु इन्हीं दो-तीन प्राणियों को केन्द्र करके जो नाटक होता जा रहा था, वैसा शायद संसार के और किसी भी घर में कभी नहीं हुआ।

नयनतारा नहाकर धूप में गीले वाल सुखा रही थी।

कि दौड़ती हुई सास कुंए पर आई। वोली, "तुम क्या वहरी हो वहू? कान से कम सुनने लगी हो?"

नयनतारा ने कहा, "क्यों मां, क्या हो गया?"

"और फिर कह रही हो, क्या हो गया? पुकारते-पुकारते मेरा गला वैठ गया और तुम्हारे कानों आवाज़ नहीं पहुंची। या यह सोचा कि पुकारकर सास मरा

करे, मैं अपने बाल तो सुखा लूं।"

नयनतारा संकोच में सिकुड़ गई। बोली, "मैंने तो सुना नहीं मां—"

सास बोली, "सुनने क्यों लगीं? सुनने से तो घर की, गिरस्ती की कुछ सुविधा होगी। गिरस्ती जले, खाक हो जाए, तुम्हारा क्या? एड़ी-चोटी का पसीना एक करके तुम्हें तो पैसा नहीं लाना पड़ता है। जिसे रुपया जुटाना पड़ता है, वह समझे। चूल्हे पर चढ़ा दूध जल गया, उसकी गंध भी तो आदमी को लगती है। तुमसे क्या मेरी घर-गिरस्ती का कोई भी काम नहीं होने का? सिर्फ बदन में हवा लगाते फिरने के लिए ही तुम्हें घर की बहू बनाकर लाए हैं? फिर भी समझती, अगर अपने पति को रोककर रख सकती—"

सास वैसी ही गुर्राती हुई फिर लौट गई।

सास के पीछे-पीछे नयनतारा भी जाकर रसोई-घर में खड़ी हुई। देखा, चूल्हे पर एक कड़ाही दूध उबाला जा रहा था, किसीको उसका ख्याल न रहा। सब अपने-अपने काम में व्यस्त थे। इसीमें सारा दूध जल गया। इतने नुकसान की गवाह-सी खड़ी वह क्या करे, समझ नहीं सकी। गौरी बुआ के मुंह में भी बोली नहीं थी। विष्णु की मां भी ऐसी घटना से गूंगी हो गई थी। सब रसोई में लगी हुई थीं। ऐसी हालत में नयनतारा को लग रहा था, वही अपराधी है।

अचानक सास की बोली से वह चौंकी। बोली, "मैं पूछती हूं, ठूंठे जगन्नाथ की तरह तुम वहां खड़ी क्यों हो? तुम्हारा तो अपना कमरा है, वहां जाओ। तसवीर की बीवी-सी बन-संवरकर सो रहो, रसोई बन जाएगी तो बुला लूंगी। दया करके मुझे रसोई-घर के झमेले से छुटकारा दे देना—"

नयनतारा वहीं खड़ी सास की बात सुनती रही। उसके बाद उससे वहां खड़ा नहीं रहा गया। अपने कमरे में गई, तकिए में मुंह गाड़कर पड़ गई।

कब जो उसे नींद आ गई, पता नहीं। सास की हांक-पुकार से उसकी नींद खुली। उसने सास को कहते सुना, "इतनी नींद तुम्हें कहां से आती है बहू? मैंने बातों में तुम्हें जाकर सो रहने को कहा और तुम जाकर सचमुच सो ही गई। खोपड़ी में थोड़ी-सी अक्ल भी नहीं है? तुम क्या चाहती हो कि बूढ़ी-सास मर-खपकर पका-चुकाकर ला देगी और तुम दया करके वही भकोसा करोगी? यह चाहती हो, तो मैं वह भी कर सकती हूं, पका-चुकाकर लाकर तुम्हें खिला सकती हूं। अब से वही करूंगी।"

नयनतारा उठ बैठी और मारे शरम के सिटपिटा गई। बोली, "माफ करें मां, जाने मैं कब सो गई—"

सास बोल उठी, "सो तो जाओगी ही बहू! घर में इतनी दासी-बांदियां हैं, तुम नहीं सोओगी तो कौन सोएगा? भगवान ने तुम्हे सोने योग्य भाग दिया है, तुम तो सोओगी ही। मेरा नसीब खटने का है, मैं खटकर ही मरती रहूंगी।"

बात को और नहीं बढ़ाकर नयनतारा खाने के लिए बैठ गई।

ऐसे में बड़े कष्ट से वह अपने आंसू रोक पाती। न रोके और सास कहीं देख ले तो और गंजन। मां-बाप के पास बड़े लाड़-प्यार में पली थी नयनतारा।

इसीलिए जीवन में इस गंजन से वह वेतरह डरती रही है। और, अव रोज़-रोज़ वही गंजन ही उसे सुननी पड़ रही है।

अथच उसने किया क्या है? ऐसा कौन-सा दोष उसने किया है कि उसे ऐसी गंजन सहते रहना है?

गौरी बुआ भी अव और ही हो गई थी। व्याह के वाद जो गौरी बुआ उसका इतना आदर-जतन करती थी, उसका व्यवहार ऐसा कैसे हो गया, क्या जाने!

कभी-कभी चुपके से विहारी पाल की पत्नी पहुंच जाती। पूछती, "तुम्हारी सास कहां है वहू?"

नयनतारा कहती, "सो रही हैं शायद, वुला दूं?"

विहारी पाल की पत्नी नयनतारा को वड़ी अच्छी लगती। मगर उसकी सास के डर से वह ज्यादा आ भी नहीं सकती थी। दोपहर को जव सव सो जाते, तो चुपके से वह नयनतारा के पास आकर वैठती। पूछती, "कैसी हो वहू?"

शुरू-शुरू में विहारी पाल की पत्नी को देखकर नयनतारा डर जाया करती थी। लगता, यह कहीं सास से कह दे। इसीलिए लेटी होती, तो झट उठ वैठती।

विहारी पाल की पत्नी कहती, "उठ क्यों गई वहू, तुम लेटी रहो न। मैंने देखा, सभी सो रहे हैं, इसीलिए तुम्हारे पास आ गई। खैर! हां, सवेरे सास इतनी वकझक क्यों कर रही थी, क्या किया था तुमने?"

पहले नयनतारा अपना कोई दुखड़ा नहीं रोती थी। मगर वगल में घर, वात आखिर कव तक छिपी रहे? विहारी पाल की पत्नी पूछती, "तुम्हारी सास तुम्हें खाने-वाने को देती हैं?"

नयनतारा ने कहा, "देती हैं।"

विहारी पाल की पत्नी को सव मालूम था। उससे कुछ छिपाना कठिन था। कहती, "तुम झूठ कह रही हो वहू! मैंने सव देखा है, आज तुम्हें खाना ही नहीं नसीव हुआ—"

विहारी पाल की पत्नी की ओर देखती हुई नयनतारा अवाक् रह जाती। उसके वाद उससे कुछ करते नहीं वनता। उसकी गोदी में मुंह गाड़कर रो पड़ती।

रोते-रोते कहती, "मुझे कुछ खाने को जी नहीं करता है नानी जी—कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उन लोगों के वहां से हटते ही मैं खिड़की से खाना वाहर फेंक देती हूं, कुत्ते सव खा जाते हैं।"

विहारी पाल की पत्नी कहती, "खाओगी भी कैसे वहू, भूख ही कैसे लगेगी? सास तुम्हें क्या खाने को देती है, यह देखना वाकी नहीं है। वैसा दाल-भात भी कोई खा सकता है?"

कितनी वार आंचल के नीचे से नानी जी कुछ-न-कुछ खाने को निकालती। कभी तली हुई मछली तो कभी पोस्त दाने के वड़े। जाने क्या-क्या! घर में

जो बनता, उनमें से चुन-चुनकर ला-ला के नयनतारा को खिलाया
नयनतारा बिहारी पाल की पत्नी के सामने अपना मन उजा
देती। कहती, "ऐसा क्यों हो गया नानी जी? आप तो शुरू से ही
देखती आ रही हैं, मैंने ऐसी क्या गलती की कि सास जी मुझे फूटी
भी नहीं देख सकतीं?"

नानी जी कहती, "तुम्हारी सास कुछ भली है कि तुम्हें अच्छी
देखें?"

नयनतारा कहती, "लेकिन पहले तो वह ऐसी नहीं थीं। आप
तो देखा ही है, पहले मुझे कितना मानती थीं—"

"खाक मानती थी, खाक! वह परले सिरे की बदमाश है। मैं क्या तु
सास को पहचानती नहीं हूं?"

"मगर मैं तो उन्हें सदा श्रद्धा-भक्ति करती आई हूं नानी जी!
ओर से तो मैंने कोई भूल नहीं की है। मुझे मां नहीं है, इसलिए सास क
मैं अपनी मां जैसी मानती आई हूं। मेरा क्या कसूर है, आप ही कहिए

बिहारी पाल की पत्नी कहती, "कसूर तुम्हारा नहीं है, तो और किस
है। सारा कसूर तो तुम्हारा ही है।"

"मेरा कसूर? कैसे?"

"मगर सास तुम्हें माने क्यों! सो बताओ? तुम सास-ससुर के कि
काम आई हो? अपने पति को तुम रोककर घर में रख सकीं? पति के न
होने से स्त्री की कैसी पूछ? बात है न, पति नहीं अपना तो घर उसक
सपना। तुम्हें न तो पति है, न पूत। तुम्हें कौन चाहे? अपनी सास की गो
में तुम कोई पोता दे सकीं?"

अपनी असमर्थता, अपनी विफलता से नयनतारा और भी टूट जाती।
कहती, "आप तो सब कुछ जानती हैं नानी जी, फिर जान-बूझकर ऐसा क्यों
कहती हैं?"

बातें ज्यादा हो नहीं पातीं। बाहर किसीके पैरों की आहट होते ही
बिहारी पाल की पत्नी झट उठ पड़ती। जाते हुए कह जाती, "तो मैं चलती हूं
बहू, फिर कभी आऊंगी—तुम्हारी सास दईमारी देख लेगी तो अनरथ
करेगी—"

लेकिन सास के पास जाकर बिहारी पाल की पत्नी बिलकुल और ही हो
जाती। सास कहतीं, "ओ-आओ मौसी, आज क्या रसोई बनी?"

इस-उस बात के बाद बिहारी पाल की पत्नी पूछती, "तुम्हारी बहू कहां है
बहू, उसे देख नहीं रही हूं?"

सास कहती, "और कहां होगी, अपने कमरे में सो रही है। सोने के सिवाय
ो बहू को और काम नहीं है।"

नयनतारा के दिन ऐसे ही बीत रहे थे। वह बनकर जब शुरू-शुरू आई
, तो और कुछ और सदानन्द के चले जाने के बाद बिलकुल और ही कुछ।
ं मालिक के मरने के बाद ही इस घर की जीवन-यात्रा ने दूसरी ओर मोड़

उस दिन हठात् सास ने कहा, "बहू, आज कमरे का ......
ंद करके मत सोना, खुला रहने देना, समझीं ?"

नयनतारा ठीक समझ नहीं सकी। बोली, "दरवाज़ा खुला रखकर सोऊंगी ?"

सास ने गम्भीर होकर कहा, "हां—"

नयनतारा फिर भी नहीं समझ सकी। पूछा, "क्यों मां, दरवाज़ा खोलकर क्यों सोऊंगी ?"

सास ने कहा, "जो कहती हूं, वही करना। तर्क मत करो।"

"मगर आप ही तो रोज़ दरवाज़ा बंद करके सोने को कहती थीं ?"

सास ने कहा, "जो कहती थी, कहती थी। आज दरवाज़ा खुला रखक सोना।"

नयनतारा के मन में फिर भी खटका-सा लगा, एकाएक सास दरवाज़ खुला छोड़कर सोने को क्यों कह रही हैं ? बोली, "आज शायद आप मे कमरे में सोएंगी ?"

अब सास खीज उठी। बोली, "तुम तो बड़ी बेअदब हो। मैं तुम्हारे कम में सोऊं न सोऊं, तुम्हारा क्या ? मैं जो कहती हूं, वही करना। जाओ—"

ये बातें बिहारी पाल जानता है। बिहारी पाल की पत्नी भी जानती है और यही नहीं, निताई हालदार, केदार, गोवर्धन—जो निताई की दूकान चौंतरे पर ताश खेलते हैं, वे भी जानते हैं। जो स्त्रियां नदी नहाने जाती इसके-उसके घर की बातें करती हैं, वह सब भी जानती हैं। कभी चौध परिवार की नई बहू नयनतारा को लेकर कितनी हलचल, कितनी कानाफ़ चली थी। काल के प्रवाह में वह सब प्रसंग अब वह गया है। लेकिन इतने दि के बाद सदानन्द को देखकर लोगों को फिर से उन बातों की याद आने लगं

गाना अभी ज़ोर-शोर से चल ही रहा था :

"नारी का कुछ नहीं यहां प्रत्यय
नारी को कुछ नहीं धरम का भय
वह मिलती जैसे, भूलती वैसे
दोनों में तत्पर···"

बिहारी पाल भी गाना सुन रहा था। बात यह थी कि इस आयोज ज्यादा चन्दा उसीने दिया था। इस समय नवाबगंज में वही बड़ा है। काफी रात गए घर लौटा और पत्नी से कहा, "सुनती हो—"

बिहारी पाल की पत्नी की आंखें ऊंघ रही थीं। बोली, "क्या ?"

"देखो ज़रा, किसे ले आया हूं। चौधरी जी का लड़का सदानन्द है।"

पत्नी को मानो यकीन नहीं आया। बोली, "एं, अपना सदानन्द ? दिनों तक कहां था ?"

बिहारी पाल ने कहा, "अपने बाप के पास गया था। चौधरी जी ने घर में घुसने ही नहीं दिया। निकाल बाहर कर दिया—। अब यह जाए इसीलिए अपने यहां ले आया।"

बिहारी पाल के यहां अब पहले जैसी घर-द्वार की कमी नहीं थी। युद्ध की कृपा से उसका कारोबार और फूल ही उठा है। और भी पूंजी बढ़ी। बिहारी पाल की पत्नी बाहर निकली। बोली, "कहां है सदानन्द, मैं देखूं तो—"

सदानन्द के चेहरे पर वही कंटीली दाढ़ी-मूंछ। मैला कुरता, फटी चप्पल। लेकिन होंठों पर हंसी।

बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "अब तक कहां थे बेटे? आखिर आए, मगर कुछ दिन पहले आए होते तो बेचारी नयनतारा की ऐसी बरबादी नहीं होती। अहा—"

सदानन्द लेकिन निर्विकार। वह हंस ही रहा था।

बिहारी पाल को वह घटना याद आने लगी। बाद में नयनतारा ने ही बताया था। सास ने उससे जैसा कहा था, वह दरवाजा खुला रखकर ही सोई थी। शायद तंद्रा-सी भी आ गई थी उसे। खिड़की की राह बिस्तर पर चांदनी आकर पड़ रही थी।

किसी आवाज़ से एकाएक उसकी आंखें खुल गईं। नींद खुलते ही उसने देखा, कौन तो बिलकुल उसके बिछावन के पास आकर खड़ा है—"कौन? कौन?"

नयनतारा ने उस आदमी को साफ देखा। पहचाना। पल में वह अपने कपड़े सम्भालकर उठ बैठी। न, सपना तो नहीं है। वह तो उसे साफ देख रही है···

नयनतारा से रहा नहीं गया। वह चीख पड़ी, "मां-मां-मां—"

वह पसीने से नहा उठी। चीख से घर फिर सूना हो गया। उसे याद है, काफी रात होने पर सास उसके पास आकर सो गई थी। फिर वह भी कब सो पड़ी, कुछ ख्याल नहीं रहा। लेकिन जो आदमी उसके कमरे में आया था, वह गायब हो चुका था। नयनतारा बिस्तर से उठी। कमरे से बाहर निकलकर चारों तरफ देखा। कोई कहीं नहीं था। तो? कौन आया था उसके कमरे में?

पूरा घर अंधेरा। वह सास के कमरे के पास जाकर पुकारने लगी, "मां-मां—"

अन्दर से कोई जवाब नहीं मिला।

मगर सास को पुकारने के सिवाय और उपाय ही क्या था उसे? अथच रात को पुकारने से सास शायद नाराज़ हों।

नयनतारा ने फिर आवाज़ दी, "मां, मां जी—"

इसपर भी जब कोई जवाब नहीं मिला, तो वह दरवाज़े पर धक्का देने लगी। शायद सास बेखबर सो रही हों। दिन-भर की थकावट के बाद नींद से बेहोश-सी पड़ी हों।

"मां—मां—मां जी—"

अब आहट मिली। दरवाजा खोलकर सास बाहर निकल आई। बोली,

नयनतारा ने कहा, "मुझे बड़ा डर लग रहा है मां—"

सुनकर सास खिजला उठी, "नखरा ही जानती हो बहू ? तुम्हें डर लग है तो मैं क्या करूंगी ? डर लग रहा है तो इस आधी रात को मेरी नींद । किए विना नहीं चल सकता था ? कल सुबह ही अगर कहती तो ऐसा सा महाभारत अशुद्ध हुआ जा रहा था ?"

नयनतारा ने कहा, "मुझे बड़ा डर लग रहा था मां ! लगा, कोई मेरे में आया—"

"नखरा रहने दो बहू, तुम्हारे कमरे में कौन जाएगा भला ? किसे इतनी पड़ी है कि अपनी नींद खराब करके इतनी रात को तुम्हारे कमरे में ?"

नयनतारा ने कहा, "चोर-डकैत, छिछोरे भी तो हो सकते हैं। चूंकि ने मुझे दरवाजा खुला रखकर सोने को कहा था, इसलिए कह रही हूं··· तो मेरे पास ही सोई थीं, कब उठकर चली आईं, पता नहीं···"

सास ने कहा, "तुम्हें नींद से सुलाकर मैं चली आई। अपने विस्तर के य और किसीके बिछौने पर मुझे नींद जो नहीं आती। और, चोर-डकैत कहती हो, उन्हें और कोई काम नहीं है कि तुम्हारे कमरे में जाएं। तुम्हारा ा-दाना, जो भी है, मेरे सन्दूक में है, वहां उन्हें क्या मिलेगा ?"

"खैर ! कल से लेकिन मैं दरवाज़ा बंद करके सोऊंगी।"

सास ने कहा, "कल की कल देखी जाएगी। आधी रात को उन बातों से लाभ ? उससे अच्छा है, अभी मुझे सोने दो। तुम तो सारे दिन सोती हती हो। दिन-भर कड़ाचूर काम करके रात ज़रा सो सकूं, मुझे यह भी सर नहीं।"

सास और खड़ी नहीं रही। उसके सामने ही दरवाज़ा बंद करके सोने गई। नयनतारा को कुछ नहीं सूझा कि वहां अंधेरे में खड़ी वह क्या करे ! में जाकर वह सोए कैसे ? सोचा, लालटेन जलाकर रख ले। लेकिन इस में आए इतने दिन हो गए, यह भी पता नहीं कि लालटेन कहां रहती है। धीरे-धीरे वह फिर अपने कमरे में गई। कमरे की खुली खिड़की के ने खड़ी हुई। चारों ओर सुनसान। बहुत ही डर लगने लगा उसे। लेकिन भर अकेली जगी भी कहां तक रहेगी ? जगकर कितने दिन बिताएगी ? र, बरबारी-थान में शायद यात्रा का रिहर्सल चल रहा था। गीत और की आवाज़-सी आ रही थी। अभी कोई बात करने को होती, तो अच्छा । नानी जी आ जातीं तो क्या कहना ! नानी जी ही तो एक हैं। एक स जी की गांठ खोली जा सकती है। यहां और जितनी भी हैं, सब ी-सी।

लेकिन पहले सास कितना मानती थीं। उस समय तो वह सास से ही मन बात खोलकर कह सकती थी। उस बार जब पिताजी उसे ले जाना े थे, वह सास का ही मुंह देखकर तो जा नहीं सकी। मगर अब पिताजी

क्यों नहीं आ रहे हैं? वह भी क्या उसे भूल गए?

ऐसा ही होता है शायद। शायद सभी स्त्रियों के जीवन में ऐसी ही स्थिति होती है। ब्याह के बाद सभी मां-बाप शायद बेटी को ऐसे ही भूल जाते हैं। सच पूछिए तो एक मां ही बेटी को याद रखती है। उसका नसीब ही खराब है। नहीं तो मां ही उसको क्यों छोड़ जाती? मां अगर जिन्दा रही होती, तो वह खुद ही उसके पास चली जाती। जाकर कहती, "मां, अब से मैं ससुराल नहीं जाऊंगी, तुम्हारे ही पास रहूंगी। नहीं रहने दोगी मुझे?"

मां फिर भी दिलासा देती उसे। दुलारती। कहती, "अरी, तू सोच मत। ऐसे कितने ही लड़के नाराज होकर घर से भाग जाते हैं, और फिर देखा, एक दिन लौट आते हैं। कोई बात नहीं, कुछ दिन यह मुसीबत झेल। देख लेना, एक-न-एक दिन सदानन्द लौट आएगा।"

लेकिन उसकी आंखें नींद से मुंद जाने लगीं। लेकिन दरवाजा खुला रखने से नींद कैसे आएगी?

नयनतारा से रहा नहीं गया। उसने दरवाज़े की छिटकिनी लगा दी और बिस्तर पर लुढ़क पड़ी। सोना चाहा। ऊंघ आ रही थी, पर नींद नहीं लग रही थी। बिस्तर पर करवटें बदलने लगी। फिर भी नींद नहीं आई। हर-दम जी में यही आता रहा, दरवाज़ा बंद कर लिया है, कहीं सास जाने और बिगड़े।

सो, उसने छिटकिनी खोल दी और निश्चिन्त हो गई। बला से नींद न आए, नींद न आने से सेहत खराब होगी, हो। मगर घर में उसके लिए कच-कच तो नहीं होगा। उसके लिए घर में झंझट-झमेला होगा, उसे इसी बात का सबसे ज्यादा डर था।

कि सास की आवाज़ से उसकी नींद खुल गई।

"बहू, तुम जाकर चाय पिओगी कि चाय का प्याला तुम्हारे मुंह के पास लाकर रख दूं? कहो, तो वही करूं, यहीं ला दूं? ला दूं?"

सास की बात से शरम से सिटपिटा गई नयनतारा। कब उसकी आंखें लग गई थीं, ख्याल नहीं। धूप निकल आई थी। खिड़की से सारे कमरे में धूप घुस आई थी। इतनी देर तक तो वह कभी नहीं सोती। ऐसा कैसे हो गया? क्यों हुआ?

बाहर आकर खड़ी हुई, तो रात की घटनाएं उसे याद आने लगीं। दिन की रोशनी में वह सब सपने-सी लगने लगी। तो क्या सपना ही देख रही थी? उसके कमरे जो आया था, वह भी क्या सपने का ही आदमी था? उसीसे डरकर वह सास के कमरे के सामने जाकर पुकारने लगी थी? और फिर सास की डांट। सब सपना ही था? उसने बार-बार घटनाओं को याद करने की कोशिश की। यह यदि सपना था तो वह देर तक सोती कैसे रह गई? रात ज्यादा देर से सोई, जभी तो दिन निकले तक सोती रही। बिस्तर पर पड़ते ही सो गई होती, तो अब तक सोती भला।

सभी जब रसोई-घर में जुट पड़ी थीं, वह भी जाकर रसोई-घर के

पर खड़ी होकर देखने लगी। सभी काम कर रही थीं। ऐसे में वह अगर अपने कमरे में जा बैठे तो शिकायत होगी। और सिर्फ खड़ी ही रहे चुपचाप, तो भी शिकायत।

सास बोल उठी, "तुम जाने-आने का रास्ता छेंककर क्यों खड़ी हो गई, यह तो कहो? खुद कुछ करोगी भी नहीं और औरों को करने भी नहीं दोगी। या तो यहां से हट जाओ, या अपने कमरे में जाकर सो जाओ। खाने के समय तुम्हें बुलावा भेजूंगी।"

नयनतारा क्या करती, कहा नहीं जा सकता, लेकिन उससे पहले ही अचानक चौधरी जी अन्दर आए। बोलते ही बोलते आ रहे थे, "अरी ये गौरी, कहां है? चंडीमंडप में चाय भिजवाने की बात भूल गई क्या?"

ससुर को देखकर नयनतारा ने घूंघट को और ज़रा खींच लिया और अपने कमरे में चली आई। लेकिन फिर वही कमरा। उसका अपना कमरा। कमरा और बाहर का बरामदा—उसकी परिक्रमा की यही परिधि थी। इतनी ही जगह में उसे कैद रहना है। इस कैद से क्या छुटकारा नहीं है?

देश-भर का चक्कर काटकर सदानन्द को एक उपलब्धि हुई। वह उपलब्धि यही कि यह सारी दुनिया ही नवाबगंज है। इस नवाबगंज ने ही बड़े आकार में सारी दुनिया का रूप लिया है। और भी साफ-साफ कहें, तो इस चौधरी परिवार ने शाखा-प्रशाखा फैलाकर सारी दुनिया का रूप लिया है। दुनिया में बूढ़े मालिक जैसे हज़ारों-हज़ार, लाखों-लाख चौधरी जी भी दुनिया में डोलते फिर रहे हैं। बाहर से कुछ समझ में नहीं आता, बाहर से कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन मानो वही लोग अन्दर घुसकर तिल-तिल करके सब कुछ को तहस-नहस किए दे रहे हैं।

चौधरी परिवार भी उस समय उसी तरह से तिल-तिल करके बरबाद हो चला था। सदानन्द के ब्याह के दिन से ही शायद उसकी शुरुआत थी। शायद हो कि शुरुआत उससे पहले से हुई हो, पर उस समय किसीको उसकी भनक नहीं मिली। राख ढकी आग की तरह ही वह अन्दर-ही-अन्दर घुल रही थी। धुआं पहली बार सदानन्द के ब्याह में ही दिखाई पड़ा। उसके बाद से जो कुछ हुआ, उसकी जानकारी सदानन्द को नवाबगंज के लोगों से हुई।

प्रकाश मामा तब भी कभी-कभी अचानक ही नवाबगंज में प्रकट हो जाता था। रेल-बाजार में उतरना और वहां से साइकिल-रिक्शा पर यहां। जो लोग निताई हालदार की दूकान में बैठे रहते थे, पूछते, "क्यों साला बाबू, सदा का कुछ पता चला?"

प्रकाश मामा रिक्शे पर से ही चिल्लाकर कहता, "अभी मुझे बात करने का समय नहीं है भाई, फिर बात होगी—"

प्रकाश मामा सदा ही व्यस्त बागीश ठहरे। गप-शप करने का उसे कभी

भी समय नहीं रहा। सदानन्द के व्याह के समय तो उसे नहाने-खाने तक की फ़ुरसत नहीं थी। व्याह की भीड़ निकली तो सदानन्द पुलिस की हिरासत में गया। उसके बाद सदानन्द घर से ही भाग गया। एक-एक घटना घटती गई और प्रकाश मामा लाल होता गया। धीरे-धीरे उसके कपड़े-कुरते में बहार आई। पत्नी को मनीआर्डर से भागलपुर के पत्ते पर रुपया भेजा और राधा-घाट जाकर राधा के यहां मौज उड़ाया। जिस दिन प्रकाश मामा राधा के यहां जाता, वहां उत्सव-सा हो जाता। राधा की रसोई से मांस-मछली की गंध उठती, सारा टोला मात हो जाता। गंध मिलते ही टोले की औरतें समझ जातीं, राधा के बाबू आ गए—

बहुत दिनों के बाद उस दिन फिर राधा के यहां से मांस की खुशबू उड़ी। यों राधा सिर्फ़ दाल-भात या आलू का भुरता और भात पर ही बसर कर लेती है। मगर प्रकाश मामा को वह नहीं रुचता। कहता है, "यह भी कोई खाना है। इससे तो उपवास करके रह जाना बेहतर है।"

प्रकाश मामा खाएगा तो कलिया-पुलाव, नहीं तो नहीं। खाऊं तो गेहूं नहीं तो रहूं एहूं। राधा के यहां जब वह आता तो मुर्गे या बकरे का मांस, आलू-प्याज सब कुछ लेकर ही आता।

उस दिन उसके घर में दाखिल होते समय ही आवाज़ दी, "राधा, ये राधा—"

पहचाने हुए गले की आवाज सुनकर राधा हड़बड़ाकर उठ बैठी और गिरूं कि पड़ूं—भागती हुई जाकर उसने किवाड़ का हुड़का खोल दिया। प्रकाश मामा ने कहा, "मांस ले आया हूं। भात चढ़ा दे और मांस में ज़रा ढंग से मिर्च-विर्च डालना। मांस तीता नहीं होता तो बड़ा फीका लगता है।"

मांस का ठोंगा राधा को देकर उसने हाथ-पांव धोया और अन्दर गया। जेब से बोतल को निकालकर कुरता खोला। अलगनी से राधा की एक साड़ी उतार ली। उसीको लुंगी जैसा पहनकर राधा के बिछौने पर बाबू जैसा बैठ गया।

प्रकाश मामा का बिलकुल स्थाई बंदोबस्त। उसका बराबर का यही तरीका है। जो दो-एक दिन राधा के यहां रहता है, उसीके यहां रहता है, कहीं बाहर नहीं जाता। वहीं चौकी पर बैठकर शराब और सिगरेट पीता रहेगा, फिर सोया रहेगा।

राधा ने चूल्हे में आग दे दी। उस बीच में एक बार आई। बोली, "आखिर इतने दिनों के बाद मैं याद आई!"

सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए प्रकाश मामा ने कहा, "मैं आ गया, इसीको अपना भाग्य समझो। उधर घर में जो झमेला बीता······"

"झमेला? झमेले का फिर क्या हुआ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "मेरे उस भांजे को देखा तो है। कम्बख्त पूरा बधिया का ताऊ है। इतनी खूबसूरत लड़की ला दी, मगर वह पत्नी के साथ सोता

नहीं—"

"सोता नहीं, मतलब ?"

"सोता नहीं, मतलब सोता नहीं। मैं सोचता हूं, दुनिया में आखिर कितनी तरह के बेवकूफ लोग हैं। बाप के उतना रुपया हैं। दादाजी के मर जाने के बाद सब कुछ तो उसके बाप को ही मिला। उसका बाप अपने बाप का इकलौता है। और मेरा यह भांजा भी अपने बाप का एक ही लड़का। फिर भी कहता है, 'पत्नी के साथ नहीं सोऊंगा—' "

"क्यों? बीवी बदचलन है क्या ?"

"राम कहो, मैंने खुद से देख-सुनकर ब्याह कराया है। खैर, अभी यह सब पुराना पचड़ा छोड़ो। उसी भांजे ने फिर दूसरी हरकत की। चुपचाप घर से भाग गया—"

राधा चौंकी। बोली, "भाग गया? यानी? तुम्हारा भांजा तो मेरे यहां आया था।"

"तेरे यहां? मेरे भांजा तेरे यहां आया था? कब? कितने दिन पहले ?"

सुनते ही प्रकाश मामा चौकी पर उछलकर बैठ गया। बोला, "तूने अब तक तो मुझे बताया नहीं? मगर एकाएक तेरे यहां क्यों आया ?"

राधा ने कहा, "वह क्या अपने-आप आया? तुम्हारे भांजे को तो मैं पहचानती हूं। वह क्या मेरे यहां आने वाला लड़का है? मैं बाजार करके आ रही थी। देखा, तुम्हारा भांजा रास्ते पर जा रहा है। सिर पर पट्टी बंधी है लगा, डाक्टरखाने से निकल रहा था—"

"फिर ?"

राधा ने कहा, "मैं पहचान गई। पूछा, 'सिर में क्या हो गया ?'"

"तो उसने क्या जबाब दिया ?"

राधा बोली, "तुम्हारे भांजे ने इसका कोई जबाब नहीं दिया। उसके कुरता-कपड़े की हालत देखकर मैं भांप गई, कुछ-न-कुछ हुआ है। मैं जोर जबरदस्ती उसे अपने यहां ले आई। हालत से समझा, कई दिनों से उसने कुछ खाया नहीं है। पास में फूटी पाई नहीं। दुर्दशा का अन्त नहीं। तुम्हारे बारे में पूछा, तो कुछ नहीं बोला।"

"उसके बाद वह गया कहां, यह तो बता। मैं तो उसीको ढूंढ़ने निकला हूं।"

राधा ने कहा, "कहां गया, यह क्या मुझे बता गया? पहले तो उसने मेरे घर में कदम ही नहीं रखना चाहा। मुझसे ठीक से बात ही नहीं की। कुछ ऐसा भाव दिखाया, मानो मुझे पहचानता ही नहीं। लेकिन मैंने फिर भी नहीं छोड़ा। घर ले आई। खिलाया-पिलाया। कहा, 'आराम से यहां सोओ।' वह सोया। मैंने अपनी चौकी उसके लिए छोड़ दी। मैं बगल के घर में जाकर सोई। लेकिन सवेरे जगी, तो देखा, कमरे का दरवाजा खुला है। गायब है। मुझे कहे बिना ही रात में उठकर चला गया।"

"फिर ?"

राधा ने कहा, "फिर क्या ? उसके बाद से नहीं जानती ।"

यह जो सुना, तो प्रकाश मामा सीधे नवाबगंज चला आया। ऐसे ही कहीं गया और फिर नवाबगंज चला आया। कोशिश में कोई कमी नहीं की।

दीदी पूछती, "क्यों रे प्रकाश, कुछ पता चला ?"

प्रकाश को जो-जो खबर मिलती, आकर दीदी को बता जाता। फिर रुपये ले जाता। राधा से खबर मिलते ही दीदी के पास चला आया था।

दीदी ने कहा, "तो जिन्दा तो है न ?"

प्रकाश ने कहा, "जिन्दा नहीं रहेगा तो जाएगा कहां, सुनूं मैं ? देख लेना, मैं उसे ढूंढ़कर ही रहूंगा। उधर रेल-बाजार की पुलिस को कह रखा है, राणाघाट की पुलिस से कह दिया है। सबको रुपया क्या नाहक ही पिलाया है ? जब वह राणाघाट में एक बार दिखा है, तो हो न हो वह कलकत्ता गया है। अब जाकर कलकत्ता की पुलिस को कुछ दक्षिणा दे आऊंगा।"

दीदी ने कहा, "मगर वह कलकत्ता कैसे जाएगा ? उसके पास पैसे थोड़े ही हैं ? टेंट में तो कुछ भी नहीं है। घर से जो पहने था, वही पहनकर चला गया है। साथ में एक अंगोछा तक नहीं लिया। रेल पर कैसे चढ़ेगा ? टिकट चेकर नहीं पकड़ेंगे ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "टिकट ? आजकल कोई टिकट भी खरीदता है ? मेरे जैसे जो बुद्धू हैं, वही टिकट कटाते हैं। लड़ाई के दौरान कौन तो टिकट कटाता है और कौन टिकट पूछता है। खैर, पांचेक सौ रुपये और दो तो, इस बार कलकत्ता की पुलिस को जाकर कुछ थमा दूं।"

प्रकाश मामा बराबर रुपया ही लेता गया, काम तब तक कुछ भी नहीं हुआ। सदानन्द भी घर नहीं लौटा।

प्रकाश मामा ने पांच सौ रुपये जेब में रखे और कलकत्ता पहुंचा। कलकत्ता, मतलब प्रकाश मामा का स्वर्ग। रुपया हो तो कलकत्ता सबके लिए ही स्वर्ग है, लेकिन खास तौर से प्रकाश मामा के लिए। टेंट में जब तक रुपये हैं, तब तक डर किसका है ? क्यों डरें किसीसे ? मैं क्या किसी माने में तुमसे छोटा हूं जी ?

प्रकाश मामा राधा के यहां जैसे छाती फुलाकर जाता है, यहां भी वैसे ही। वही, मौसी के यहां। मौसी अब बेशक बूढ़ी हो गई है, पर जब वह बूढ़ी नहीं थी, प्रकाश मामा तभी से यहां का नियमित ग्राहक है। दीदी से जभी उसे रुपये मिले, वह सारे बंगाल में मौज उड़ाता फिरा। यह घुड़दौड़ भागलपुर मे ही शुरू हुई थी। उसके बाद मौज-मजे की जहां भी जरा बू मिली, वहीं प्रकाश मामा ने मौज की घुड़दौड़ की।

उस समय कलकत्ता में ब्लैक-आउट चल रहा था। कालीघाट बाजार की गलियों में उस समय वह रौनक नहीं थी। मौसी के ग्राहक उस समय और भी कम हो गए थे। चारों ओर अंधेरा। रास्ते की रोशनियों पर ढक्कन। किसी को ठीक से शक्ल देखने का उपाय नहीं। कई दिन पहले बम गिरा था, इसलिए कलकत्ता खाली-सा हो गया था। मौसी बड़ी चिंता में थी। खर्च कैसे

नलेगा !

गली से कोई जाता कि औरतें घेर लेतीं।

"कहां जा रहे हो ? उधर कहां जा रहे हो ?"

वह कहता, "मुझे उधर काम है—"

बस सब समझ जातीं, यह ग्राहक बच्चा है। फिर उसे छुटकारा नहीं। कोई हाथ पकड़कर खींचती, कोई कुरता, तो कोई धोती का छोर। वह आदमी भी अड़ जाता और औरतें भी नाछोड़ बंदा। उस अंधेरी गली के अन्दर खींचा-तानी शुरू हो गई। सांझ से किसीकी बोहनी तक नहीं हुई। बहुतों को मिट्टी के तेल तक पैसा नहीं जुटा। ऐसे में एक ग्राहक मिला भी तो वह भी हाथ से निकल जाएगा।

उस आदमी ने कहा, "अरे, छोड़ो बाबा ! छोड़ो, हाथ छोड़ दो—"

औरतों में से एक जांबाज़ थी। वह बोली, "क्यों, छोड़ क्यों दूं ? हम लोग क्या बाढ़ में बहकर आई हैं ? हमारे यहां रहने से क्या तुम जूठे हो जाओगे ?"

उस आदमी ने कहा, "मेरे साथी खुदी के यहां हैं, मैं उनसे मिलने जा रहा हूं। अरे कपड़ा छोड़ दो, नंगा कर दोगी क्या ?"

यह सुनकर एक ने उसकी धोती के छोर को और भी ज़ोर से पकड़ा। बोली, "हम क्या देखने में खुदी से खराब हैं ? हम क्या मज़ा नहीं दे सकती हैं ?"

उस आदमी से बन नहीं पाया। उसने सम्भालकर धोती को पकड़ा। कहा, "मेरे पास रुपया नहीं है, कसम रुपया नहीं है। रुपया-पैसा जो है, सब उन्हीं लोगों के पास है। नाहक ही मुझे पकड़ रही हो—"

ये दलीलें उन सबकी बहुतेरी सुनी हुई हैं। इच्छा नहीं होने से यह सब चकमा सभी देते हैं। इस टोले की औरतें इन बातों का विश्वास नहीं करतीं। कहा, "देखें तो जेब, पैसा है या नहीं—"

और सब मिलकर उसके कुरते की जेब टटोलने लगीं।

वह आदमी चीखता रहा, "अरे कह रहा हूं रुपये नहीं हैं, फिर भी रिहाई नहीं। अजीब मुसीबत है यह तो।"

एक ने कहा, "खैर, रुपया नहीं है, आठ आना पैसा भी नहीं है ?"

"नहीं, आठ आना भी नहीं।"

"चार आना ?"

लेकिन किसके कहने का क्या विश्वास ? तब तक सबने उसकी जेब, कमर टटोल ली। पैसा-कौड़ी नहीं थी।

हताश होकर उसे सब छोड़ ही दे रही थीं। चूहा ही नहीं पकड़ पाए, तो वैसी बिल्ली पालने से क्या लाभ ?

वह आदमी अब जैसे जी गया। वह जिधर जा रहा था, उधर ही जाने लगा कि उनमें से एक औरत को ख्याल हो आया। बोली, "अरे रे, धोती का फेंटा तो नहीं देखा, शायद उसमें हो।"

वह आदमी कुछ आगे निकल गया था। एक औरत ने उसके आगे जाकर रास्ता रोक लिया। बोली, "ज़रा फेंटा तो देखें तुम्हारा—"

पीछे से दूसरी औरतों ने खींचकर तब तक उसका फेंटा खोल दिया।

वह आदमी चीख उठा, "हाय राम, यह क्या, फेंटा मत खींचो, मैं खुद देता हूं—"

इस धंधे की औरतें किसीकी बात पर विश्वास नहीं करतीं। उसका फेंटा खींचकर खोला और देखा कि छोर में रुपया बंधा है।

"ये रहे रुपये। अब तक चालाकी खेली जा रही थी।"

उस आदमी ने खप्प से रुपये को पकड़ लिया। बोला, "अरे, यह रुपया मेरा नहीं है, दूसरे का है, छोड़ो-छोड़ो—"

उन सबका हाथ छुड़ाकर उसने निकल भागना चाहा।

उन लोगों ने तब तक आसमान सिर पर उठा लिया, "अरी ओ मौसी, देखो, भागा जा रहा है—"

चीख सुनकर मौसी बाहर निकली, "क्यों री, क्या हो गया? कौन भाग रहा है?"

उन लोगों ने कहा, "देखो न मौसी, रुपया नहीं है—यह कहकर भागा जा रहा था और इधर फेंटे में रुपया है—"

मौसी ने सामने जाकर गौर से उस आदमी को देखा। उसके बाद बोली, "फेंटा छोड़ दे इसका, फेंटा क्यों पकड़े हुए है! तुम आओ भैया, तुम इन लोगों की बात का कुछ ख्याल मत करना। आओ, तुम्हारा रुपया कोई छीनेगा नहीं। डरने की बात नहीं, आओ—"

बहुत दिनों के बाद एक ग्राहक मिला है। मौसी ने उसे मुट्ठी से जाने नहीं देना चाहा। खातिर के साथ-साथ पकड़कर उसे बुलाने लगी। बोली, "तुम मेरे साथ आओ, डरने की कोई बात नहीं—"

उस आदमी ने कहा, "मैं खुदी के यहां जा रहा हूं, वहां मेरे साथी लोग हैं—"

"साथी रहे, तो क्या हुआ। वह सब खुदी के यहां हैं तो रहें, तुम मेरे यहां रहो। मेरे पास खुदी से भी अच्छी-अच्छी लड़की है। पहले देख तो लो सही, देख लेने में क्या बिगड़ता है? पसन्द न आए, तो खुदी के ही पास चले जाना। पसन्द आ जाए, तो यहीं रात बिताना। सुबह साथियों से भेंट हो जाएगी।"

इधर जब यह चल रही थी, तो उधर तब तक गली के मोड़ पर प्रकाश मामा पहुंचा। अंधेरे में अगल-बगल देखता हुआ वह दबे पांवों चल रहा था। ट्रेन चूंकि लेट आई, इसीलिए यह आफत हुई। तीसरे पहर तक आ जाने से ऐसा नहीं होता।

सामने से ही एक आदमी मुंह छिपाए जा रहा था। प्रकाश मामा को संदेह हो आया। सदानन्द है न। उसे देखकर मुंह छिपा लिया।

पीछे से आवाज़ दी, "सदानन्द? ये सदा?"

आवाज़ सुनकर उस आदमी ने कदम को और भी तेज कर दिया।

प्रकाश मामा का संदेह और पक्का हो गया। बोला, "अबे ये सदा, मैं प्रकाश मामा हूं रे—

ादमी तब तक और भी तेज़ी से ओझल हो जाना चाह रहा था।
ा दौड़ने लगा। शायद वह उसीको देखकर भाग रहा है। छिपकर
था। यह नहीं सोचा था कि मामा यहां तक धावा करेगा।
ादमी जितना तेज़ जा रहा था, प्रकाश मामा उतना ही तेज़ चलने
खर जाकर उस आदमी की चादर पकड़ ली।
रे, भागा जा रहा है? इतना पुकार रहा हूं, सुन ही नहीं पा रहा

ा नजदीक से उसका चेहरा देखकर खटका-सा हुआ। सदा नहीं है।
है। इस मुहल्ले में आया, था, इसलिए चादर में मुंह छिपा लिया था।
ाने पर मुंह से चादर उतार कर बदन पर रख लेगा।
ा मामा ने उसकी चादर छोड़ दी। बोला, "कुछ ख्याल मत कीजिएगा।
गलती हो गई। मैंने सोचा था, मेरा भांजा है—"
ा मामा ने बात और नहीं बढ़ाई। छि:! भला आदमी था, इसलिए
नहीं। और तरह का आदमी होता तो फजीहत हो जाती। सच ही तो,
यहां क्यों आने लगा? वह तो भला लड़का है। उसे ऐसा संदेह हुआ
हो सकता है, नशा कुछ ज्यादा हो गया है। छि:!
ः बाद मौसी के घर के सामने पहुंचा तो वहां अजीब हाल था।
ाक मौसी ने भी उसे देख लिया। उन औरतों ने भी देखा।
र राम, भले मानस के बेटे? तुम कब आए? अहो भाग्य अपना।
तने दिनों में मौसी की याद आई—"
आदमी उनके चंगुल में था, अब वह बच गया। फेंटा बांधते-बांधते
। इतने दिनों बाद पुराना ग्राहक मिल गया—अब अलल-टप्पू खरीदार
ा नहीं। उसे देखकर मौसी के होंठों पर हंसी आई। बोली, "ओ,
ाओ। खाना-पीना तो नहीं हुआ होगा? ट्रेन से उतरकर ही सीधे
रहे हो न?"
ाश मामा ने तुरन्त दस-दस के पांच नोट निकालकर फेंक दिए।
'लो। मांस-अंडा जो भी मंगाना हो, मंगाओ! माल भी मंगाओ।
ास एक काम से आया हूं—"
ों को तो मौसी ने तुरन्त गांठ में बांध लिया। खबर मिलते ही
भी आ पहुंचा। प्रकाश मामा को देखकर औरतें भी किलबिला
ब कोई फिक्र नहीं। अब होटल से मछली-मांस अंडा सब आ जाएगा।
उट के चलते ग्राहक नहीं हैं। बहुत दिनों के बाद आज कुछ भोजन
ागा।
ी ने कहा, "क्या खाओगे, सो कहो।"
ाश मामा ने कहा, "आज वह ठर्रा-वर्रा नहीं, विलायती पिऊंगा। तुम
ालायती ही पसन्द करती हो।"
ी ने कहा, "नहीं-नहीं, आज मेरी एकादशी है। आज विलायती नहीं,
ही पिऊंगी। मगर मेरी तुम छोड़ो। तुम परांठा खाओगे या भात?"

प्रकाश मामा ने कहा, "भात-वात नहीं, परांठा और मांस।"

गिरधारी को वैसी ही फरमाइश की गई। दूसरी औरतों को भी प्रसाद मिलेगा। लिहाज़ा ज़रा ज़्यादा ही लाना होगा। मौसी ने हिसाब करके गिरधारी को रुपया दे दिया।

मौसी को अकेले में बुलाकर प्रकाश मामा ने कहा, "तुम्हें एक काम करना होगा मौसी—"

"कौन-सा काम ?"

"तुम्हारी वह बतासी ! बतासी है क्या ?"

"क्यों, तुम बतासी के कमरे में बैठोगे क्या ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "अरे नहीं, मैं बड़े बाबू के लिए कह रहा हूं। बड़े बाबू तो आते हैं न ?"

मौसी ने कहा, "नहीं। बड़े बाबू बतासी को पक्के के मकान में ले गए हैं। यहां बड़ा झमेला होता था।"

"लेकिन बड़े बाबू से एक काम जो कराना था।"

"कैसा काम ?"

"मेरे भांजे को पहचानती हो न ? वही, उस बार जिसे यहां ले आया था। वह अचानक घर से भाग गया है। समझी ? इधर घर में नई बहू आई और उधर वह भागा। तुम्हारा बड़ा बाबू अगर मदद कर दे, तो उसका पता चल जाए। वह तो डिटेक्टिव है, वह सब कुछ कर सकते हैं। खर्च जो लगेगा, मैं दूंगा।"

मौसी ने गम्भीर होकर पूछा, "कितना तक खर्च करोगे ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "बड़े बाबू जो मांगे। रुपये के लिए अड़चन न होगी।"

इतने में गिरधारी होटल से सब सामान लेकर आ गया। मौसी ने कहा, "ठीक है, अभी तो तुम खाओ-पिओ, रात को तो कुछ होने-हवाने को नहीं, कल सवेरे जैसा होगा, इंतजाम कर दूंगी। लेकिन मेरा हिस्सा जिसमें ठीक मिले। हां—"

प्रकाश मामा ने कहा, "तुम उसकी फिक्र न करो।"

उस रात भी नयनतारा सो रही थी। कई रात नहीं सोने की वजह से कब तो वह बेखबर सो पड़ी थी। उसे अचानक लगा, किसी ने उसके बदन पर हाथ रखा है। और वह तुरन्त चीख उठी, "कौन? कौन है?"

उसने जैसे ही झटका दिया, हाथ उसके बदन से हट गया।

नयनतारा ने जैसे ही सामने देखा, वह आदमी गायब हो गया। लेकिन उसे पहचानने में नयनतारा को देर नहीं हुई। रात कितनी हुई थी, पता ! नयनतारा उठ बैठी। लेकिन और दिन की तरह चिल्लाई नहीं। धीरे-

वह आदमी तब तक और भी तेज़ी से ओझल हो जाना चाह रहा था। प्रकाश मामा दौड़ने लगा। शायद वह उसीको देखकर भाग रहा है। छिपकर यहां आया था। यह नहीं सोचा था कि मामा यहां तक धावा करेगा।

वह आदमी जितना तेज़ जा रहा था, प्रकाश मामा उतना ही तेज़ चलने लगा। आखिर जाकर उस आदमी की चादर पकड़ ली।

"क्यों रे, भागा जा रहा है? इतना पुकार रहा हूं, सुन ही नहीं पा रहा है?"

लेकिन नजदीक से उसका चेहरा देखकर खटका-सा हुआ। सदा नहीं है। कोई और है। इस मुहल्ले में आया, था, इसलिए चादर में मुंह छिपा लिया था। कुछ दूर जाने पर मुंह से चादर उतार कर बदन पर रख लेगा।

प्रकाश मामा ने उसकी चादर छोड़ दी। बोला, "कुछ ख्याल मत कीजिएगा। भाई, बड़ी गलती हो गई। मैंने सोचा था, मेरा भांजा है—"

प्रकाश मामा ने बात और नहीं बढ़ाई। छिः! भला आदमी था, इसलिए कुछ बोला नहीं। और तरह का आदमी होता तो फजीहत हो जाती। सच ही तो, सदा भला यहां क्यों आने लगा? वह तो भला लड़का है। उसे ऐसा संदेह हुआ ही क्यों? हो सकता है, नशा कुछ ज्यादा हो गया है। छिः!

उसके बाद मौसी के घर के सामने पहुंचा तो वहां अजीब हाल था।

तब तक मौसी ने भी उसे देख लिया। उन औरतों ने भी देखा।

"हाय राम, भले मानस के बेटे? तुम कब आए? अहो भाग्य अपना। आखिर इतने दिनों में मौसी की याद आई—"

जो आदमी उनके चुंगुल में था, अब वह बच गया। फेंटा बांधते-बांधते चला गया। इतने दिनों बाद पुराना ग्राहक मिल गया—अब अलल-टप्पू खरीदार की जरूरत नहीं। उसे देखकर मौसी के होंठों पर हंसी आई। बोली, "ओ, आओ, आओ। खाना-पीना तो नहीं हुआ होगा? ट्रेन से उतरकर ही सीधे चले आ रहे हो न?"

प्रकाश मामा ने तुरन्त दस-दस के पांच नोट निकालकर फेंक दिए। बोला, "लो। मांस-अंडा जो भी मंगाना हो, मंगाओ! माल भी मंगाओ। तुम्हारे पास एक काम से आया हूं—"

नोटों को तो मौसी ने तुरन्त गांठ में बांध लिया। खबर मिलते ही गिरधारी भी आ पहुंचा। प्रकाश मामा को देखकर औरतें भी किलबिला उठीं। अब कोई फिक्र नहीं। अब होटल से मछली-मांस अंडा सब आ जाएगा। ब्लैक आउट के चलते ग्राहक नहीं हैं। बहुत दिनों के बाद आज कुछ भोजन नसीब होगा।

मौसी ने कहा, "क्या खाओगे, सो कहो।"

प्रकाश मामा ने कहा, "आज वह ठर्रा-वर्रा नहीं, विलायती पिऊंगा। तुम भी तो विलायती ही पसन्द करती हो।"

मौसी ने कहा, "नहीं-नहीं, आज मेरी एकादशी है। आज विलायती नहीं, मैं देशी ही पिऊंगी। मगर मेरी तुम छोड़ो। तुम परांठा खाओगे या भात?"

प्रकाश मामा ने कहा, "भात-वात नहीं, परांठा और मांस।"

गिरधारी को वैसी ही फरमाइश की गई। दूसरी औरतों को भी प्रसाद मिलेगा। लिहाजा जरा ज्यादा ही लाना होगा। मौसी ने हिसाब करके गिरधारी को रुपया दे दिया।

मौसी को अकेले में बुलाकर प्रकाश मामा ने कहा, "तुम्हें एक काम करना होगा मौसी—"

"कौन-सा काम ?"

"तुम्हारी वह बतासी ! बतासी है क्या ?"

"क्यों, तुम बतासी के कमरे में बैठोगे क्या ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "अरे नहीं, मैं बड़े बाबू के लिए कह रहा हूं। बड़े बाबू तो आते हैं न ?"

मौसी ने कहा, "नहीं। बड़े बाबू बतासी को पक्के के मकान में ले गए हैं। यहां बड़ा झमेला होता था।"

"लेकिन बड़े बाबू से एक काम जो कराना था।"

"कैसा काम ?"

"मेरे भांजे को पहचानती हो न ? वही, उस बार जिसे यहां ले आया था। वह अचानक घर से भाग गया है। समझी ? इधर घर में नई बहू आई और उधर वह भागा। तुम्हारा बड़ा बाबू अगर मदद कर दे, तो उसका पता चल जाए। वह तो डिटेक्टिव है, वह सब कुछ कर सकते हैं। खर्च जो लगेगा, मैं दूंगा।"

मौसी ने गम्भीर होकर पूछा, "कितना तक खर्च करोगे ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "बड़े बाबू जो मांगे। रुपये के लिए अड़चन न होगी।"

इतने में गिरधारी होटल से सब सामान लेकर आ गया। मौसी ने कहा, "ठीक है, अभी तो तुम खाओ-पिओ, रात को तो कुछ होने-हवाने को नहीं, कल सवेरे जैसा होगा, इंतजाम कर दूंगी। लेकिन मेरा हिस्सा जिसमें ठीक मिले। हां—"

प्रकाश मामा ने कहा, "तुम उसकी फिक्र न करो।"

उस रात भी नयनतारा सो रही थी। कई रात नहीं सोने की वजह से कब तो वह बेखबर सो पड़ी थी। उसे अचानक लगा, किसी ने उसके बदन पर हाथ रखा। और वह तुरन्त बोल उठी, "कौन ? कौन ?"

उसने जैसे ही धक्का दिया, हाथ उसके बदन से हट गया।

नयनतारा ने जैसे ही सामने देखा, वह आदमी गायब हो गया। लेकिन उसे पहचानने में नयनतारा को देर नहीं हुई। रात कितनी हुई थी, क्या पता ! नयनतारा उठ बैठी। लेकिन और दिन की तरह वह चिल्लाई नहीं। धीरे

अपनी साड़ी को सम्भालकर उसने बदन से लपेट लिया। घूंघट काढ़ लिया। आज इसका कोई किनारा किए बिना नहीं चलने का। रोज़-रोज यह बरदाश्त करना ठीक नहीं।

बिहारी पाल की बहू को सवेरे-सवेरे नींद नहीं आती। रात के आरम्भ में करवटें लेती रहती है। नींद आती ही नहीं। आधी रात से थोड़ी-थोड़ी जम्हाई आती है। उस रात उसे नींद आ ही रही थी कि बाहर से किसीने पुकारा, "नानी जी, नानी जी—"

औरत का महीन गला।

बिहारी पाल की बहू को आवाज़ पहचानी-पहचानी-सी लगी।

वह झटपट दरवाज़ा खोलकर बाहर निकली। देखा, एड़ी-चोटी चादर में लिपटी घूंघट काढ़े कौन तो खड़ी है।

"कौन ? बहू ?"

नयनतारा सामने आई। बोली, "हां नानी जी, मैं हूं···"

"अरे, इतनी रात को ?"

नयनतारा हांफ रही थी। बिहारी पाल की बहू को लगा, नयनतारा मानो बहुत दूर से दौड़ती हुई आई है।

नयनतारा ने कहा, "नानी जी—"

लेकिन चाहते हुए भी मन की पूरी बात कह नहीं सकी। हांफने लगी।

नानी जी ने पूछा, "इतनी रात को ? क्या बात है बहू ? तुम इतना हांफ क्यों रही हो ? तुम्हारी सास कहां है ?"

नयनतारा के मुंह से तब भी बात नहीं निकल रही थी। देख-सुनकर बिहारी पाल की बहू ने कहा, "तुम बहुत हांफ रही हो बहू, अन्दर आओ—"

नयनतारा को अन्दर ले जाकर उसने अपने बिछावन पर बिठाया। लालटेन जलाकर उसने अच्छी तरह से नयनतारा का मुंह देखा। बहुत ज्यादा डर लगने से किसीकी शक्ल जैसी होती है, नयनतारा का चेहरा वैसा ही हो गया था। पूछा, "हां, अब बताओ तो बहू, बात क्या है ? तुम घर से चली क्यों आई ? किसीने कुछ कहा है ?"

नयनतारा फिर भी कुछ नहीं बोली।

"तुम्हारी सास को पता है कि तुम यहां आई हो ?"

नयनतारा की ज़ुबान फिर भी नहीं खुली। वह जैसे एक अजाने भय से आच्छन्न हो।

"माजरा क्या है ? तुम्हारे मुंह में बोली क्यों नहीं है ?"

अब नयनतारा के बोली निकली, "आप किसीसे कहिएगा नहीं नानी जी कि मैं यहां आई थी। कोई भी जिसमें जान नहीं पाए।"

नानी जी ने कहा, "लेकिन कल सवेरे ? तुम अगर सवेरे यहां रहोगी, तो सभी को मालूम हो जाएगा। मुझे कुछ कहना ही नहीं पड़ेगा।"

नयनतारा ने कहा, "सुबह होने से पहले ही मैं यहां से चली जाऊंगी—
ा, रात-भर के लिए मुझे अपने यहां रहने दीजिए—"
नानी जी ने कहा, "सो रहो। रहने देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।
ार तुम्हारी सास ? वह तो अच्छी औरत नहीं है बहू ! वह जान लेगी तो
र नहीं रहेगी।"
नयनतारा ने कहा, "मेरी सास को नहीं मालूम होगा। नानी जी, मैं
बह होने से पहले ही चली जाऊंगी। बस, रात-भर मुझे रहने दीजिए—"
"लेकिन क्यों, यह तो बताओ। अकेली सोने में डर लगता है तुम्हें ?"
नयनतारा ने कहा, "हां, बड़ा डर लगता है—"
"यह तुम अपनी सास से कहती। वह सो जाती तुम्हारे पास।"
नयनतारा ने कहा, "सास से यह कहने में मुझे डर लगता है नानी जी !"
नानी जी ने कहा, "बात तो सही है। जिसका अपना बेटा ही बैसे मां-बाप
पास नहीं रह सका, उसकी बहू ही कैसे रह सकती है !"
, फिर जरा रुककर बोली, "खैर, तुमसे एक बात पूछती हूं बहू, सदा घर
ड़कर क्यों चला गया, यह तो बताओ ? तुमसे झगड़ा-वगड़ा हुआ था ?"
नयनतारा ने कहा, "आपको तो सब कुछ मालूम है नानी जी, फिर पूछ
ीं रही हैं ? अपनी ओर से मैं इतना कह सकती हूं कि सारा दोष मेरे भाग्य
है। भाग्य के सिवाय और किसे दोष दूं ?"
नानी जी ने कहा, "गांव वाले तरह-तरह की अफवाह उड़ा रहे हैं न !
सलिए बेसिर-पैर की बहुत सारी बातें सुनने में आ रही है। तुम्हारी सास
पूछने पर वह तुमपर ही दोष लगाती है—"
"मुझपर ? मेरी सास मुझपर दोष लगाती हैं ?"
नानी जी ने कहा, "खैर छोड़ो ! उन बातों की अभी जरूरत नहीं। तुम
ा समझती हो, मैं तुम्हारी सास की बात पर विश्वास करती हूं ? यह तो
व्वल दर्जे की झूठी है। और मैं तुम्हारे पिता को भी कहती हूं, कुछ ख्याल
त करना, उनको ढूंढ़े क्या और कोई लड़का नहीं मिला ? चौधरी परिवार
तुम्हारी जैसी लड़की का ब्याह करना चाहिए था ? जिस लड़की के ऐसा
प है, उसके लिए लड़के का अकाल होता ?"
इसके बाद उसने आप ही प्रसंग बदल दिया, "जाने दो, इस समय इस
र्चा से कोई लाभ नहीं है। अभी यह कहो कि बात क्या हुई ? भूख लगी है ?
छ खाओगी ?"
नयनतारा ने कहा, "नहीं नानी जी ! इतनी रात को कोई खाता है !"
नानी जी ने कहा, "तो ? तो तुम्हारे लिए मैं क्या कर सकती हूं ?"
नयनतारा ने कहा, "मुझे इस बात से ही तकलीफ हो रही है कि मेरी
जह से आपकी नींद हराम हो गई। मगर मैं करूं तो क्या नानी जी ! रात
ोते ही मुझे उस घर में बड़ा डर लगता है। कलेजा कांपता रहता है—"
"क्यों, रात को इतना डर किस बात का ?"
नयनतारा ने पूछा, "यह तो कहें नानी जी, मैं अगर रोज रात को आपके

पास आकर सोया करूं, तो आपको एतराज़ होगा ?"

नानी जी ने कहा, "हाय राम ! तुम उस घर की बहू हो। तुम यहां सोओगी, तो लोग ही क्या कहेंगे और तुम्हारी सास ऐसा करने ही क्यों देगी ? वह नाहक ही सोचेगी, मैंने तुम्हारा कान फूंका है..."

इतने में पच्छिमी टोले में मुर्गा बांग दे उठा। नयनतारा ने खिड़की से बाहर आसमान की ओर देखा। बोली, "शायद भोर हो आई नानी जी ! आप आकाश की ओर देखिए तो।"

नानी जी भी खिड़की की ओर खिसक गई। आसमान की ओर देखकर कहा, "सुबह हुई नहीं है, होने-होने को है।"

नयनतारा बिस्तर पर लेट गई थी। उठ बैठी। बोली, "तो अभी मैं चलती हूं नानी जी, अभी ही नहीं चल देने से लोग जान जाएंगे।"

नानी जी ने कहा, "चलो, मैं तुम्हें कुछ दूर तक पहुंचा आऊं। अंधेरे में अकेली नहीं जा पाओगी।"

नयनतारा ने अच्छी तरह से घूंघट काढ़ लिए। जाने को तैयार हो गई। बरामदे पर कदम रखकर बोली, "तो मैं चली नानी जी—"

लेकिन देखा, नानी जी भी उसके पीछे-पीछे आ रही हैं। बोली, "आप क्यों आ रही हैं नानी जी, मैं चली जाऊंगी।"

"कहीं सदर दरवाज़ा बंद हो ? अंधेरे रास्ते में अकेली जाओगी तुम ?"

बाहर के अंधेरे की ओर देखकर नयनतारा को बड़ा डर लग गया। आते वक्त वह धुन में चली आई थी। उस समय कुछ सोचा ही नहीं था। लौटते हुए उसका बदन डर से कांपने लगा। अचानक याद आ गया, सदर दरवाज़े के पास ही दाएं चंडीमंडप के पास ही कहीं कालीगंज की बहू का खून किया गया था। याद आते ही कदम मानो और बोझिल हो उठे। पीछे उलट-कर बोली, "अब आप जाइए नानी जी, मैं आ गई, दरवाजा खुला है—"

नानी जी ने कहा, "तुम पहले अन्दर जाओ। देखकर तब मैं जाऊंगी।"

आते समय नयनतारा बाहरी दालान का दरवाज़ा खोलकर चली आई थी। दरवाज़ा खुला ही पड़ा था। अन्दर जाकर उसने दरवाज़े की कुंडी लगा दी। ज़रा भी आवाज़ नहीं हुई। वह पांव दबाए धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर जाने लगी। ऐसे लेकिन कितने दिन चलेगा ? उसे रोज़ इसी तरह नानी जी के यहां जाकर रात बितानी होगी ?

लेकिन अपने कमरे के दरवाज़े के पास जाते ही जैसे वह भूत देखकर चौंक उठी। लगा कोई उसका दरवाज़ा अगोरे खड़ा है।

"कहां गई थीं बहू ?"

सास की आवाज़ नयनतारा के कलेजे में वज्र-सी गड़ी।

"बताओ, कहां गई थीं ?"

नयनतारा चुप खड़ी थी। सास की तरफ ताकने में भी डर लग रहा था। [illegible]भी नहीं सकी थी कि सास को उसकी अनुपस्थिति का पता होगा। [illegible]नने की बात भी न थी। जाते हुए उसने ज़रा भी आवाज़ नहीं

होने दी थी। वह बहुत होशियारी से गई थी।

"क्यों, बोल नहीं रही हो ? दरवाजे को यों खुला छोड़कर कहां चली गई थीं तुम, बोलो ? नहीं बताने से तुम्हें अन्दर नहीं जाने दूंगी। बताओ ?"

नयनतारा क्या बोले ? वह तो जैसे गूंगी हो गई थी।

"चुप हो ? जवाब दो।"

"कुंए पर गई थी।"

"कुंए पर गई थी। झूठ कहते हुए शरम नहीं आती ? छिः, इस घर की बहू होकर तुम्हारी यह हरकत ? तुम क्या सोचती हो, मैंने कुछ देखा नहीं ? मैंने अपनी आंखों देखा, तुम सदर से बाहरी दालान होकर अन्दर आई—और कह रही हो, कुंए पर गई थी ?"

नयनतारा चुप रही। लेकिन सास ने पीछा नहीं छोड़ा। बोली, "क्या हो गया ? चुप रहने से ही सात खून माफ हो जाएगा, यह सोच रही हो ? सोच लिया है, गूंगी का कोई दुश्मन नहीं ? लेकिन मैं तुमसे यह भी कहे देती हूं, इस घर की बहू के नाते तुम्हारा ऐसा स्वभाव मुझे बरदाश्त नहीं होगा। यदि इस घर के कायदे-कानून के मुताबिक चल सको तो ठीक ही है, वरना तुम्हें बुरा नतीजा भोगना होगा, कहे देती हूं—"

नयनतारा फिर भी चुप थी।

सास ने कहा, "मेरी बात कानों तक गई या नहीं गई ?"

नयनतारा ने गरदन हिलाई। कहा, "हां—"

सास ने कहा, "हां, एक बात और। तुम जिसके यहां रात बिता आई, उससे कह देना, हम सास-पतोहू में जो होता है, उसमें अगर कोई दखल देगा, तो मैं उसे भी नहीं छोड़ूंगी। मुझे हर किसीकी हांडी का पता है। थोड़ा-सा पैसा हो गया है, इसलिए वह चौधरी परिवार की बराबरी करने की जुर्रत नहीं दिखाए—हां ! अभी तुम जाओ—"

जो कुछ भी यहां हो रहा था, वह सब विहारी पाल की पत्नी के कानों गया। वह अपने बगीचे की दीवाल के पास कान लगाए खड़ी थी।

भनक पाकर विहारी पाल खुद भी पत्नी के पास में आ खड़ा हुआ था। पूछा, "कौन आया था जी ?"

"उन लोगों की बहू।"

विहारी पाल ने कहा, "वह तो मैंने लेटे-लेटे ही सब सुना। मगर उनकी बहू अपने घर से चली क्यों आई थी ? सास-बहू में झगड़ा हुआ होगा, क्यों ?"

पत्नी ने कहा, "वह सब तो कुछ बोली नहीं। डर भी तो है। जैसी सास है—"

विहारी पाल ने कहा, "आखिर लड़का क्या यों ही घर छोड़कर चला गया।"

पत्नी ने कहा, "अहा, बेचारी बहू के लिए बड़ी तकलीफ होती है। बिलकुल कच्ची उमर है न। अपनी मां थी, वह भी चल बसी। इसीको कहते हैं नसीब।"

विहारी पाल ने कहा, "कोई उपाय न देखकर तुम्हारे पास दौड़ी आई होगी ?"

पत्नी ने कहा, "सुनो न उधर। उसीके लिए सास दईमारी वकभक कर रही है। उसकी नज़र की भी वलिहारी। आधी रात को भी कलमुंही की आंखों नींद नहीं, वहू के पीछे पड़ी है—"

विहारी पाल ने कहा, "तुम चलो। सास-पतोहू का भगड़ा है, हमारा क्या? हमारा अपना ही भमेला कौन सम्भाले, तो उनके लिए हाय-हाय! उनका लड़का है, उनकी वहू है, वही सम्भालें।"

पत्नी ने कहा, "मैं क्या उनके घर की वात के लिए परेशान हो रही हूं? मैं तो वेचारी वहू की सोच रही हूं। पराए घर की लड़की, वीच में उसकी दुर्दशा क्यों ?"

विहारी पाल ने कहा, "दोप तो लड़के का है। उसने व्याह ही क्यों किया? वाप-दादा जव ऐसे हैं, तो जान-सुनकर भी कोई व्याह करता है ?"

पत्नी ने कहा, "तुम तो वस लड़के की ही खोट देखते हो। लड़का क्या करेगा? उसका वाप-दादा अगर भूठा दिलासा नहीं देता तो वह शादी थोड़े ही करता? वह तो उवटन की रस्म के समय ही घर से भाग गया था। उसे तो जवरदस्ती धर-पकड़कर व्याह कराने के लिए ले गया था। तुमने तो सव देखा ही था—"

खुले आकाश के नीचे वगीचे की भाड़ियों में खड़े होकर वातें कर रहे थे वे। आसमान अभी वैसा साफ भी नहीं हुआ था। विहारी पाल को भी वहुत काम है। पराए घर की चर्चा से उसका पेट नहीं भरेगा। उसे भी घर-गिरस्ती है, जिम्मेदारियां हैं। सवके यहां जो है, उसके भी है, वल्कि ज्यादा ही है। वोला, "चलो-चलो, सुवह हो आई।"

उस घर से अव कोई आवाज़ ही नहीं आ रही थी। विहारी पाल की पत्नी भी धीरे-धीरे वहां से हट गई।

विहारी पाल ने कहा, "इसके लिए तुम इतना सोचो मत।"

पत्नी ने कहा, "मैं क्या सोचती! उसकी वहू अगर रात को यहां नहीं आई होती तो मैं ही क्या सोचती ?"

विहारी पाल ने कहा, "सोचकर भी तुम क्या कर लोगी! मैं भी कुछ नहीं कर सकता, तुम भी कुछ नहीं कर सकती। नाहक ही वे लोग सारा गुवार हमपर भाड़ेंगे।"

पत्नी ने कहा, "हम न कर सकें तो क्या, सिर पर भगवान नाम का तो कोई है। वह तो सव कुछ देख रहा है। उसकी नज़र तो कोई नहीं वचा सकता—"

उधर, चौधरी जी जग ही रहे थे। पत्नी के आते ही वोले, "क्या हुआ? वहू आई?"

गृहिणी ने कहा, "हां, आई।"

"कहा क्या उसने? इतनी रात को विहारी पाल के यहां क्यों गई थी, वोली?"

प्रीति ने कहा, "बोलेगी क्या ? कहा, कुएं पर गई थी। सोचा, मुझे कुछ पता नहीं है।"

चौधरी जी ने कहा, "यानी, यह कुछ सीधी तो नहीं लगती।"

प्रीति ने कहा, "तो मैं ही क्या सीधी हूं ? मैं भी दिखा सकती हूं कि कौन कितनी सीधी और कौन कितनी टेढ़ी है—"

इधर नवाबगंज में आधिपत्य और अधिकार कायम करने के लिए यह षड्यन्त्र चल रहा था, तो उधर कलकत्ता में दूसरे ही एक षड्यन्त्र का जाल बिछाना प्रकाश ने शुरू कर दिया था। कलकत्ता में उस समय युद्ध की आवहवा। युद्ध की आवहवा यानी लूट का जमाना। ऐसा एक जमाना, जब आमद और खर्च का कोई हिसाब ही नहीं। जीवन भी है और मृत्यु भी है, लेकिन जीवन और मृत्यु का कोई मूल्यांकन नहीं। एक समय लोग यहां से भागने के लिए परेशान थे, वैसे ही अब यहां लौट आने के लिए भी होड़-सी मच गई। बिहार, आसाम, उड़ीसा, ढाका, चटगांव से रेलगाड़ियों से लोग आने लगे। और आने लगे। एक ही बोली, 'कलकत्ता चलो।' असल में कलकत्ता उस समय साउथ-ईस्ट-एशिया का फौजी हेडक्वार्टर था। लड़ाई की सभी चीजों की सप्लाई यहीं से होती थी। रुपया कमाना चाहो, तो यहीं आओ और रुपया उड़ाना हो, तो भी यहीं आओ। फुर्ती करना हो तो यहां आओ और फतूर होना चाहो, तो भी यहां आना है। ऐसा दराज शहर और कहीं नहीं पाओगे। जीना हो तो कलकत्ता में ही जिएंगे और मरना हो तो कलकत्ता में ही मरेंगे।

प्रकाश मामा की दौड़ मियां की दौड़ की तरह भागलपुर और राणाघाट तक। अपने घर कभी-कभार गया, लेकिन रुपया वहां नियम से भेजता रहा। सो वह मौज ही करे या जो करे, मन उसका भागलपुर में ही पड़ा रहता है। जगह-जमीन खास कुछ है नहीं कि उसीपर गुजर-बसर हो। वह सदा का गलग्रह है। बचपन में फूफाजी का गलग्रह था। फूफा बड़े आदमी थे। सच पूछिए तो उन्हीं-का घर उसका अपना घर था। मां-बाप उसके बचपन में ही मर गए थे। उसी समय से प्रीति और प्रकाश साथ-साथ ही पले।

दोनों भाई-बहन हों जैसे।

कीर्तिपद बाबू सख्त मुट्ठी के आदमी थे। उनके हाथ से रुपया-पैसा आसानी से निकलता नहीं था। प्रकाश को इसीलिए फूफाजी पसन्द नहीं थे।

एक दिन प्रकाश ने पूछा था, "आपकी इतनी दौलत खाएगा कौन फूफा-जी ? मर जाइएगा तो किसके लिए छोड़ जाइएगा ?"

फूफाजी कहते, "क्यों ? नाती होगा, वही भोगेगा।"

फूफाजी की विषय-बुद्धि पर प्रकाश उसी समय दंग रह गया था। कब इनकी लड़की का ब्याह होगा, कब इस लड़की के लड़का होगा, फूफाजी तब के लिए रुपये जमा किए जा रहे हैं। इसीको कहते हैं दूर-दृष्टि।

मगर प्रकाश राय को इस दूर-दृष्टि-फूर-दृष्टि से कोई वास्ता न
का आदर्श था, दीयतां भुज्यतां। यानी दुनिया में आदमी दो दिन के
ता है। उन दो दिनों के बाद सब किसीको आंखें उलटकर चित्त हो ज
गा। लिहाजा मौज उड़ाना ही जीवन का सार तत्त्व होना चाहिए।
वन-दर्शन लेकर प्रकाश राय ने दुनिया में जन्म लिया था और इसी जी
न पर आस्था रखकर वह जीवन-समुद्र में कूद पड़ा था। फूफाजी ने एक
का व्याह कर दिया। उनका ख्याल था, व्याह कर देने से ज़िम्मेदारी
भ होगी। और यह कमाने पर ध्यान देगा। अर्थात रुपये पर उ
ह होगा।

लेकिन फूफाजी की दूर-दृष्टि शायद यहीं पहली बार विफल प्रमाणित हु
श को रुपये के प्रति माया तो खैर नहीं हुई, उलटे रुपया उड़ाने
दिन ही उसकी लगातार बढ़ती गई।

वत यह है, जो रुपये से अश्रद्धा करता है, रुपया भी शायद उससे अश्र
ता है। जो रुपये का दाम नहीं समझता, रुपया भी उसको दाम नहीं दे
की दुनिया की रीत ही ऐसी है कि वह प्यार करने वाले को कलेजे
ता है।

अपने मकान से सटी हुई एक जमीन पर कीर्तिपद बाबू ने प्रकाश के
टा-सा मकान बनवा दिया। बोले, "अब तू अपनी घर-गिरस्ती वहीं ब
र कंधे पर कब तक लदा रहेगा?"

लेकिन बसाना कहने से ही घर-गिरस्ती नहीं बसाई जाती। उसके
गीन चाहिए। प्रकाश राय में इसी चीज़ की बड़ी कमी थी। ऐसे में प्र
नवाबगंज में व्याह हो गया। बाल-बच्चों को छोड़कर वही जो प्रव
के पास गया, सो नहीं लौटा। दीदी ने भी उसे नहीं छोड़ा। बो
और कुछ दिन रह जा, किसी दिन चले जाना। वहां तेरा कोई राज-
ह नहीं

सब से प्रकाश दीदी का ही काम-काज करता, उसी सिलसिले में कभी रे
जार, कभी राणाघाट और कभी कलकत्ता जाया करता। दीदी का क
मी कुछ काम था!

इतनी जगहों में से प्रकाश को कलकत्ता का खिंचाव ही ज्यादा था।
ाम रेल-बाजार में ही हो सकता, उसके लिए भी कलकत्ता गए बिना प्रक
नहीं चलता। इस कलकत्ता के कितने रूप देखे हैं उसने। दिन का कलक
ात का कलकत्ता, सांझ का कलकत्ता—इनके सिवाय झगड़े का कलकत्ता, मा
का कलकत्ता, मौज-मजे का कलकत्ता, रुपये का कलकत्ता, उसके साथ-स
ानन्द का कलकत्ता, बस्ती का कलकत्ता, अभावों का कलकत्ता, गरीबी
लकत्ता—उसने सब देखा है। इसलिए कलकत्ता देखना कुछ बाकी नहीं
र भी मौका मिलते ही प्रकाश राय कलकत्ता चला आता है। दो-तीन दि
ता बिताता है और रुपये की तंगी होते ही नवाबगंज लौट जाता है।

अबकी प्रकाश राय एक गहरे उद्देश्य से आया था।

मौसी ने कहा था, "जो करना है, बड़े बाबू से कहकर मैं करा दूंगी। यह भार तुम मेरे जिम्मे छोड़ दो—"

पहला दो दिन तो शरीर का पसीना सुखाने में ही निकल गया प्रकाश का। भर पेट मांस-परांठा खाने और नशे में पड़ा-पड़ा सोने लगा।

एक दिन पूछा, "क्यों मौसी, कुछ हुआ?"

मौसी ने कहा, "इतनी जल्दी क्या है? यह कुछ जल्दी का काम है कि कहा और कर दिया। मैंने बतासी से कहा है, बतासी मौका देखकर बड़े बाबू से कहेगी—"

प्रकाश ने कहा, "यह कहने में मौका का क्या है? इसमें तो एक मिनट भी नहीं लगेगा।"

मौसी ने कहा, "क्या जो कहते हो तुम! जिस काम का जो तरीका है। बड़े बाबू का मिजाज क्या सब दिन एक-सा रहता है? मिजाज समझकर ही तो कहना होगा। उनके सिर पर हजारों झंझटें रहती हैं। उन्हीं झंझटों से राहत पाने के लिए तो वह बतासी के यहां आते हैं और यहां भी अगर झंझट की बात आए तो मिजाज गरम नहीं हो जाएगा? फिर अपनी लुगाई और बाल-बच्चों ने ही कौन-सा कसूर किया है?"

प्रकाश राय ने कहा, "सो तो है—"

मौसी ने कहा, "बड़े बाबू की गैर छोड़ दो, अपनी ही बात लो न। तुम्हारे घर में भी तो लुगाई है, बाल-बच्चे हैं, फिर भी तुम मौसी के यहां क्यों आते हो, कहो? झंझट-झमेले से घड़ी-भर राहत पाने के ही लिए न? नहीं तो खामखा रुपये बिगाड़ना कौन चाहता है? कुछ लाभ होता है, तभी तो मौसी के यहां आते हो। तुम जैसे भलेमानसों के पूतों के पैरों की धूल पड़ती है तभी तो हमारे यहां की लड़कियों को कुछ नसीब हो जाता है—नहीं तो तुम्हारे घर क्या मांस-परांठा का अभाव है कि तुम्हें रोटी मयस्सर नहीं होती?"

मौसी जैसी मिठबोली है, जेब कतरने में वैसी ही तेज।

प्रकाश ने कहा, "ठीक है। तुम जो अच्छा समझो, करो। लो, मैं पड़ गया।"

मगर वास्तव में प्रकाश सोया ही नहीं पड़ा रहता। खा लेने के बाद ही घूमने के लिए निकल पड़ता। घूमते हुए कहां-कहां निकल जाता, कोई ठिकाना नहीं। बड़ा बाजार के दूधवाले की धर्मशाला से लेकर दक्षिणेश्वर, काली मन्दिर तक कुछ भी नहीं छूटता। सबको वह नजर गड़ाकर देखता। सब पर पैनी निगाह डालता। आखिर जाएगा कहां? इसी शहर के किसी-न-किसी कोने में जरूर पड़ा है। सो जहां भी रहे, जिस अड्डे पर भी रहे, रास्ते पर क्या जरा देर के लिए भी नहीं निकलेगा?

फिर बाजार है। जहां कहीं भी रहे, बाजार तो उसे आना ही पड़ेगा। लेकिन सदा क्या बाजार करने के लिए आएगा? नहीं। फिर भी बहुतों को एक साथ ही बाजार में पाया जाता है। सांझ को प्रकाश निकल नहीं पाता। उस समय ब्लैक आउट रहता है। अंधेरा। अंधेरे में कहीं मिलिटरी ट्रक का

... उस समय मौसी का यह घर ही ठीक है। उस समय यह मुहल्ला गुलजार रहता है। पहले जैसा सन्नाटा-सा था, अब वैसा ही जमा हुआ। उस समय वस्ती के घर-घर में शराव के साथ प्याजू की चाट चलती है। किसी-किसी घर में गाना-वजाना। दुनिया के दूसरे छोर पर जव टैंक-गोला-वारूद से करोड़ों की जान जाती है, यहां जवानी की छीना-झपटी चलती है।

उस दिन लेकिन एक अघटना घट गई। प्रकाश राय हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर घूम रहा था। तीसरा पहर हो चला था। कोई मिलिटरी स्पेशल आई थी। चारों तरफ खूव भीड़। प्रकाश सवके चेहरे को घूर-घूर कर देखने लगा। कहीं सदा ने फौज में नाम लिखा लिया हो। उसके लिए कुछ भी अजीव नहीं है।

"हटो, हटो, हट जाओ—"

जाने कहां से भीड़ में एक लहर आई और प्रकाश को दूर तक वहा ले गई। आपे में आया, तो देखा, कोई महत्त्व का आदमी जा रहा है, उसीके लिए इतनी सतर्कता की गई। युद्ध के समय आदमी को कोई आदमी नहीं समझता। सव गाय-भेड़ हों जैसे।

पैरों में अचानक कुछ लगा। प्रकाश ने झुककर देखा। ठीक मनीवैग जैसा। उसे उठाकर उसने चारों तरफ नजर दौड़ाकर देखा। किसीने देख तो नहीं लिया। उसके वाद उसे जेव में डाला और फौरन प्लेटफार्म से वाहर। लेकिन वहां जाने पर भी चैन नहीं। उसमें क्या है, क्या जाने! वहां से वह मौसी के यहां चला गया। अपने कमरे में गया तो देखा, कोई लड़की आईने के सामने खड़ी वाल वांध रही है। वोला, "अरी ए, तू अभी यहां से जा तो, मुझे काम है।"

वह चली गई। प्रकाश ने दरवाजा वंद कर दिया। कुंडी लगा दी। इन सालियों का कोई विश्वास नहीं।

मनीवैग खोलते ही उसका हाथ थर-थर कांपने लगा। ऐ काली मैया, ऐ मां जगदम्वा, मैं जोड़ा पाठे की वलि दूंगा मां, इसमें जिसमें रुपया हो। कि वाहर मौसी का गला सुनाई पड़ा, "अरे ओ भलेमानस के लड़के, सई-सांझ दरवाजा क्यों वंद कर दिया? अन्दर मेरी कोई लड़की है क्या?"

वैग में कुछ भी नहीं। विलकुल खाली। प्रकाश राय की किस्मत ही फूटी हुई है। जैसी फूटी किस्मत, वैसा ही फूटा वैग।

प्रकाश राय ने जल्दी से दरवाजा खोल दिया।

मौसी ने कहा, "खैर! मैंने सोचा, जाने तुमने किसको भीतर रखकर दरवाजा वंद कर दिया। पता है, मैं वतासी के यहां गई थी—"

"अच्छा। क्या खवर है? वड़े वावू राजी हो गए?"

मौसी ने कहा, "राजी तो खैर हो गए। मगर वड़े वावू ने कहा, ...रे भांजे की तसवीर चाहिए। नहीं तो उसे खोजेगा कैसे?"

... ने कहा, "तसवीर तो मेरे पास नहीं है। मगर मैं हुलिया वता

दे सकता हूं। लम्बा कद, गोरा रंग, नुकीली नाक, बाल बराबर अस्त-व्यस्त। सदा भावुक-सा रहता है।"

मौसी ने सब सुना। बोली, "इससे तो शिनाख्त नहीं हो सकेगी। कोई तसवीर हो, तो जल्दी पकड़ा जाएगा। नहीं तो पुलिस के आदमी हैं, जानते ही हो, ध्यान नहीं देगा—"

जरा देर रुककर बोली, "और रुपये की भी कह दूं। मोटी रकम लगेगी।"

प्रकाश ने कहा, "रुपये का तो मैंने कही दिया है कि दूंगा। कुल कितना?"

मौसी ने कहा, "कुछ तो पेशगी। बाकी भांजा मिल जाए, तब भी देने से चलेगा।"

प्रकाश ने कहा, "अभी सौ रुपये पेशगी दे सकता हूं। चलेगा इतने में।"

"महज सौ रुपये?"

पहले मौसी को मंजूर न था। फिर बोली, "खैर, सौ ही दो। बाकी नौ सौ लेकिन हाथों-हाथ देना पड़ेगा।"

"नौ सौ!" राशि सुनकर प्रकाश राय चौंक उठा। बोला, "एक हजार? युद्ध के बाजार में भाव बढ़ गया क्या? कुछ कम नहीं?"

मौसी ने कहा, "तुम क्या जो कहते हो। चारों तरफ चीजों की कीमत कैसी आग हो गई, देख नहीं रहे हो? पहले मैंने अपने ही यहां चार आने, आठ आने में भी आदमी को आने दिया है, अब वैसा कर सकती हूं?"

प्रकाश ने कहा, "खैर, ठीक है। जब अपनी गरज है, तो ज्यादा खींचतान नहीं करूंगा। मुंहमांगा ही दूंगा, मेरा काम होना चाहिए—"

मौसी ने कहा, "रुपया बड़े बाबू खुद नहीं लेंगे। वैसे आदमी ही नहीं हैं वह। ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है। निहायत उसकी चहेती ने कहा, इसलिए हां कर दिया। लेकिन उनकी जमात के लोग तो पुण्य कमाने के लिए पुलिस में भर्ती नहीं हुए हैं। वे तो लेंगे। रुपये उनके लिए—"

प्रकाश राय ने कहा, "ठीक है। सौ रुपये तो दिए, इसे बतासी को दे देना। मैं तब तक भांजा की तसवीर जाकर ले आता हूं—"

मौसी ने तब तक सौ रुपये के नोट को कपाल से लगाकर आंचल में बांध लिया। उसका काम बन गया। वह बाहर चली गई।

अन्दर से प्रकाश ने कहा, "तो मैं सुबह की ट्रेन से ही चला जाऊंगा मौसी, मेरा हिसाब समझा देना—"

•

नवाबगंज में उस रोज फिर रात आई। फिर सब सुनसान, सब

सन्नाटा।

आदमी के [illegible] मुंह निकाला करते हैं। [illegible] है। [illegible] करते हैं।

"नानी जी, ओ नानी जी, मुझे बचाइए—नानी—"

बिहारी पाल की पत्नी की नींद बहुत कच्ची है। [illegible] कि नींद खुल जाती है। आवाज कानों में पहुंचते ही वह उठ बैठी। [illegible] बातों का उसने अंदाज कर लिया। [illegible] है।

बिस्तर से उठकर वह कमरे के बाहर [illegible]। बोली, "अजी सुनते हो—"

बिहारी पाल जग गया, "क्या बात है?"

पत्नी ने कहा, "सुना, अचानक [illegible] की बहू 'नानी जी' कहकर मुझे पुकार उठी—मैंने साफ सुना। उसने और यह कहा, 'नानी जी, मुझे बचाइए।' मैं जरा वहां जाती हूं, समझे? मुझे डर लग रहा है। लगता है, हो न हो, उसपर कोई आफत आई है।"

"अरे, इतनी रात को तुम उनके यहां क्यों जाओगी? वे लोग कुछ कहें तो? सुना नहीं, उस दिन कितना शोर मचा था? सास-बहू का झगड़ा है उनका, उससे तुम्हें क्या मतलब? कहीं अपमान कर बैठे—"

लेकिन पत्नी बोली, "नहीं जी, वह बेचारी पर आफत है। लगता है, वे लोग उसे कुछ कष्ट दे रहे हैं। मैं जाती हूं। सास उसकी जैसी है न, मारपीट भी कर सकती है।"

वह और कुछ सुनने का इंतजार न करके अपने कपड़े सम्भालकर चौधरी जी के यहां का फाटक पार करके बाहरी दरवाजे पर जा पहुंची।

तब तक फिर वही चीख उठी, "नाना जी, मुझे बचाइए—नानी जी…"

बिहारी पाल की पत्नी हवेली के दरवाजे पर धक्का देने लगी।

"बहू, दरवाजा खोलो। इतना चिल्ला क्यों रही है? बहू को क्या हुआ?"

दरवाजे पर जोर-जोर से धक्का देती हुई उसने फिर कहा, "बहू, मैं हूं, तुम्हारी वही मौसी, दरवाजा खोलो—"

अचानक दरवाजा खुल गया। अंधेरे में चौधरी जी की पत्नी धुंधली छाया-सी खड़ी थी।

"कौन?"

बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "मैं हूं बहू, मैं। बहूरानी इस कदर चीख क्यों उठी? क्या हुआ? उसने मुझे क्यों पुकारा?"

प्रीति ने कहा, "मेरी बहू को क्या हुआ न हुआ, इसके लिए आपको तो बड़ा सिर दर्द हो रहा है?"

बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "सिर दर्द नहीं होगा? वह बेचारी इस तरह से चीख उठी। सोचा, जाकर देख आऊं, क्या हुआ! किसीके आपद-

विपद में चुप भी रहा जा सकता है ?"

प्रीति ने कहा, "मेरी बहू के आपद-विपद के लिए तुम्हें बड़ी चिंता होनी है, है न ? अगर उसके लिए तुम्हें इतनी ही चिंता है, तो कल उसे अपने ही यहां रोक लिया होता। आने ही क्यों दिया ? वहीं रहती, सोती, मौसी ?"

बहू की बात सुनकर मौसी को काठ मार गया। बोली, "यह तुम क्या कह रही हो बहू, बहू को मैं अपने यहां रोक लेती ?"

प्रीति ने कहा, "मैं वैसा क्या कह रही हूं मौसी ? क्या तुम यह कहना चाहती हो, बहू कल रात तुम्हारे यहां नहीं गई ? अपनी सास के होते उसे तुम्हारे यहां जाने की क्या पड़ी थी ? पराए घर की नाना जी के लिए बहू को इतना खिंचाव ही क्यों हुआ ? अपनी नानी होती, फिर भी कोई बात थी—"

बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "मेरा आना ही अन्याय हो गया बहू, मानिक ठीक ही कह रहे थे। अब समझ रही हूं, नहीं आना ही अच्छा था।"

प्रीति ने कहा, "यह पहले ही समझा होता तो मुझे भी इतनी बात नहीं कहनी पड़ती और तुम्हें भी इतना नहीं सुनना पड़ता।"

बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "ठीक है बहू, मैं जाती हूं—"

वह लौट पड़ी। लेकिन पीछे से प्रीति ने आवाज दी। कहा, "एक बात सुनती जाओ मौसी ! पराए घर के मामले में दखल देना अच्छी बात नहीं है। मेरी बहू को खाना मिला या नहीं, रात अकेली सोने में उसे डर लगा या क्या हुआ, यह देखना मेरा काम है, दूसरे का नहीं।"

बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "मगर मैं तो तुम लोगों को पराया नहीं समझती हूं बहू ! पराया मानने से ही पराया होता है। अब तक तुम मुझे पराई नहीं समझती रही, मैं भी नहीं। आज अगर मैं पराई हो गई, तो यह मेरा नसीब ही है बहू—"

कहकर बिहारी पाल की पत्नी सीधे अपने घर चली गई, रुकी नहीं।

बिहारी पाल बाहर ही खड़ा था। बोला, "क्यों, क्या हुआ ? खूब खरी-खोटी सुना दी न ? मैंने मना किया, तुमने माना ही नहीं।"

बिहारी पाल की पत्नी ने कोई जवाब नहीं दिया। अपने बिस्तर पर जाकर लेट गई। पीछे-पीछे बिहारी पाल भी आया। बोला, "देखो, इंसान का वक्त जब बुरा होता है, तो ऐसा ही होता है। उस समय वह किसीसे अच्छा व्यवहार नहीं कर सकता, उस समय वह किसीकी नहीं सुन सकता—"

स्त्री ने कहा, "तो क्या मैं उनकी पूंजी का हिस्सा मांगने गई थी, या मुझसे उन लोगों का वैसा नाता है ? पास-पास रहने से एक के दुख-कष्ट में दूसरा नहीं जाता है ?"

बिहारी पाल ने कहा, "यह तो सहज बात है। मगर वे लोग क्या उस किस्म के आदमी हैं? तुमने देखा नहीं, मुझे थोड़ा पैसा हुआ, तो बूढ़े चौधरी मुझे किस नज़र से देखते थे? मेरी हालत जब अच्छी नहीं थी तब उनका व्यवहार और था। हालत अच्छी हुई तो और ही व्यवहार हो गया। तबसे तो बूढ़े चौधरी मुझे आदमी ही नहीं समझते थे। उनकी बीमारी के समय कितनी बार उन्हें देखने गया, जैसा भेड़ा या गोरु, आदमी कि पत्थर। खुद बिना खाए-पहने महाजनी करके जगह-जायदाद की है, यह सारी खबरें तो उनके कानों पहुंची थीं।"

पत्नी को ये पुरानी बातें कहना बेकार है। क्योंकि यह नवाबगंज के सभी को मालूम है। बिहारी पाल की दुकान से इतने-इतने लोग सौदा-पाती ले जाते, पर चौधरी जी के यहां से कभी कोई एक पैसे का भी सामान ले जाने के लिए नहीं आया।

एक दिन बिहारी पाल ने कैलास गुमाश्ता से रास्ते में पूछा था, "अच्छा कैलास, मेरी दूकान तो तुम्हारे मालिक के घर के पास ही है, मगर तुम लोगों ने कभी धेले का सामान भी तो मेरे यहां से नहीं लिया? मेरा सामान क्या बुरा है, या कि मैं तौल में कम देता हूं, या बाज़ार से कुछ ज्यादा कीमत लेता हूं—"

कैलास ने कहा, "जी वैसी बात नहीं। मैं तो हुक्म का बंदा हूं, मैं क्या र सकता हूं, कहिए? मुझे जो हुक्म होगा, वही तामील करूंगा—"

हारी पाल ने कहा, "तुम्हारी कोई गलती नहीं है कैलास, मैं तुमको ीं देता। मैं तुम्हारे मालिक की ही कह रहा हूं। मुझे निताई हालदार दूकान से भी कोई चिढ़ नहीं है। और, यह भी नहीं कि मेरी दुकान से नहीं लेने से मुझे फाके की नौबत आएगी। बात यों ही मेरे मन में आई, इसलिए पूछ रहा हूं—"

बिहारी पाल तभी से समझ गया था, किसीकी हालत अच्छी हो, किसी-को रुपया-पैसा हो, यह बात बूढ़े चौधरी को नहीं सुहाती।

लेकिन आश्चर्य है, कहां गए चौधरी और कहां गया उनका रुपया। अपनी साध के पोते के व्याह के बाद उन्होंने सोचा था, ज़िन्दगी में उन्होंने जो भी अन्याय, जो भी जुल्म किए हैं, वह सब धुल गए। सोचा था, भविष्य उन्हें उनके वंशधरों में ही अमर बनाए रहेगा। क्षण का किया पाप चिरकाल की कसौटी पर पकड़ में नहीं आएगा। संसार से उठते समय यही विश्वास लिए उन्होंने अंतिम सांस ली कि आने वाले युग में वह महापुरुष की आख्या पाकर धन्य होंगे। किन्तु अंत तक वह यह जान भी नहीं सके कि जिस अप-मृत्यु से उन्होंने अपने हाथ मज़बूत किए थे, वही हाथ उनके आत्मज के हाथ होकर किसी दिन उन्हींको कलंकित करेंगे। परोक्ष रूप से उनकी कराई सारी

ारी पाल ने कहा, "यह तो सहज बात है। मगर वे लोग क्या उस आदमी हैं ? तुमने देखा नहीं, मुझे थोड़ा पैसा हुआ, तो बूढ़े चौधरी नजर से देखते थे ? मेरी हालत जब अच्छी नहीं थी तब उनका और था। हालत अच्छी हुई तो और ही व्यवहार हो गया। तबसे ौधरी मुझे आदमी ही नहीं समझते थे। उनकी बीमारी के समय ार उन्हें देखने गया, जैसा भेड़ा या गोरु, आदमी कि पत्थर। खुद ाए-पहने महाजनी करके जगह-जायदाद की है, यह सारी खबरें तो नों पहुंची थीं।"

ो को ये पुरानी बातें कहना बेकार है। क्योंकि यह नवाबगंज के मालूम है। विहारी पाल की दुकान से इतने-इतने लोग सौदा-पाती पर चौधरी जी के यहां से कभी कोई एक पैसे का भी सामान ले लिए नहीं आया।

दिन विहारी पाल ने कैलास गुमाश्ता से रास्ते में पूछा था, "अच्छा मेरी दूकान तो तुम्हारे मालिक के घर के पास ही है, मगर तुम कभी धेले का सामान भी तो मेरे यहां से नहीं लिया ? मेरा सामान ा है, या कि मैं तौल में कम देता हूं, या बाजार से कुछ ज्यादा कीमत —"

ास ने कहा, "जी वैसी बात नहीं। मैं तो हुक्म का बंदा हूं, मैं क्या ता हूं, कहिए ? मुझे जो हुक्म होगा, वही तामील करूंगा—"

हारी पाल ने कहा, "तुम्हारी कोई गलती नहीं है कैलास, मैं तुमको ीं देता। मैं तुम्हारे मालिक की ही कह रहा हूं। मुझे निताई हालदार ान से भी कोई चिढ़ नहीं है। और, यह भी नहीं कि मेरी दुकान से ाने से मुझे फाके की नौबत आएगी। बात यों ही मेरे मन में आई, पूछ रहा हूं—"

ाहारी पाल तभी से समझ गया था, किसीकी हालत अच्छी हो, किसी-या-पैसा हो, यह बात बूढ़े चौधरी को नहीं सुहाती।

किन आश्चर्य है, कहां गए चौधरी और कहां गया उनका रुपया। साथ के पोते के ब्याह के बाद उन्होंने सोचा था, जिन्दगी में उन्होंने अन्याय, जो भी जुल्म किए हैं, वह सब धुल गए। सोचा था, भविष्य नके वंशधरों में ही अमर बनाए रहेगा। क्षण का किया पाप चिरकाल ाोटी पर पकड़ में नहीं आएगा। संसार से उठते समय यही विश्वास न्होंने अंतिम सांस ली कि आने वाले युग में वह महापुरुष की आख्या धन्य होंगे। किन्तु अंत तक वह यह जान भी नहीं सके कि जिस अप-ा उन्होंने अपने हाथ मजबूत किए थे, वही हाथ उनके आत्मज के हाथ किसी दिन उन्हींको कलंकित करेंगे। परोक्ष रूप से उनकी कराई सारी

हत्याएं कभी मूल और ब्याज सहित उनकी भी अकाल मृत्यु को खींच लाएंगी।

आदमी का जीवन अगर इतना ही सहज-सरल होता, तो इतिहास के पृष्ठों पर युद्ध-विग्रह के जो ब्योरे आए हैं, उनमें से कोई भी घटित होता या नहीं, इसमें सन्देह है। या संसार में जितने महापुरुषों के नाम प्रायः स्मरणीय हुए हैं, उनका आविर्भाव इतना सत्य नहीं होता और इतना अनिवार्य भी नहीं हो उठता। धर्म की ग्लानि के साथ महापुरुष के आविर्भाव का शायद एक गहरा सम्बन्ध है। वही सम्बन्ध जब टूटता है, तभी सब तरह का विरोध उठ खड़ा होता है। इसीसे कभी-कभी ऐसा विरोध खड़ा होता है और संसार तथा समाज कई युगों तक डांवाडोल हो जाता है। जो लोग जीवन में भोग को ही सब कुछ मानते हैं, वैसे में वे लोग कहते हैं, मजे में हैं। मजे में रहने की उनकी संज्ञा और है, इसीलिए वैसे विपर्यय में ही उन्हें आराम मिलता है, चैन मिलती है। लेकिन दुनिया में ऐसे भी कोई-कोई होते हैं, जो कहते हैं, इससे मुझे मुक्ति दो भगवन, इससे मेरा परित्राण करो।

बूढ़े मालिक ने उतनी साध से गढ़ी हुई गिरस्ती में चौधरी जी ने मुक्ति नहीं चाही। उन्होंने कहा, मजे में हूं, मुझे काफी जमीन है, बहुत जायदाद है, मेरे बहुत रैयत हैं। मेरे सन्दूक में, रुपया, हीरा-मोती, जवाहरात बहुत हैं। चौधरी जी की पत्नी भी सोचती, मजे में तो हूं। बेटे का ब्याह करके नई बहू ले आई हूं, घर को उजाला करने वाली बहू आई, अब घर को उजाला करने वाला पोता होगा। कितना आराम है मुझे, कितना सुख, कितनी शांति! इसी आराम और सुख के लोभ से प्रकाश मामा नवाबगंज नहीं छोड़ना चाहता था। वह कभी राणाघाट जाता राधा के यहां और कभी कालीघाट मौसी के यहां। और उस आराम को ज्यादा देर तक टिकाऊ बनाने के लिए कभी मां काली छाप बोतल की शरण लेकर बुत बना रहता। मन-ही-मन कहा करता—मजे में हूं। और, उनका दोष भी क्या था! कौन सुख में नहीं था! निताई हलवाई, गोपाल पाल, केदार, गोवर्धन—सभी तो ताश-शतरंज खेलकर और यात्रा का रिहर्सल करके आराम में ही सारी जिन्दगी बिता रहे थे। कहते, 'अजी युद्ध की बात छोड़ो, पत्ती फेंको।' उधर कीर्तिपद बाबू से लेकर इधर का बिहारी पाल तक कोई भी इसका व्यतिक्रम नहीं था। इन लोगों में से सिर्फ एक ही आदमी बोल उठा, 'मैं मजे में नहीं हूं। मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता। इससे मुझे मुक्ति दो, मेरा परित्राण करो।' संसार छोड़कर भागने से ही मुक्ति आती है? परित्राण मांगने से ही क्या परित्राण मिलता है?

रात काफी हो चुकी थी। नवाबगंज में उस समय सभी सो रहे थे। सदानन्द उसी समय नवाबगंज के रास्ते में दौड़ने लगा। ये लोग मुझे गिरस्ती के नागपाश में बांधना चाहते हैं। ये लोग मुझे अन्याय के जाल में फंसाना चाहते हैं। तुम मुझे मुक्ति दो, तुम मेरा परित्राण करो। सारी मलिनताएं धोकर तुम मुझे निष्कलुष करो। मुझे बचाओ।

धीरे-धीरे दुनिया में दिन हुआ। क्षितिज पर सूरज उगा। लोकालय में

हलचल हुई। नवावगंज के वाद कोमलपुर, कोमलपुर पार करके दुट्टीपु
वहां से भी और आगे, चलो। दूर···और दूर···। तुम्हें और भी वहुत दूर जा
होगा सदानन्द। वहुत-वहुत जगह।

याद है, जव ख्याल आया तो वह नवावगंज से वहुत दूर निकल आ
था। लगा, कौन तो पीछे से पुकार रहा है, "तुम कौन हो जी ? घर कहां है
स्त्री का गला। सुनकर सदानन्द पीछे मुड़ा। हाथ में सौदे की थैली, माथे
घूंघट। पहनावे में डोरिया साड़ी।

रास्ते से जाती हुई कोई स्त्री इस तरह से किसी अनचीन्हे आदमी को न
पुकारती। देखकर सदानन्द अवाक् हो गया।

"प्रकाश वावू तुम्हारे कौन होते हैं, कहो तो ? मामा न ?"

सदानन्द ने कहा, "हां।"

"मैं ठीक पहचान गई। मेरा नाम राधा है। याद है तुम्हें ? तुम अप
मामा के साथ मेरे यहां आते थे। याद आ रहा है ?"

सदानन्द जिधर जा रहा था, उधर ही चलते-चलते वोला, "हां।"

राधा ने लेकिन उसके सामने जाकर रास्ता रोक लिया। वोली
"तुम्हारे माथे पर क्या हुआ है ? पट्टी वांध रक्खी है ?"

सदानन्द ने कहा, "इसे डाक्टर ने वांध दिया है।"

"जा कहां रहे हो ?"

सदानन्द के जाने का कोई ठिकाना नहीं था। वह झट से कोई जवा
नहीं दे सका। राधा को इससे सन्देह हुआ। सदानन्द का कपड़ा-लत्ता देखक
भी अजीव लगा। सिर्फ एक धोती और एक वनियान। वदन पर कुरता भ
नहीं। सन्देह होते ही राधा ने सदानन्द का हाथ पकड़ लिया। वोली, "चलो
मेरे घर चलो।"

सदानन्द ने ना-नू किया, पर राधा छोड़ने वाली न थी। वही पुरान
घर, जहां वह मामा के साथ पहले आया था। छुटपन की वात। उस समय
वह यह सव कुछ समझता नहीं था। यात्रा देखकर लौटते हुए आधी रात के
वाद राधा का घर ही प्रकाश मामा का आश्रय था। उसके यहां जाकर वह
वड़ा लाग-डाट करता। सोकर उठने के वाद इसी राधा ने दही की लस्सी
वना दी थी। कितनी वार उसके यहां वैठकर मामा-भांजे ने मछली भात खाया
है। शाम को प्रकाश मामा ने वोतल खोलकर पीना शुरू किया। राधा ने
हारमोनियम वजाकर गाना गाया। सदानन्द उस समय कुछ समझता नही
था, इसलिए प्रकाश मामा ने उसे तरह-तरह की झूठ वात कहकर समझाया।
राधा के यहां उसके हाथ की रसोई खाने से जात जाएगी, इसलिए वार-वार
उसे मना किया, जिसमें वह घर पर यह न वताए।

राधा सदानन्द को अपने घर ले गई। वहां आदर-जतन किया। सदानन्द
ने देखा, घर में वह चौकी अभी भी है। खिलौनों से भरी वह अलमारी भी।
छोटी-सी चौकी पर राधा का देवता [illegible] राधा [illegible]
[illegible] दिन [illegible] पूजा की [illegible] ठाकुर के

सामने फूल पड़े हुए थे।

दोपहर को भोजन करके सदानन्द ने कहा, "अब मैं चलूं—"

राधा ने पूछा, "तुम्हारा तो ब्याह हो चुका है, है न?"

सदानन्द ने कहा, "हां।"

"पत्नी कैसी हुई?"

सदानन्द ने कहा, "अच्छी।"

राधा ने कहा, "तुम्हारा मामा लेकिन मुझसे कह रहा था कि पत्नी तुम्हें पसन्द नहीं आई। तुम शायद उसके साथ सोते नहीं हो?"

सदानन्द ने कहा, "मेरे मामा की बात का तुम विश्वास करती हो?"

राधा ने कहा, "विश्वास भी कैसे करूं? तुम्हारा मामा ही तो मुझे इस रास्ते पर ले आया। उस समय उसने बहुत कुछ कहा था, पर एक भी बात नहीं रखी—"

सदानन्द ने पूछा, "क्या बात कही थी?"

राधा ने कहा, "तुम उसके भांजे हो। सारी बातें तुमसे कही भी नहीं जा सकतीं। और, वे बातें भी कुछ आज की नहीं, सब याद भी नहीं आतीं। जाने उस समय मेरी क्या मति हो गई थी, तुम्हारे मामा की बातों पर ही भूल कर चली आई, नहीं तो क्या आज मेरी यह दशा होती? उस समय मैंने सुना था, तुम्हारे मामा के बहुत पैसा है, बहुत बड़ा जमींदार है वह। सोचा था, शान्ति नहीं, सुख तो पाऊंगी। अच्छी साड़ी पहनने को मिलेगी, अच्छे-अच्छे गहने मिलेंगे—"

बोलते-बोलते राधा की पलकें कैसी तो बोझिल होने लगीं।

"बस, साड़ी-गहने के लोभ से ही उसने मुझे रास्ते में निकाला—नहीं तो और कुछ लोभ तो नहीं था। गरीब के घर पैदा हुई थी, इसलिए मुझे बड़ा दुःख था। सोचा, तुम्हारे मामा के साथ जाने से अगर मेरा दुःख दूर हो तो वही क्या बुरा है? लेकिन समझ गई, सब धोखा था। उस समय मैं कैसे जानती कि तुम्हारे मामा के पास कुछ भी नहीं है? उसने मुझसे कभी यह भी नहीं कहा कि घर में उसके पत्नी भी है।"

सदानन्द ने कहा, "तो तुम मामा को छोड़कर चली क्यों नहीं गई?"

राधा ने कहा, "छोड़कर कहां जाती, छोड़कर जाने से कौन मुझे देखेगा? और अपने मामा को तो तुम जानते ही हो, जब-जब मैंने बात उठाई, तब-तब कोई बहाना बनाया। अब तो उम्र हो गई। अब कहां जाऊं? ठीक ही हूं। कालीघाट में एक बार काली जी के दर्शन की इच्छा हुई थी, वह भी नसीब न हुआ।"

सदानन्द ने कहा, "तुम भाग क्यों नहीं गईं। मामा को छोड़कर अपने मां-बाप के पास जा सकती थीं।"

राधा ने कहा, "तुम बच्चे हो भैया, इसीलिए ऐसा कहते हो। उम्र हुई होती तो समझते कि इस दुनिया में कोई किसी का नहीं, कोई किसी का नहीं। बाप ही कहो और मां ही कहो—सभी बिराने हैं। एक सिर्फ तुम्हारे मामा को

ा देने से क्या लाभ ? तुम्हारे मामा को छोड़कर और किसीके पास जाती,
भी यही करता ।"
ौर, राधा रोने लगी ।
दानन्द ने बात बढ़ने नहीं दी । बात बढ़ाने से राधा और भी रोएगी ।
द ने इस राधा को पहले कभी नहीं देखा । पहले की राधा ने गाना गाया
ा-तम्बाखू खाकर हंसा किया है, शायद हो कि प्रकाश मामा के साथ शराब
हो । इतने दिनों के बाद सदानन्द ने एक दूसरी ही राधा को देखा । इस
ी राधा ठाकुर की पूजा करती है । यह राधा कालीघाट में काली मां के
करना चाहती है । यह राधा रोती है । अपने दुखड़ा कहते-कहते आंखों
ंचल डालकर रो पड़ती है ।
ात खा-पी चुका, तो राधा ने कहा, "तुम सो जाओ भैया ! किवाड़ की
लगा लो । मैं चलती हूं—"
'कहां जाओगी तुम ?"
"मेरे लिए तुम मत सोचो । मुझे क्या सोने की जगह की कमी है । हमारे
ोले में बहुत-से घर हैं । किसीके घर के एक कमरे में पड़ी रहूंगी । मेरी
न करो ।"
राधा इतना कहकर चली गई थी । याद है, उस चौकी पर सोने में सदानन्द
ुरा लगा था । फिर भी राधा का जी दुखाने को जी नहीं चाहा । दूसरे
उठकर कहीं चल देना चाहता था वह, जहां नबाबगंज के किसीको उसका
नहीं चले ।
लेकिन आधी रात को किसी आवाज़ से उसकी नींद टूट गई । लगा, कोई
ः दरवाज़े पर धमाधम धक्का दे रहा है ।
सदानन्द हड़बड़ाकर उठ बैठा । राधा तो नहीं है । हो सकता है यहां उसका
हो, जिसे लेने के लिए आई हो ।
कुंडी खोली, तो देखा एक अनजान आदमी है । लड़खड़ा रहा है । खूब पी
है शायद ।
"इतनी देर से दरवाज़ा पीट रहा था, खोल क्यों नहीं रही थी ? मौत की
आई थी क्या ?"
इतना बोलने के बाद ही शायद उसे ज़रा होश आया । बोला, "तुम कौन
ैया ? एं ?"
इतने नशे में भी उसे कुछ होश था शायद । वह समझ गया कि वह जिससे
कर रहा है, वह औरत नहीं, मर्द है ।
"किसे चाहते हैं आप ?"
वह बोला, "मैंने आपको डिसटर्ब किया क्या ? माफ कीजिए, हाथ जोड़ता
मैं बिलकुल ही भूल गया था कि राधा के बंधे हुए बाबू हैं—"
सदानन्द ने कहा, "ठीक है, आप आइए, मैं चला जाता हूं ।"
और सदानन्द जिस हालत में था, उसी हालत में कमरे से निकल पड़ा ।
वह आदमी माजरे को समझ नहीं पाया था । बोला, "आप कहां चल दिए

इधर ?"

लेकिन सदानन्द ने उस बात पर कान नहीं दिया। वह राधा के यहां से निकलकर बाजार के रास्ते पर पहुंच गया। बाजार सूना पड़ा था। रेल-स्टेशन का बाजार। बंद दूकान के चौतरे पर ही बहुतेरे व्यापारी सोए थे। वहां से वह सीधे स्टेशन के प्लेटफार्म पर पहुंचा।

आवाज राधा के कानों में भी पहुंची थी। और उसे जो डर था, वही हुआ। दौड़ते हुए कमरे के पास आई और जो देखा, उसके सिर पर खून सवार हो गया। बोली, "तुम एकाएक कहां से आ टपके ? मेरे कमरे में आदमी था, उसे यहां निकाल दिया ?"

वह आदमी दांत निपोरकर हंस उठा, "मुझे क्या पता था कि आज तुम्हारा बाबू आया हुआ है ? मेरा क्या कसूर है ? ऐसा था, तो दरवाजे पर नोटिस चिपका देना चाहिए था। तुम्हारा बाबू ऐसे बिना दिन के कैसे आ जाता है ?"

राधा से रहा नहीं गया। उसने उस आदमी का गला धर दबाया। बोली, "जो भी हो, तुमने मेरे कमरे के आदमी को निकाल क्यों दिया, यह कहो ? क्यों भगा दिया ? नहीं बताओगे तो मैं तुम्हारी जान ले लूंगी। बोलो ?"

एक तो वह आदमी नशे में लड़खड़ा रहा था, फिर आधी रात, तिसपर राधा ने उसका गला दबोच रखा था। वह ऐसी स्थिति के लिए तैयार नहीं था। कहना चाहा, "छोड़ो, छोड़ो, छोड़ दो मुझे···"

मगर राधा हरगिज नहीं छोड़ने की। बोली, "तुम फौरन मेरे यहां से निकल जाओ, फौरन !"

वह आदमी बेबस हो गया था। राधा उसका गला दबाए हुए थी।

वह बोला, "मैं तो तुम्हारे यहां रहने के लिए आया था। न होगा, तो और ज्यादा रुपया दूंगा, जितना कहोगी, उतना ही दूंगा।"

राधा चिल्ला उठी, "तुम्हारे रुपये को मैं झाड़ू मारती हूं···रुपया दिखा रहे हो ? निकलो यहां से।"

वह आदमी अंधेरे में खो गया।

उस दिन फिर चौधरी जी की हवेली में गड़बड़ी मची। सदानन्द के चले जाने के बाद शुरू-शुरू में कोई समझ नहीं सका। बूढ़े चौधरी का श्राद्ध धूमधाम से हुआ। बाहर के आंगन में चूल्हे जले। लेकिन पहले वाली बात नहीं। खाने के लिए गांव के लोग आए। सभी नहीं। न्योते के मामले में भी कुछ कतर-ब्योंत हुई। चौधरी जी ने कहा, "फेहरिश्त जरा सोच-समझकर बनाना कैलाश ! खर्च अब बढ़ाना नहीं चाहता। बूढ़े हुजूर की बीमारी में ही जरूरत से ज्यादा खर्च हो चुका है।"

रात जब आए हुए लोग अपने-अपने घर चले गए, तो काम-काज कर-कराके बिहारी पाल की पत्नी भी लौटने लगी कि उसे दिखाई दिया,

नयनतारा अपने कमरे के चौकठ को पकड़े चुपचाप खड़ी है।

देखने में कैसा बुरा-सा तो लगा। इतने-इतने लोग आए, इतना खान-पान हुआ और इस घर की वहू ऐसी उदास क्यों खड़ी है? पूछा, "तुम्हारा चेहरा सूखा-सूखा-सा क्यों लग रहा है वहू? तुमने खाया नहीं?"

नयनतारा को इतनी देर में एक हितू मिली, उसने इस लहजे से पूछा, "आपने खा लिया नानी जी?"

नानी जी ने कहा, "मेरी छोड़ो, मैं तो खाऊंगी ही। लेकिन तुम इस घर की वहू हो, तुम्हारे यहां इतने लोग आए-गए और तुम इसकी देखभाल क्या करोगी, उदास खड़ी हो?"

नयनतारा ने होंठों पर हंसी लाने की व्यर्थ चेष्टा की, "कहां, उदास तो नहीं हूं।"

नानी जी ने कहा, "जरूर कुछ-न-कुछ हुआ है। मुझे वताओ तो तुम्हें हुआ क्या है वहू? खाया नहीं है शायद? खा चुकी हो? खा चुकी हो तुम?"

उधर से सास शायद इधर ही आ रही थी! उसने सुना। वोली, "किसकी कह रही हो मौसी? किसने नहीं खाया है?"

मौसी ने कहा, "वहू की कह रही थी। चेहरा सूखा-सूखा-सा लग रहा था न, इसीलिए पूछ रही थी कि खाया या नहीं—"

सास ने वहू की तरफ देखकर कहा, "क्यों वहू, तुमने खाया नहीं है?"

नयनतारा चुपचाप खड़ी रही। कोई जवाव नहीं दिया। जवाव देती तो यही कहना पड़ता, उसे किसीने खाने को कहा ही नहीं, तो खाए कैसे?

मगर सास उस ओर ही नहीं गई। वोली, "तुमने खाया नहीं? लेकिन क्यों नहीं खाया? इतने-इतने लोग खा गए, तुम ही क्यों वाकी रहीं? कोई तुमसे कहेगा, तव तुम खाओगी? खाकर मेरा थोड़ा-सा उपकार करोगी, तुमसे इतना भी नहीं होने का?···कोई लड़का व्याई होती तो भी समझती···"

मौसी ने कहा, "अहा, इसे झिड़क क्यों रही हो वहू? पराए घर की लड़की अभी-अभी उसी दिन तो वहू वनकर आई है, यह भला अपने से खाने की वात कैसे कहेगी? तुम्हें ही कहना चाहिए था।"

"तुम रहने भी तो दो मौसी! नई वहू! हम लोग क्या कभी वहू नहीं थीं या कि हमने सास की गिरस्ती नहीं की! मैं अगर अपनी सास के आगे ऐसी वेअदवी करती तो वह मेरे मुंह में झामा नहीं घिस देतीं?"

मौसी ने कहा, "अपनी सास के वारे में तुम ऐसा न कहो वहू, मैं उन्हें पहचानती थी। वह स्वर्ग गईं—उन्होंने एक दिन भी तुमसे झगड़ा नहीं किया—"

प्रीति ने कहा, "तुमने तो वस मेरी सास की ही सोची, जरा मेरी भी तो सोचो मौसी! अपनी सास से मैंने कभी जोर से वात भी की या जोर से वात करने की कभी हिम्मत भी हुई?"

"खैर, पिछली वातों को छोड़ो। तुम चलो तो वहू, खा लेना—"

बिहारी पाल की पत्नी ने नयनतारा का हाथ पकड़कर खींचा।

उससे पहले ही प्रीति ने चिल्लाकर कहा, "अरी ऐ गौरी, तूने बहू को खाने को क्यों नहीं दिया, एँ? तुझे कोई होश ही नहीं रहता?"

गौरी भी खा-पी चुकी थी। पान चबा रही थी। रसोई-घर से निकलकर उसने कहा, "हाय राम, बहू ने खाया नहीं है? मुझसे कहा भी तो होता। बहू कोई कुटुम्ब है कि खातिर से बुलाकर खिलाना होगा? जब हम सब खाने बैठी थीं, एक पत्तल लेकर बैठ जातीं वह भी।"

बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "देखो, तुम अब बात को बढ़ाओ नहीं, क्या है, ले आओ। मैं बैठकर खिलाती हूं।"

नयनतारा खाने बैठी। जब उसने देखा कि वहां पर अब कोई नहीं है, तो वह रुलाई से जैसे टूट पड़ी। बोली, "मुझसे अब खाया नहीं जाएगा नानी जी, आप मुझसे खाने का आग्रह नहीं करें—"

नानी जी ने कहा, "नहीं-नहीं, खाओ। उनकी बात से नाराज न होओ, उसमें अपना ही नुकसान होगा।"

नयनतारा ने कहा, "इसके बाद भी भला मुंह में कौर थम सकता है?"

नानी जी ने कहा, "थमे या नहीं थमे, जबरदस्ती निगलो। यही तो उम्र है खाने की। और फिर खाओगी भी क्यों नहीं? किसपर खीजकर तुम भूखी रहोगी? सासों का ऐसा कहना काम ही है। मेरी सास ने भी मुझसे ऐसा बहुत कहा है। तुम्हारी सास भी जब बहू थी, तो अपनी सास से बहुत झिड़कियां खा चुकी है। अब वह गुजर गई तो उनके गुण का बखान हो रहा है। तुम भी जब सास होगी तो अपनी बहू पर ऐसी ही उबलोगी। यह घर-घर का नियम है। इसमें नाराज नहीं होना चाहिए—"

नयनतारा ने कहा, "आपको सब मालूम नहीं है नानी जी, जानती होतीं, तो ऐसा नहीं कहतीं।"

नानी जी बोली, "मैंने तो देखा है, सास पहले तुम्हें बहुत मानती थी। कुंजियां तक तुम्हारे हवाले कर दी थीं?"

नयनतारा ने कहा, "कुंजियां अब ले ली हैं—"

"अरे! खुद ही तुम्हारे आंचल में कुंजियों का गुच्छा बांध दिया था और ले भी लिया।"

"हां।"

"क्यों? क्या किया था तुमने?"

"मैं क्या करूंगी? कुंजियों के होते हुए भी मैंने कभी सन्दूक नहीं खोला। एक दिन उन्होंने कुंजियां मांगीं, मैंने दे दीं—"

शायद इसपर और भी बात होती। सास के वहां आ जाने से बात बंद हो गई। वह बोली, "बहू का गुस्सा शान्त हुआ?"

मौसी ने कहा, "तुम यों चिढ़ाकर न बोलो वह, जरा लाड़ से ही बोलो।"

प्रीति ने कहा, "मुझे ही कौन लाड़ करे कि मैं बहू को लाड़ करूं। मुझे क्या इतना समय है मौसी कि मैं यह देखती फिरूं, किसका आदर हुआ और

किसका नहीं हुआ ? रात रहते ही जगी हूं। अब सोने कब जाऊंगी, इसीका ठिकाना नहीं। मेरा सिर, हाथ-पांव सब दुख रहा है ।"

रात और भी बढ़ी। बाहर के प्रांगण में जूठी पत्तलों के लिए रास्ते के कुत्तों में खींचा-तानी चलने लगी। बिहारी पाल की पत्नी भी चली गई।

घर पहुंचते ही पति ने पूछा, "तुम्हें इतनी देर हो गई ?"

पत्नी ने कहा, "सास-पतोहू का झमेला देखने में देर हो गई। खाना-पीना तो बहुत पहले ही खत्म हो चुका था।"

"सास-पतोहू का झमेला ?" बिहारी पाल को उत्सुकता हुई।

ये बातें भी शुरू की हैं। इसके बाद तो और भी बहुत कुछ हुआ। चौधरी परिवार से अनेक आंधियां गुजरीं। उस दिन की घटना के बाद से बिहारी पाल की पत्नी का भी उसके यहां जाना-आना बंद हो गया। दोनों घर में अब बनाव ही नहीं रहा।

उस दिन तीसरे पहर चौधरी जी के यहां फिर अचानक वैसा ही गोल-माल होने लगा।

रेल-बाजार का जूट का आढ़तिया प्राणकृष्ण साह बिहारी पाल की दूकान में बैठकर काम-काज की बात कर रहा था।

एकाएक चौधरी जी के यहां शोरगुल सुनकर बोला, "यह कैसा झमेला है पाल ?"

बिहारी पाल ने कहा, "सास-पतोहू का झगड़ा···"

"सास-पतोहू ?"

प्राणकृष्ण साह अवाक् हो गया। बोला, "गला तो लेकिन एक ही का सुनने में आ रहा है ? किसे इतना झिड़क रही है ?"

"बेटे की बहू को।"

"क्यों ? मैंने तो सुना है कि लड़का भाग गया है। तो, बेटे की बहू ने क्या ऐसा किया ?"

बिहारी पाल ने कहा, "क्या पता क्या किया है ! लड़का भाग गया है, यह भी बहू का ही दोष है। सुना, सास बहू को पेट भर खाने को भी नहीं देती। कभी-कभी मेरी पत्नी जाकर छिप-छिपाकर खिला आती थी, अब वह भी बंद हो गया है।"

"क्यों ?"

बिहारी पाल ने कहा, "मेरा कारबार चल पड़ा है न, इसीलिए। आप पहले वहां जाया करते थे, अब मेरे पास आते हैं, उन्हें यह भी नहीं सुहाता। सहा नहीं जाता है, और क्या !"

प्राणकृष्ण साह सुनकर भी खुश नहीं हुए। बोला, "मगर शादी-ब्याह करके भी लड़का घर से भाग क्यों गया ? कुछ समझ में नहीं आता। तब से

देख रहा हूं, चौधरी जी भी पहले की तरह काम-कारबार में वैसा ध्यान नहीं देते। लड़के के चले जाने से जी छोटा हो गया है शायद—"

ज़रा देर बातचीत करने के बाद साहू जी अपने काम से चला गया। बिहारी पाल अन्दर गया, तो देखा, पत्नी चौधरी जी के घर की ओर कान लगाए खड़ी है। पति को देखते ही बोली, "लो, सुनो। सुन रहे हो न ?"

बिहारी पाल ने कहा, "सुन तो रहा हूं, पर सुनने से तो कोई लाभ नहीं है। हम कुछ कर तो नहीं सकते। सिर्फ मन में कष्ट···"

पत्नी ने कहा, "जानते हो, यह सब मुझको सुना-सुनाकर कहा जा रहा है, और कि अपना दोष भी क्या ! यह तुम सास-पतोहू की बात है, मैं कौन होती हूं ? मैं तो कोई भी नहीं। मेरे दोष में दोष यही कि वह कष्ट से घबरा-कर मेरे यहां आ गई थी। मगर इसमें मैं क्या कर सकती हूं ?"

बिहारी पाल ने कहा, "तुम सुनती ही क्यों हो, न सुनो। असल में तुमपर तो नहीं, मुझपर है। और मेरा दोष यह है कि मेरा कारबार बढ़ रहा है, मुझे रुपया क्यों हो रहा है। अब प्राणकृष्ण साहू मेरे यहां क्यों आता है···तुम अपना काम करो जाकर। उधर कान देने से कोई नहीं।"

बिहारी पाल ने इधर की खिड़की के पल्ले बंद कर दिए।

बतासी का नया मकान अच्छा है। मौसी के सस्ते मकान से बड़ा बतासी को पक्के के दुमंजिले में ले आया। मौसी के यहां वाहियात लोग आते-जाते थे। उससे बड़े बाबू की इज्जत पर आ बनती।

बड़े बाबू के लिए इज्जत की ही कीमत सबसे ज्यादा थी। कमरे दरवाज़ा बंद करके जो चाहे करें, बाहर तो इज्जत बचाकर चलना होगा। इज्जत के नाते ही पक्के के मकान के साथ-साथ बतासी के बदन पर कीमती भी आए। दिन-भर बतासी को कोई काम नहीं रहता। दोपहर में सोना तीसरी पहर होते-न-होते बदन-हाथ धोकर, बाल बांधकर, बन-ठनकर रहना। बड़े बाबू के आने का इंतज़ार।

एक ही तो औरत। मगर उसीके लिए साज-सरंजाम की कमी नहीं दरबान, नौकरानी, महराजिन। जिसमें बड़े बाबू की सेवा में कोई त्रुटि न सांझ होती कि बतासी घड़ी की तरफ ताका करती। इंतज़ार में बेसब्र।

उस दिन बड़ा बाबू लेकिन दिन रहते ही आ पहुंचा।

अन्दर आते ही देखा, बतासी क्या तो ध्यान से देख रही है।

बड़े बाबू ने पूछा, "क्या देख रही थी ?"

"यह तसवीर।"

"तसवीर ? फोटो ? किसकी तसवीर है यह ?"

हाथ में लेकर वह तसवीर को देखने लगा। सिर के बाल बिखरे हुए, ल

ग लग रहा है, प्यारा है।
किसकी तसवीर है यह ?"
मौसी दे गई है। यह लड़का अपने घर से भाग गया है। इसका मामा
जने के लिए कलकत्ता आया है। कहीं मिल नहीं रहा है। तुमने ही तो
तसवीर मांगी थी। कहा था कि बिना तसवीर में ढूंढ़ना मुश्किल है।
ो नीचे लिखा है, देखो न—"
ड़े वावू ने देखा। लिखा था—सदानन्द चौधरी।
दानन्द चौधरी। बड़े बावू तसवीर को गौर से देखने लगा। पूछा, "यह
घर से भागा क्यों ?"
तासी ने कहा, "मुझे क्या मालूम? मौसी तसवीर दे गई, मैंने तुम्हें
"

बड़ा बावू दफ्तर में सुबह से सांझ तक काम करता है। दफ्तर के काम से
कभी कलकत्ता से बाहर जाना पड़ता है। दफ्तर से लेकर बाहर के लोग
बड़े बाबू के डर से सिटपिटाए रहते हैं। दफ्तर के सिपाही उन्हें देखते ही
ं की ओट हो जाते। बड़ा बावू जांबाज़ साहब हैं। कभी स्वदेशी छोकरों
पकड़कर आगे-पीछे पीट-पीटकर ठंडा कर दिया। उन दिनों वैसे कितने
रे जो उसके हाथों मारे गए, इसका ठिकाना नहीं। उसके बाद लड़ाई छिड़ी,
भी हो गई। लेकिन बड़े बावू का रौब नहीं घटा, बल्कि और बढ़ा।
कभी-कभी सांझ को ही आ जाता और रात बीतते ही उठ बैठता। जाने
से एक जीप गाड़ी नीचे रास्ते पर खड़ी होती और बड़ा बावू उसपर जा
ा। गाड़ी उसे लेकर जाने कहां चली जाती। बतासी फिर देख नहीं पाती।
समय से बतासी की छुट्टी। फिर जब तीसरी प्रहर होगी, तो देह को धो-मल-
तैयार हो जाना पड़ेगा। बन-संवरकर बड़े बावू की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।
लेकिन बड़े बावू के दफ्तर में जितना काम, सब उसी समय। मोटे-मोटे बूट
ं की आवाज़ से लाल बाज़ार थर-थर कांपता रहेगा। लाल बाज़ार बड़े बावू
दफ्तर है, लेकिन दबदबा उनका सारे कलकत्ता पर। बड़े बावू के दबदबे से
टर्स बिल्डिंग से पुलिस कमिश्नर तक निश्चिन्त रहते हैं। कहीं भी गड़बड़ी
तो कौन सम्भालेगा ? सामन्त।
कोई उलझन वाला मामला आता तो उसकी ज़िम्मेदारी सामन्त को दी
ती। इसकी शुरुआत एक बहुत बड़ी डकैती के समय से हुई। इसी समय से
ील सामन्त का नाम हुआ। वह डकैती स्वदेशी आंदोलन वालों ने की थी।
सी भी उपाय से इसका कोई किनारा नहीं हो पा रहा था। होम मिनिस्ट्री
सख्त हुक्म आया। एक-एक करके बहुतों को इसकी तहकीकात दी गई। सभी
नाकामयाब होकर लौट गए।
आखिर वह फाइल सुशील सामन्त के ज़िम्मे आई।
सुशील सामन्त ने न केवल उसके अभियुक्तों को पकड़ा, बल्कि उन सबको
ा भी हो गई। यह होना था कि सुशील सामन्त की पदोन्नति हो गई।
की निजी नंचिका डिप्टी पुलिस कमिश्नर के पास गई। डिप्टी पुलिस

कमिश्नर ने उसे बुलवा भेजा। कहा, "सामन्त, मैंने तुम्हारी पदोन्नति की अभिशंसा की है।"

वह सचिका पुलिस कमिश्नर के पास गई। वहां बस आंख मूंदकर ही सब हो-हवा गया।

लेकिन यह पदोन्नति ही सुशील सामन्त के लिए काल हो गई। पदोन्नति नहीं होती, तो यह सब कुछ नहीं होता।

सुशील सामन्त ने एक दिन रंगे हाथों एक केस पकड़ा। बड़ा बाजार का एक बहुत बड़ा व्यापारी। अपने कारखाने के लिए बिजली की चोरी करता था। वर्षों से सरकार को हजारों-हजार रुपये का चकमा देकर अपना कारबार चला रहा था। खबर मिली। चुपके-चुपके जांच-पड़ताल शुरू की और एक दिन वह सीधे कारखाने में पहुंच गया। कारखाना चालू था। सामन्त एकबारगी पावर हाउस में हाजिर हो गया।

पावर हाउस के चीफ इंजीनियर ने मूलचन्द अग्रवाल को खबर कर दी। मूलचन्द बड़ा चालाक व्यवसायी था। आसानी से दबने वाला नहीं। इस समाचार से भी वह नहीं घबराया। उसने तुरन्त चीफ इंजीनियर से कहा, "तुम दरोगा जी को खातिर के साथ बिठाओ। मैं तुरन्त आता हूं।"

मूलचन्द अग्रवाल बड़ा पुराना व्यवसायी था। उसने बहुतेरे मिनिस्टरों को चराया, बहुतेरी लाटों को भी चराया था। उसे गुर मालूम था कि बड़े अधिकारियों से कैसे निबटा जाता है। गाड़ी से वह निकला। सीधे कमिश्नर के दफ्तर में गया। मूलचन्द को सभी पहचानते थे। कमिश्नर के कमरे में बैठकर क्या बातें हुईं, किसीको मालूम नहीं।

कमिश्नर के कमरे से मूलचन्द को निकलने में एक घंटा हो गया। सबने यह देखा, कमरे में जाते वक्त मूलचन्द के चेहरे पर जैसी हंसी थी, निकलते वक्त भी वैसी ही हंसी थी। बाहर गाड़ी खड़ी थी। उसीपर बैठकर चला गया।

इस वाकया के तीन दिन बाद एकाएक डिप्टी कमिश्नर ने सुशील को बुलवा भेजा। बोला, "क्यों सामन्त, तुमने क्या किया था?"

सुशील सामन्त तो अचम्भे में आ गया। बोला, "क्यों सर?"

डिप्टी साहब ने कहा, "एकाएक तुम्हारा डिमोशन हो गया—"

सामन्त ने कहा, "सो क्या सर? मैंने क्या किया?"

"क्या पता! बड़े साहब ने तुम्हारी फाइल मंगवा भेजी। देखो न, क्या लिखा है—अनफिट फार कनफरमेशन। कनफर्म होने लायक नहीं है।"

सुशील सामन्त तो देखकर अवाक् हो गया। अभी उस दिन उसने एक इतना बड़ा केस पकड़ा है, सरकार के लाखों का नुकसान बच गया। इसके लिए विशेष पुरस्कार कहां मिलेगा कि एकबारगी डिमोशन।

डिप्टी ने पूछा, "अभी तुम्हारे हाथ में कौन-सा केस है, कहो तो?"

सामन्त ने कहा, "अभी तो मूलचन्द की जालसाजी वाला केस है सर! कोई एक करोड़ की ठगी का मामला···"

मूलचन्द का नाम सुनते ही डिप्टी चौंक गया। बोला, "यह किया तुमने ? मूलचन्द अग्रवाल को पकड़ा है ? गजब किया है। बर्रे के छत्ते में मारा है।"

सामन्त समझ नहीं सका। बोला, "क्यों सर ? मूलचन्द कितना बड़ा फ है, उसे पकड़कर मैंने कौन-सा गलत काम किया है ? मुझे तो रिवार्ड मि चाहिए--"

"रिवार्ड ! मूलचन्द को जानते हो ? वह तो साहब का बड़ा दुलरुआ है-- महीने पन्द्रह-बीस हज़ार भेंट साहब को देता है। फिर मिनिस्टर लोग तुम्हें पकड़ने के लिए और कोई नहीं मिला ? पकड़ा भी तो एकबारगी मूल को ?"

यह अंग्रेज़ी सरकार के अंतिम दिनों की बात है। पुलिस लाइन में समय गोरी चमड़ी का ही बोलबाला था। और सुशील सामन्त के जीवन में नौकरी का आरंभिक काल था। कालेज से निकलकर बड़ा ऊंचा आदर्श पुलिस की नौकरी में आया था।

लेकिन नौकरी में आने के बाद वह जैसे-जैसे दुनिया देखता गया, उस आदर्श टूटकर चकनाचूर होने लगे। उसने समझा, दुनिया में जो भला हो चाहेगा, सारी दुर्गत उसीकी होगी। जो सच बोलेगा, उसीको ज्यादा स भोगनी पड़ेगी। और तुम चोरी करो, घूस लो, झूठ बोलो, झट-झट तुम्हा तरक्की होती चली जाएगी।

सो, उसी दिन से सामन्त बिलकुल बदल गया। दोनों हाथों से घूस ले शुरू किया, दस मुंह से झूठ बोलने लगा। सामन्त के हाथ लगे असामियों में सत् थे, उन्हें सजा होने लगी, जो असत् थे, वे बेदाग बच निकलने लगे। ला बाजार के हेडक्वार्टर में उस समय सामन्त का बेहिसाब रौब-दाब था। जि मूलचन्द को पकड़ने में उसकी इतनी बदनामी हुई, उसी मूलचन्द से वह दो हाथों घूस लेने लगा। सरकार जाय जहन्नुम में, पहले अपना पेट देखो। कोई अर्जी पर फरियाद लेकर पहुंचता, तो वह पूछता, "कुछ माल-पत्ता लाए हो ?"

माल यानी रुपये। वही सामन्त उस लाइन में रहकर एक दिन शेर उठा। शराब की गंध नाक में जाने की देर, पैसों की छूत लगने की देर, और का नाम सुनने की देर। फिर तो सामन्त की चुटिया कौन पकड़े !

किसी केस के सिलसिले में सामन्त एक बार कहीं गया था। वहां से ज लौटा तो साथ में एक औरत।

सामन्त ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

उस लड़की ने बताया, "बतासी।"

"बतासी ? सिर्फ बतासी ? और कुछ नहीं ?"

उसने कहा, "बतासी बाला दासी।"

"इस दासी-फासी की जरूरत नहीं।"

वह उसे वहां से सीधे मौसी के यहां ले गया। सामन्त ने पूछा, "कोई खाली कमरा है ? यह यहां रहेगी।"

मौसी को तो मुट्ठी में चांद मिल गया। बोली, "आप यह क्या कह रहे हैं बड़े बाबू ? जरूरत होगी, तो मैं आपके लिए कमरा खाली कर दूंगी।"

मौसी ने बतासी से पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

बतासी ने कहा, "बतासी—"

मौसी ने कहा, "वाह, बड़ा खासा नाम है। देखने में जैसी खासी, वैसा ही नाम।"

यह शुरू की बात हुई। उसी समय मामा ने गलती से सदानन्द को इसी बतासी के कमरे में बिठा दिया था। बात यह थी कि उस समय प्रकाश मामा को यह पता नहीं था कि इस कमरे में कोई आ जुटी है।

बड़ा बाबू तभी से नये घर की तलाश में था। आखिर बतासी को वह इस नये मकान में ले आया। लेकिन बतासी के घर छोड़कर चले जाने के बाद भी मौसी ने बतासी को नहीं छोड़ा। बड़े बाबू की रखैल की खातिर करना माने बड़े बाबू की ही खातिर करना।

मौसी उस दिन भी आई। पूछा, "क्यों री, बड़े बाबू को तसवीर दे दी ?"

बतासी ने कहा, "दे तो दी है मौसी ! मगर बड़े बाबू की बात, कामों की भीड़ में तसवीर को कहीं खो दें तो गई।"

"तुझसे तो कही दिया है, तुझे रुपया मिलेगा। धनी आदमी का इकलौता बेटा है, घर से भाग गया है। उसे ढूंढ़ निकाला जाए तो तुझे रुपये मिलेंगे, मुझे भी दो पैसा मिलेगा। आज तू जरा उन्हें याद दिला देना, हां ? उसका मामा मेरे यहां धरना दिए हुए है। आज तू याद दिला देना—समझी ?"

लेकिन जिस मामूली-सी घटना को लेकर एक दिन नयनतारा की कहानी बनी थी, उससे एक दिन इस तरह से आग लहक उठेगी, इसकी उस दिन किसीने कल्पना भी नहीं की थी। नवाबगंज का कोई भी आदमी इसके लिए तैयार नहीं था। गांव के लोग अपनी-अपनी घर-गिरस्ती के झमेले में ही परेशान रहते हैं। फिर ज्यादा वक्त ताश और चौपड़ में ही बिताना है। इसीमें किसीकी बीवी के बच्चा होता है और किसीके होकर मर भी जाता है। बच्चा होने पर शंख बजता है, अन्नप्राशन में दो-चार जने की दावत होती है। उसी बच्चे के मरने पर उसकी मां दो-चार दिन गला फाड़कर रोती भी है। उसके बाद नदी घाट पर टोले की धी-बहुओं से झगड़ा भी करती है।

इस बार लेकिन और ही कुछ।

प्राणकृष्ण साहू उस दिन भी बिहारी पाल से बात करने के लिए आया था।

बिहारी पाल ने कहा, "साहू जी, एक काम आपको करना होगा। बड़ा जरूरी काम है।"

साह जी ने कहा, "कौन-सा काम ?"
बिहारी पाल बोला, "परसों सवेरे आपको नवाबगंज आना पड़ेगा।"
"क्यों ?"
"हां। उस दिन हम सब लोग टोली बनाकर चौधरी जी के यहां जाएंगे। को भी साथ रहना पड़ेगा।"
साह जी तो दंग। बोला, "क्यों, आप सब मिलकर उनके यहां क्यों जाएंगे ?"
बिहारी पाल ने कहा, "एक कांड हो गया है—"
"कैसा कांड, बता ही दो न ?"
प्राणकृष्ण साह का कौतूहल और बढ़ गया।
बिहारी पाल ने कहा, "तो आपको चुपचाप एक बात कह दूं, किसीसे एगा नहीं। चौधरी जी की पतोहू ने हम सबों को जाने के लिए कहा है।"
"चौधरी जी की पतोहू? उस दिन तो सास-पतोहू में बड़ी लड़ाई हो रही "

बिहारी पाल ने कहा, "जी। उसीके लिए बहू ने मेरी पत्नी को बुलाकर के लिए कहा है। कहा है, सबको लेकर आइएगा—"
साह जी को ही नहीं, और भी बहुतों को कहा गया। एक प्रलय कांड या। बिहारी पाल की पत्नी खुद से जाकर सबसे कह आई।
निताई हालदार की विधवा मां ने पूछा, "बात क्या है बहू, जाकर क्या ?"
बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "चलकर देख ही लो न, क्या होगा ! मैं से क्या बताऊं कि क्या होगा ? उसकी पतोहू ने हम लोगों को जाने के कहा, जभी तुमसे कह रही हूं—"
"कब जाना होगा ?"
"कल। कल सवेरे मेरे यहां आना। वहां से सब एक साथ चलेंगे।"
"मगर उस दिन तो कहा था कि किसीको अन्दर नहीं जाने देती है ? वह किसीको मिलने ही नहीं देती, बोलने ही नहीं देती ?"
बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "मिलने नहीं देती है तो क्या, हम लोग र जोर-जबरदस्ती घुस पड़ेंगे तो कौन क्या करेगा ? भगा देगी हम लोगों ? एक दूध पीती बच्ची को वह घर में बंद करके तकलीफ देती रहेगी र हम गांव के लोग मुंह खोलकर कुछ कह भी नहीं सकेंगे ? हम लोग क्या गए या उनके डर से मुंह बंद किए रहेंगे ?"
सबका एक ही कहना। अपने घर में वे अगर अपनी बहू को मारे-पीटें, पराए होकर हम क्या कर सकते हैं ?
बिहारी पाल ने कहा, "हम सब कर सकते हैं। ज़रूरत हो तो चौधरी जी समधी को हम कृष्णनगर खबर भेज सकते हैं, चाहें तो पुलिस में रपट रा सकते हैं—"
बात बहुतों को जंची, बहुतों को नहीं भी जंची। चौधरी जी गांव के गण्यमान्य व्यक्ति हैं। बहुत-से लोग बहुत तरह से उनके एहसानमंद भी

है। बहुतों की चुटिया भी चौधरी जी के पास बंधी है। पर्व-त्योहार में सब पूछिए तो सभी चौधरी जी के यहां पत्तल बिछाकर खा आए हैं। चौधरी जी ही क्यों, बूढ़े चौधरी जी जब समर्थ थे, तो सब लोग उनसे डरते रहे हैं, अदब करते रहे हैं। अभी-अभी उस दिन तो बूढ़े मालिक के श्राद्ध में खा आए, इसके कई महीने पहले सदानन्द के ब्याह में भी बड़ी धूमधाम हुई। उस समय भी कितनी खातिरदारी हुई। अभी चूंकि चौधरी जी जरा कमजोर पड़ गए हैं, इसलिए उनसे बढ़-चढ़कर बात करेंगे? अभी भी तो सिर के ऊपर चांद-सूरज उगते हैं। कलजुग तो अभी उलट नहीं गया है।

लेकिन इतना कुछ के पीछे हुआ क्या था, यह प्रत्यक्ष रूप से किसी को भी मालूम नहीं था।

यह मानो यात्रा-थिएटर-कविगान जैसी घटना हो। चौधरियों के घर में उस समय सन्नाटा था। बूढ़े चौधरी के मर जाने के बाद से ही कैलाश सामंत का काम कम हो गया था। उस समय वह सवेरे-सवेरे अपने घर चला जाता। दीनू को भी वैसा कोई जरूरी काम नहीं रहता। एक परमेश मौलिक ही गेरुए का बही-खाता लिए चंडीमंडप में देर तक धूनी जलाकर बैठा रहता। चौधरी जी जब उसे उठ जाने को कहते, तब वह लालटेन जलाकर घर चला जाता। सो उस समय वह भी अपने घर चला गया था।

इतिहास का यह भी एक अमोघ परिहास ही तो है। एक हर्षनाथ नीचे गिर जाता है, उसकी जगह दूसरा नरनारायण चौधरी ऊपर उठता है। ऐसी ही रहस्यमयी होती हैं शायद प्राणलक्ष्मी। इसीलिए शायद वह किसी एक ही के यहां जमकर नहीं रह सकती। किसी का ऐश्वर्य जब दंभ का आकाश चूमकर ईश्वर को मुट्ठी में पाना चाहता है, तो वह शायद किसी और का आश्रय खोजती है। ऐश्वर्य जब अत्याचार का प्रतीक हो उठता है, तभी शायद प्राणलक्ष्मी का गला रुंध जाता है। वह वैसे में सबकी नजर की ओट में चुपचाप कांटों-भरे आश्रय के घेरे से बाहर जा खड़ी होती है। कहती है, "मुझे जीने दो नानी जी, मुझे बचाओ—"

लेकिन उसकी सुनता कौन है! उसकी यह पुकार किसी भी तरह से किसी के कानों ही नहीं पहुंचती। नवाबगंज के लोग उस समय नशे में सोए कि प्राणलक्ष्मी की पीड़ा-कातर पुकार को सुनें! किसको इतनी फुरसत है! ऐसी ही शायद महीनों घुमड़-घुमड़कर प्राणलक्ष्मी का रोना एक दिन मुखर हो उठता है, और तब वह गांव छोड़कर, देश छोड़कर, महादेश छोड़कर दूसरे एक महादेश तथा दूसरे किसी युग की प्रतीक्षा करती है। वैसी हालत में प्राणलक्ष्मी के आशीर्वाद से वह देश, वह युग कुछ दिनों के लिए समृद्ध हो उठता है। वह युग धन-धान्य से, ऐश्वर्य-शान्ति से भर उठता है। मनुष्य-समाज फिर से धन्य हो जाता है। इतिहास का एक ऐसा ही नियम है। इसी नियम से दुनिया इतने दिनों से चली आ रही है और शायद ऐसी ही करोड़ों-करोड़ साल चलती रहेगी।

पता नहीं, उस दिन क्या सौभाग्य हुआ। सिर्फ एक ने उसका रोना सुना।

नानी जी बेखबर सो रहा था। चीख-पुकार से जगा। पूछा, "कौन !"

नयनतारा बड़े आतंक से सिहर उठी थी। उस दिन उसे दरवाज़ा खोलने में भी डर लग रहा था। लगा, कौन तो उसके दरवाज़े में धक्का दे रही है ? वहू···वहू···

बाहर सास का गला, "वहू, दरवाज़ा अन्दर से बंद करके क्यों सोई हो ? मैंने कहा है न, दरवाज़ा खोलकर सोना। फिर भी बंद कर लिया है। खोलो, दरवाज़ा खोलो—"

नहीं। नयनतारा ने तब तक अपने कलेजे को पत्थर कर लिया था। हरगिज़ दरवाज़ा नहीं खोलेगी। सो चाहे जितना कहे, उसे कोई अपवित्र नहीं कर सकता। दंभ की बढ़ती जीभ को वह जान देकर भी रोकेगी।

सास फिर चीखी, "सुनती क्यों नहीं, दरवाज़ा खोलो—"

नयनतारा कमरे में बुत बनी खड़ी रही। देखा ही जाए, कौन क्या करता है। ये अगर दरवाज़ा तोड़ देना चाहते हों, तो तोड़ दें। दरवाज़ा तोड़कर अन्दर आना चाहते हों, तो आएं। तुम लोगों के जुल्म के आगे मैं घुटनें नहीं टेक सकती, किसीके कुछ कहे आत्मसमर्पण नहीं कर सकती।

"नहीं खोलोगी दरवाज़ा ? ठीक है, देखती हूं तुम कितनी बड़ी शैतान हो—"

वर्षा और ज़ोरों से पड़ने लगी थी। बगल के बगीचे के पेड़ों के पत्तों पर और भी आलोड़न हो रहा था। पृथ्वी शायद रसातल में धंस जाएगी। नयनतारा कमरे में एक कोने में स्तब्ध-सी खड़ी पल की पगध्वनि गिन रही थी। पता नहीं क्यों, दरवाज़े पर फिर धक्का नहीं पड़ा। खिड़की खोलकर नयनतारा ने बाहर की ओर नज़र दौड़ाई। उसके मन के अन्दर के आलोड़न ने मानो बाहर की प्रकृति में प्रतिरूप ग्रहण किया था। बाहर जो हो रहा था, वह जैसे सिर्फ बाहर का ही नहीं, उसके भीतर का भी था। आंधी-पानी में उसका बाहर और भीतर जैसे एकाकार हो गया था।

खिड़की बंद करके नयनतारा फिर अपने बिछावन पर आकर बैठ गई। कौन उसकी रक्षा करेगा ? कौन उसे आश्रय देगा। जो उसको आश्रय देने वाला था, वह तो अपना आदर्श लिए ही चलता बना। ठीक ही तो, मेरी सुरक्षा से अगर तुम्हारा आदर्श ही बड़ा हो, तो हो। मैं अब तुमसे कभी भी आश्रय की भीख मांगने नहीं जाऊंगी। तुम्हारी कायरता ही तुम्हें मेरे पास से हटा ले गई है। कभी अपना आश्रय ढूंढ़ लेने के लिए मैं जब और भी दूर चली जाऊंगी, तो तुम्हारी यह कायरता ही मुझे साहस देगी। मुझे पथ दिखाएगी।

बड़ी देर के बाद ऐसा लगा कि वर्षा कुछ कम हो गई है। खिड़की से बाहर हवा की नोक-झोंक नहीं रह गई थी। नयनतारा ने कान लगाकर सुना, किसीकी कोई आहट कहीं है या नहीं, कोई कहीं जगा है या नहीं।

जब वह निश्चिन्त हो गई, तो उसने दरवाज़े को खोला। बहुत धीरे-धीरे खोला ताकि कोई जग नहीं जाए। मगर उस अंधेरे में खड़ी होकर वह कुछ समझ नहीं सकी कि क्या करे ! तो क्या वह यहां से चली जाए—एक दिन

उसका आश्रयदाता जैसे उसे छोड़कर चला गया था, वैसे ही वह इस घर को छोड़कर चली जाए?

नानी जी को लगा, वह जैसे सोई-सोई सपना देख रही है।

फकीर ने फिर आवाज दी, "मां, मां जी—"

नानी जी अब उठी। पूछा, "कौन है रे फकीर?"

फकीर बिहारी पाल का मुहर्रिर है। घर की पिछौनी बगीचे की तरफ गोले में रहता है।

फकीर ने कहा, "उस घर की बहू आपको बुला रही हैं मां जी!"

बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "उस घर की बहू? मुझे बुला रही है?"

फकीर ने कहा, "जी, मां जी—"

"लेकिन तुझे कैसे मालूम हुआ? तुझे बुलाया क्या?"

"जी। कुएं पर से उन्होंने मुझे बुलाया और आपको बुला देने को कहा।"

बिहारी पाल की पत्नी सुनते ही बगीचे के अंतिम छोर पर पहुंच गई। थोड़ी देर पहले वर्षा हुई थी। पानी-कादो से फिसलन हो गई थी। सूखे पत्तों ने झड़कर जगह को ढंक दिया था। उन्हीं पर से चलती हुई वह गोले के पिछले घेरे के नजदीक जाकर खड़ी हुई। उस घेरे के ठीक उस पार चौधरियों का कुआं है। कुएं के चारों तरफ रेंड़ी के पेड़ों की झाड़ियां। रात में यहां सांप-बांप रह सकता है। लेकिन उससे डरने से नयनतारा का काम नहीं चल सकता।

वहां से नयनतारा को देखते ही नानी जी ने पूछा, "तुमने बुलाया है बहू?"

नयनतारा बोली, "जी। ये लोग तो मुझे निकलने ही नहीं देते कि कहीं मैं आपके पास न पहुंच जाऊं। चारों ओर के दरवाजों में ताला डाल देते हैं। एक पल के लिए भी निकलने नहीं देते—"

"कई दिनों से मैं तुम्हारे लिए खूब सोचती रही हूं बहू! तुमसे कुछ बोलू, इस डर से तुम्हारी सास तो मुझे अपने यहां जाने नहीं देती। तुम्हारा शोर-गुल सुनकर उस दिन मैं तुम्हारे यहां दरवाजे तक गई थी, पर तुम्हारी सास ने जो मुंह में आया, मुझे वही सुना दिया। उसके बाद से मैंने फिर जाने की कोशिश नहीं की। मगर आज जो तुमने मुझे बुलाया, यह तुम्हारी सास जानेगी नहीं?"

नयनतारा ने कहा, "अब मैं किसीसे डरती नहीं नानी जी! अब तक मैंने बहुत बरदाश्त किया। सोच लिया है, अब बरदाश्त नहीं करूंगी—"

नानी जी ने कहा, "मगर मैं तो समझ ही नहीं पाती हूं कि तुम्हारी सास को तुमसे इतनी नाराजगी किस बात की है? दोष क्या है तुम्हारा?"

नयनतारा ने कहा, "दोष तो मेरा बहुत है नानी जी, बहुत दोष है। आज भी मेरे कमरे में कोई घुसना चाहता था—मैं इसीलिए आजकल दरवाजे को अन्दर से बंद करके सोती हूं। आज मेरी सास मुझे धमकी दे गई है कि देख

लूंगी, तुम कितनी शैतान हो !"

"एं ? ऐसा कहा ? क्यों ? क्या किया था तुमने ?"

"अन्दर से दरवाज़ा बंद करके जो सोई थीं ।"

"दरवाज़ा बंद करके सोने में कौन-सा गुनाह हो गया ? तुम अकेली रहती हो, दरवाज़ा बंद करोगी ही । क्यों नहीं बंद करोगी ?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं । सास चाहती हैं, मैं दरवाज़ा खोलकर सोया करूं—"

"आखिर क्यों ? यह तो कोई अच्छी बात नहीं है ।"

नयनतारा बोली, "वही कहने के लिए तो आज मैं कुएं के पास आई हूं ।"

"दरवाज़ा बंद करके सोने से तुम्हारे सास का क्या बिगड़ता है ?"

नयनतारा ने कहा, "बिगड़ता है नानी जी !"

"क्या बिगड़ता है, मैं तो नहीं समझ सकती ।"

नयनतारा ने कहा, "बताती हूं । वही कहने के लिए तो आपको इतनी रात में तकलीफ दी है । आप ज़रा ध्यान से सुनें । मैं कुछ छिपा-लुकाकर नहीं कहूंगी, अपने सास-ससुर के मुंह पर ही कहूंगी, गांव के दस जने के सामने कहूंगी ।"

नानी जी ने कहा, "मैं कुछ समझी नहीं बहू, सास-ससुर के मुंह पर क्या कहोगी ?"

नयनतारा बोली, "क्या कहूंगी, यह आप सब उसी समय सुनेंगी, लेकिन आपको आना ही पड़ेगा नानी जी, नाना जी को भी साथ लाइएगा । गांव के और भी जो मातबर लोग हैं, सबको मेरे यहां लिवा लाइएगा—"

नानी जी और भी दंग रह गईं । ज़रा देर के लिए मुंह से बोली नहीं निकली ।

नयनतारा ने पूछा, "तो, आ रही हैं न नानी जी । नहीं आएंगी, तो आप लोग फिर मेरा मुंह नहीं देख पाएंगी । मैं कहे देती हूं, मैं आत्महत्या करूंगी—"

नानी जी ने कहा, "छी: बहू, ऐसा नहीं कहते । तुम बुद्धिमती हो । ऐसी बात भी बोलनी चाहिए !"

नयनतारा ने कहा, "मैं जो कह रही हूं, बिलकुल ठीक कह रही हूं । कहिए, आप लोग आएंगे ? कहिए ?"

नानी जी ने कहा, "हम सब आएंगे—"

नयनतारा ने कहा, "हां, सबको साथ लेकर आइएगा ।"

नयनतारा की इस बात पर नानी जी ने कहा, "दूसरों की तो नहीं कह सकती । तुम्हारे नाना जी से सबको कहलवाऊंगी । गांव-बस्ती की बात ठहरी, तुम समझ ही सकती हो । कौन आएगा, कौन नहीं, पहले से नहीं कहा जा सकता ।"

"फिर भी जहां तक बने, सबको लाने की कोशिश कीजिएगा । और

अगर कोई नहीं आए तो आप और नाना जी जरूर आइएगा।"

नानी जी ने कहा, "तुम तो आने को कह रही हो बहू, तुम्हारे यहां अगर आने न दे? उस दिन आना चाहती थी तो मुझे कितना अपमान सहना पड़ा, यह तो तुम्हें मालूम ही है। सोचती हूं, वही नौबत आए तो क्या करूंगी।"

नयनतारा ने कहा, "वैसे मैं तो मैं हूं ही। आप लोग मेरा नाम लेकर कहेंगी कि आपकी बहू ने हम लोगों को बुलाया है—। और, मैं जान जाऊंगी कि आप लोग आई हैं, तो मैं खुद ही बाहर निकल आऊंगी।"

नानी जी की आशंका तो भी नहीं गई। बोली, "क्या पता बहू, अंत तक कुछ हो-हवा जाए?"

"होना क्या है?"

"तुम्हारी सास अगर तुम्हारी और भी फजीहत करे?"

नयनतारा ने कहा, "फजीहत का बाकी ही क्या रक्खा! फजीहत की आप जानती भी क्या है और कल्पना ही कितनी कर सकती है! मेरी फजीहत अब चरम पर पहुंच गई है नानी जी, नहीं तो क्या मैं इतनी रात को इस तरह से कुएं पर आकर आपके मुहर्रिर को जगाकर आपको बुलवा भेजती? आप यह समझ नहीं रही है कि मैं मरी हुई जिन्दा हूं? दिन की रोशनी में देखती तो समझती कि मेरी आंखों में अब आंसू नहीं हैं, शरीर में शायद लहू भी नहीं है, नहीं तो आंसू के बदले आंखों से शायद लहू ही निकलता। अब आंसू भी नहीं हैं, लहू भी नहीं है, मैंने अपने कलेजे को पत्थर बना लिया है। उस समय मैं बताऊंगी, सब कुछ बताऊंगी, आप लोगों से कुछ छिपाऊंगी नहीं—"

कहते-कहते नयनतारा हांफ उठी थी।

नानी जी ने कहा, "खैर, तुम जाओ बहू! कहीं तुम्हारी सास देख लेगी, तो कयामत बरपा करेगी। हम लोग आएंगे, परसों ठीक ही आएंगे। कल खबर भी कहलाएंगे। परसों शुक्रवार है, शुक्रवार के सवेरे आएंगे।"

नयनतारा लौट गई। अपने कमरे में गई। अन्दर से किवाड़ बंद कर लिया।

बिहारी पाल की पत्नी अपने कमरे में जाने से पहले पति के पास गई। जगाकर कहा, "सुनते हो?"

बिहारी पाल की आंखें नींद से माती हुई थीं। वह झट उठ बैठा। बोला, "क्या बात है? फिर क्या हुआ?"

अचानक फिर झमाझम पानी पड़ना शुरू हो गया।

दुनिया में जो लोग बंधी-बंधाई लीक छोड़कर सहसा दूसरे रास्ते से चलना शुरू करते हैं, उन्हें कोई पागल कहता है और कोई कहता है प्रतिभा। लेकिन सदानन्द पागल नहीं हैं, प्रतिभा तो नहीं ही है। लेकिन जाने कैसे वह साधारण संसार के साधारण नियमों के विरुद्ध ही एक दिन विद्रोह कर बैठा। अथच ताल-मेल मिलाकर चलता तो उसे कोई कष्ट ही नहीं था। दुनिया

का एक आदमी होकर यह मेस में अपनी जिन्दगी गुजार देता।

समरजित बाबू ने सदानन्द को जब पहली बार देखा, तभी यह सम गए थे कि इस छोकरे में कहीं कोई विशेषता है। यह दूसरे दस लोगों से जुद सा है। जुदा ही नहीं सिर्फ, विशेष भी है।

उनकी गृहिणी ने सदानन्द को देखा तो बोली, "यह कौन है जी ? इ कहां से ले लाए ?"

समरजित बाबू बोले, "इसे ले आया, यह मेरे साथ रहेगा।"

उस ज़माने का एक आदर्श परिवार। बेटा-बेटी-पतोहू से जमी हु गिरस्ती। जाने कितने लोग आते, खाते, रहते और एक दिन चले भी जाते गांव-घर का ही कोई-सगा सम्बन्धी नहीं—चिकित्सा के लिए कलकत्ता आता मगर ठहरे कहां ? चलो, सरकार साहब के यहां जाया जाए। चिकित्सा शायद महीना-दो महीने लग जाए। तब तक यहीं रहो, खाओ, सोओ।

घटनाचक्र से सदानन्द को वैसे ही परिवार में जगह मिल गई। समरजि बाबू से राणाघाट स्टेशन पर एकाएक मुलाकात हो गई। ऐसे तो बहुतों बहुतों की मुलाकात हो जाया करती है, पर कोई किसीको अपने घर ही तं नहीं लिए चला जाता।

समरजित बाबू ने पूछा, "तुम हमारे घर चलोगे ?"

सदानन्द ने कहा, "आप ले चलेंगे, तो चलूंगा।"

"लेकिन तुम्हारे मां-बाप, अपने सगे, ये लोग ?"

सदानन्द ने कहा, "सभी हैं।"

"फिर ?"

सदानन्द ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। समरजित बाबू भूयोदर्शी थे। बहुत कुछ देखने, बहुत कुछ सुनने और बहुत कुछ भुगतने के बाद कोई-कोई आदमी भूयोदर्शी होता है। लेकिन बहुतेरे लोग संस्कार से भूयोदर्शी होकर पैदा ही होते हैं। समरजित बाबू शायद ऐसों में ही थे। बहुत रुपया होने से ही कोई पूंजीपति नहीं होता और निराश्रित होने से ही कोई सर्वहारा और अभागा नहीं होता। समरजित बाबू को सब कुछ था, पर वह स्वयं निरासक्त व्यक्ति थे। कम-से-कम अपने घर में वह निरासक्त जैसा जीवन बिताते थे। चूंकि ऐश्वर्य उन्हें छू नहीं जाता था, इसलिए दूसरों की दुःख दुर्दशा को अनुभव करने जैसा हृदय उन्हें था।

लेकिन यह दुनिया अपने दावे की पाई-पाई वसूल करके ही तो किसीको छुटकारा देती है। इसीलिए समरजित बाबू को रुपयों की ज़रूरत अभी खत्म नहीं हो पाई थी।

गृहिणी ने पूछा, "यह मिल कहां गया तुम्हें ?"

वह बोले, "राणाघाट स्टेशन पर—"

गृहिणी ने कहा, "स्टेशन पर एक निरे अजाने आदमी को देखा और उसे अपने घर लिवा आए ? इससे तुम्हारा कौन-सा काम होगा ?"

समरजित बाबू ने कहा, "अपनी बात की सोच देखो ज़रा, अजी, मैं क्या

इसे काम करने के लिए ले आया हूं ? मेरे यहां जितने लोग हैं, सब क्या काम के आदमी हैं ? तुमने जो गमलों में कोड़ियों पौधे लगा रखे हैं । उन फूल पौधों से तुम्हारा कोई काम होता है ?"

गृहिणी ने कहा, "हाय राम, फूल के पौधे तो फूल के लिए लगाए हैं—"

"तो सदानन्द को भी एक फूल ही समझो । फूल के पौधों में जैसे पानी देना पड़ता है, वैसे ही इसे भात खिलाया करना । दुनिया के इस आदमियों के जंगल में सदानन्द जैसा कोई-कोई फूल होकर ही जन्म लेता है । इस बात को न भूलो—"

गृहिणी को पति की बात से खुशी नहीं हुई । समरजित बाबू बोले, "बात तुम्हें पसन्द नहीं आई न ? नहीं ही पसन्द आएगी ।"

गृहिणी ने कहा, "अजाने आदमी को घर ले आने से बुरा नहीं लगेगा ? उस बार तुम पुरी से ऐसे ही एक लड़के को उठा लाए थे, और आखिर को वह तुम्हारी घड़ी चुराकर भाग नहीं गया ? यह भी अगर वैसा ही निकले ?"

समरजित बाबू ने कहा, "निकले तो निकले । बहुत होगा, तो कुछ चुराकर भागेगा । घड़ी चोरी चली गई तो क्या मैं राह का भिखारी बन गया ? जानती हो, अविश्वास करके लाभ उठाने से विश्वास करके ठगाना अच्छा है—"

"तो तुम ठगाओ—" कहकर गृहिणी बिगड़कर चली जा रही थी ।

समरजित बाबू ने कहा, "अजी, चली मत जाओ, चली मत जाओ, ठहरो···" कहकर उन्होंने एक काम किया । अपनी कुर्सी पर से उठे । पांच सौ रुपये के पांच नोट दराज से निकाले ।

गृहिणी ने कुछ समझा नहीं । पूछा, "रुपये किसलिए निकाल रहे हो ?"

"जरा देखो तो सही कि क्या करता हूं ।"

उन्होंने सदानन्द को बुलवाया । सदानन्द के आते ही बोले, "एक काम कर सकते हो बेटे, डाकघर जाकर पांच सौ रुपये का मनीआर्डर कर दोगे ?"

सदानन्द ने कहा, "दीजिए । मगर किसके नाम, किस पते पर भेजूंगा ?"

समरजित बाबू ने एक कागज पर नाम-ठिकाना लिख दिया । बोले, "लो, रामकृष्ण मिशन, रांची को—"

उन्होंने कागज का टुकड़ा सदानन्द की ओर बढ़ा दिया । कागज और नोट लेकर सदानन्द चला गया ।

गृहिणी ने कहा, "तुमने इतने-इतने रुपये विश्वास पर दे दिए । भाग जाए तो ?"

समरजित बाबू ने कहा, "चंदा तो मुझे देना ही पड़ता है । दान-खैरात के रुपये गए, सो गए । समझूंगा, विश्वास करके ठगा ही गया ।"

लेकिन नहीं, आधे घंटे के अन्दर सदानन्द लौट आया । हाथ में मनीआर्डर की रसीद ।

"दिया ?"

सदानन्द ने कहा, "करवा दिया, लेकिन मैं अब यहां रहूंगा नहीं चाचाजी !

मुझे यहां अच्छा नहीं लग रहा है।"

"क्यों ?"

"मुझे लगता है, आपने मुझे मनीआर्डर करने के लिए नहीं, मेरी परीक्षा करने के लिए मुझे भेजा था। आपने मेरा अविश्वास किया है—कहिए, आपने अविश्वास किया कि नहीं?"

समरजित बाबू हंसे। हंसकर पत्नी की ओर देखते हुए बोले, "क्या जवाब दोगी, दो। सदानन्द की बात का जवाब दो—"

गृहिणी ने कहा, "मैं क्या जवाब दूं?"

समरजित बाबू ने कहा, "अविश्वास तुमपर मैंने नहीं किया सदानन्द ! अविश्वास किया था तुम्हारी चाची ने। उन्हींकी संतोष के लिए मैंने तुम्हें इस कसौटी पर कसा था···"

सदानन्द ने कहा, "आप तो लेकिन जानते हैं, मैंने यहां खुद से नहीं आना चाहा। आप ही जबरदस्ती मुझे अपने घर ले आए।"

बात सही थी। राणाघाट स्टेशन में रात बीत चली थी। राधा के यहां से निकलकर सीधे स्टेशन चला आया था। सोच लिया था, जहां चाहे जाए, अपने घर तो अब हरगिज़ नहीं जाएगा।

"नहीं बेटे, अब तो मैं तुम्हें जाने नहीं दे सकता। तुमपर अविश्वास मैं ही करूं कि तुम्हारी चाची ही करे, बात एक ही है। गलती हम दोनों की है—"

चाची ने कहा, "तुम इसका कुछ ख्याल न करो बेटे ! इसके पहले ये बहुत बार धोखा खा चुके हैं न, इसीलिए मुझे संदेह हो रहा था। इसमें तुम्हारे चाचा-जी की कोई गलती नहीं है, गलती मेरी ही है। हर आदमी क्या एक-सा होता है? तुम्हीं बताओ न, होता है एक-सा?"

समरजित बाबू ने कहा, "मैंने तो तुमसे कहा कि सदानन्द वैसा लड़का नहीं है, फिर भी तुमने अविश्वास क्यों किया? यह झमेला तो तुम्हारे ही कारण से हुआ। अब तुम्हीं सम्भालो।"

गृहिणी खीज उठी, "तुम तो बस मेरी ही खोट निकालते हो। गिरस्ती तुम्हें तो करनी नहीं पड़ती। जो घर चलाता है, वही समझता है। इतने-इतने लोग क्या खाएंगे, क्या पहनेंगे—तुमने कभी सोचा भी है? सारा कुछ तो मेरे ही मत्थे है।"

समरजित बाबू बोले, "लो तुमने तो झगड़ना शुरू कर दिया। मैंने क्या झगड़े की कोई बात कही? तुम ही तो कहती थी, जान नहीं, पहचान नहीं, जाने किसे घर ले आए।"

सदानन्द ने देखा, उसीके लिए पति-पत्नी में बातचीत से लगभग झगड़े की नौबत आ गई। सदानन्द ने बीच ही में टोका। बोला, "मुझ जैसे साधारण आदमी के लिए आप लोग आपस में क्यों अशान्ति ला रहे हैं, उससे तो बेहतर है, मैं चला जाऊं।"

समरजित बाबू ने कहा, "हां-हां तुम बल्कि चले ही जाओ। तुम्हें ले आना मेरी ही गलती थी—"

चाची ने कहा, "नहीं, तुम नहीं जा सकते। तुम्हारे चाचा का दस्तूर है, शुमार कोई दोष लग सके तो बाज नहीं आ सकते। मगर, मैं पूछती हूं, मैंने ऐसी क्या गलती की? उस बार तुम्हारी पड़ी नहीं चोरी हुई थी? उस बार क्या मैं वैसे अनाप-शनाप आदमी को ले आई थी?"

सदानन्द ने कहा, "नाहक क्यों परेशान हो रही हैं चाचीजी, मैं तो यह रहा हूं, मैं जाने कहां का क्या हूं, चला जाता हूं।"

चाची ने सदानन्द की ओर देखकर कहा, "तुम रुको तो। तुम्हारा जाना नहीं हो सकता। जाने दूंगी जब तो जाओगे।"

समरजित बाबू ने कहा, "वाह, खूब हो तो तुम। उसपर विश्वास भी नहीं करोगी और उसे जाने भी नहीं दोगी, यह तो अच्छा रहा—"

चाचा की बात पर रुष्ट होकर चाची शायद और भी कुछ कहने जा रही थीं, पर उससे पहले ही सदानन्द बोल उठा, "ठीक है। आप चुप रहिए चाचीजी, मैं नहीं जाऊंगा—रहूंगा।"

इतने में बाहर से कोई तो दौड़ता हुआ आया। बोला, "मां, भैया जी आए—मुन्ना आया है? मुन्ना?"

समरजित बाबू भी जैसे कुछ उत्सुक हो उठे। बोले, "कौन? मुन्ना?"

इतने दिनों के बाद मुन्ना आया है!

यह मुन्ना कौन है और उसके आने से इतनी हलचल ही क्यों, उस दिन सदानन्द को यह याद न था। मुन्ने के आने की खबर से ही समरजित बाबू और उनकी पत्नी का चेहरा बिलकुल बदल गया।

सदानन्द चला आ रहा था। बोला, "तो मैं चलता हूं चाचाजी——"

समरजित बाबू ने कहा, "जाता हूं माने? तुम चले जा रहे हो? अभी-अभी तो तुमने कहा कि नहीं जाओगे? और जाने लगे। जाना हो तो अपनी चाची-जी से कहकर जाना। मैं कुछ नहीं जानता—"

सदानन्द बिना कुछ कहे नीचे उतर आया। अपने कमरे में पहुंचा। देखा, सारे घर में हलचल-सी मच गई है। भैया जी के आने की खबर सुनते ही नौकर-नौकरानी-रसोइए, सभी व्यस्त-से हो उठे हैं। कौन है भैया जी! इतने दिनों में तो उसने कभी नाम नहीं सुना।

महेश हड़बड़ाता हुआ ऊपर जा रहा था। सदानन्द ने उसीको बुलाया। पूछा, "कौन आए हैं जी?"

महेश को बात करने का वक्त नहीं था। बोला, "भैया जी——"

सदानन्द ने पूछा, "भैया जी कौन?"

महेश को इसका जवाब देने का समय नहीं था। वह इससे पहले ही सीढ़ियों से ऊपर चला गया।

सदानन्द वहीं चुपचाप खड़ा रहा। लगा, बाहर किसी गाड़ी की आवाज हुई। गाड़ी शायद भैया जी को उतारकर लौट गई। सदानन्द ने देखा, सफेद कोट-पैंट वाला एक आदमी भारी जूते की आवाज करता हुआ घर के अन्दर आया। अन्दर आने के बाद सीढ़ियों से सीधे ऊपर चला गया। पीछे से उसका

"क्यों ?"

"मुझे लगता है, आपने मुझे मनीआर्डर करने के लिए नहीं, मेरी परीक्ष करने के लिए मुझे भेजा था। आपने मेरा अविश्वास किया है—कहिए, आपने अविश्वास किया कि नहीं?"

समरजित बाबू हंसे। हंसकर पत्नी की ओर देखते हुए बोले, "क्या जवाब दोगी, दो। सदानन्द की बात का जवाब दो—"

गृहिणी ने कहा, "मैं क्या जवाब दूं?"

समरजित बाबू ने कहा, "अविश्वास तुमपर मैंने नहीं किया सदानन्द! अविश्वास किया था तूम्हारी चाची ने। उन्हींकी संतोष के लिए मैंने तुम्हें इस कसौटी पर कसा था..."

सदानन्द ने कहा, "आप तो लेकिन जानते हैं, मैंने यहां खुद से नहीं आना चाहा। आप ही जबरदस्ती मुझे अपने घर ले आए।"

बात सही थी। राणाघाट स्टेशन में रात बीत चली थी। राधा के यहां से निकलकर सीधे स्टेशन चला आया था। सोच लिया था, जहां चाहे जाए, अपने घर तो अब हरगिज नहीं जाएगा।

"नहीं बेटे, अब तो मैं तुम्हें जाने नहीं दे सकता। तुमपर अविश्वास मैं ही करूं कि तुम्हारी चाची ही करे, बात एक ही है। गलती हम दोनों की है—"

चाची ने कहा, "तुम इसका कुछ ख्याल न करो बेटे! इसके पहले ये बहुत बार धोखा खा चुके हैं न, इसीलिए मुझे संदेह हो रहा था। इसमें तुम्हारे चाचाजी की कोई गलती नहीं है, गलती मेरी ही है। हर आदमी क्या एक-सा होता है? तुम्हीं बताओ न, होता है एक-सा?"

समरजित बाबू ने कहा, "मैंने तो तुमसे कहा कि सदानन्द वैसा लड़का नहीं है, फिर भी तुमने अविश्वास क्यों किया? यह झमेला तो तुम्हारे ही कारण से हुआ। अब तुम्हीं सम्भालो।"

गृहिणी खीज उठी, "तुम तो बस मेरी ही खोट निकालते हो। गिरस्ती तुम्हें तो करनी नहीं पड़ती। जो घर चलाता है, वही समझता है। इतने-इतने लोग क्या खाएंगे, क्या पहनेंगे—तुमने कभी सोचा भी है? सारा कुछ तो मेरे ही मत्थे है।"

समरजित बाबू बोले, "लो तुमने तो झगड़ना शुरू कर दिया। मैंने क्या झगड़े की कोई बात कही? तुम ही तो कहती थी, जान नहीं, पहचान नहीं, जाने किसे घर ले आए।"

सदानन्द ने देखा, उसीके लिए पति-पत्नी में बातचीत से लगभग झगड़े की नौबत आ गई। सदानन्द ने बीच ही में टोका। बोला, "मुझ जैसे साधारण आदमी के लिए आप लोग आपस में क्यों अशान्ति ला रहे हैं, उससे तो बेहतर है, मैं चला जाऊं।"

समरजित बाबू ने कहा, "हां-हां तुम बल्कि चले ही जाओ। तुम्हें ले आना मेरी ही गलती थी—"

चाची ने कहा, "नहीं, तुम नहीं जा सकते। तुम्हारे चाचा का दस्तूर है, मुझपर कोई दोष लग सके तो बाज नहीं आ सकते। मगर मैं पूछती हूं, मैंने ऐसी क्या गलती की? उस बार तुम्हारी घड़ी नहीं चोरी हुई थी? उस बार क्या मैं वैसे अनाप-शनाप आदमी को ले आई थी?"

सदानन्द ने कहा, "नाहक क्यों परेशान हो रही हैं चाचीजी, मैं तो कह रहा हूं, मैं जाने कहां का क्या हूं, चला जाता हूं।"

चाची ने सदानन्द की ओर देखकर कहा, "तुम रुको तो। तुम्हारा जाना नहीं हो सकता। जाने दूंगी जब तो जाओगे।"

समरजित बाबू ने कहा, "वाह, खूब हो तो तुम। उसपर विश्वास भी नहीं करोगी और उसे जाने भी नहीं दोगी, यह तो अच्छा रहा—"

चाचा की बात पर रुष्ट होकर चाची शायद और भी कुछ कहने जा रही थी, पर उससे पहले ही सदानन्द बोल उठा, "ठीक है। आप चुप रहिए चाचीजी, मैं नहीं जाऊंगा—रहूंगा।"

इतने में बाहर से कौन तो दौड़ता हुआ आया। बोला, "मां, भैया जी आए—मुन्ना आया है? मुन्ना?"

समरजित बाबू भी जैसे कुछ उत्सुक हो उठे। बोले, "कौन? मुन्ना?"

इतने दिनों के बाद मुन्ना आया है!

यह मुन्ना कौन है और उसके आने से इतनी हलचल ही क्यों, उस दिन सदानन्द को यह याद न था। मुन्ने के आने की खबर से ही समरजित बाबू और उनकी पत्नी का चेहरा बिलकुल बदल गया।

सदानन्द चला आ रहा था। बोला, "तो मैं चलता हूं चाचाजी—"

समरजित बाबू ने कहा, "जाता हूं माने? तुम चले जा रहे हो? अभी-अभी तो तुमने कहा कि नहीं जाओगे? और जाने लगे। जाना हो तो अपनी चाची-जी से कहकर जाना। मैं कुछ नहीं जानता—"

सदानन्द बिना कुछ कहे नीचे उतर आया। अपने कमरे में पहुंचा। देखा, सारे घर में हलचल-सी मच गई है। भैया जी के आने की खबर सुनते ही नौकर-नौकरानी-रसोइए संत्रस्त-से हो उठे हैं। कौन है भैया जी! इतने दिनों में तो उसने कभी नाम नहीं सुना।

महेश हड़बड़ाता हुआ ऊपर जा रहा था। सदानन्द ने उसीको बुलाया। पूछा, "कौन आए हैं जी?"

महेश को बात करने का वक्त नहीं था। बोला, "भैया जी—"

सदानन्द ने पूछा, "भैया जी कौन?"

महेश को इसका जवाब देने का समय नहीं था। वह इससे पहले ही सीढ़ियों से ऊपर चला गया।

सदानन्द वहीं चुपचाप खड़ा रहा। लगा, बाहर किसी गाड़ी की आवाज हुई। गाड़ी शायद भैया जी को उतारकर लौट गई। सदानन्द ने देखा, सफेद कोट-पैंट वाला एक आदमी भारी जूते की आवाज करता हुआ घर के अन्दर आया। अन्दर आने के बाद सीढ़ियों से सीधे ऊपर चला गया। पीछे से उसका

चेहरा ठीक से देखा नहीं जा सका। लेकिन लगा, भैया जी की उम्र बहुत कम नहीं है। पीछे से देखने पर जो अन्दाज़ किया जा सका, तीस या बत्तीस साल की उम्र होगी। लेकिन तंदुरुस्ती बड़ी अच्छी।

महेश फिर बड़बड़ाता हुआ उतरकर चौके की तरफ जा रहा था। सदानन्द खड़ा ही था।

महेश ने आकर पूछा, "उस समय आप मुझसे क्या पूछ रहे थे?"

सदानन्द ने कहा, "पूछ रहा था, कौन आए हैं?"

"भैया जी।"

"भैया जी? भैया जी कौन?"

महेश ने कहा, "जी, मालिक के लड़के। मालिक के यही एक लड़का है। अभी-अभी आए न, इसीलिए भाभी जी को खबर देने गया था।"

सदानन्द को बात क्यों तो फिर भी दुर्बोध्य लगी। यदि इसी घर का लड़का है, तो फिर इतनी हलचल काहे की? घर का लड़का है, घर आया तो सब इतने चौकन्ने क्यों होंगे?

सदानन्द ने पूछा, "भैया जी कहां से आए हैं?"

उसने आवाज़ धीमी करके कहा, "भैया जी रोज़ तो घर नहीं आते हैं न, बहुत दिनों के बाद-बाद आते हैं—इसीलिए—"

सदानन्द समझ नहीं सका, और कुछ पूछना ठीक होगा या नहीं। नया-नया यहां आया है। सच पूछिए तो समरजित बाबू उसे जबरदस्ती ही पकड़ लाए हैं। उसके लिए इतनी उत्सुकता ठीक नहीं।

लेकिन महेश अपने आप ही बोल उठा, "भैया जी पुलिस की नौकरी करते हैं न, इसलिए इन्हें बाहर-बाहर घूमते रहना पड़ता है। अभी आए न, ...कर फिर अपने दफ्तर चले जाएंगे।"

अब बात सदानन्द की समझ में आई। महेश भी चला गया। सदानन्द अपने कमरे में आ गया। वहां—कहां, किस वजह से घर से बाहर निकला और कहां वह बाजार के कौन-से परिवार की बिलकुल हवेली में पहुंच गया। अजाने, विराने आदमी। कभी का, किसी भी सिलसिले से इन लोगों से परिचय भी नहीं था। लेकिन इन्हीं कै दिनों में वह कैसे घुल-मिल गया। दरअसल इसके पीछे जो कृतित्व था, वह समरजित बाबू का था। राणाघाट के स्टेशन के उस अंधेरे प्लेटफार्म पर उस दिन अगर सदानन्द नहीं रहा होता, तो समरजित बाबू को काफी रुपयों का नुकसान होता। ट्रेन खुल ही चुकी थी। सदानन्द बैग लेकर उछलकर ट्रेन पर चढ़ गया। पूछा, "यह बैग आपका है? आप इसे भूल गए थे—"

समरजित बाबू ट्रेन में निश्चिन्त होकर बैठ चुके थे। उतनी रात को अंधेरे में वह ट्रेन में सवार हो सके, यही बहुत था। अचानक एक अनजान गले की आवाज सुनकर उन्होंने उलटकर देखा, वह उनका बैग लिए खड़ा था। देखते ही चकित रह गए। उस बैग में ही उनका रुपया-पैसा सब कुछ था। बोले, "हां, बैग तो मेरा ही है। कहां मिला तुम्हें?"

"प्लेटफार्म पर पड़ा था। अंधेरे में शायद आपके साथ का आदमी देख नहीं सका।"

समरजित बाबू ने कहा, "ज़रा महेश का मज़ा देख लो, वह तो तीसरे दरजे के डब्बे में है। भाग्य से तुम थे बैठे, नहीं तो मेरी तो तबाही हो जाती।"

ट्रेन चल चुकी थी। सदानन्द ने कहा, "ख़ैर, मैं चलता हूं।"

और वह चलती ट्रेन से उतरने जा रहा था। समरजित बाबू ने कहा, "हां-हां, यह क्या कर रहे हो, क्या कर रहे हो। चक्के के नीचे आ जाओगे…"

उन्होंने सदानन्द के हाथ को कसकर पकड़ लिया। उसे अपने पास बिठाते हुए बोले, "यहां बैठो। अगले स्टेशन में उतर जाना।"

ट्रेन की रफ़्तार वास्तव में तेज़ हो चुकी थी। सदानन्द उतर नहीं सका।

समरजित बाबू ने कहा, "तुम्हारे पास तो टिकट नहीं है। स्टेशन पर टिकट मांगेगा, तो क्या दोगे? पास में रुपये हैं?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं।"

"नहीं है? मेरे पास है। मैं दिए देता हूं, लो—"

उन्होंने दस रुपये का नोट निकालकर सदानन्द की ओर बढ़ाया।

सदानन्द ने कहा, "दस रुपये लेकर क्या करूंगा? एक रुपया से ज्यादा तो लगेगा नहीं। और, आप अपना पता मुझे दे दीजिए, कम लगेगा तो बाकी पैसे आपको लौटा दूंगा।"

उसकी बात सुनकर समरजित बाबू अचम्भे में आ गए। आजकल इस तरह की बात तो कोई नहीं कहता! यह किस तरह का लड़का है!

समरजित बाबू ने एक-एक करके उससे बहुत प्रश्न पूछे। खोद-खोदकर पूछा। सदानन्द ने भी कुछ-कुछ जवाब दिया। लेकिन समरजित बाबू को कुछ सन्देह हुआ। वह समझ गए, यह लड़का सारी बात बताना नहीं चाहता है। उन्होंने सिर्फ़ इतना ही समझा, उच्चवंश का लड़का है। किसी वजह से लौटकर घर नहीं जाना चाहता।

उन्होंने दस रुपये का एक नोट सदानन्द के हाथ में सौंप देना चाहा। बोले, "यह नोट रख ही लो न। न होगा तो बाकी मेरे पते पर वापस भेज देना। और, तुमने मेरा जो उपकार किया है, उसके लिए तुम्हें पुरस्कार भी तो मिलना चाहिए। मेरा तो सब कुछ खो ही जाता। तुम नहीं होते, तो क्या यह वापस मिलता?"

अगला स्टेशन आया। यहीं सदानन्द को उतर जाना था। समरजित बाबू ने पूछा, "तुम मेरे घर चलोगे?"

"आपके घर?"

"हां मेरे घर। कलकत्ता में बड़ाबाज़ार में मेरा बहुत बड़ा मकान है। बहुत सारे कमरे हैं। तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी।"

सदानन्द ने पूछा, "वहां मुझे कोई नौकरी दिला देंगे आप?"

"नौकरी करने की तुम्हें क्या ज़रूरत है?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं तो आपके यहां मैं क्या करूंगा? आपके कंधे पर

क्यों लदा रहूंगा ? कोई नौकरी दिला दें, तो मैं जा सकता हूं—"

वही तै रहा। सदानन्द समरजित वावू के साथ कलकत्ता चला आया से वह यहीं है। वीच-वीच में समरजित वावू से कहता, "कहां, आपने मेरे कोई काम तो ठीक नहीं कर दिया ?"

समरजित वावू ने कहा, "दूंगा, ठीक कर दूंगा। कहते ही तो नौकरी मिल जाती। अपने लड़के से कहकर कोई काम दिला दूंगा। तुम इतने परे क्यों हो ? काम से ही काम है न तुम्हें ?"

"अपने लड़के से कव कहिएगा ?"

समरजित वावू ने कहा, "लड़के को आने दो, जभी तो कहूंगा। वह तो यहां रहता नहीं, उसे वाहर के दौरे पर रहना पड़ता है। हेडक्वार्टर में दो, कहूंगा।"

वही लड़का इतने दिनों के वाद अपने हेडक्वार्टर में आया है। अव श समरजित वावू उससे सदानन्द के लिए कहें। सदानन्द अपने कमरे में गया। लेकिन उसके मन से चिन्ता नहीं गई। समरजित वावू कैसे समझेंगे किसीके टुकड़ों पर पलना कितनी हीनता है ! उसके लिए समरजित वा पैसे खर्च हो रहे हैं, सव हो रहा है और वदले में वह उनके किसी काम आता। इसकी पीड़ा सदानन्द कैसे वताए।

जरा देर में रास्ते पर फिर गाड़ी की आवाज हुई। घर में नौकर-चा फिर वैसे ही व्यस्त हो गए। वहुतेरे पैरों की आहट। गाड़ी के फिर चल की आवाज हुई।

सदानन्द वाहर के वरामदे में आ खड़ा हुआ।

महेश को मानो अव उतनी हड़वड़ी नहीं थी। वोला, "भैया जी गए—"

"चले गए ? यानी ?"

महेश ने कहा, "खा-पीकर दफ्तर चले गए।"

"फिर कव आएंगे ?"

महेश ने कहा, "उसका कोई ठिकाना है ! शायद हो कि दिनों तक आएं ही नहीं। पुलिस की नौकरी का तो यही हाल होता है। भैया जी आने-जाने का कुछ ठीक नहीं रहता। भैया जी के व्याह के वाद से यही रवै चल रहा है, इसीलिए तो भाभी जी के मन में भी शान्ति नहीं है।"

वोलकर महेश मुंह को गम्भीर करके चला गया।

समरजित वावू के वहू वाजार के मकान में सदानन्द जव अपने कमरे अकेला लेटा रहता, तो उसके दिमाग में चिन्ताएं भीड़ लगाया करतीं। क रहा वह नवावगंज, वहां का वरवारी-थान, कालीगंज, प्रकाश मामा, वह हुजूर, चौधरी जी, वह नयनतारा। नयनतारा की अन्तिम वात तव भी उ

कानों में गूंजती थी—'मैं चूंकि तुम्हारी पत्नी हुई, इसलिए तुम्हारे प्रायश्चित्त का हिस्सा मुझे भी लेना होगा ?'

याद आते ही सदानन्द अनमना हो जाना चाहता। सब कुछ भूल जाना चाहता। अपने को नवाबगंज के जीवन से अलग कर लेना चाहता। यह सोचना चाहता कि वह सदानन्द मर गया, उसने आत्महत्या कर ली, उस सदानन्द का खून हो चुका। और सोचते-सोचते न जाने कब वह सो जाता।

कालीकांत जी नयनतारा की मां के मरने के बाद से ही टूट से गए थे। एक दिन काम करते, तो दूसरे दिन लेटे रहते।

वह कई दिनों से कह रहे थे, "निखिलेश, जमाई-षष्ठी के तत्त्व की व्यवस्था करनी है, भूल मत जाना—"

निखिलेश ने वह सारी व्यवस्था पहले ही कर दी थी। फिर भी बीच-बीच में कहा करता, "नयनतारा को एक बार कहला भेजूं मास्टर साहब ?"

मास्टर साहब कहते, "नहीं-नहीं, वह वहां आराम से है, उसे खामख्वा क्यों परेशान करोगे ? मेरी यह बीमारी दो ही दिन में ठीक हो जाएगी—तुम बल्कि ये सामान भिजवाने का इंतजाम कर दो। जब उसकी मां नहीं है, तो यह जिम्मेदारी मेरी है, समझे ?"

यही तैयारी हो रही थी। इस बीच एक दिन निखिलेश आखिरी ट्रेन से कलकत्ता से लौटा कि मास्टर साहब के यहां से आदमी आया—

निखिलेश खाट से उठकर बाहर आया। बाहर आकर अवाक् रह गया।

"कौन ?"

"मैं विपिन हूं भैया जी। आपको बुलाने आया हूं।"

"कल तो तुम्हें सामान लेकर नवाबगंज जाना है। सामान तैयार है ?"

विपिन ने कहा, "सामान तो तैयार है, पर मास्टर साहब की तबीयत फिर खराब हो गई है। इसीलिए आपको कहने के लिए आया हूं—"

"अभी कैसे हैं वह ?"

"अच्छे नहीं हैं भैया जी ! खबर मिलते ही मैं दौड़ा-दौड़ा गया। जाकर देखा। अब आपके सिवाय और किससे कहता ?"

निखिलेश कुरता पहनकर जल्दी से निकल आया, "चलो, चलो—"

लेकिन कालीकांत जी जिसके पास जमाई-षष्ठी का तत्त्व भेजने के लिए उतावले हो रहे थे, उसकी ससुराल में उस दिन और ही कांड शुरू हो गया था। सबके साथ प्राणकृष्ण साहा, बिहारी पाल, बिहारी पाल की पत्नी, निताई हालदार की मां—सभी जा पहुंचे।

परमेश मौलिक ने अन्दर खबर पहुंचाई। चौधरी जी बोले, "क्यों, ये लोग किसलिए आए हैं ? जरूरत क्या है इन्हें ?"

परमेश मौलिक बोला, "जी, सो तो नहीं मालूम। आपसे मिलना चाहते हैं।"

"सब लोग मिलना चाहते हैं ?"

"जी।"

प्रीति ने भी सुना। वोली, "अच्छा। विहारी पाल की पत्नी भी आई है ? निताई हालदार की मां ?"

चौधरी जी ने कहा, "ऐसा ही तो सुना। साहजी भी शायद उनके साथ हैं।"

"क्या कहना चाहते हैं वे लोग ?"

चौधरी जी वोले, "यह तो नहीं वताया। सवको वैठक में विठाया है—"

चौधरी जी रुके नहीं। जिस हालत में थे, उसी हालत में वाहर निकल गए। उन्हें उस समय आभास तक नहीं था कि वहां उनके लिए कितना वड़ा आश्चर्य प्रतीक्षा कर रहा है।

विहारी पाल की पत्नी अन्दर चली जा चुकी थी। उसके पीछे-पीछे टोले की और भी कुछ महिलाएं।

"वहू, हम सव आए हैं।"

प्रीति ने कहा, "वात क्या है मौसी ? अचानक ?"

मौसी ने कहा, "तुम्हारी वहू ने हम लोगों को वुलाया है।"

"मेरी वहू ने तुम लोगों को वुलाया है ?"

"हां, वहू ने गांव के सव लोगों को वुला लाने को कहा है।"

प्रीति चौंकी। वोली, "देखती हूं, वहू कहां है। पूछती हूं उससे कि किस लिए वुलाया है—"

उधर चौधरी जी जो वैठक में पहुंचे, तो देखा, नवावगंज के प्राय: सभी गणयमान्य लोग वहां वैठे हैं। परमेश मौलिक ने विना जाने ही वैठक खोलकर सवको विठाया।

"क्या वात है, आप सव लोग इस समय एकाएक यहां ?"

सवका अगुआ होकर प्राणकृष्ण साह ने कहा, "आपकी वहूरानी ने हम सव लोगों को वुलाया है।"

चौधरी जी को तो काटो तो लहू नहीं। ज़रा देर में अपने को सम्भालकर वोले, "मेरी वहू ने ? मेरी वहू ने आप लोगों को वुलाया और हमें पता तक नहीं ? मैं तो इस रहस्य को समझ नहीं पा रहा हूं—"

चौधरी जी को गुस्सा आ गया। वोले, "मगर···"

प्राणकृष्ण साह ने कहा, "आपको शायद मालूम न हो चौधरी जी। सारी वातों की खवर पुरुषों को तो होती नहीं, होना सम्भव भी नहीं। औरतों का मामला है, औरतें ही जानती हैं—"

"आप लोग तो पुरुष ही हैं। मेरी वहू ने आप लोगों के पास जाकर आने के लिए कहा है ? इस घर की वहुओं का तो ऐसा तौर-तरीका नहीं है। वहू ने कैसे आप लोगों को वुलाया—आपके यहां जाकर या कि चिट्ठी लिखकर ?"

विहारी पाल ने कहा, "जी नहीं। आपकी वहू ने मेरी पत्नी को वुलाकर कहा है।"

चौधरी जी ने अव समझा। वोले, "ओ, समझ गया। खैर ! तो वहू ने आपकी पत्नी से क्या कहा ?"

"सबके साथ आज आपके यहां आने के लिए कहा।"

चौधरी जी बोले, "किसलिए ?"

"उन्होंने यह नहीं बताया। सिर्फ आने के लिए कहा।"

चौधरी जी ने कहा, "मेरी बहू अभी बच्ची है। उन्होंने किससे क्या कहा और आप सब वही सुनकर नाचने लगे। आप लोगों को तो मुझसे पूछ लेना चाहिए था। मुझसे पूछा होता तो मैं बता देता कि आप लोगों को आना है या नहीं आना है।"

इस बात पर सभी चुप हो रहे।

"कहिए, आप ही कहिए पाल साहब, हालदार साहब, सरकार साहब—आप लोग ही कहिए। चुप क्यों हैं ? आप खुद सोचकर देखें, मैंने कुछ गलत नहीं कहा। मेरे घर की कुलवधू हैं वह, उन्होंने मुझे नहीं बताकर आप लोगों को खबर भेजी, यह कैसी बात है ? आपका क्या ख्याल है, वह आप लोगों के सामने आएंगी ? मुझे इसपर भी विश्वास करना होगा ?"

कोई जवाब ढूंढ़े नहीं मिला, तो साहजी ने पाल की तरफ ताका।

पाल ने कहा, "आपकी बहू के शायद ऐसी कोई बात है, जो सबको सुनाए बिना काम नहीं चलेगा। हो सकता है, इसीलिए बुलाया हो—"

"खबरदार ! ज़रा सोच-समझकर बात कीजिए। वह मेरे परिवार की कुलवधू हैं, उनके बारे में जो-सो बात नहीं कहिए—"

पाल ने कहा, "तो आप अपनी बहू से ही जाकर पूछिए। वही बताएंगी कि उन्होंने हम लोगों को किसलिए बुलाया था। अगर वह हम लोगों को लौट जाने के लिए कहें, तो हम लोग लौट जाएंगे।"

इतने में अन्दर से औरत के गले की आवाज़ आई, "बहू, बहू ? तुम उधर कहां जा रही हो ? उधर कहां जा रही हो—"

लेकिन तब तक तो जो होना था, हो गया। सबने देखा, चौधरी परिवार की बहू हांफती हुई साक्षात् बैठक में आ खड़ी हुई।

सभी लोग सकपका-से गए। चौधरी जी अब तक खासे गम्भीर से होकर बातें कर रहे थे। बहू की हरकत देखकर अब उनकी भी बोलती बंद हो गई। अन्दर से सास तब तक भी बुला रही थी, "बहू, भीतर चली आओ। बहू···"

नयनतारा घूंघट काढ़े खड़ी थी। सास की बात पर ध्यान न देकर वह सबसे बोल उठी, "आप लोग जाएं नहीं। मैं इस परिवार की कुलवधू हूं। जी, कुलवधू। मुझे आप लोगों को बुलाने का हक है। मैंने अपने उसी हक से आप लोगों को बुलाया है।"

पीछे से सास ने फिर पुकारा, "बहू—"

"आप सब लोग सुनिए। मेरे पिता तुल्य ससुर जी यहीं हैं, आप लोग भी हैं। मैं जो कुछ भी कहूंगी, आप लोगों के सामने खोलकर ही कहूंगी। अभी कुछ ही देर पहले ससुर जी ने आप सबके सामने मुझे कुलवधू कहा है। मैं चौधरी वंश की कुलवधू के नाते ही अपनी बात आप लोगों के सामने

ई हालदार की मां ?"
चौधरी जी ने कहा, "ऐसा ही तो सुना। साहजी भी शायद उनके साथ

'क्या कहना चाहते हैं वे लोग ?"
चौधरी जी बोले, "यह तो नहीं बताया। सबको बैठक में बिठाया है—"
चौधरी जी रुके नहीं। जिस हालत में थे, उसी हालत में बाहर निकल
उन्हें उस समय आभास तक नहीं था कि वहां उनके लिए कितना बड़ा
ार्य प्रतीक्षा कर रहा है।
बिहारी पाल की पत्नी अन्दर चली जा चुकी थी। उसके पीछे-पीछे टोले
ौर भी कुछ महिलाएं।
"बहू, हम सब आए हैं।"
प्रीति ने कहा, "बात क्या है मौसी ? अचानक ?"
मौसी ने कहा, "तुम्हारी बहू ने हम लोगों को बुलाया है।"
"मेरी बहू ने तुम लोगों को बुलाया है ?"
"हां, बहू ने गांव के सब लोगों को बुला लाने को कहा है।"
प्रीति चौंकी। बोली, "देखती हूं, बहू कहां है। पूछती हूं उससे कि किस
बुलाया है—"
उधर चौधरी जी जो बैठक में पहुंचे, तो देखा, नवाबगंज के प्राय: सभी
म्मान्य लोग वहां बैठे हैं। परमेश मौलिक ने बिना जाने ही बैठक खोलकर
को बिठाया।
"क्या बात है, आप सब लोग इस समय एकाएक यहां ?"
सबका अगुआ होकर प्राणकृष्ण साह ने कहा, "आपकी बहूरानी ने हम
लोगों को बुलाया है।"
चौधरी जी को तो काटो तो लहू नहीं। ज़रा देर में अपने को सम्भालकर
ा, "मेरी बहू ने ? मेरी बहू ने आप लोगों को बुलाया और हमें पता तक
ं ? मैं तो इस रहस्य को समझ नहीं पा रहा हूं—"
चौधरी जी को गुस्सा आ गया। बोले, "मगर···"
प्राणकृष्ण साह ने कहा, "आपको शायद मालूम न हो चौधरी जी। सारी
तों की खबर पुरुषों को तो होती नहीं, होना सम्भव भी नहीं। औरतों का
मला है, औरतें ही जानती हैं—"
"आप लोग तो पुरुष ही हैं। मेरी बहू ने आप लोगों के पास जाकर आने

"सबके साथ आज आपके यहां आने के लिए कहा।"

चौधरी जी बोले, "किसलिए ?"

"उन्होंने यह नहीं बताया। सिर्फ आने के लिए कहा।"

चौधरी जी ने कहा, "मेरी बहू अभी बच्ची है। उन्होंने किससे क्या कहा और आप सब वही सुनकर नाचने लगे। आप लोगों को तो मुझसे पूछ लेना चाहिए था। मुझसे पूछा होता तो मैं बता देता कि आप लोगों को आना है या नहीं आना है।"

इस बात पर सभी चुप हो रहे।

"कहिए, आप ही कहिए पाल साहब, हालदार साहब, सरकार साहब—आप लोग ही कहिए। चुप क्यों हैं ? आप खुद सोचकर देखें, मैंने कुछ गलत नहीं कहा। मेरे घर की कुलवधू है वह, उन्होंने मुझे नहीं बताकर आप लोगों को खबर भेजी, यह कैसी बात है ? आपका क्या ख्याल है, वह आप लोगों के सामने आएंगी ? मुझे इसपर भी विश्वास करना होगा ?"

कोई जवाब ढूंढ़े नहीं मिला, तो साहजी ने पाल की तरफ ताका।

पाल ने कहा, "आपकी बहू के शायद ऐसी कोई बात है, जो सबको सुनाए बिना काम नहीं चलेगा। हो सकता है, इसीलिए बुलाया हो—"

"खबरदार ! जरा सोच-समझकर बात कीजिए। वह मेरे परिवार की कुलवधू हैं, उनके बारे में जो-सो बात नहीं कहिए—"

पाल ने कहा, "तो आप अपनी बहू से ही जाकर पूछिए। वही बताएंगी कि उन्होंने हम लोगों को किसलिए बुलाया था। अगर वह हम लोगों को लौट जाने के लिए कहें, तो हम लोग लौट जाएंगे।"

इतने में अन्दर से औरत के गले की आवाज आई, "बहू, बहू ? तुम उधर कहां जा रही हो ? उधर कहां जा रही हो—"

लेकिन तब तक तो जो होना था, हो गया। सबने देखा, चौधरी परिवार की बहू हांफती हुई साक्षात् बैठक में आ खड़ी हुई।

सभी लोग सकपका-से गए। चौधरी जी अब तक खासे गम्भीर से होकर बातें कर रहे थे। बहू की हरकत देखकर अब उनकी भी बोलती बंद हो गई। अन्दर से सास तब तक भी बुला रही थीं, "बहू, भीतर चली आओ। बहू···"

नयनतारा घूंघट काढ़े खड़ी थी। सास की बात पर ध्यान न देकर वह सबसे बोल उठी, "आप लोग जाएं नहीं। मैं इस परिवार की कुलवधू हूं। जी, कुलवधू। मुझे आप लोगों को बुलाने का हक है। मैंने अपने उसी हक से आप लोगों को बुलाया है।"

पीछे से सास ने फिर पुकारा, "बहू—"

"आप सब लोग सुनिए। मेरे पिता तुल्य ससुर जी यहीं हैं, आप लोग भी हैं। मैं जो कुछ भी कहूंगी, आप लोगों के सामने खोलकर ही कहूंगी। अभी कुछ ही देर पहले ससुर जी ने आप सबके सामने मुझे कुलवधू कहा है। मैं चौधरी वंश की कुलवधू के नाते ही अपनी बात आप लोगों के सामने

पेश करूंगी—"

चौधरी जी ने कहा, "बहू, तुम हवेली से बाहर आ गई? जो कहना था, हवेली में जाकर अपनी सास से ही कह सकती थी। यहां क्यों आईं?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं, मैं यहां सबके सामने ही कहूंगी। जब आज तक किसीने मेरी लाज की मर्यादा नहीं रक्खी, तो अब मैं लाज-शरम-शालीनता की बात किसीसे नहीं सुनना चाहती।"

"लेकिन बहू, आखिर चौधरी वंश की बहू होकर तुम बैठके में आओगी?"

नयनतारा ससुर के मुंह पर ही बोल उठी, "हां, आऊंगी। यहां नहीं आने से मैं अपनी लाज की बात सबसे कहूंगी कैसे? आपने क्या मेरी लाज रहने दी है कि मैं बैठक में आने में लजाऊं?"

चौधरी जी अब तैश में आ गए। बोले, "तुम्हें तो बड़ी हिमाकत हो गई है। तुम मुझे मुंह पर जवाब देती हो?"

नयनतारा ने कहा, "आप मेरे गुरुजन हैं। आपने अगर मेरे साथ गुरुजन जैसा व्यवहार किया होता, तो बेशक मुझे आपके मुंह पर जवाब देने का साहस नहीं होता। लेकिन आज विवश होकर ही मुझे ऐसा करना पड़ा है। आप लोगों ने ही मुझे सबके सामने आकर अपनी बात कहने को विवश किया है।"

सास ने फिर पीछे से पुकारा, "बहू, कहती हूं, अन्दर आओ। आओ—"

बिहारी पाल की पत्नी अब तक आड़ में खड़ी सब सुन रही थी। बोली, "बहू क्या कहना चाहती है, कहने दो न, तुम क्यों बीच में रोड़ा अटका रही हो।"

सास ने कहा, "रोड़ा नहीं डालूंगी? इस घर की बहू होकर वह सबके सामने जाकर खड़ी होगी? और तुम सब उसका मज़ा लोगी?"

निताई हालदार की मां की उम्र काफी हो चुकी है। इस बखेड़े से उसकी छाती कांप रही थी। सब मिलकर उसे यहां बुला लाए थे। बुढ़िया यों आना नहीं चाह रही थी। सब लोग जो बोल रहे थे, सारी बातें उसके कानों पहुंच रही थीं। अब उसकी ज़बान खुली। बोली, "बहू के क्या हुआ है जो कि वह इतने लोगों के सामने बाहर गई?"

बैठक में पुरुषों की भीड़ और बाहर के बरामदे पर औरतें खड़ीं।

परमेश मौलिक ने चंडीमंडप से जाकर चौधरी जी को बुला दिया था। उसके बाद बहू के ऐसे आविर्भाव से वह हक्का-बक्का हो गया था। नन्हे बाबू का ब्याह हुए इतने दिन हो गए, मगर कभी, किसी दिन भी उसने बहू की शक्ल नहीं देखी थी। उसी बहू को बैठक में आते देखकर वह और भी डर गया।

कैलास गुमाश्ता को अब खास वैसा काम नहीं रह गया था। सच तो यह कि बूढ़े चौधरी के देहान्त के बाद से ही उसे कोई काम नहीं था। वह

सवेरे आता था और चंडीमंडप में बैठकर परमेश मौलिक का बही-खाता देखा करता था। दोपहर को फिर अपने घर चला जाता। खा-पीकर फिर आता। चौधरी जी के पास बैठकर हिसाब के बाकी कागज देख-सुन देता।

कैलाश उस दिन भी आया था। लेकिन यहां ऐसी हलचल देखकर वह नीचे चला आया। दीनू खड़ा था। उससे कैलाश ने पूछा, "यहां हो क्या रहा है रे दीनू?"

बैठक में नयनतारा बोल ही रही थी, "आप में से बहुतों ने ही मेरे ब्याह के समय मुझे देखा है। उस दिन भी देखा था और इतने दिनों के बाद आज भी देख रहे हैं। बता सकते हैं आप, मेरी सक्ल ऐसी क्यों हो गई? मैं इतनी दुबली क्यों हो गई?"

यह सवाल पूछकर नयनतारा जरा देर चुप रही। फिर खुद ही बोलने लगी, "आदमी जी के कष्ट से दुबला होता है। मेरे पड़ोस की नानी जी ने बहुत बार मुझसे पूछा है, 'बहू, तुम इतनी दुबली क्यों हुई जा रही हो? तुम जरा ठीक से खा-पी नहीं सकतीं? नहीं खाने से तुम्हारी सेहत जो बिगड़ जाएगी।' इसके जवाब में मैं नानी जी से कुछ भी नहीं कह सकी। कहूं कैसे? अपने मन का कष्ट मैं बाहर के लोगों से कैसे कहूं? घर की बहू होने के नाते ऐसी बात बाहर के लोगों को बताई भी जा सकती है? क्योंकि यह तो मेरी ससुराल है, यह मेरे पति का घर है। ससुराल, पति का घर तो स्त्रियों के लिए तीर्थस्थान है। वहां की निन्दा नहीं करनी चाहिए, वहां की निन्दा नहीं सुननी चाहिए। विदा होते समय मेरी मां ने बार-बार मुझे यह उपदेश दिया था कि सास-ससुर को माता-पिता की तरह भक्ति करना। मेरी मां यदि जीवित रही होती, तो मैं कहती—'मां, तुम मुझे क्षमा करना, मैं तुम्हारा कहा नहीं निबाह सकी।' और, ब्याह के बाद तो मां-बाप भी पराये हो जाते हैं, उनकी जगह सास-ससुर ले लेते हैं। उनकी लड़की होकर, उनकी पतोहू होकर मैं क्या उनकी निन्दा कर सकती हूं? निन्दा होने पर भी किसी शिक्षित स्त्री के लिए क्या यह उचित है? आप सभी विचक्षण व्यक्ति हैं, आप ही कहिए, उचित है?"

प्राणकृष्ण साहू बिलकुल सामने बैठा था। बोला, "नहीं-नहीं बहू, यह उचित नहीं। वे तो तुम्हारे माता-पिता के समान हैं। उनकी निन्दा तुम्हारे मुंह से नहीं सोहती।"

नयनतारा कहने लगी, "जी, आप ठीक ही कह रहे हैं। उनकी निन्दा करना महापाप है। आज अगर मैं आप लोगों के सामने उनके नाम कोई अपवाद दूं तो मरने के बाद मुझे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। मैंने आप लोगों को इसके लिए नहीं बुलाया है।"

चौधरी जी ने अब मानो जरा चैन की सांस ली।

कमरे से बाहर चौधरी जी की पत्नी चुपचाप खड़ी सब सुन रही थी। उसने अब चौधरी जी से कहा, "अजी ओ, तुम अब भी खड़े-खड़े सुन रहे हो? बहू को अन्दर नहीं लिवा ला सकते? उसे खींचकर ले आओ—"

री जी नजदीक आए। वह ठीक से सुन नहीं सके थे। पूछा, "क्या
हो ?"
; रही हूं कि सब लोग मेरी बहू का तमाशा देखने आए हैं, तुम यह
क रहे हो ?"
ारी जी बोले, "तो तुम क्या कहती हो, मैं सबको घर से निकाल दूं ?"
र क्या, निकाल दो। मेरे अंदरूनी मामले में ये लोग दखल देने
आए हैं ? ये लोग होते कौन हैं, मेरे तीन में हैं कि तेरह में ?"
ारी जी ने कहा, "लेकिन भले आदमियों को यों भगा दिया जा
?"
;णी ने कहा, "तुमसे नहीं बनता हो, तो मैं जाकर उन्हें चले जाने के
ती हूं।"
म उन लोगों के सामने जाओगी ? कह क्या रही हो ?"
ई तो हर्ज ही क्या है ? मगर ये लोग हमारी इज्ज़त न रखें तो
ज्ज़त रखे मेरी बला।"
ारी जी ने कहा, "न-न, अभी वैसा न करो, गांव में ढिंढोरा पिट
।"
ारी जी फिर बैठक में आए।
नतारा वैसे ही सिर उठाए खड़ी थी। कहती ही जा रही थी, "आप
ो पता है कि मेरे पति ने मेरे साथ घर नहीं बसाया। क्यों नहीं
यह आप लोगों को मालूम है ? है मालूम ? नहीं मालूम है, तो मैं
ागों को बताती हूं। उन्होंने मेरे साथ घर नहीं बसाया, इसलिए कि
वे पुरुष थे। जी हां, सही मानो में पुरुष।"
ट्ठे लोगों में उस समय खासी भनभनाहट-सी शुरू हो गई।
ाप लोग यकीन मानिए, उनके खिलाफ मुझे कोई भी शिकायत
। इस कुल में पैदा होकर उन्होंने यहां जो-जो कुछ देखा, उससे उन्हें
ा के प्रति ही अश्रद्धा हो गई थी। उन्होंने यह समझ लिया था कि
ुटकारा पाने के लिए यह घर छोड़ना पड़ेगा, साथ ही मुझे भी छोड़ना
—"
हते-कहते नयनतारा का दम जैसे घुटने लगा। फिर से सांस लेकर
हने लगी, "उसके बाद एक दिन मेरे पति यह घर और मुझे छोड़कर
ए।"
र तक बरवारी-थान में यह खबर पहुंच गई। दौड़ते हुए केदार निताई
र की दूकान पर पहुंचा।
भी ताश खेलने में मशगूल थे।
दार हांफ रहा था। बोला, "अरे ऐ, उधर मज़े का कांड हो गया,
जी के यहां मजे का कांड हो गया—"
कैसा कांड ?"
चौधरी जी के बैठके में सदा की बहू बहस कर रही है—"

"कैसी बहस ?"

बात तब तक बहुतों ने ही नहीं सुनी थी। समझने में भी लोगों को समय लगा। निताई ने कहा, "तारक चाचा से लेकर बिहारी पाल तक—सभी वहां आ जुटे हैं।"

निताई हालदार ने कहा, "हां। शायद इसीलिए मेरी मां भी गई है। कह तो रही थी कि चौधरी जी के यहां जाऊंगी। मगर क्यों गई है रे ?"

"सदा की बहू ने बुलाया था। वह सबसे अपनी बात कहेगी।"

सदा की बहू। सदा की बहू को ब्याह में सबने देखा था। देखकर सदा पर सबको रश्क भी हुआ था। कितनी गोरी और सुन्दर थी सदा की बहू ! उसके बाद से उसकी बहू को फिर किसीने नहीं देखा। इतना ही सिर्फ सुना कि घर और पत्नी को छोड़कर सदा भाग गया।

"तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

केदार ने कहा, "मैं तो उधर से ही आ रहा था। देखा, चौधरी जी के सदर में खासी भीड़ है। भीड़ देखकर मैं भी वहां गया। बाहर के प्रांगण में बड़ी भीड़ थी, अन्दर का कुछ दिखाई नहीं पड रहा था। उझककर देखा, तो देखा कि सब लोग भीतर बैठे हैं। सभी जानी-पहचानी शक्लें। तारक चाचा और साहजी सबसे आगे, बिलकुल सामने। और उन सबकी ओर मुंह किए सदा की बहू खड़ी—"

सभी एक साथ बोल उठे, "सदा की बहू ?"

केदार ने कहा, "हां रे, सदा की बहू।"

फिर भी किसीको जैसे विश्वास नहीं हुआ। बोला, "कह क्या रहा है तू ? सदा की बहू ? बैठक में ? उतने-उतने पुरुषों के सामने ? शिगूफा उड़ाने को तुझे और कोई जगह नहीं मिली ? सदा की बहू बैठक में सबके सामने।"

इतने में वह बरगद की ओर दौड़ा। बरगद के नीचे सीमेंट की वेदी पर मंगलचंडी की एक मूर्ति थी, पत्थर की। वहां जाकर उस मूर्ति का माथा छूकर वह बोला, "देख, मां मंगलचंडी को छूकर कसम खाता हूं, कसम, मैं खुद देख आया, सदा की बहू बैठक में खड़ी है—"

अब सबको विश्वास हुआ। बोला, "कैसी है ?"

केदार ने कहा, "उफ्, ऐसी गोरी कि क्या कहूं, रूप मानो छिटका पड़ रहा है—"

सबसे उत्सुकता मानो गोपाल को ही थी। बोला, "क्या कह रही थी ?"

"मैंने सब सुना थोड़े ही। भीड़ के मारे जाने की गुंजाइश कहां कि सुनता।"

गोपाल पाट ने सबसे कहा, "चलो, जरा देख आएं—"

ताश की पत्तियां पड़ी रहीं। निताई ने नौकर पर दूकान छोड़ दी और दौड़ पड़ा चौधरी जी के घर की तरफ। कुछ इस बेसब्री से, मानो देर होने से मजा ही जाता रहेगा।

उधर बैठक में उस समय नाटक का पांचवां अंक चल रहा था।

चौधरी जी नजदीक आए। वह ठीक से सुन नहीं सके थे। पूछा, "क्या कह रही हो?"

"कह रही हूं कि सब लोग मेरी बहू का तमाशा देखने आए हैं, तुम यह नहीं समझ रहे हो?"

चौधरी जी बोले, "तो तुम क्या कहती हो, मैं सबको घर से निकाल दूं?"

"और क्या, निकाल दो। मेरे अंदरूनी मामले में ये लोग दखल देने लिए क्यों आए हैं? ये लोग होते कौन हैं, मेरे तीन में हैं कि तेरह में?"

चौधरी जी ने कहा, "लेकिन भले आदमियों को यों भगा दिया जा सकता है?"

गृहिणी ने कहा, "तुमसे नहीं बनता हो, तो मैं जाकर उन्हें चले जाने के लिए कहती हूं।"

"तुम उन लोगों के सामने जाओगी? कह क्या रही हो?"

"गई तो हर्ज ही क्या है? मगर ये लोग हमारी इज्जत न रखें तो इनकी इज्जत रखे मेरी बला।"

चौधरी जी ने कहा, "न-न, अभी वैसा न करो, गांव में ढिंढोरा पिट जाएगा।"

चौधरी जी फिर बैठक में आए।

नयनतारा वैसे ही सिर उठाए खड़ी थी। कहती ही जा रही थी, "आप लोगों को पता है कि मेरे पति ने मेरे साथ घर नहीं बसाया। क्यों नहीं बसाया, यह आप लोगों को मालूम है? है मालूम? नहीं मालूम है, तो मैं आप लोगों को बताती हूं। उन्होंने मेरे साथ घर नहीं बसाया, इसलिए कि वह सच्चे पुरुष थे। जी हां, सही मानो में पुरुष।"

इकट्ठे लोगों में उस समय खासी भनभनाहट-सी शुरू हो गई।

"आप लोग यकीन मानिए, उनके खिलाफ मुझे कोई भी शिकायत नहीं है। इस कुल में पैदा होकर उन्होंने यहां जो-जो कुछ देखा, उससे उन्हें इस वंश के प्रति ही अश्रद्धा हो गई थी। उन्होंने यह समझ लिया था कि इससे छुटकारा पाने के लिए यह घर छोड़ना पड़ेगा, साथ ही मुझे भी छोड़ना पड़ेगा—"

कहते-कहते नयनतारा का दम जैसे घुटने लगा। फिर से सांस लेकर वह कहने लगी, "उसके बाद एक दिन मेरे पति यह घर और मुझे छोड़कर चले गए।"

तब तक बरवारी-थान में यह खबर पहुंच गई। दौड़ते हुए केदार निताई हालदार की दूकान पर पहुंचा।

सभी ताश खेलने में मशगूल थे।

केदार हांफ रहा था। बोला, "अरे ऐ, उधर मजे का कांड हो गया, चौधरी जी के यहां मजे का कांड हो गया—"

"कैसा कांड?"

"चौधरी जी के बैठके में सदा की बहू बहस कर रही है—"

"कैसी बहस?"

बात तब तक बहुतों ने ही नहीं सुनी थी। समझने में भी लोगों को समय लगा। निताई ने कहा, "तारक चाचा से लेकर बिहारी पाल तक—सभी वहां जा जुटे हैं।"

निताई हालदार ने कहा, "हां। शायद इसीलिए मेरी मां भी गई है। वह तो रही थी कि चौधरी जी के यहां जाऊंगी। मगर क्यों गई है रे?"

"सदा की बहू ने बुलाया था। वह सबसे अपनी बात कहेगी।"

सदा की बहू। सदा की बहू को ब्याह में सबने देखा था। देखकर सदा पर सबको रश्क भी हुआ था। कितनी गोरी और सुन्दर थी सदा की बहू! उसके बाद से उसकी बहू को फिर किसीने नहीं देखा। इतना ही सिर्फ सुना कि घर और पत्नी को छोड़कर सदा भाग गया।

"तुझे कैसे मालूम हुआ?"

केदार ने कहा, "मैं तो उधर से ही आ रहा था। देखा, चौधरी जी के सदर में खासी भीड़ है। भीड़ देखकर मैं भी वहां गया। बाहर के प्रांगण में बड़ी भीड़ थी, अन्दर का कुछ दिखाई नहीं पड रहा था। उचककर देखा, तो देखा कि सब लोग भीतर बैठे हैं। सभी जानी-पहचानी शक्लें। तारक चाचा और साहजी सबसे आगे, बिलकुल सामने। और उन सबकी ओर मुंह ए सदा की बहू खड़ी—"

सभी एक साथ बोल उठे, "सदा की बहू?"

केदार ने कहा, "हां रे, सदा की बहू।"

फिर भी किसीको जैसे विश्वास नहीं हुआ। बोला, "यह क्या कह रहा है तू? दा की बहू? बैठक में? उतने-उतने पुरुषों के सामने? शिगूफा उड़ाने को झे और कोई जगह नहीं मिली? सदा की बहू बैठक में सबके सामने।"

इतने में वह बरगद की ओर दौड़ा। बरगद के नीचे सीमेंट की वेदी पर गलचंडी की एक मूर्ति थी, पत्थर की। वहां जाकर उस मूर्ति का माथा छूकर ह बोला, "देख, मां मंगलचंडी को छूकर कसम खाता हूं, कसम, मैं खुद देख आया, सदा की बहू बैठक में खड़ी है—"

तब सबको विश्वास हुआ। बोला, "कैसी है?"

केदार ने कहा, "उफ, ऐसी गोरी कि क्या कहूं, रूप मानो छिटका पड रहा है—"

सबसे उत्सुकता मानो गोपाल को ही थी। बोला, "क्या कह रही थी?"

"मैंने सब सुना थोड़े ही। भीड़ के मारे जाने की गुंजाइश कहां कि सुनता।"

गोपाल पाट ने सबसे कहा, "चलो, जरा देख आएं—"

ताश की पत्तियां पड़ी रहीं। निताई ने नौकर पर दूकान छोड़ दी और दौड़ पड़ा चौधरी जी के घर की तरफ। कुछ इस बेसब्री से, मानो देर होने से मजा ही जाता रहेगा।

उधर बैठक में उस समय नाटक का पांचवां अंक चल रहा था।

"मेरी सास ने मुझे रात को अपना दरवाजा खोलकर सोने के लिए क
था—"

"क्यों ?"

नयनतारा ने कहा, "मैंने भी सास से यही पूछा था, 'क्यों ? दरवा
खोलकर क्यों सोऊंगी ?' सास ने लेकिन कोई कारण नहीं बताया। दुबा
जब पूछा तो बोलीं, तर्क मत करो, जो कहती हूं, सो करो—"

सास पीछे से बोल उठी, "झूठ मत बोलो बहू, तुम्हारे भले के लिए
मैंने दरवाजा खोलकर सोने के लिए कहा था। इसलिए कहा था कि तुम्हें कम
में अकेली रहने से डर लग सकता है, घर का काम-धंधा करके मैं तुम्हारे प
जाकर सोऊंगी।"

नयनतारा ने कहा, "शायद आपने यही कहा हो मां, हो सकता है मै
गलत सुना हो, आपका ही कहना सही हो। मगर मैं एक बात पूछती हूं, अ
थोड़ी देर मेरी बगल में सोकर उसके बाद फिर उठकर क्यों चली गई थीं
मेरी अपनी मां होती तो वह जो करती, आपने उसके बाद से कभी वै
किया ? या कि आपने दूसरे किसीको मेरे कमरे में भेज दिया ?"

"बहू ! !"

चौधरी जी अब चीख उठे, "खबरदार बहू, तुम अपनी सास पर दोष ल
रही हो। सास तुम्हारी मां के समान है। उनपर दोष लगाने से तुम्हें नरक
भी जगह नहीं मिलेगी।"

नयनतारा ने अब ससुर की ओर नजर उठाकर देखा। बोली, "अभी
मुझे नरक में ही जगह मिली है बाबूजी, नरक में ही तो रह रही हूं मैं।
घर को नरक के सिवाय और क्या कहूं, कहिए ? आप क्या नरक को इससे
अधिक कष्ट की जगह मानते हैं ? नरक की सूरत क्या इससे भी घिनौनी हो
है ? नरक की बात क्या सिर्फ महाभारत में ही लिखी है, इस दुनिया में
क्या नरक नहीं है ? और फिर घर ही अगर नरक न हो तो नरक है कहां
नरक ढूंढ़ने के लिए कहां जाऊं ?"

पीछे सास बोली, "तुम बेहद ढीठ हो गई हो बहू ! कुछ कहती नहीं हूं, इ
लिए तुम्हारा मिजाज सातवें आसमान पर चढ़ गया है। ऐसे गए-बीते घर
बेटी को ले आई थी, इसीलिए मेरी यह दुर्गत हो रही है।"

नयनतारा छूटते ही कह उठी, "दुहाई आपकी मां, आप मुझे जो कह
हों, कहिए—मेरे सामने मेरे पिताजी को गाली-गलौज न दीजिए। मैंने चा
जितना भी अपराध किया हो, मेरे पिताजी का कोई कसूर नहीं है। मैं आप
पैरों पड़ती हूं, आप उनको नरक कुंड में मत खींचिए..."

तारक चक्रवर्ती तो अधीर हो उठे थे। बोले, "हां बेटी, उसके बाद ? उस
बाद तुम दरवाजा खोलकर सोई कि दरवाजा बंद करके ?"

नयनतारा ने कहा, "सास की बात की अवहेलना न करके मैं दरवा
खोलकर ही सोई, मगर अपनी गलती मुझे उसी दिन मालूम हो गई..."

तब तक केदार वगैरह पहुंच गए थे। वे लोग भीड़ में घंस गए और उन्हें

कर देखने की कोशिश करने लगे।

गोपाल आदि भी पीछे थे। वे लोग भी एक बार सदा की बहू को आंखों देखेंगे। जाने कितने दिन पहले, ब्याह के समय उसे देखकर उन लोगों ने अपनी आंखें सार्थक की थीं। इतने दिनों के बाद फिर उसे देखने का अवसर मिला है। वे लोग बहुत दिनों तक इस बात पर बहस-मुबाहसा करते रहे कि इतनी सुन्दर पत्नी को छोड़कर सदा भाग कैसे गया! ताश के अड्डे पर तर्क-वितर्क भी हुआ किया। लेकिन वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके। उसकी बहू स्त्री आज द्रौपदी की नाईं बिलकुल कौरवों की सभा में हाजिर हो गई। आश्चर्य की बात है। तो क्या बहू ने मुंह में कालिख पोतने जैसा कुछ कर लिया है?

सबको ठेल-ठेलकर केदार ने सामने जगह कर ली। गोपाल आदि को भी पास खींचकर कहा, "देख···"

केदार ने भी देखा। गोपाल ने भी देखा। सबने देखा। "अहा, क्या रूप है! सिर के बाल कैसे घुंघराले हैं! आंखें कैसी ब्यूटीफुल हैं!"

"चुप भी रह। क्या कह रही है, ठीक से सुनने दे।"

साहजी ने फिर पूछा, "तो क्या देखा बेटी? बोलो, क्या देखा?"

सास लेकिन पिछली बात का छोर पकड़े ही हुई थी। बोल उठी, "तुम्हारे पिता का नाम क्यों नहीं लूंगी? सुना है, वे मास्टर हैं। मास्टर होकर बेटी को उन्होंने यही सिखाया है। यह कैसी शिक्षा है, सुनूं जरा? जिस लड़की को बड़े-छोटे का ज्ञान नहीं, जो लड़की इतने लोगों के सामने घूंघट खोलकर खेमटा नाच नाच सकती है, उसका बाप फिर मास्टर कैसा?"

"मां!" नयनतारा के कलेजे में ये बातें जैसे सेल-सी बिधीं। बोली, "मैं आपके पैर पकड़ती हूं, मुझे जो चाहे जितना जो कहिए, जितनी चाहिए, सजा दीजिए, मैं सब सह लूंगी। मगर आप मेरे पिताजी के विरुद्ध कुछ न कहिए, हाथ जोड़ती हूं—"

सास ने कहा, "अपने बाप के लिए जब तुम्हें इतना ही ख्याल है, तो वहां, इतने दिनों में बाप ने कभी खोज-पूछ भी तो नहीं की, कभी आए भी नहीं कि, चलें, जरा बिटिया को एक नजर देख आएं? खैर, बेटी की खोज न लें, सही, जामाता को भी देखने का जी करता है—बेटी दामाद कैसे हैं, खत लिखकर भी तो आदमी जानना चाहता है—"

बिहारी पाल की पत्नी को अब असली बात जानने की उत्सुकता होने लगी। बोली, "बहू, तुम चुप तो रहो, वह जो कह रही है, उसे कहने दो।"

नयनतारा ने सास की बात का जवाब नहीं दिया। बोली, "दुहाई है मां, आप ऐसा न चाहें। मैं तो रात-दिन भगवान से यही कहती हूं कि मेरे पिताजी किसी न आ पहुंचे। मैं जो भुगत रही हूं, सो तो भुगत ही रही हूं—पिताजी मेरा यह कष्ट देखेंगे, तो वह नहीं जिएंगे—उन्हें मैं नहीं बचा सकूंगी। और मेरे पिताजी ही क्यों, मेरे कष्ट को सुनकर अभी जो लोग यहां मौजूद हैं, वे भी अपने कानों में उंगली डालेंगे।"

तारक चक्रवर्ती बोले, "हमारी तो कुछ समझ ही में नहीं आ रहा है बेटी

"मेरी सास ने मुझे रात को अपना दरवाजा खोलकर सोने के लिए कहा था—"

"क्यों ?"

नयनतारा ने कहा, "मैंने भी सास से यही पूछा था, 'क्यों ? दरवाज़ा खोलकर क्यों सोऊंगी ?' सास ने लेकिन कोई कारण नहीं बताया। दुबारा जब पूछा तो बोलीं, तर्क मत करो, जो कहती हूं, सो करो—"

सास पीछे से बोल उठी, "झूठ मत बोलो बहू, तुम्हारे भले के लिए ही मैंने दरवाज़ा खोलकर सोने के लिए कहा था। इसलिए कहा था कि तुम्हें कमरे में अकेली रहने से डर लग सकता है, घर का काम-धंधा करके मैं तुम्हारे पास जाकर सोऊंगी।"

नयनतारा ने कहा, "शायद आपने यही कहा हो मां, हो सकता है मैंने गलत सुना हो, आपका ही कहना सही हो। मगर मैं एक बात पूछती हूं, आप थोड़ी देर मेरी बगल में सोकर उसके बाद फिर उठकर क्यों चली गई थीं ? मेरी अपनी मां होती तो वह जो करती, आपने उसके बाद से कभी वैसा किया ? या कि आपने दूसरे किसीको मेरे कमरे में भेज दिया ?"

"बहू ! !"

चौधरी जी अब चीख उठे, "खबरदार बहू, तुम अपनी सास पर दोष लगा रही हो। सास तुम्हारी मां के समान है। उनपर दोष लगाने से तुम्हें नरक में भी जगह नहीं मिलेगी।"

नयनतारा ने अब ससुर की ओर नज़र उठाकर देखा। बोली, "अभी तो मुझे नरक में ही जगह मिली है बाबूजी, नरक में ही तो रह रही हूं मैं। इस घर को नरक के सिवाय और क्या कहूं, कहिए ? आप क्या नरक को इससे भी अधिक कष्ट की जगह मानते हैं ? नरक की सूरत क्या इससे भी घिनौनी होती है ? नरक की बात क्या सिर्फ महाभारत में ही लिखी है, इस दुनिया में भी क्या नरक नहीं है ? और फिर घर ही अगर नरक न हो तो नरक है कहां ? नरक ढूंढ़ने के लिए कहां जाऊं ?"

पीछे सास बोली, "तुम बेहद ढीठ हो गई हो बहू ! कुछ कहती नहीं हूं, इस-लिए तुम्हारा मिजाज सातवें आसमान पर चढ़ गया है। ऐसे गए-बीते घर की बेटी को ले आई थी, इसीलिए मेरी यह दुर्गत हो रही है।"

नयनतारा छूटते ही कह उठी, "दुहाई आपकी मां, आप मुझे जो कहना हो, कहिए—मेरे सामने मेरे पिताजी को गाली-गलौज न दीजिए। मैंने चाहे जितना भी अपराध किया हो, मेरे पिताजी का कोई कसूर नहीं है। मैं आपके पैरों पड़ती हूं, आप उनको नरक कुंड में मत खींचिए···"

तारक चक्रवर्ती तो अधीर हो उठे थे। बोले, "हां बेटी, उसके बाद ? उसके बाद तुम दरवाज़ा खोलकर सोई कि दरवाज़ा बंद करके ?"

नयनतारा ने कहा, "सास की बात की अवहेलना न करके मैं दरवाज़ा खोलकर ही सोई, मगर अपनी गलती मुझे उसी दिन मालूम हो गई···"

तब तक केदार वगैरह पहुंच गए थे। वे लोग भीड़ में घंस गए और उभक-

कर देखने की कोशिश करने लगे।

गोपाल आदि भी पीछे थे। वे लोग भी एक बार सदा की बहू को आंखों देखेंगे। जाने कितने दिन पहले, ब्याह के समय उसे देखकर उन लोगों ने अपनी आंखें सार्थक की थीं। इतने दिनों के बाद फिर उसे देखने का अवसर मिला है। वे लोग बहुत दिनों तक इस बात पर बहस-मुबाहसा करते रहे कि इतनी सुन्दर पत्नी को छोड़कर सदा भाग कैसे गया! ताश के अड्डे पर तर्क-वितर्क भी हुआ किया। लेकिन वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके। उसकी वह स्त्री आज द्रौपदी की नाईं बिलकुल कौरवों की सभा में हाजिर हो गई। आश्चर्य की बात है। तो क्या बहू ने मुंह में कालिख पोतने जैसा कुछ कर लिया है?

सबको ठेलेन-ठेलेलकर केदार ने सामने जगह कर ली। गोपाल आदि को भी पास खींचकर कहा, "देख···"

केदार ने भी देखा। गोपाल ने भी देखा। सबने देखा। "अहा, क्या रूप है! सिर के बाल कैसे घुंघराले हैं! आंखें कैसी ब्यूटीफुल हैं!"

"चुप भी रह। क्या कह रही है, ठीक से सुनने दे।"

साहजी ने फिर पूछा, "तो क्या देखा बेटी? बोलो, क्या देखा?"

सास लेकिन पिछली बात का छोर पकड़े हो हुई थी। बोल उठी, "तुम्हारे पिता का नाम क्यों नहीं लोगी? सुना है, वे मास्टर हैं। मास्टर होकर बेटी को उन्होंने यही सिखाया है। यह कैसी शिक्षा है, सुनूं जरा? जिस लड़की को बड़े-छोटे का ज्ञान नहीं, जो लड़की इतने लोगों के सामने घूंघट खोलकर खेमटा नाच नाच सकती है, उसका बाप फिर मास्टर कैसा?"

"मां!" नयनतारा के कलेजे में ये बातें जैसे सेल-सी बिंधी। बोली, "मैं आपके पैर पकड़ती हूं, मुझे जी चाहे जितना जो कहिए, जितनी चाहिए, सजा दीजिए, मैं सब सह लूंगी। मगर आप मेरे पिताजी के विरुद्ध कुछ न कहिए, हाथ जोड़ती हूं—"

सास ने कहा, "अपने बाप के लिए जब तुम्हें इतना ही ख्याल है, तो कहां, इतने दिनों में बाप ने कभी खोज-पूछ भी तो नहीं की, कभी आए भी नहीं कि, चलें, जरा बिटिया को एक नजर देख आएं? खैर, बेटी की खोज न लें, सही, जामाता को भी देखने का जी करता है—बेटी दामाद कैसे हैं, खत लिखकर भी तो आदमी जानना चाहता है—"

बिहारी पाल की पत्नी को अब असली बात जानने की उत्सुकता होने लगी। बोली, "बहू, तुम चुप तो रहो, वह जो कह रही है, उसे कहने दो।"

नयनतारा ने सास की बात का जवाब नहीं दिया। बोली, "दुहाई है मां, आप ऐसा न चाहें। मैं तो रात-दिन भगवान से यही कहती हूं कि मेरे पिताजी जिसमें न आ पहुंचे। मैं जो भुगत रही हूं, सो तो भुगत ही रही हूं—पिताजी मेरा यह कष्ट देखेंगे, तो वह नहीं जिएंगे—उन्हें मैं नहीं बचा सकूंगी। और मेरे पिताजी ही क्यों, मेरे कष्ट को सुनकर अभी जो लोग यहां मौजूद हैं, वे भी अपने कानों में उंगली डालेंगे।"

तारक चक्रवर्ती बोले, "हमारी तो कुछ समझ ही में नहीं आ रहा है बेटी

कि ऐसी कौन-सी बात है कि सुनकर हमें कान बंद करना पड़ेगा ?"

चौधरी जी ने कहा, "साहजी, अब आप लोग उठिए। मेरी बहू पागल है। पागल नहीं होती तो ऐसा अनाप-शनाप बोलती।"

सुनते ही नयनतारा खिजला उठी। बोली, "मैं पागल हूं, पागल ? मैं अनाप-शनाप बोल रही हूं ? लेकिन आप रोज रात में इस पगली के कमरे में क्यों जाते हैं ? किसलिए ? किस आकर्षण से जाते हैं ? मैं पागल हूं। अंधेरी रात में मेरे कमरे में चुपके से घुसने में तो नहीं सोचते कि मैं पागल हूं। मैं जान जाऊं कहीं, इसलिए पैर दबाकर धीरे-धीरे आते हैं। बोलिए, जवाब दीजिए, आप मेरे कमरे में क्यों आते हैं ?"

चौधरी जी का चेहरा फक्र हो गया। पत्थर की मूरत-से सिर झुकाए वह खड़े रहे।

"बोलिए ? चुप मत रहिए, मेरी बात का जवाब दीजिए। अपने हाथों से अपने पिता का गला घोंटकर मारा है आपने, सोचा है, मुझे भी गला दबाकर मारेंगे ? आपने जरा ही देर पहले मुझे नरक का डर दिखाया। शरम नहीं आई आपको ? इससे घिनौना नरक कुंड और क्या हो सकता है ? नरक कुंड न हो तो कोई ससुर अपनी पतोहू के कमरे में जा सकता है ? हाय रे, और आज मैं ही पागल हुई। आश्चर्य है। मुझे पागल बताकर आप भाग निकलना चाहते हैं ? पागल होती तो मैं इस घर के किसीको जिन्दा छोड़ती ? बोलिए ?"

चारों ओर की आबहवा अजीब थम-थम-सी हो उठी। सब लोग मानो गूंगे हो गए। जेठ की उमस-भरी गरमी हठात् मानो पल के उत्ताप से बर्फ-सी जम गई।

यह चुप्पी सबसे पहले बिहारी पाल ने तोड़ी। बोला, "छि: चौधरी जी, यह काम आपका वास्तव में बड़ा बुरा हुआ है।"

तारक चक्रवर्ती ने कहा, "चौधरी जी, हमें तो विश्वास ही नहीं हो रहा है कि आप भी ऐसा कर सकते हैं—आप हमारे नवाबगंज के एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। और···"

चौधरी जी का नीचा सिर और भी नीचा हो गया। सब लोग बुदबुदाकर छि:-छि: करने लगे थे।

लेकिन पीछे से चौधरी जी की पत्नी के गले ने इन सारी बुदबुदाहटों को एकाएक दबा दिया। वह बोल उठी, "आप लोग चौधरी जी को क्यों दोष दे रहे हैं ? उनकी क्या गलती देखी आपने ? दोष देना हो, तो मुझे दीजिए। चौधरी जी ने मेरे कहने से वैसा किया। इसके सिवा हम लोगों के लिए और उपाय क्या था, कहिए ? मेरा लड़का घर से भाग गया है, अब हमारी इतनी बड़ी जायदाद को कौन भोगेगा ? कौन देखेगा ? आखिर किसके लिए यह घर-गिरस्ती ? सब छोड़-छोड़कर वनवास में ही जाना चाहिए। लोग आखिर लड़के का ब्याह किसलिए करते हैं ? किस सुख के लिए ? किस आशा से ? वंश ही नहीं चला तो घर-संसार से क्या लाभ ? मेरे ससुर बड़ी साध से पर-पोते के लिए सोने का हार बनवा गए हैं, वह हार आखिर किसे पहनाएंगे ?

ही ले जाओगे, तो मैं मिट्टी में फेंक दूंगी। खड़े देख क्या रहे हो, चल दो।
री बात का यकीन नहीं हो रहा है ? तुम लोगों के दुल्हा बाबू यहां नहीं
और, न कभी अब वह इस घर में आएंगे। मैं भी अब इस घर की कोई
ी हूं। तुम लोग चले जाओ—"

विपिन क्या करे, कुछ समझ नहीं पा रहा था। तब तक चौधरी जी आ
ये। बोले, "कर क्या रही हो बहू, इन्हें भगा क्यों दे रही हो ? ये लोग
सात लेकर आए हैं, इन लोगों की क्या गलती है। रहने दो इन्हें, आओ
..."

लेकिन नयनतारा अड़ गई, "नहीं, ये लोग अब यहां खड़े भी नहीं रहेंगे।"

इतना कहकर उसने विपिन के हाथ के सामान को ठेल दिया। दही-
ड़ी की हांड़ियां माटी पर गिरकर चकनाचूर हो गईं और सब कुछ फैल-
र गया।

ये बातें कितने पहले की हैं। उस समय के सदानन्द ने सोचा भी था कभी
इन बातों की फिर कभी पर्यालोचना करनी पड़ेगी। ख्याल भी हुआ था
कि इन सारी घटनाओं की फिर कभी उसे जवाबदेही देनी होगी।

आज तो उसका सर्वस्व जा चुका है। जो एक दिन नवाबगंज की सारी
पत्ति का उत्तराधिकारी हो सकता था, जो अपने नाना की भागलपुर वाली
पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी हो सकता था, वही आज बिलकुल निःस्व
चौबेड़िया में रसिक पाल की अतिथिशाला के एक कोने में पड़ा उसे अपने
काटने हैं, यह भी उसका अपराध है शायद। आश्चर्य है।

तो क्या सदानन्द ने अन्याय का प्रतिकार करके सिर्फ अपराध ही किया
? उससे तो अगर उसने नवाबगंज के गृहस्थ जीवन को ही कबूल कर लिया
ता, पुरखों के पाप, अन्याय और अत्याचार का उत्तराधिकारी होकर सब
र लेता, तो आज उसे इस तरह से रसिक पाल की कृपा पर पलना भी नहीं
ता और आसामी भी नहीं होना पड़ता।

याद है, कलकत्ता के उन अंधेरे दिनों में कभी-कभी उसे घर की बातें याद
ती। याद आती कालीगंज की बहू की बात। नयनतारा की बात। नयनतारा
याद आते ही मन को वह दूसरी ही धारा में बहा देना चाहता। अनमना
ने की कोशिश करता। अपने अतीत को मन से पोंछ डालने की चेष्टा करता।
कुछ अच्छा नहीं लगता, तो वह घर से निकल पड़ता। जहां तक जी से
ता पैदल निकल जाता। उसके बाद फिर किसी समय आकर अपने कमरे में
पड़ता। दीवारों पर कितनी तरह के पोस्टर चिपके होते, किसीमें लिखा
ता, "सावधान, दुश्मन के जासूस करीब ही हैं।"

समरजित बाबू मजे के विचित्र आदमी हैं। उन्हें किसी बात में कोई
तार नहीं। इतनी बड़ी एक लड़ाई हो गई, कलकत्ता पर जापानियों का बम

सिर पर लिए अहाते के अन्दर आ रहे हैं। ...

री भी है।

र में इतनी भीड़ देखकर विपिन भौंचक्का हो गया।

किसीने जाकर उन लोगों से पूछा, "तुम लोग कहां से आ रहे हो जी ? व क्या है ?"

विपिन ने कहा, "हम कृष्णनगर से 'जमाई-षष्ठी' का सामान लेकर आ —"

एक से दूसरी ज़वान पर जाते-जाते खबर आखिर वैठके में जा पहुंची। री पाल की वहू अव तक खड़ी-खड़ी सब सुन रही थी। उसके वगल में निताई हालदार की मां थी। उनके पास टोले की और भी कई स्त्रियां ट काढ़े खड़ी थीं। और, दरवाज़े के विलकुल सामने खड़ी थी चौधरी जी घरवाली। कमरे के अन्दर थे चौधरी जी, तारक चक्रवर्ती, विहारी पाल, गकृष्ण साह—सबने यह सुना। कौन ? कहां से आए हैं ? कृष्णनगर से ? माई-षष्ठी की सौगात लेकर ?

देखते-ही-देखते पूरी आवहवा ही वदल गई। अभी तक छंद, लय, ताल व ठीक ही थी, अव मानो सव वेताल हो गया।

चौधरी जी की पत्नी उन लोगों की ओर वढ़ी। विपिन के सामने जाकर बोली, "आओ भैया, आओ—"

लेकिन नयनतारा ने जैसे ही सुना, वह भीड़ ठेलकर खुद ही वैठक से वाहर निकल पड़ी। दीदीजी को उस हालत में देखकर विपिन के होंठों की हंसी काफूर हो गई।

नयनतारा ने विपिन के पास जाकर कहा, "विपिन ? तुम आए हो ?"

"हां दीदीजी ! मास्टर साहव ने जमाई-षष्ठी का सामान भेजा है। तुम अच्छी हो दीदीजी ?"

नयनतारा ने इस वात का कोई जवाव न देकर कहा, "यह सव सामान अव यहां उतारने की कोई जरूरत ही नहीं है, सव लौटा ले जाओ—"

विपिन चौंक उठा, "ऐसा क्यों दीदीजी, मास्टर साहव ने इतने कष्ट से सव सामान जुटाया—अव इन्हें लौटा ले जाएं ?"

"हां, उलटे पांव लौटा ले जाओ।"

विपिन फिर भी कुछ समझ नहीं सका। वह भौंचक्का-सा नयनतारा की ओर देखता रह गया। वहां जितने लोग इकट्ठे थे, सव एकटक नयनतारा का यह रवैया देखने लगे।

चौधरी जी की पत्नी ने कहा, "ये लोग सौगात लेकर आए हैं, तुम लौटा क्यों दे रही हो वहू ?"

"हां, लौटा ले जाएंगे। जिस घर में जमाई ही नहीं, वहां जमाई-षष्ठी का सौगात लेकर आया है। लौट जाओ विपिन, मैं कहती हूं, लौट जाओ—"

विपिन का वह भौंचक्कापन गया नहीं था। वोला, "लौट जाऊं ?"

नयनतारा ने कहा, "हां। मैं कहती हूं, लौट जाओ। ये सामान लौट

नहीं ले जाओगे, तो मैं मिट्टी में फेंक दूंगी। खड़े देख क्या रहे हो, चल दो। मेरी बात का यकीन नहीं हो रहा है? तुम लोगों के दुल्हा बाबू यहां नहीं है। और, न कभी अब वह इस घर में आएंगे। मैं भी अब इस घर की कोई नहीं हूं। तुम लोग चले जाओ—"

विपिन क्या करे, कुछ समझ नहीं पा रहा था। तब तक चौधरी जी आ पहुंचे। बोले, "कर क्या रही हो बहू, इन्हें भगा क्यों दे रही हो? ये लोग सौगात लेकर आए हैं, इन लोगों की क्या गलती है। रहने दो इन्हें, आओ जी…"

लेकिन नयनतारा अड़ गई, "नहीं, ये लोग अब यहां खड़े भी नहीं रहेंगे।"

इतना कहकर उसने विपिन के हाथ के सामान को ठेल दिया। दही-रबड़ी की हांड़ियां माटी पर गिरकर चकनाचूर हो गईं और सब कुछ बिखर गया।

ये बातें कितने पहले की हैं। उस समय के सदानन्द ने सोचा [illegible] कि इन बातों की फिर कभी पर्यालोचना करनी पड़ेगी। [illegible] उसे कि इन सारी घटनाओं की फिर कभी उसे जवाबदेही देनी [illegible]

आज तो उसका सर्वस्व जा चुका है। जो एक दिन [illegible] सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हो सकता था, जो अपने नाना की [illegible] सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी हो सकता था, वही [illegible] है। चौबेड़िया में रसिक पाल की अतिथिशाला के [illegible] दिन काटने हैं, यह भी उसका अपराध है शायद। [illegible] है

तो क्या सदानन्द ने अन्याय का प्रतिकार [illegible] है? उससे तो अगर उसने नवाबगंज के [illegible] होता, पुरखों के पाप, अन्याय और अत्याचार [illegible] झेल लेता, तो आज उसे इस तरह से [illegible] पड़ता और आसामी भी नहीं होना पड़ता।

याद है, कलकत्ता के उन अंधेरे दिनों [illegible] आती। याद आती कालीगंज की [illegible] की याद आते ही मन को वह [illegible] होने की कोशिश करता। अपने [illegible] जब कुछ अच्छा नहीं लगता, [illegible] आता पैदल निकल जाता। [illegible] घुस पड़ता। दीवारों पर [illegible] होता, "सावधान, दुश्मन [illegible]

समरजित बाबू [illegible] विकार नहीं। इतनी [illegible]

गिरा, कलकत्ता के लोगों में भगदड़ मच गई, लोग भागे। मगर वह निडर होकर कलकत्ता में रहे।

सदानन्द पूछता, "उस समय आपको डर नहीं लगा ?"

समरजित बाबू हंसते। कहते, "किस बात का डर ? जान का डर तो जहां-जाओ, वहीं है। मसलन ट्रेन से सफर कर रहा हूं, लड़कर वह ट्रेन भी तो चकनाचूर हो सकती है, तो ? भागकर तुम जा कहां सकते हो सदानन्द ? किताब में तुमने पढ़ा नहीं हैं—भागने का पथ नहीं है, यमदूत लगा है पीछे—"

समरजित बाबू को काम में काम यह था, सुबह चार बजे की ट्राम से गंगा जाना और वहां से नहा करके लौटने पर घर में पूजा करना। वह पूजा उनकी घंटे-भर चलती। उसके बाद अखबार लेकर बैठ जाते।

सदानन्द बीच-बीच में उनके पास जाता। कहता, "मेरे बारे में कुछ सोचा चाचाजी ? आपने कहा था, मेरे लिए कोई नौकरी ठीक कर देंगे ?"

समरजित बाबू कहते, "क्यों, तुम्हें कोई असुविधा हो रही है ?"

आखिर एक दिन सदानन्द ने कहा था, "जी, असुविधा हो रही है। आखिर कब तक आपके कंधे का भार बना रहूंगा ? मुझे शरम लगती है। किसीकी दया का दान लेना मुझे अच्छा नहीं लगता। एक-दो दिन की बात हो तो कोई बात नहीं, मगर महीनों ऐसा अच्छा लगता है ? मुझे अब आप छोड़ दीजिए—"

इतना कहकर किसी ओर ताके बिना ही वह सीधे अपने कमरे में चला आया था। समरजित बाबू ने जो कमरा उसे रहने के लिए दिया था, वह काफी बड़ा था। बहू बाजार जैसी जगह को देखते हुए कमरे में हवा-रोशनी अच्छी ही आती थी। सदानन्द पहले ही दिन से उस कमरे में लेटा रहा करता। कोई काम भी नहीं, कोई अकाज भी नहीं। वहां उसे नौकर-चाकरों की छिटपुट बातचीत सुनाई पड़ती थी। वैसी बातें ज्यादातर उनके अपने बारे में ही होतीं। घर के काम-काज के लिए कहा-सुनी या फिर हंसी-ठट्ठा। कभी-कभी सदानन्द के बारे में भी बात होती। है कौन यह ? बाबू का कौन होता है, क्यों, किस सिलसिले में यहां आया है, कब तक रहेगा, आदि-इत्यादि।

उस दिन जैसे ही वह अपने कमरे में आया कि महेश पहुंचा। बोला, "आप बाबू से झगड़ गए हैं क्या भैया जी ? बाबू कह रहे थे।"

सदानन्द ने कहा, "मुझे अब यहां रहना अच्छा नहीं लग रहा है महेश ! तुम्हें तो पता है, मैं आना नहीं चाहता था, तुम्हारे बाबू ही जबरन मुझे ले आए—"

महेश ने कहा, "लेकिन यहां नहीं रहेंगे तो आप जाएंगे कहां ? आप तो नाराज होकर अपने घर से भाग आए हैं।"

सदानन्द चौंका, "मैं नाराज होकर घर से भागा हूं, यह किसने कहा ?"

महेश हंसने लगा। बोला, "मैं जानता हूं।"

सदानन्द उठ बैठा, "तुमने कैसे जाना ? बताना ही पड़ेगा, तुमने कैसे जाना ?"

महेश ने कहा, "बाबू मां जी से कह रहे थे । मां जी आपके लिए बक-बक कर रही थीं । बाबू ने कहा, 'तुम उससे कुछ मत कहना । वह धनी घर का लड़का है । बिगड़कर घर से भाग आया है ।' "

जरा रुककर उसने फिर कहा, "आप बाबू पर खीजिए मत भैया जी, आप तो बाबू के कष्ट को नहीं जानते । ऊपर से तो वह सदा हंसते हैं, खुश मिजाज हैं, लेकिन उनके मन में शान्ति नहीं है—"

सदानन्द को हैरानी हुई, "शान्ति नहीं है ? क्यों ?"

महेश ने कहा, "वह तो बहुत-बहुत बात है भैया जी ! रुपया रहने से ही क्या आदमी को सुख रहता है ? हम लोगों के रुपया-पैसा नहीं है, मगर हम लोग बाबू से कहीं सुखी हैं । हम लेटे नहीं कि सो गए । पर बाबू की आंखों में नींद नहीं है ।"

पहले-पहले सदानन्द को अजीब-सा लगा था । जो आदमी सदानन्द जैसे दुखी आदमी को लाकर अपने घर में आदर-जतन कर रहा है, सदानन्द ने उसके सुख-दुःख के बारे में तो कभी नहीं सोचा । अपने ही दुःख को बड़ा मानकर दुनिया के बाकी लोगों को सुखी समझने में आत्मरक्षित का कैसा तो एक आनन्द होता है । सदानन्द उसी आनन्द में आज तक भूला रहा । अब जैसे उसकी तीसरी आंख खुली ।

उसने पूछा, "मुझे सच-सच बताओ तो, चाचाजी को दुःख किस बात का है ?"

महेश ने कहा, "आप नहीं जानते—उस दिन भैया जी को देखा न—"

सदानन्द ने कहा, "हां, देखा । कभी घर आते हैं, कभी नहीं आते—"

महेश ने कहा, "देखिए, किसीसे कहिएगा नहीं, वह भैया जी तो बाबू के अपने लड़के नहीं हैं न—"

"एँ ? अपने लड़के नहीं हैं ?"

"नहीं । बाबू ने उन्हें गोद लिया है—"

सुनकर सदानन्द हैरान रह गया । इतने दिन इस घर में आए हो गए, पर यह बात तो नहीं सुनी कभी । इन इतने दिनों की घटनाओं की छान-बीन करके उसने उसकी व्याख्या खोजने की बहुत कोशिश की । अगर पाला हुआ लड़का ही हो, तो भी दुःख कैसा ? बचपन से अगर ऐसे पिता के पास पला, तो उससे तो सुखी होना चाहिए । और, लड़का भी तो यह जानता है कि कभी वह इतनी बड़ी सम्पत्ति का मालिक होगा ।"

"आप मेरे बाबू पर नाराज नहीं होइएगा भैया जी ! बड़े भैया जी अगर लायक होते, तो बाबू को कोई दुःख नहीं होता । मगर बड़े भैया जी आदमी ही नहीं हैं । देखा नहीं है, बहुत दिन तो रात को घर ही नहीं आते ।"

"तुम्हारे भैया जी को बाल-बच्चा नहीं हुआ है ?"

महेश ने कहा, "नहीं । बाल-बच्चा नहीं हुआ है, इसीलिए तो बाबू को कष्ट है । और जिसे गोद लिया, वह भी तो मनमुताबिक नहीं हुआ । आप-पर इसीलिए इतनी माया हो गई है । बाबू को आप बहुत पसन्द हैं । मुझसे आड़ में पूछा करते हैं, आपको अच्छा खाना दे रहा हूं या नहीं । कहते हैं, 'उसे जो पसन्द हो, वही बाजार से ला दिया करो ।' सच भैया जी, बाबू आपको किन निगाहों देखते हैं, मैं कह नहीं सकता ।"

सदानन्द ने कहा, "तुम मेरी बात को छोड़ ही दो महेश ! तुम्हारे बाबू का लड़का मन के लायक क्यों नहीं हुआ, यह कहो । बाबू ने तो अच्छी तरह से देख-सुनकर ही उसे गोद लिया होगा । फिर ? बड़े भैया जी का दोष क्या है ?"

महेश ने कहा, "बताया न, बड़े भैया रात को घर में नहीं रहते..."

"घर नहीं रहते हैं, यह तो नौकरी की वजह से । पुलिस की नौकरी में जब जहां की ड्यूटी मिलेगी, जाना ही पड़ेगा । बड़े भैया जी को तो नौकरी के ही कारण रात बाहर बितानी पड़ती है ।"

अबकी महेश ने आवाज धीमी करके कहा, "नहीं भैया जी, बात ऐसी नहीं है । आपने गलत सुना है । असल में भैया जी को भाभी पसन्द ही नहीं है ।"

सदानन्द ने कहा, "पसन्द क्यों नहीं है ? देखने में कुरूप है ?"

"जी नहीं, अनगिनत लड़कियों को देखकर बाबू तब इस बहू को लाए हैं । देखने में बुरी होती तो बाबू इसे घर की बहू बनाते ? सो नहीं, बड़े भैया जी का मन बाहर-बाहर रहता है । उनकी एक गिरस्ती बाहर भी है; उनका मन वहीं लगा रहता है ।"

सदानन्द ने कहा, "वह कौन है ?"

"जी बड़े भैया जी ने उसे अलग ही मकान लेकर रखा है । तनखाह-वनखाह जो मिलती है, बड़े भैया जी सब उसीके पीछे उड़ाते हैं, बाबू को फूटी पाई भी नहीं देते । अथच बड़े भैया जी पहले ऐसे नहीं थे ।"

सदानन्द ने पूछा, "तुम्हारे बाबू क्या लड़के की तनखाह चाहते हैं ?"

महेश ने कहा, "जी नहीं । तनखाह क्यों चाहेंगे ? बाबू को क्या रुपयों की कमी है कि लड़के की तनखाह से गिरस्ती चलाएंगे ? राणाघाट में बाबू के इतनी जगह-जमीन, खेत-खपाट, पोखर-बगीचा है, वही आमदनी कौन खाए, इसीका ठिकाना नहीं । सिर्फ आम-कटहल का बगीचा ही तो तीन सौ बीघे का है । एक जलकर है, वह भी चार सौ बीघे से ज्यादा है—उसकी आय खाने वाला भी कोई नहीं है, वह सब देखने वाला भी कोई नहीं है । बड़े भैया जी को तो नौकरी करने की कोई जरूरत ही नहीं थी । बाबू से इसीलिए तो मन-मुटाव है । बड़े बाबू की बात नहीं मानकर भैया जी ने वह नौकरी कर ली और तभी से उनका स्वभाव-चरित्र भी बिगड़ गया । पुलिस की नौकरी में किसीका स्वभाव-चरित्र क्या ठीक रहता है ? आप ही कहिए । मेरे बाबू तो यही कहते हैं । उस नौकरी में जाने से पहले तो भैया जी में

कोई दुर्गुण नहीं था। पढ़ते-लिखते थे। एक दिन शराब पीते देखकर बाबूजी ने उनका विवाह करा दिया। फिर क्या जाने किसके पाले पड़कर उन्होंने यह नौकरी कर ली—और, तभी से ऐसी हरकत है। अब नौकरी से जो भी कमाते हैं, सब उसी राक्षसी के पेट में डालते हैं…"

महेश और भी शायद बहुत कुछ बताता। पर ऊपर से समरजित बाबू ने जैसे ही बुलाया, वह चला गया।

सदानन्द वहां बैठकर महेश की कही हुई बातों को ही सोचने लगा। एक जगह की अशान्ति से बचने के लिए वह भाग आया है, लेकिन यहां कलकत्ता आकर भी उसे दूसरे झमेले में पड़ना पड़ेगा क्या? एक बंधन से दूसरे बंधन में? ओ, राणाघाट से जगह-जमीन की वसूली लाते समय ही तब इनसे भेंट हुई। और इसीलिए इस घर में उसकी इतनी खातिर हो रही है। समरजित बाबू का क्या इरादा है! सदानन्द उनके पाले हुए पुत्र-सा यहां रहे और उनकी जगह-जायदाद की देख-भाल करके आराम से खाता रहे। यही करना था, तब तो वह नवाबगंज में भी रह सकता था। इस आराम से तो वह वहीं रह सकता था और चौधरी वंश की वृद्धि कर सकता था।

सदानन्द ने सोच लिया, नः, अब यहां रहना नहीं होगा। यहां की यह झंझट रहित आजादी भी उसके लिए गुलामी के ही समान है। किन्तु यहां से चला ही जाए, तो करेगा क्या वह? जाएगा भी कहां? जहां भी, जिसके भी पास जाएगा, वहीं तो, वही तो उससे दाम चाहेगा। कीमत दिए बगैर दुनिया में कोई भी कुछ नहीं देता। दुनिया में जीने के लिए टैक्स देना ही होगा। आत्म-सम्मान का टैक्स, या फिर स्वाधीनता का टैक्स, या स्वार्थत्याग का टैक्स!

महेश से इन बातों को सुनने के बाद वह कमरे में नहीं रह सका। रास्ते में निकला। पर रास्ते में ही क्या शान्ति है? लोगों को देखकर लगा, सब जैसे दौड़ रहे हैं। कहां दौड़े जा रहे हैं सब? वह बाजार के मोड़ पर पहुंचा तो एक आदमी आकर उससे पूछा, "आपके पास दियासलाई होगी?"

"दियासलाई?"

उस आदमी ने सोच लिया होगा कि सदानन्द सिगरेट पीता है। बोला, "आप सिगरेट नहीं पीते? ठीक है…"

बोलकर वह दियासलाई की खोज में और किसीकी ओर चल दिया। नशे की इच्छा हुई है शायद। मगर दियासलाई खरीदेगा नहीं। पान-बीड़ी दियासलाई की इतनी तो दुकान है। पैसा खर्च करके खरीद सकते हो। और अगर दियासलाई के लिए पैसे की कमी है तो पीने का ही क्या शौक! घर के पास पहुंचा कि एक भिखमंगा आया।

सदानन्द ने उसकी तरफ अच्छी तरह से देखा। उसके हाथ-पांव गल गए थे। हाथ-पांव की अंगुलियां गायब थीं। पैसा देने के लिए सदानन्द ने जेब में हाथ डाला। लेकिन जेब में हाथ डालते ही चौंक उठा। रुपये-पैसे कहां चले गए?

उसने एक बटुए में रुपये-पैसे रक्खे थे। जेब-खर्च के लिए समरजित बाबू ने उ
दिए थे। किसी भी जेब में नहीं थे। लेकिन उसे याद है, आते वक्त उसने बटु
को ऊपर की जेब में रखा था।

भिखमंगा हाथ फैलाए ही हुए था।

सदानन्द ने कहा, "मेरे पास पैसे नहीं है..."

वह फिर घर की ओर बढ़ा। लेकिन उसका मन बड़ा मायूस हो गया।
घर पहुंचते ही महेश से भेंट हो गई। बोला, "बाबू आपको बुला रहे थे भै
जी—"

"मुझे?"

"हां। कह रहे थे, 'यहां के लिए नया है। अकेले-अकेले कहां घूमता है
समय बुरा है। शाम को तूने अकेले क्यों जाने दिया?' मुझे फटकारने लगे।

सदानन्द सीधे ऊपर चला गया। समरजित बाबू रोज़ की नाईं अ
बिस्तर पर बैठे थे। बोले, "शाम को कहां गए थे? महेश से सुना, तो मु
फिक्र होने लगी। यह शहर कलकत्ता है। तुम नये हो। यहां के गुंडे-बदम
नये लोगों को देखकर ही पहचान लेते हैं। शाम को फिर कभी मत निकलना
समझे? लड़ाई के बाद यह शहर और भी बुरा हो गया है।"

सदानन्द ने कुछ कहा नहीं।

"जेब खर्च के पैसे तो तुम्हारे पास हैं न?"

सदानन्द ने कहा, "जेब खर्च के पैसे अब मुझे नहीं चाहिए।"

"क्यों, जो दस रुपये दिए थे, वे खर्च हो गए?"

"जी नहीं। खर्च नहीं हुए। चोरी हो गए।"

सुनकर समरजित बाबू उत्तेजित हो गए, "चोरी हो गए? किसने चुरा
घर के किसी नौकर-चाकर ने?"

"नहीं। रास्ते में किसीने। एक आदमी मुझसे दियासलाई मांगने आया,
जो उसने जेब में से बैग निकाल लिया। मुझे उसकी खाक भी खबर नहीं हुई

सदानन्द ने पूरा किस्सा बताया।

समरजीत बाबू ने कहा, "इसीलिए तो तुमसे कहता हूं, तुम गांव के हो, तु
लोग ठग ले सकते हैं। खैर, जाने दो। ये कुछ रुपये अपने पास रख लो।
खूब होशियारी से रखना। रुपयों की इतनी लापरवाही मत करना। समझे
दुनिया में रुपया इतनी बुरी चीज नहीं। रुपयों का उपयोग करना सभी न
जानते, इसीलिए रुपये की इतनी बदनामी है।"

रुपये लेकर सदानन्द फिर अपने कमरे में चला आया।

लेकिन काफी रात गए किसी झमेले की आवाज़ से उसकी नींद खुल ग
लगा, ऊपर जोर-जोर से कहा-सुनी हो रही है। समरजित बाबू का गला सु
पड़ रहा था। दूसरी ओर किसी और का।

कमरे का दरवाजा खोलकर सदानन्द बाहर जा खड़ा हुआ। झमेला त
उसके सिर के ऊपर ही हो रहा था।

बाहर गया तो देखा, महेश भी सीढ़ी के नीचे खड़ा है।

सदानन्द ने पूछा, "ऊपर कैसा शोरगुल हो रहा है महेश ?"

महेश ने कहा, "बड़े भैया जी आए हैं—"

सदानन्द ने कहा, "वह आए हैं तो चाचाजी इतना गरज क्यों रहे हैं ? लगता है, बहुत नाराज हुए हैं।"

"आज बड़े भैया जी ने शराब पी है। आकर भाभी को खूब मारा-पीटा है।"

"अरे, मारा-पीटा, क्यों ?"

महेश ने कहा, "शराब पीने से क्या आदमी को होश-हवास रहता है। बड़े भैया जी कभी-कभी ज्यादा चढ़ा लेते हैं।"

उधर समरजित बाबू चिल्ला रहे थे, "निकल जाओ घर से, निकल जाओ—फिर यदि कभी शराब पीकर आए, तो मैं तुम्हें घर में घुसने नहीं दूंगा।"

लड़का भी चिल्ला रहा था, "हां-हां, घुसूंगा, जरूर घुसूंगा···"

समरजित बाबू ने आवाज दी, "महेश, महेश, इधर आना तो।"

महेश सदानन्द के सामने खड़ा सब सुन रहा था। वह शायद समझता था कि अब उसकी पुकार होगी।

सदानन्द ने कहा, "तुम्हारी पुकार हुई महेश, जाओ।"

महेश ने कहा, "मेरे भाग्य का यह देख रहे हैं तो। अब धर-पकड़कर भैया जी को यहां से निकाल देना पड़ेगा।"

"घर से निकाल देना पड़ेगा, मतलब ?"

महेश जवाब दिए बिना ही ऊपर चला गया। उसे देखते ही समरजित बाबू ने कहा, "जा तो, मुन्ने को घर से बाहर निकाल दो, वह जिसमें फिर कभी अन्दर नहीं आए। कम्बख्त कुलांगार, ऐसे लड़के का मैं सूरत नहीं देखना चाहता, जा···"

लेकिन नशेबाज को काबू कर लेना क्या इतना आसान है ! महेश के जाते ही वह उसकी ओर लपका। बोला, "मेरे पास आ तो तू, आज तू ही रहेगा कि मैं ही रहूंगा।"

यह कहकर वह अपने दरवाजे पर धमाधम लात मारने लगा, "खोल, दरवाजा खोल···"

समरजित बाबू बोल उठे, "दरवाजा मत खोलना बहू, मत खोलना। देखता हूं मैं कि यह क्या कर लेता है।"

बहू ने डर से शायद पहले ही अन्दर से कुंडी लगा ली थी। अब तो वह और भी डर गई थी। ससुर के कहने से भी शायद दरवाजा नहीं खोलती।

वह लड़का एक बार दरवाजे पर लात मारने लगा और एक बार महेश को मारने के लिए खेदने लगा।

महेश के लिए यह घटना कुछ नई नहीं थी। न महेश के लिए नई थी, न ही घर के किसी और के लिए। महेश की बातों से ही पता चल गया था कि बीच-बीच में ऐसा होता है। सदानन्द चूंकि यहां नया आया था, इसलिए

—उसके बाद उसी सिलसिले में मानदा मौसी की खुशामद करते-करते जान निकल गई। रुपये भी खर्च हुए, मगर खास कोई नतीजा नहीं निकला। दीदी तो यह नहीं समझती। कलकत्ता कोई आसान जगह है। वहां पैसे के बिना तो कोई बात ही नहीं करता। चारों तरफ मार-पीट, खून-खराबी। युद्ध के बाद भीड़ भी उतनी ही बढ़ गई है। टिड्डी दल की तरह जाने कहां से लोग आ जुटे हैं। सियालदह स्टेशन के पास जाते ही छोटे-छोटे बच्चे हाथ फैलाते हैं, "पैसा दो, एक पैसा दो···"

आते समय मौसी ने कहा था, "लौटने में देर न करना। पैसे लेकर ही चले आना—बड़े बाबू ने वचन दिया है, सदानन्द को खोज देगा। समय की कमी से ही देरी हो रही है। और सचमुच ही चारों तरफ समय भी बड़ा खराब आया है। सब कुछ कैसा तो उलट-पुलट-सा हो गया है। मानदा मौसी को भी इस समय रुपयों की तंगी हो गई है। बस, रुपया चाहिए। राधा के पास जाने से भी वह रुपया-रुपया ही करती है। घर से पत्नी ने भी रुपये के लिए लिखा है। चारों तरफ से लोग रुपया-रुपया ही करें तो वह अकेला आदमी इतना रुपया कहां से लाए? रुपया देने वाली तो वही एक ही है। दीदी। दीदी कहीं हाथ समेट ले तो चारों खाने चित।

प्रकाश मामा को पता नहीं था कि भीतर-ही-भीतर धरती उस समय एक और भूगोल गढ़ रही थी। चुपचाप भूगोल का रंग बदलने लगा था। जो लाल था, वह सब उस समय सब्ज होने लग गया था। भूगोल ही क्यों, नये आदमियों द्वारा नई कलम और नई स्याही से इतिहास भी नये सिरे से लिखा जाने लगा था। एक से बहुतों का विरोध शुरू हो गया था, बड़े से छोटों का, बाहर से भीतर का विरोध होना आरम्भ हो गया था। एक से दूसरे मत के विरोध से सारी पृथ्वी बंट गई थी। नवाबगंज के चौधरी परिवार की तरह पहले के बूढ़े मालिक लोग अपने सारे किए-कराए को खंडहरों में बदलते देख खुद ही स्तब्ध होकर लम्बा निश्वास छोड़ रहा है। और, कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, और फटिक नाइयों की जमात ने कब्र के अन्दर से बदले काठ हाका लगाकर सारे नवाबगंज को चकित कर दिया था।

दूकान में बैठे-बैठे बिहारी पाल देखा। रिक्शा आ रहा है।

"कब आए साला बाबू?"

"जी, आज ही पाल बाबू, आप लोगों का समाचार तो अच्छा है?"

बरवारी-थान में निताई हालदार की दूकान के चौंतरे के ऊपर की धरती की नींव भी यह सब देख-सुनकर धंस गई थी। लोगों में पहले की वह रौनक अब नहीं थी। और दिन होता, तो वे लोग साला बाबू को पुकारते। उससे हंसी-मज़ाक की दो-एक बातें करते। लेकिन साला बाबू को देखकर सब लोग सिहर-से उठे। जैसे, सबके सिर पर नंगी तलवार लटक रही हो।

रिक्शे पर से साला बाबू ने खुद ही कहा, "क्यों जी, मैं आया गया। तुम सब कैसे हो?"

"ठीक ही हूं।"

है ? और दीदी ? वह भी क्या जीजाजी के साथ भागलपुर चली गई ?"

रास्ते पर से कोई बोल उठा, "कौन ? साला बाबू ? कब आए ?"

परमेश मौलिक। परमेश मौलिक उस होकर बरवारी-थान जा रहा था। साला बाबू को देखकर वह ठिठककर खड़ा हो गया।

परमेश मौलिक पर नजर पड़ते ही प्रकाश को मंझधार में मानो किनारा मिल गया। वह उसीकी तरफ सीधे रास्ते की ओर चलने लगा। बोला, "क्यों जी, चंडीमंडप में ताला क्यों झूल रहा है ? तुम सब काम-काज नहीं करते हो ?"

परमेश ने कहा, "जी, छोटे बाबू तो हैं नहीं। वह भागलपुर चले गए।"

प्रकाश ने कहा, "भागलपुर गए तो क्या सदा के लिए चले गए ? उनके नहीं रहने से तुम लोग क्या काम-काज नहीं करोगे ? और दीदी ? वह भी क्या साथ ही गई है ? देख-रेख कौन कर रहा है ? कैलास कहां गया ? दीनू ?"

परमेश ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके मुंह से बोली चुक गई हो जैसे।

"क्यों, जवाब क्यों नहीं देते ? मैं दीदी को पूछ रहा हूं ?"

परमेश के मुंह में बोली ही नहीं थी। कहे भी क्या वह ? उन दिनों की मर्मांतक घटनाएं नवाबगंज में किसीसे छिपी नहीं थीं। कोई कल्पना भी नहीं कर सका था कि ऐसा भी सर्वनाश होगा। अथच अभी-अभी उसी दिन की तो बात है।

रास्ते से और भी कोई जा रहा था। उसने भी प्रकाश को देखा। घर में घुसते हुए उसने कहा, "कब आए साला बाबू ?"

वंशी ढाली था। उसके बाद धीरे-धीरे और भी बहुतेरे जुट गए। सब एक ही बात पूछ रहे थे, "कब आए साला बाबू ? इतने दिनों तक कहां थे ?"

प्रकाश ने कहा, "दीदी भी ऐसे समय में भागलपुर चली गई ? कब आएगी ?"

आम रास्ते से जो लोग जा रहे थे, वह सब भी साला बाबू को देखकर रुक गए। वह लोग सपने में भी नहीं सोच पाए थे कि ऐसी-ऐसी घटनाएं हो जाने के बाद भी चौधरियों के अपने कोई यहां आ सकते हैं। वे घटनाएं क्या ऐसी-वैसी थीं ? गांव-भर में ढिंढोरा पिट गया। तमाम चौधरी जी पर छिः-छिः होने लगी थी। आड़-ओट में सभी बतियाते, लेकिन चूंकि जाने-माने भले आदमी के यहां की बहू-बेटी की बात थी, खुलकर बोलना नहीं चाहते। अथच बोलने जैसे ऐसे एक विषय को कोई दबाकर भी नहीं रख सकते। पहले काना-फूसी होती रही, फिर वह बात गांव से दूसरे गांवों तक दौड़ गई। गांवों से महकमा, शहर तक।

"फिर ?"

साला बाबू के सिर पर गाज गिर गई। फिर पूछा, "फिर ?"

यह कोई आसान बात है कि पूरी घटना इतने थोड़े में कहूं। इतना समय न तो आपको है और न ही मेरी कलम में वह ताकत है कि उस दिन की वह शर्मनाक कहानी आपको विस्तार से बता सकूं।

कहां के किन नरनारायण चौधरी ने एक दिन यह सपना देखा था कि वह नवाबगंज में एक कालजयी वंश की बुनियाद डाल जाएंगे—बेटा-पोतों में उनका कीर्ति-कलाप युग-युग तक अक्षय रहेगा। उनके उस सपने की क्या गत हुई, वह स्वयं उसे जरूर नहीं देख जा सके, पर देखा उनके बेटे ने, पोते ने, उनके नवाबगंज के इस-उस टोले के लोगों ने। जिन्हें अपनी आंखों देखने का सौभाग्य नहीं हुआ, उन्होंने कानों सुना। सुना, और दुर-छिः किया। लेकिन जिसपर यह थुक्कमफतीजा हुई, वह नहीं सुन सका। अपने अपघात-मृत्यु के पाप से उनकी आत्मा उस समय किस लोक में तड़प रही थी, कौन जाने! एक चुल्लू पानी के लिए वह कहीं अशरीरी आर्तनाद कर रहे हैं अथवा नहीं, इसका भी पता पाने की कोई उपाय नहीं था।

लेकिन जो हाथ के पास के थे, उनकी खबर मालूम हो रही थी। चौधरी जी अब घर से बाहर नहीं निकलते थे। यहां तक कि चंडीमंडप में अपनी कचहरी में भी नहीं आते। जिनको उनसे मिलना होता, वह उन्हींके पास जाते। जरूरत होती, तो रुपया मांगते, रुपया देते। लगान देना होता, तो बाहरी दालान को पार करके, आंगन के उस पार सीढ़ियों से होकर उनके पास ऊपर जाना पड़ता।

नयनतारा के जाते ही मानो इस घर की श्री चली गई थी। शायद नयनतारा ही घर की लक्ष्मी थी। चौधरी जी उस लक्ष्मी को रख नहीं सके। जैसे सदानन्द को पकड़कर नहीं रोक सके, वैसे ही नयनतारा को भी कोई रोककर नहीं रख सके। जिस दिन नयनतारा जा रही थी, उस दिन बरवारी-थान में भीड़ की न पूछिए। चौधरी भवन के बाहर भी कुछ कम लोग नहीं थे।

आगे-आगे पैदल जा रहा था कैलास गुमाश्ता। बीच में रजबअली की टप्परवाली गाड़ी। गाड़ी में आगे-पीछे परदा। अन्दर का आदमी दिखाई नहीं पड़ता था। किसी तरह से एक नजर नयनतारा को देख सके, इसका भी उपाय नहीं। परदा उठाकर भीतर झांकने की भी गुंजाइश नहीं। पीछे-पीछे चौकस निगाहों से देखते हुए दीनू जा रहा था।

केदार ने नज़दीक जाकर दीनू से पूछा, "अन्दर बहू क्या अकेली ही जा रही है? और कोई नहीं है?"

दीनू ने कहा, "बहू कभी अकेली नैहर जाती है? गोरी बुआ है—"

नयनतारा के जाते ही गांव में एक दबा हाहाकार उठा।

"क्यों जी, बहू के बाप को खबर दी गई है?"

"देने जैसी ऐसी क्या खबर है कि पहले से दी जाए? लड़की वहां

पहुंचेगी तो आप ही जान जाएगा।"

किसी और ने कहा, "अहा, बेचारी क्या नसीब लेकर आई थी ! एक दिन को भी सुख नहीं मिला। अपना खसम ही जिसे छोड़कर चला गया। उसकी ससुराल क्या ! और, ससुर की तो वह करतूत। छिः, कैसी भद्दी घिन आती है।"

एक दूसरी बोली, "वहू का गहना-पाता ? साथ ले गई न ?"

"तारक चाचा ने यह पहले ही कह दिया था कि वहू जैसी सजी-गुंजी ससुराल आई थी, उसे वैसे ही सजा-गुजाकर नैहर भेजना होगा। यों ही भेज दो, यह नहीं होने का।"

पहले वाले आदमी ने कहा, "चौधरी जी को पोते का मुंह देखने का इतना ही शौक था, तो दूसरी शादी ही कर लेते अपनी।"

"वह भी तो लोक-लाज की बात थी !"

"लोक-लाज का इतना डर था तो उस समय याद नहीं रहा। लाज-शरम का अब बाकी क्या रह गया ?"

बगल वाला बोल उठा, "आखिर इतना बखेड़ा करने की क्या पड़ी थी ? गांव में क्या लड़कों का अकाल था ? देख-सुनकर किसीको गोद ले लेते।"

निताई ने कहा, "आखिर उनकी अपनी घरवाली की ही बाल-बच्चा होने की उम्र खत्म हो गई है ? एक लड़का घर छोड़कर चला गया, तो वह दूसरा तो जन सकती थी—"

सभी हो-हो करके हंस उठे।

केदार ने कहा, "दुर्-दुर्, चौधरी जी की घरवाली को उस दिन तूने देखा नहीं ! कैसी बुढ़िया हो गई है। वह उपाय होता, तो चौधरी जी बाज आते ?"

लेकिन जिनकी इतनी चर्चाएं होतीं, जिनपर इतनी काना-फूसी चलती— उन लोगों को कोई आंखों देख नहीं पाते। पहले चौधरी जी खुद ही खेत-खलिहान देखने के लिए जाया करते थे। बगीचे का जिस दिन घेरा पड़ रहा था, वह सुबह से खड़े-खड़े निगरानी करते रहे। लेकिन इस घटना के बाद से किसीको उनकी चुटिया भी नहीं दिखाई देती।

लोग कहते, "अहा, उनके जी को बेहद ठेस लगी है।"

"काहे को ठेस, किस बात की ?"

"वाह, इस बुढ़ापे में वैसे जवान बेटे के चले जाने से बाप को दुःख नहीं होता ?"

"लेकिन ऐसे आदमी को दुःख होना ही उचित है। अच्छा हुआ है, बहुत खूब हुआ है। चौधरी जी ने सोचा था, सिर के ऊपर भगवान नाम की कोई चीज नहीं है। सोचा था, डूबकर पानी पीने से किसीको पता नहीं होगा।"

एक ने कहा, "लेकिन सो जो कहो, वहू खूब है। वहू जैसी वहू ! और कोई होती, तो फांसी लगा लेती। यह वहू चूंकि पढ़ी-लिखी है, इसलिए सबके सामने ससुर के मुंह पर जूता मारकर चली गई।"

"जैसा जंगली ओल, वैसी ही जबरदस्त इमली।"

रेल-बाजार के नोनी डाक्टर को बुलाने से मोटी रकम का दंड देना पड़ता है। बूढ़े मालिक जब बीमार थे तो नोनी डाक्टर रोज ही आता था। उस समय बेहिसाब रुपया पीटा उसने। अब फिर कौन बीमार है ! यों मामूली बीमारी होती, तो नोनी डाक्टर तो नहीं आता।

उसके बाद से नोनी डाक्टर रोज ही आने लगा।

कैलास गुमाश्ता को देखते ही सब पूछते, "क्यों भई, तुम्हारी मालकिन अब कैसी हैं ?"

कैलास जरा गम्भीर होकर कहता, "अच्छी नहीं हैं जी ! बीमारी बढ़ गई है—"

कैलास के चले जाने पर पीछे सब आपस में कहने लगते, "बढ़ेगी नहीं ? पाप का फल कहां जाएगा ? बेचारी बहू रोती हुई चली गई, उसके आंसू क्या निष्फल जाएंगे ?"

इस बात पर सभी हामी भरते। घर पर बुरे ग्रह की छाया पड़ रही है, यह तो सब लोग अपनी आंखों के आगे ही देख रहे थे। शाम होते ही चंडी-मंडप की रोशनी गुल हो जाती। बड़ी देर तक परमेश मौलिक हिसाब की बही गोद में लिए चौधरी जी की राह देखा करता। फिर भी जब वह आते नहीं दीखते, तो दीनू से खबर भिजवाता। दीनू आकर बताता, "छोटे बाबू अब आज बही-पत्तर नहीं देखेंगे। बोले, कल दिन में देखेंगे।"

उसके बाद एक दिन वज्रपात हुआ।

सबने सुना, 'चौधरी जी की पत्नी चल बसीं।'

अद्भुत मृत्यु ! जरा भी रुलाई की आवाज नहीं। घर में रोने वाली रह ही कौन गई थी, जो रोए। गौरी जाकर बिहारी पाल की पत्नी को बुला लाई। वह आई। बिहारी पाल स्वयं भी आया। सुनकर और भी बहुतेरे लोग आए। बूढ़े तारक चक्रवर्ती, लाठी ठुक-ठुक करते हुए वह भी आए।

बिहारी पाल की पत्नी जब अन्दर गई, तो देखा, चौधरी-गृहिणी अपलक आंखों छत की ओर देख रही हैं। लगा, वह मानो कह रही हों—तुम लोग मुझे बताओ कि मैंने कौन-सा दोष किया है, क्या गलती की है, कहो ?

लेकिन उस समय कौन तो उसे यह कहे और कौन तो उसके इस प्रश्न का उत्तर दे ! प्रश्न और उत्तर के बहुत ऊपर उठकर दूसरी एक महाजिज्ञासा के आमने-सामने होकर उसका यह छोटा-सा प्रश्न बिलकुल निरर्थक हो गया था। टोले के लोगों ने नदी किनारे के मरघट में चिता पर जब उसकी लाश को रखा, उस समय भी उसकी आंखों की पुतलियों में वह प्रश्न अनबूझ होकर झूल ही रहा था। और, आग की लपलपाती लपटों में जब उसकी देह जलकर भस्म हो गई, तब भी शायद उसके उस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। इसीलिए धुआं बनकर वह प्रश्न अकाश-बतास को छापता हुआ दिशा-दिशा में दौड़ता रह गया। अनबोले शब्दों में मानो जल-स्थल-अंतरिक्ष को पूछता रहा—तुम सब बताओ, मैंने कौन-सा अपराध किया, मुझे बताओ···

उसके बाद ?

उसके बाद चौधरी जी बिलकुल अकेले हो गए। एकबारगी अकेले। वह वही जो दुतल्ले के कमरे में चले गए, सो फिर नहीं निकले। गौरी रसोई करके खाना उनके कमरे में पहुंचा आती। जाने वह आप ही आप क्या तो बुदबुदाते रहते और जब सांझ हो जाती, सारे खिड़की-दरवाजे बन्द करके बिछावन पर लुढ़क पड़ते।

उनका भी वही एक प्रश्न। तुम लोग बता दो कि मैंने कौन-सा अपराध किया है—मेरे पुरखों की यह जायदाद, यह दौलत, इतना स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति, इतना गहना-गुरिया, जगह-जमीन, बगीचा-पोखरा—यह सब मैं किसके हाथों सौंप जाऊंगा? किसके जिम्मे देकर मैं निश्चिन्त हो सकूंगा? सरसों-चने-धान-सन के ये खेत; ये पोखरे-जलकर, मकान-बाग—इसके हुकूक किसके होंगे? इन सबको किसके उत्तराधिकारी में देकर मैं अतींद्रिय लोक में जाकर अनन्त काल तक अक्षय होकर रहूंगा?"

किसी-किसी दिन रात को घड़-घड़ की आवाज होती—ठीक वैसी ही आवाज जैसी गला बंद हो जाने पर आदमी के निकलती है। बूढ़े मालिक की अशरीरी उपस्थिति मानो उन्हें आतंकित कर देती थी।

उनकी अशरीरी उपस्थिति से परेशान होकर वह शाम को खिड़की-किवाड़ सब बंद कर देते थे। फिर भी छुटकारा नहीं। बूढ़े मालिक का गला उस समय स्पष्ट हो उठता। वह साफ स्वर में कहते—दया-माया मत करना बेटे, किसी पर दया-माया मत करना, दया-माया की नहीं कि जहन्नुम में गए—यह जगह-जमीन, बाग-तालाब—कुछ भी नहीं रहेगा।

चौधरी जी कहते—मगर मैंने तो दया-माया नहीं की है बूढ़े मालिक, मैंने तो किसीपर दया नहीं दिखाई, माया नहीं की। मैंने किसीको लगान की एक पाई नहीं छोड़ी, जिसने मुझे ठगना चाहा, मैंने उसे छोड़ा नहीं, मैंने अपना स्वार्थ सिद्ध के लिए अपने पतोहू तक को नहीं छोड़ा। फिर? फिर मेरी यह दुर्दशा क्यों हुई? आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करने के बावजूद मैं क्यों ऐसा तबाह हुआ, बरबाद हुआ, कहीं का नहीं रहा?

किसीसे भी इसका जवाब नहीं मिलता। उस समय चौधरी जी के जीवन से सभी विच्छिन्न हो गए थे। सबके सम्पर्क से वह स्वयं भी अलग हो चुके थे। कुछ ऐसी हो पड़ी थी जिन्दगी उनकी, जिसे पकड़ा भी नहीं जा सकता, छोड़ा भी नहीं जा सकता। अपनी जन्मभूमि और अपने घर से भी वह छूट गए थे। कोई आता भी तो वह उससे नहीं मिलते। जैसे, अपने किए अपराधों के बोझ से वह खुद ही थक गए हों, विभ्रांत हो गए हों, परेशान हो गए हों।

साला बाबू ने सारी बातें सुनीं। उनकी नजरों के सामने से बहुतेरे साल, बहुत सारे सपने, अनेकों स्मृतियां छाया-छवि-सी बड़ी जल्दी निकल गई। कब दीदी की शादी हुई थी और अपने बीवी-बच्चे को छोड़कर वह भागलपुर से यहां चला आया था। उसके बाद से इस नवाबगंज को केन्द्र करके ही उसकी जिन्दगी जाने कितनी और की परिक्रमा करती रही। सदानन्द जब छोटा था, तो उसे लेकर वह कहां-कहां गया। कितनी बार राणाघाट में राधा के यहां,

कितनी बार कालीघाट । जब भी रुपयों की जरूरत हुई, आकर दीदी के सामने हाथ फैलाया । रुपया मांगते ही दीदी ने संदूक खोला और दोनों हाथों रुपया निकालकर उसे दिया । उस दीदी के गुजर जाने की सुनकर प्रकाश जैसे आदमी ने भी असहाय की नाईं अन्तिम बार घर की ओर देखा उसे लगा, सब खत्म हो गया । सब दिन के लिए खत्म हो गया ।

"और जीजाजी ? जीजाजी कहां गए ?"

बिहारी पाल ने बताया, "तुम्हारे जीजाजी कुछ दिन तक तो यहीं थे । एक दिन मैंने देखा, बैलगाड़ी से स्टेशन की ओर जा रहे हैं । मैंने उनसे पूछा, 'कहां चले चौधरी जी ?' वह बोले, 'सुना, ससुर जी बीमार हैं, भागलपुर जा रहा हूं ।' "

साला बाबू चौंका, "फूफाजी बीमार हैं ? ऐं ? कैसी बीमारी ?"

बिहारी पाल ने कहा, "वह क्या मुझे मालूम है ? तुम्हारे जीजाजी के महीना-भर तो हो गया, अभी तक लौटे तो नहीं । और, यहां लौटें भी तो किसलिए ? यहां अब रहा ही कौन ? तुम्हारी दीदी नहीं रहीं, तुम्हारा भांजा नहीं रहा, तुम्हारे भांजे की बहू तक नहीं रही । फिर यहां अकेले-अकेले क्या पड़े रहें ? किसके लिए पड़े रहें ? रही सम्पत्ति की बात, सो जिनके लिए सम्पत्ति थी, जब वही नहीं रहे तो इसे क्या देखें ?"

साला बाबू वहां और नहीं रुका । बोला, "चलता हूं···"

बिहारी पाल ने फिर कहा, "फिर तुम्हारे फूफाजी के भी तो कोई नहीं है । कीर्तिपद बाबू के ? उनके भी तो अगाध रुपया है । सुलतानपुर की इतनी बड़ी सम्पत्ति । उनके मरने पर सब तो तुम्हारे जीजाजी को ही मिलेगी । तुम्हारे फूफा को और कोई बाल-बच्चा तो है नहीं ?"

प्रकाश ने कहा, "नहीं ।"

"फिर ? उस जायदाद के अब वही तो वारिस हैं । तुम्हारे जीजाजी के बाद फिर जायदाद किसको मिलेगी ? सदा कहीं लौट आया तो उसे मिलेगी या फिर तुम्हें ।"

इतनी बात प्रकाश के ख्याल में नहीं आई थी । तो ? तब तो फूफाजी की भी सारी सम्पत्ति उसीके कपाल पर नाच रही है । अजीब है । इस बात की याद आते ही प्रकाश चंचल हो उठा । बोला, "तो, चलता हूं पाल बाबू···"

उसके बाद उसने औरों की तरफ देखकर कहा, "चलता हूं भैया, तुम लोग कुछ ख्याल मत करना । फूफाजी बीमार हैं । ऐसे में मेरा बाहर रहना उचित नहीं ।"

वह रेल-बाजार की तरफ लपका । जल्दी जाने से दो बजे की ट्रेन मिल जाएगी । पीछे से बिहारी पाल ने पूछा, "खाने का क्या होगा ? दो मुट्ठी खाकर जाते ।"

भाड़ में जाए खाना । रुपया फेंको तो ढेरों खाना है । अभी अगर प्रकाश जाकर यह देखे कि फूफाजी चल बसे तो रास्ता साफ । जीजाजी अकेले कितना खाएंगे । देख-भाल के लिए भी तो आदमी की जरूरत होगी । फिर

जीजाजी ही कितने दिनों के मेहमान हैं ? वह चल बसें, तब ?

यह याद आते ही प्रकाश ने दोनों हाथ जोड़कर कपाल से लगाया—"ऐ काली मैया, ऐ मां मंगलचंडी—मैंने जीवन में कोई पाप नहीं किया है, कभी कोई अन्याय नहीं किया है, जीवन में कभी किसीकी रकम नहीं हड़पी, जरा मुझपर कृपा करो मैया ! मैं बड़ा अनाथ हूं। कौन दौलत जमा करता है और कौन खाता है ! हे इच्छामयी, सब तुम्हारी इच्छा है, हम सब तो बस निमित्त-भर हैं। जय मां काली, जय मां मंगलचंडी !"

उसने मुबारकपुर की राह पकड़ी। मुबारकपुर के बाद ही रिक्शा-पड़ाव है। वहां से एक ही सांस में स्टेशन।

और वह हन्-हन् करता हुआ रास्ता तै करने लगा।

समरजित बाबू ने तै ही कर लिया था। इस रोज-रोज की खिच-खिच से सदा के लिए एक पक्का बन्दोबस्त कर लेना ही ठीक है। उन्होंने राणाघाट स्टेशन में जिस दिन सदानन्द को देखा था, उसी दिन से एक हल्की-सी इच्छा उनके मन में स्थिर होने लगी थी। फिर घर में जितना ही यह झंझट-झमेला बढ़ता गया, उनकी वह इच्छा मन में और दृढ़ ही होती गई। अपनी मौरूसी जायदाद का ख्याल करके ही एक दिन उन्होंने मुन्ने को अपना बना लिया था। सोचा था, लड़के का स्वभाव-चरित्र भी अच्छा है, वंश भी अच्छा है। उस समय विधवा मां के सिवाय मुन्ने को और कोई नहीं था। जब तक वह बुढ़िया जिन्दा रही, ये उसे हर महीने पांच सौ रुपये भेजते रहे। वह चल बसी, तो उस जिम्मेदारी से बरी हुए।

एक दिन मुन्ना इनके सामने आया।

समरजित बाबू ने पूछा, "क्या बात है ? कुछ चाहिए ?"

वह बोला, "नहीं। चाहिए कुछ नहीं।"

"तो ?"

मुन्ने ने कहा, "मैंने एक नौकरी कर ली है।"

नौकरी ! सुनते ही समरजित बाबू चौंक उठे थे। बोले, "नौकरी कर [illegible] है ? मतलब ? नौकरी के लिए तुमसे किसने कहा ? कैसी नौकरी ?"

"पुलिस की।"

पुलिस की नौकरी ! समरजित बाबू के आश्चर्य की [illegible], बोले, "एकाएक यह नौकरी कर ली ? तनख्वाह कितनी है ?"

"डेढ़ सौ रुपये।

डेढ़ सौ रुपयों से तुम राजा बनोगे ? मैं तो हर महीने [illegible] ही दिया करता हूं। और इस घर के लड़के होकर [illegible] नौकरी करोगे ?"

गृहिणी ने कुछ कहा-सुनी-सी सुनी, सो वहां आ गईं। [illegible]

जी, मुन्ने से क्या कह रहे हो ?"

समरजित बाबू बोले, "ज़रा सुन लो, तुम्हारे लड़के ने डेढ़ सौ रुपये माह-वार की पुलिस की नौकरी कर ली है..."

गृहिणी ने कहा, "एं ? क्यों रे मुन्ने, तुझे नौकरी करने को किसने कहा ?"

मुन्ने ने कहा, "किसीने कहा नहीं।"

"किसीने कहा नहीं तो फिर नौकरी क्यों कर ली ? दरखास्त दी थी ?"

"नहीं।"

दूसरे लड़कों के बाप-मां लड़के की नौकरी सुनकर खुश होते हैं, खुश होकर देवी-देवता को पूजा चढ़ाते हैं। लेकिन इस घर में उस दिन उलटी ही बात हुई। लड़के की नौकरी का समाचार उन्हें शोक-समाचार-सा लगा। मुन्ना फुटबाल खेलने के लिए रोज़ मैदान जाया करता था। वहीं से वह अपने एक मित्र के साथ उसके घर गया था। मित्र के पिताजी पुलिस के एक बड़े अफसर थे। मुन्ने की तंदुरुस्ती उन्हें भा गई। पूछा, "तुम नौकरी करोगे ?"

पता नहीं, मुन्ने के जी में क्या आया, उसने कह दिया, "हां—"

सच पूछिए तो तंदुरुस्ती से ही मुन्ने की वह नौकरी लगी। फुटबाल का अच्छा खिलाड़ी होना भी काम कर गया। उसकी तंदुरुस्ती देखकर ही समरजित बाबू ने भी अपना लड़का बना लिया था। दूसरों को जिस चीज़ के होने से जीवन सुखी होता है, मुन्ने के लिए वही काल हो गई।

शुरू में तो समरजित बाबू ने कहा, "नौकरी छोड़ दो तुम। जिसकी हालत तुमसे बुरी है, यह नौकरी अगर उसे मिल जाएगी, तो वह बेचारा जी जाएगा।"

लेकिन मुन्ने को उस समय क्षमता का लोभ था। घर बैठे खाने में आराम तो है, क्षमता नहीं है। नौकरी में वह बात है। दस पर हुकूमत करने का मौका मिलेगा। दस जने आदर करेंगे। चोर-गुंडे-बदमाश भी इज्ज़त करेंगे।

बाद में समरजित बाबू ने देखा, वह अब ज्यादा रात करके घर लौटा करता है। कभी-कभी लौटता ही नहीं। पूछने पर कहता, "ड्यूटी थी।" फिर एक दिन देखा, मुंह से शराब की बू आ रही है। यह देखना था कि उन्होंने विलम्ब नहीं किया। एक खूबसूरत लड़की खोजकर उसकी शादी कर दी।

यह सारी घटनाएं सदानन्द के यहां आने से बहुत पहले की हैं। पर इन्हीं कुछ दिनों में सदानन्द ने सब कुछ जान लिया। उस दिन रात को जब चाचाजी से उसकी कहा-सुनी हुई, महेश ने जिस दिन उसे घर से बाहर निकाल दिया था, उसी दिन से उसका संदेह गहरा हो गया था। आगे उस घटना की कई बार पुनरावृत्ति हुई। समरजित बाबू धीरे-धीरे बेचैन से हो रहे थे। सदानन्द से पहले की तरह ठीक से बात नहीं करते थे। सदानन्द लेकिन गले तक ऊब गया था। मौका मिलते ही बाहर निकल जाता। कहां नवाबगंज का वह खुला हुआ वातावरण और कहां इस भीड़-भरे शहर की किच-किच। कई दिन पहले ही यहां दंगा हो चुका था, चलने-फिरने में सबको डर लगता था। फिर भी घर से बाहर निकले बिना किसीसे रहा भी नहीं जाता। परन्तु इस शहर को छोड़कर वह जाए भी तो कहां ? घटनाचक्र से अगर वह यहां आ ही पड़ा है, तो यहां

करेगा ही क्या ? यह दुनिया ही शायद ऐसी है। यहां ज़रूरत के नाते के सिव आपस में किसीका कोई सम्बन्ध ही नहीं। ज़रूरत हो तो मैं तुमसे बात करूंग तुम्हारे साथ एक विस्तर पर सोऊंगा। ज़रूरत खत्म हो जाएगी कि मैं तुम्हें दू कर दूंगा। लेकिन तुमसे स्नेह-प्रेम का नाता क्यों नहीं रहेगा ? ज़रूरत बजाय तुम स्नेह से क्यों नहीं अपनाओगे ?

उस दिन रास्ते से जाते हुए देखा, एक बूढ़ी-सी औरत उसे देख रही है सदानन्द को ताज्जुब हुआ, वह उसकी तरफ इस तरह से क्यों देख र है।

लगा, बूढ़ी गंगा नहाकर लौट रही है। अचानक इसे देखकर ठिठ पड़ी है।

सदानन्द ने पूछा, "आप मुझसे कुछ कहेंगी क्या ?"

बूढ़ी ने पूछा, "तुम्हारा घर कहां है बेटे ?"

सदानन्द ने कहा, "मैं बहू बाजार में रहता हूं।"

"बहू बाजार। बहू बाजार रहते हो तो इधर क्यों आए बेटे ? कु काम है, क्यों ?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। यों ही घूम रहा हूं। आपको कोई का है ?"

वह बोली, "काम तो था बेटे पर सोचती हूं, तुमसे कहूं कैसे ! बाम्ह हो न ?"

सदानन्द ने कहा, "हां। मैं ब्राह्मण हूं। क्यों ?"

"मेरे कहने से तुम क्या पतियाओगे बेटे ? तुम लोग तो आजकल छोरे-छोकरे हो, ठाकुर-देवता में तुम लोगों का विश्वास नहीं है। जभी सो रही हूं, कहूं कि न कहूं।"

सदानन्द ने कहा, "कहिए न, क्या कहना है ?"

बुढ़िया बोली, "मैंने एक सपना देखा था बेटा !"

"सपना ?"

"हां बेटा, सपना। देवता ने सपना दिया था कि सवेरे नहाकर लौटते हुए अगर किसी ब्राह्मण के लड़के पर नज़र पड़े तो उसे अपने घर लाकर उसकी चरण-पूजा करना।"

सदानन्द को अचम्भा हुआ। यह कैसी बात है ! चरण पूजा ! बोला, "आप मेरे चरणों की पूजा करेंगे ? क्यों ?"

बूढ़ी ने कहा, "कहा तो बेटे, देवता ने सपना दिया है। तुम मेरे साथ ज़रा मेरे यहां चलोगे ? मैं तुम्हारी चरण-पूजा करूंगी।"

सदानन्द को सन्देह हुआ। जान नहीं, पहचान नहीं, जिसके-तिसके घर क्यों जाए ? बोला, "देखिए, एक तो मैं आपको पहचानता नहीं, फिर यह समझ नहीं पा रहा हूं कि आप मेरी चरण-पूजा क्यों करेंगी ? आपने ऐसा सपना ही क्यों देखा ! और, मेरे सिवाय कलकत्ता में क्या दूसरा ब्राह्मण नहीं है ? आप अपने घर के पास ही तो कितने ब्राह्मणों को पा जाएंगी।"

बुढ़िया बोली, "उससे तो काम नहीं चलेगा बेटे ! नहाकर उठते ही सबसे पहले मैंने तुम्हींको जो देखा। दूसरे किसी ब्राह्मण के चरण-पूजन से मुझे कोई लाभ नहीं होगा।"

सदानन्द को बात फिर भी समझ में नहीं आई। बोला, "लाभ से क्या मतलब ? मेरे चरण की पूजा करने से आपको क्या लाभ होगा ?"

बुढ़िया बोली, "अपना दुखड़ा तुमसे क्या रोऊं बेटे ! मुझे वात की बीमारी है। इस मर्ज से मैं ज़ेरबार हो गई। आखिर बाबा तारकनाथ के मन्दिर में जाकर मैंने बली दिया। बाबा ने सपना दिया—पूर्णमासी के दिन गंगा नहाना। गंगा नहाकर आते हुए सबसे पहले जो ब्राह्मण मिले, उसकी चरण-पूजा करना। तेरी बीमारी अच्छी हो जाएगी। मेरी कमर में इस बुरी तरह दर्द रहता है कि मैं बिलकुल बैठ ही नहीं सकती। तो, तुम मेरा इतना एहसान नहीं करोगे बेटे !"

अद्भुत ही प्रस्ताव था। सदानन्द ने किसीकी जबानी भी ऐसी बात कभी नहीं सुनी। पूछा, "आप मेरे चरणों की पूजा कैसे करेंगी ? कितना समय लगेगा इसमें ?"

"तुम्हें ज्यादा देर की कष्ट नहीं दूंगी। तुम्हारे पैरों पर फूल और गंगाजल डालकर प्रणाम करूंगी। बाजार से मिठाई लाकर दूंगी। तुम प्रसाद कर देना। बस, आधे घंटे में तुम्हें फुरसत दे दूंगी, ज्यादा समय नहीं लगेगा—"

"आपका घर यहां से कितनी दूर है ?"

"बस, पास ही है।"

सदानन्द ने कुछ सोचकर आखिर कहा, "चलिए—"

उसकी चरण-पूजा जैसी मामूली बात से अगर बुढ़िया को वात की पीड़ा से राहत मिले, तो हर्ज क्या है ? वह बुढ़िया के पीछे-पीछे चला। एक गली से दूसरी गली में कुछ दूर तक चलने के बाद बुढ़िया बोली, "यही मेरा घर है, आओ बेटे—"

बूढ़ी सीढ़ियों से ऊपर गई। एक दरवाज़े के सामने खड़ी होकर कड़े खटखटाने लगी। किसीने दरवाजा खोल दिया। बगल में ही एक कमरा। सदानन्द को उस कमरे में ले जाकर बूढ़ी ने कहा, "तुम ज़रा देर यहां बैठो—"

सदानन्द को वहां बैठाकर बुढ़िया घर में जाने कहां चली गई।

उसके बाद आवाज को धीमी करके पुकारने लगी, "कहां है री बतासी, कहां—"

बतासी अंदर क्या कर रही थी, कौन जाने ! मौसी के पुकारने पर सामने आकर बोली, "क्या है मौसी ?"

मौसी ने कहा, "अरी, उस लड़के को इतने दिनों के बाद पाया है।"

"किस लड़के को ?"

मौसी ने कहा, "अरे वही, जिसे खोजने के लिए बड़े बाबू को तेरी

मारफत एक तसवीर दी थी। जिसके लिए प्रकाश से सौ रुपये पेशगी लिए थे। मिलने पर नौ सौ रुपये और देने की बात है, तुझे याद नहीं है ?"

"तुमने उसे कैसे पहचाना ?"

मानदा मौसी ने कहा, "पहचानती नहीं भला ? बड़े बाबू को देने के लिए उसीकी तो तसवीर दी है। तूने बड़े बाबू को तसवीर दे दी थी ?"

बतासी ने कहा, "वह तसवीर तो मैंने उसी दिन दे दी थी।"

मानदा मौसी ने कहा, "तो अभी वह तस्वीर कहां है, बड़े बाबू के पास या तेरे पास ?"

"उन्हींको दिया था, वह उन्हींके पास है।"

"बड़े बाबू तो आज आएंगे न ?"

बतासी ने कहा, "अभी-अभी सवेरे तो गए हैं। आजकल उनके घर में भी झमेला चल रहा है। कलकत्ता में रहा तो, दफतर से सीधे यहीं आएगा।"

मानदा मौसी ने कहा, "उस छोरे को तो चकमा देकर मैं तेरे बाहर के कमरे में बिठा आई हूं। तू उसे बड़े बाबू के आने तक किसी प्रकार से रोक नहीं सकेगी ? तू खाने-पीने का कुछ इंतजाम कर। मैं जाती हूं, उसे देर से बिठला आई हूं।"

समरजित बाबू के पूर्वजों ने गांव में जगह-ज़मीन तो की थी, पर उन्होंने यह खूब समझा था, गाव में जगह-ज़मीन जितनी भी क्यों न हो, कलकत्ता में कोई सम्पत्ति करनी ही पड़ेगी। दौलत जब जरूरत से ज्यादा हो जाती है तो यह समस्या उठ खडी होती है कि उसे कहां लगाए। इसी सिलसिले में वही पुराने समय में वहू बाजार का यह मकान हुआ। उस समय बाबू लोग रहते गांव में थे। वहीं से सारा सामान आता था। लेकिन लडकों की पढ़ाई-लिखाई के लिए कलकत्ता रहना पड़ता था। वह ऐसा समय था, जब होस्टल-बोर्डिंग के होते हुए भी लोग आजकल की तरह बच्चों को वहां रखकर निश्चिन्त नहीं हो सकते थे। खाने-रहने की तकलीफ के सिवाय भी एक डर था—कुसंग मे पड़कर लड़का कहीं ब्रह्म या ईसाई न हो जाए। फिर, बदचलन हो जाने का डर था।

इसीलिए समरजित बाबू के पूर्वजों में से कोई भी यहां पढ़ते हुए न तो कुसंग में पड़कर शराब के आदी हुए, न ईसाई या ब्रह्म ही हुए। बल्कि देवता-ब्राह्मण के प्रति भक्ति और पूजा-पाठ में निष्ठा ही उनकी बढ़ती आई है। उसी वंश के अंतिम पुरुष हैं ये समरजित बाबू और बड़े कष्ट से वह अकेले ही अपने वंश की उस सांस्कृतिक-परम्परा को खींचते हुए ले आए थे इतनी दूर तक। कहीं बाढ़ आती या अकाल पड़ता तो उन्हें मन में कष्ट होता। बाप-दादा के रुपयों को ऐसे काम में खर्च कर पाते तो उन्हें लगता

कि उन्होंने रुपयों का सदुपयोग किया है। दान भी करते थे। अच्छे कामों के लिए दान देने में उन्हें दुविधा नहीं होती थी। रामकृष्ण मिशन की जितनी भी शाखाएं थीं, सबमें समय-समय पर रुपये भेजा करते थे। रुपये भेजने से उनके मन का कष्ट मिटता और राहत मिलती।

उद्वेग उन्हें बस उसी एक विषय का था। लड़का फुटबाल अच्छा खेलता है, यह जानकर उन्हें अच्छा लगा था। खेल के लिए स्कूल से उसे जो बहुत-से मेडल मिले थे, इसके लिए वह उसे प्रोत्साहित ही किया करते थे। लेकिन वही लड़का जब पहली बार शराब पीकर घर आया, तो उन्हें खेद हुआ।

वह जाकर लड़के के आमने-सामने खड़े हुए। मुन्ना लड़खड़ा रहा था। पूछा, "तुमने शराब पी है ?"

बहुत तंग करने के बाद उसने जवाब दिया, "देख ही तो रहे हैं कि पी है, फिर नाहक ही पूछ क्यों रहे हैं ?"

समरजित बाबू आपे से बाहर हो रहे थे। उस हालत में वह शायद कुछ कर भी बठते, लेकिन पत्नी ने आकर समरजित बाबू को पकड़ लिया। बोली, "कर क्या रहे हो ?"

पत्नी ने मुन्ने को ले जाकर कमरे में लिटा दिया। पति के पास आकर बोली, "तुम करने क्या जा रहे थे ? जानते ही तो हो, वह बड़ा गुसैल लड़का है, उससे उस तरह से बात करनी चाहिए ?"

तब तक समरजित बाबू ने अपने को सम्भाल लिया था। आमतौर से वह जल्दी बिगड़ते नहीं। लेकिन उस दिन उनके अरमान पर ही चोट लगी थी। इतने अरमान से उन्होंने जिस लड़के को अपना बनाया, यह चोट उसीकी ओर से आई, इसीलिए शायद उनके कलेजे को ज्यादा ठेस लगी।

इस घटना के कुछ दिन बाद ही उन्होंने लड़के का ब्याह कर दिया, देर न की। लेकिन जो सोचा था, वह नहीं हुआ। उसके बाद जैसे-जैसे दिन बीतते गए, मन-ही-मन उन्हें जितनी तकलीफ होती रही, दुनिया से उन्हें उतना ही वैराग्य होता गया। पूजा-पाठ की लगन ज्यादा बढ़ती गई। गंगा में डुबकी लगाते समय भगवान को और अधिक पुकारा किया। एकदम अनिवार्य नहीं होने से वह कभी गांव नहीं गए। और जब-जब गए तो कलकत्ता से कुछ दिनों के लिए छुटकारा पाने की नीयत से ही गए। पुरखों के बनाए उस विशाल मकान के अंदर जाकर बहुत बार वह खाट पर चुपचाप लेटे रहा किए। नायब-गुमाश्ता ने जगह-जमीन की फसल का हिसाब दिया; धान-पाट-सब्जी की बिक्री के रुपये दिए। उन्होंने वह सब लिया। पर बाल की खाल खींचने जैसा लेखा में डूबकर उन्होंने अपनी इस छुट्टी की शान्ति पर आंच नहीं आने दी। सवालों की मार से गुमाश्ता की गलती निकालने की भी कोशिश नहीं की। आखिर यह सब करें भी किसके लिए ? एक अकेले की बात। यह भी जीवन की मीयाद उनकी खत्म होने को आ गई। वह समझते

थे कि उनके साथ ही यह सारा कुछ एक दिन बरबाद हो जाएगा। यहां फिर कोई नहीं आएगा। जो लोग यहां हैं, वही इसका लाभ उठाएंगे। सुतरां मोह बढ़ाने से क्या फायदा !

परन्तु सदानन्द के आने के बाद से उनकी आशा फिर से मानो अंकुराने लगी थी। पत्नी कमरे में आती, तो बुलाते, "सुनो—"

पत्नी उनके करीब जाती।

वह कहते, "मैंने एक बात सोची है, मगर किसीसे कहना नहीं। यह सदानन्द तुम्हें कैसा लगता है ?"

पत्नी कहती, "अच्छा ही तो। लेकिन क्यों ? यह क्यों पूछ रहे हो ?"

"यों ही पूछ रहा हूं। इतने दिनों से घर में है तो। तुम भी तो देख रही हो, इसका चाल-चलन कैसा लगता है ?"

पत्नी कहती, "चाल-चलन की मैं क्या जानूं, मैं तो घर के अन्दर रहती हूं, वह रहता है बाहर। मैं क्या देखने गई हूं कि वह क्या करता है, क्या नहीं करता है ?"

समरजित बाबू बोले, "खैर, तुम्हें जो मालूम हो, मुझे लेकिन यह लड़का जंचा है। मैंने महेश को उसके बारे में खोज-पूछ के लिए उसके गांव भेजा है।"

"कैसी खोज-पूछ ?"

"घर में उसके कौन-कौन हैं, क्या स्थिति है—यह सब जानने के लिए। यहां से नवाबगंज कुछ खास दूर तो नहीं है। राणाघाट से तो और भी नज़दीक है। सुबह जाओ तो रात को ही लौटा जा सकता है।"

पत्नी ने पूछा, "वह सब जानकर तुम क्या करोगे ?"

समरजित बाबू ने कहा, "सदानन्द से मैंने जो-जो भी पूछा है, उसने तो सबका ठीक ही ठीक जवाब दिया है। अब देखता हूं, महेश क्या खबर लाता है। फिर मेरा ख्याल है, वह अगर राजी हो, तो उसे सब दिन के लिए यहीं रख लूंगा।"

"रख लोगे, मतलब ? एक लड़के को गोद लेकर भी क्या तुम्हारा अरमान पूरा नहीं हुआ ? तुमने उसका ब्याह कराया, उसकी बहू यहीं है। इसे रख लोगे तो उसका क्या होगा ? वह कहां जाएगी ?"

समरजित बाबू ने कहा, "तुम क्या सोचती हो, मैंने इन मुद्दों पर सोचा नहीं है ? बहू चाहे तो मेरे साथ रहे या वह मुन्ना के साथ चली जाए। मैं न तो किसीको इस घर में रहने के लिए ही कहूंगा, न ही यहां से चले जाने को कहूंगा। लेकिन ज़िन्दगी के इन आखिरी दिनों में मुझसे अब यह सब बरदाश्त नहीं हो रहा है। मैं कम-से-कम जाने के पहले इन आंखों यह देख जाना चाहता हूं कि मैं घर में एक ऐसे को रख आया, जो सही मानों में आदमी है। मेरे पुरखों की जोड़ी हुई यह जायदाद एक नालायक के हाथों पड़ गई, यह सोचने से मुझे परलोक में भी चैन नहीं मिलेगी। इस मामले में तुम कोई एतराज़ मत करना—"

पत्नी ने कहा, "खैर, तुम तो कह रहे हो, लेकिन उसके तो मां-बाप हैं,

भाई-बहन हैं—उनको अगर यह मंजूर न हो ?"

"उन सबसे ऐसी ही पटती होती, तो भला यह घर छोड़कर यों भाग आता ?"

"क्यों भाग आया है, तुम क्या यह जानते हो ?"

"वह सब मैं अब पूछूंगा। इसीलिए तो महेश को वहां भेजा है। महेश आकर क्या बताता है, पहले यह देख लूं।"

इसके बाद उन्होंने पूछा, "बहू कहां है ?"

"बहू अपने कमरे में सोने गई थी। सो गई शायद।"

"बहू से लेकिन तुम यह सब कह मत देना। यह मत सोचना कि मैं बहू को किसी प्रकार से वंचित करूंगा। मैं जब बहू बनाकर उसे अपने घर ले आया हूं, तो उसके भरण-पोषण का सारा इंतज़ाम करके ही मैं यह सब करूंगा। मुन्ना रहे चाहे नहीं रहे, बहू को कोई कष्ट न होगा।"

नीचे लेटे-लेटे सदानन्द आकाश-पाताल सोच रहा था। उसे इसकी भनक भी नहीं थी कि उसीके सिर के ऊपर के एक कमरे में उस समय दो जने उसी-के भविष्य के लिए जाल बिछा रहे हैं—दुर्भावना का। कि बाहर आवाज़ हुई और किसीने दरवाजा खोल दिया।

अन्दर से महराज ने कहा, "कौन ?"

"मैं हूं, महेश। दरवाजा खोलो महराज जी !"

दिन-भर महेश का पता नहीं था। कहां था वह। सदानन्द अपने बिछावन पर से उठा। बाहर बरामदे पर जाकर खड़ा हुआ। देखा, महेश है। दिन-भर धूप-धूल में घूमने से मनुष्य के चेहरा जैसा ताम्रवर्ण का हो जाता है, वैसा ही महेश का चेहरा हो गया था।

"कहां थे महेश ? आज दिन-भर तुम दिखाई ही नहीं दिए।"

महेश हंसा। भर मुंह हंसी। बोला, "आप अभी तक सोए नहीं हैं ? खा तो चुके ?"

सदानन्द ने कहा, "मुझे इतने सवेरे नींद नहीं आती। तुम शायद सुबह ही निकल गए थे ?"

"हां। सुबह की ट्रेन नहीं पकड़ने से बेला हो जाती है। तीखी धूप लगने लगती है।"

"राणाघाट गए थे, क्यों ?"

"जी। बाबू ने भेजा था। अलस्सबाह ही गया था और अब कहीं लौट रहा हूं। जरा बाबू से मिल आऊं—"

महेश ऊपर चला गया। सदानन्द फिर अपने कमरे में आकर लेट गया। लेकिन नींद नहीं आई। राणाघाट ! महेश राणाघाट गया था ! राणाघाट के पार स्टेशन के बाद ही रेल-बाजार है। रेल-बाजार के पांच ही मील के फासले

पर नवावगंज । नवावगंज की याद आते ही वह मानो सदेह वहां पहुंच गया। लगा, वह अपने घर के सामने जाकर खड़ा हुआ। चारों ओर महोत्सव-सा। जाने कैसा तो उत्सव हो रहा है अन्दर। वह जो घर छोड़कर चला आया है, उसका वहां कोई दुःख नहीं, कोई पछतावा नहीं—कुछ भी नहीं है। सब लोग बड़े आराम से हैं। बरबारी-थान के मंगलचंडी मन्दिर के पास निताई हालदार की दूकान के चौतरे पर सभी ताश खेल रहे हैं। यह क्या? ऐसा कैसे हुआ? उसने इतना बड़ा आघात अपने मत्थे ले लिया, इतना बड़ा आघात उसने सबको देना चाहा, लेकिन किसीके भी मन में कोई दाग तो नहीं लगा? उसने तो सबके भले के लिए, सबके कल्याण के लिए ही ऐसा आचरण किया था।

अचानक देखा, नयनतारा खड़ी है।

पहनावे में एक बनारसी साड़ी। वही बनारसी, जो उसने ब्याह के समय पहनी थी। मांग में सिंदूर दमक रहा है।

उसकी नजर बचाकर सदानन्द चला आ रहा था। लेकिन नयनतारा ने उसे देख लिया था। बिलकुल उसके सामने आकर राह रोक ली। बोली, "तुम?"

सदानन्द ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया।

"तुम तो चले गए थे? फिर लौट आए?"

सदानन्द ने चारों ओर देखकर कहा, "अब लग रहा है, नहीं ही आया होता तो अच्छा था।"

"क्यों?"

"मैं चला गया, फिर भी कहीं उसका कोई असर तो नहीं हुआ कुछ? कहीं कोई दुःख नहीं, कोई परिवर्तन नहीं। तुम भी तो अब वैसी नहीं हो।"

नयनतारा ने कहा, "वैसी क्यों रहूंगी? तुमने क्या सोचा था कि तुम चले जाओगे तो संसार का चलना बंद हो जाएगा? आसमान पर चांद-सूरज नहीं उगा करेंगे? या कि मैं ही मांग में सिंदूर नहीं लगाऊंगी, मैं भी बनारसी साड़ी नहीं पहनूंगी? आखिर तुमने सोचा क्या था? सोचा था कि तुम्हारे चले जाते ही सब उलट-पुलट हो जाएगा?"

सदानन्द ने कहा, "हां। मुझसे ही गलती हुई थी।"

नयनतारा ने कहा, "सिर्फ गलती ही नहीं, तुमसे अन्याय भी हुआ था। लेकिन तुम्हारी गलती के चलते मैं भुगतने की नहीं, तुम्हारे अन्याय का हिस्सा लेने को मैं तैयार नहीं—इतना जान लो। तुमने सोच लिया था कि सबसे ताल मिलाकर नहीं चल करके तुम अपनी अक्षय कीर्ति छोड़ जाओगे। यह नहीं होने का। संसार यह नहीं होने देगा। मैं भी तुम्हें तथागत बुद्ध देव नहीं होने दूंगी, श्री चैतन्य देव भी नहीं होने दूंगी। इसीलिए आज मैंने इस ठाट से बनारसी साड़ी पहनी है, इस ठाट से मांग में सिंदूर लगाया है—घर में भी इसीलिए इतनी धूमधाम से लक्ष्मी की पूजा हो रही है। देख रहे हो न, तुम्हारे रहते हुए जितनी धूमधाम होती थी, तुम्हारे चले जाने के बाद उससे भी ज्यादा

धूमधाम हो रही है।"

"भैया जी ! भैया जी !"

किवाड़ पर एकाएक धक्के पड़े और सदानन्द की तंद्रा भंग हो गई। तो क्या वह इतनी देर तक सपना देख रहा था। इतनी ही देर में इतना सपना देख लिया। जिन लोगों को वह सदा के लिए छोड़ आया है, जिसे त्याग करके उसने चरम चोट पहुंचाई है, जिसकी जिन्दगी बरबाद करके वह चल देने की अनिश्चयता में अपना परित्राण ढूंढ़ रहा है—इस समय क्या उन्हींका सपना देखना था ?

"भैया जी !"

सदानन्द उठा। दरवाजा खोलकर देखा, महेश खड़ा है।

महेश सारा दिन राणाघाट में रहा। रेल से गया और आया। अभी तक अपना मुंह-हाथ नहीं धोया। इसी हालत में उसने ऊपर जाकर बाबू से बातें कीं। वहां से आया तो अब सदानन्द को पुकार रहा है। बोला, "आप सो गए थे क्या ? मैंने बाबू से कह दिया, आप जग रहे हैं…"

"तुम्हारे बाबू भी क्या अभी तक जग ही रहे हैं ?"

"जी। रात को उन्हें अच्छी नींद नहीं आती। वह भी जग रहे हैं और मां जी भी जगी हुई हैं। बने तो आप एक बार ऊपर जाइए, आपको बुला रहे हैं—"

सदानन्द ने कहा, "जा रहा हूं। मगर ऐसा क्या जरूरी काम है कि इसी वक्त बुला रहे हैं ?"

उसने गंजी पहनी और सीढ़ियों से ऊपर जाने लगा।

उस दिन दिन-भर बड़ी बेचैनी-सी महसूस करते रहे थे समरजित बाबू। महेश को नवाबगंज भेजा था। दिन ढला और सांझ हुई, तो उन्होंने एक बार घड़ी देखी। रात के जब आठ बजे गए, तो उन्होंने फिर घड़ी देखी। फिर रात के नौ बजे, दस बज गए। खा-पीकर सब लोग सो गए। पत्नी कमरे में आई, तो पूछा, "महेश अभी तक लौटा क्यों नहीं ?"

सोचा, गाड़ी लेट होगी। काफी रात गए, जब महेश आया, तो उन्होंने राहत की सांस ली। पूछा, "क्यों रे महेश, क्या हुआ ? नवाबगंज गया था ?"

महेश ने कहा, "जी, गया था। नवाबगंज क्या यहीं है ? रेल-बाजार में उतरने के बाद पांच कोस। पहुंचने में ही दो घंटे लग गए।"

"फिर ? वहां जाकर क्या देखा, वह बता ! भैया जी ने जो कहा है, सच है सब ? नरनारायण चौधरी नाम के वहां कोई हैं ? मकान कैसा देखा ? जमींदार हैं ?"

महेश ने कहा, "नहीं बाबू, वहां वह सब कोई नहीं है।"

"कोई नहीं है ? मतलब ? सब झूठ ही बताया ?"

महेश ने कहा, "जी नहीं, झूठ नहीं कहा है। भैया जी ने जो बताया है, सब सही ही बताया है। मैं मकान भी देख आया, बड़ा विशाल मकान है। लेकिन मकान में कोई है नहीं।"

"कोई नहीं है ? इसका क्या मतलब ? मां-बाप सब कहां गए ? सदानन्द ने बताया, इसका व्याह भी हो चुका है, इसकी पत्नी भी वहीं है, वे सब गए कहां ? किसीसे पूछा क्यों नहीं ?"

महेश ने कहा, "साफ-सीधे क्या पूछा जा सकता है मालिक ! नया आदमी देखकर ही तो सबने मुझे घेर लिया। सब पूछने लगे, 'घर कहां है तुम्हारा ?' 'तुमको भेजा किसने है ?' 'इतनी बातें जानने की तुम्हें जरूरत क्या है'—इस तरह से बहुत-बहुत पूछने-आछने लगे लोग। मेरा नाम-धाम जानना चाहा। मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। आखिर एक झूठी बात बताकर जान बचा ली—"

"कौन-सी झूठी बात ?"

"मैंने कहा, 'मैं घटक हूं। दुल्हे की तलाश में आया हूं।' यह जो सुना तो सब लोग हंसते-हंसते बेहाल। सबने कहा, 'अजी साहब, उस लड़के का तो व्याह हो चुका है और अपनी व्याहता को छोड़कर वह जाने कहां भाग गया है।'"

समरजित बाबू ने कहा, "अवस्था कैसी देखी उनकी ?"

महेश ने कहा, "अवस्था तो खूब ही अच्छी है। जगह-जमीन का तो सुना अन्त ही नहीं। लाखों-लाख की जायदाद। लेकिन दूसरा कोई खाने वाला नहीं।"

"इसके मां-बाप कहां गए, यह कुछ मालूम हुआ ?"

महेश ने कहा, "सुना, दादाजी चल बसे, कई महीने हुए, मां भी मर गई। बाप थे, पर वह शायद सुलतानपुर चले गए।"

"सुलतानपुर ? यह फिर कहां है ?"

महेश ने कहा, "भागलपुर में। भागलपुर के पास सुलतानपुर में भैया जी की ननिहाल है। इनके नाना जी को भी कोई लड़का नहीं है। इसीलिए दामाद वहां की देख-भाल करने के लिए गए हैं। नाना जी भी बीमार हैं। लोगों ने बताया, बाप और नाना—दोनों की सारी जायदाद के मालिक अकेले यही भैया जी हैं।"

समरजित बाबू ने सारा कुछ सुना। सदानन्द ने जो भी बताया था, उसका अक्षर-अक्षर मिल गया। जरा भी इधर-उधर नहीं हुआ।

उन्होंने पत्नी की ओर देखा। बोले, "देख लिया ? सब सुन लिया न ? मैंने तुमसे कहा था, सदानन्द झूठ बोलने वाला लड़का नहीं है।"

उसके बाद वह महेश की ओर देखकर बोले, "क्यों महेश, तुम्हारे भैया जी जगे हैं कि सो गए ?"

"जी, मैंने देखा तो, जग ही रहे हैं ?"

समरजित वावू ने कहा, "तो उसे ज़रा मेरे पास भेज दे। कहना, मैं ज़रा बुला रहा हूं—"

महेश चला गया।

महेश के जाते ही पत्नी ने कहा, "इतनी रात को खामखा उसे क्यों बुला रहे हो?"

समरजित वावू ने कहा, "मैंने सव तै कर लिया है।"

"क्या तै कर लिया है?"

"सदानन्द को मैं यहीं रखूंगा। वहुत पहले से ही सोच रखा था। किसीसे कहा नहीं था लेकिन। जिस दिन मैं राणाघाट से आ रहा था, मुझे उसी दिन अचम्भा लगा था। कोई भी तो किसी दूसरे के सामान के लिए अपने ऊपर ऐसा खतरा नहीं लेता। और, अगर वह मेरा सामान ले ही लेता, तो मैं क्या करता! खैर, अव मैं कोई भी वात नहीं सुनूंगा।"

पत्नी ने कहा, "मगर ब्राह्मण का लड़का है, वह तुम्हारे यहां रहने को राजी क्यों होने लगा?"

ठीक इसी समय सदानन्द आकर कमरे के सामने खड़ा हुआ। वोला, "आपने मुझे वुलाया है चाचाजी?"

समरजित वावू विस्तर पर वैठे थे। वोले, "हां। आओ, इस कुर्सी पर वैठो।"

सदानन्द कुछ समझ नहीं सका। वह एक कुर्सी पर वैठ गया।

समरजित वावू ने कहा, "वहुत दिनों से तुम्हें एक वात कहूं-कहूं करता रहा हूं। लेकिन कह नहीं पाया। तुमने वहुत वार मुझसे नौकरी के लिए कहा है। मैंने भी वायदा किया था कि तुम्हें कोई नौकरी दिला दूंगा। लेकिन तुम तो इस घर में वहुत दिनों से रह रहे हो। हम लोगों को भी देख रहे हो। हमारे पास जो दौलत है, गांव में जगह-ज़मीन है, उसकी वजह से ज़िन्दगी में मुझे कभी नौकरी की नौवत नहीं आई। मुझे ही क्यों, मेरा लड़का भी नौकरी नहीं करता, तो भी मज़े में गुज़ारा चलता। लेकिन मेरी राय नहीं रहते हुए भी उसने नौकरी कर ली। उसने नौकरी कर ली, मुझे इस वात का इतना दुःख नहीं है, मुझे दुःख दूसरी वात का है।"

समरजित वावू, ज़रा रुक गए।

सदानन्द को लगा, आज तक जिसकी आशंका थी, चाचाजी शायद वही सव वात कहेंगे।

उसके वाद समरजित वावू उसे अपने जीवन के चरम दुःख की कहानी एक-एक करके सुनाने लगे। पुरखों की वुनियाद से लेकर आज तक की सारी कहानी। अपने वंश का परिचय, अपनी संस्कृति, शिक्षा-दीक्षा तक की वात भी नहीं छोड़ी। फिर उन्होंने अपने वाल-वच्चा विहीन जीवन की मर्मांतक वात शुरू की। वताया कि इस मुन्ने को उन्होंने किस तरह से गोद लिया। उसे पढ़ा-लिखाकर कैसे आदमी वनाया और फिर वही लड़का उनकी आंखों के सामने ही कैसे नालायक वन गया। उस लड़के को राह पर लाने के लिए

उन्होंने कैसे-कैसे इसका ब्याह कराया। सब कुछ एक सांस में कहते गए, जैसे मुखस्थ पढ़ाई सुना रहे हों।

फिर बोले, "तुम्हारी चाचीजी हैं, इन्हींसे पूछ देखो, मैं एक शब्द भी बढ़ाकर नहीं कह रहा हूं, न ही कुछ अतिरंजना है इसमें···"

सदानन्द चुप बैठा सब सुन रहा था। यह फिर कैसी दुनिया है। आदमी की यह कैसी समस्या है।

समरजित बाबू अचानक ही बोल उठे, "तुम्हारे पिताजी भी हैं। गुरुजन हैं वे। मैं उनके जी को भी चोट नहीं पहुंचाना चाहता। लेकिन तुमने तो स्वयं ही कहा है कि तुम अब वहां लौटकर नहीं जाना चाहते हो। कहा है न?"

सदानन्द ने कहा, "जी, मैं अब वहां लौटकर नहीं जाना चाहता···"

"लेकिन तुम्हारी पत्नी तो है? तुमने ब्याह तो किया है!"

"जी हां। मैं अपनी पत्नी से भी कोई नाता नहीं रखना चाहता।"

समरजित बाबू ने पूछा, "तुम्हें कोई बाल-बच्चा है?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। बाल-बच्चा जिसमें न हो, इसीलिए मैंने अपनी पत्नी से सारा सम्बन्ध ही तोड़ लिया है···"

जवाब सुनकर समरजित बाबू को अजीब-सा लगा। पूछा, "मतलब? तुम संतान नहीं चाहते?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं।"

समरजित बाबू और भी अवाक् हो गए। बोले, "संतान के लिए ही तो लोग ब्याह करते हैं। हमारे शास्त्रों में भी तो यही कहा गया है। संतान ही नहीं चाहिए तो तुमने ब्याह क्यों किया?"

सदानन्द ने कहा, "मैंने ब्याह करना चाहा नहीं था, मजबूर होकर करना पड़ा।"

"करना नहीं चाहे, तो कोई किसीको जबरदस्ती ब्याह करा सकता है? कुछ बाल-विवाह तो हुआ नहीं तुम्हारा। तुमने तो ठीक उम्र में ही शादी की है।"

सदानन्द ने कहा, "जी। ठीक उम्र होने पर ही शादी की, सब कुछ समझने की उम्र हो चुकी थी मेरी···"

"फिर? तुमने तो मुझे यह अजीब ही बात सुनाई सदानन्द! क्या तुम्हारी पत्नी से तुम्हारा कुछ मनमुटाव है?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं।"

"पत्नी से कोई मनमुटाव भी नहीं हुआ है, फिर भी संतान नहीं चाहते? तुम्हारी पत्नी भी क्या तुम्हारी ही तरह बाल-बच्चा नहीं चाहतीं?"

"वह क्या चाहती हैं, मैं नहीं जानता।"

"मतलब?"

सदानन्द ने कहा, "उस सम्बन्ध में मेरी पत्नी ने मुझसे कुछ कहा नहीं है।"

समरजित बाबू को संदेह-सा हुआ। पूछा, "तुम्हारी पत्नी की तंदुरुस्ती कैसी है?"

सदानन्द ने कहा, "मेरा ख्याल है, अच्छी ही है।"

"देखने-सुनने में ?"

सदानन्द ने कहा, "देखने में सुन्दरी हैं। मेरे पिताजी ने सुन्दरी लड़की देखकर ही मेरा विवाह किया था।"

समरजित बाबू फिर भी कुछ अनुमान नहीं कर सके। पूछा, "अपनी पत्नी से तुम्हारी बातचीत हुई है ?"

सदानन्द ने कहा, "जी हां।"

"तुम दोनों ने विवाहित जीवन कितने दिनों तक बिताया ?"

सदानन्द ने कहा, "एक दिन भी नहीं।"

समरजित बाबू स्तंभित हो गए। बोले, "आश्चर्य है..."

लेकिन उनकी बात पूरी नहीं हो पाई। उसके पहले ही उस दिन जैसा एक झमेला-सा हो गया। महेश दौड़ता हुआ आया, "मां जी, बड़े भैया जी आए हैं..."

सुनते ही उन दोनों प्राणियों का चेहरा उतर गया। पीड़ा से कातर हुई दृष्टि से समरजित बाबू ने अपनी पत्नी की ओर ताका। बोले, "तुम बहू से कहो, दरवाजे की कुंडी लगा ले। मैं नीचे जाता हूं..."

परेशान-से होकर वह बिछावन से उठे।

सदानन्द वहां खड़ा नहीं रहा। वह सीधे अपने कमरे में गया और दरवाजे को अन्दर से बंद कर लिया।

कई दिनों से सदानन्द के मन में यही सब बातें उथल-पुथल मचा रही थीं। बंधन से छुटकारे के लिए भागकर कहां तो उसने यहां आकर मुंह छिपाया था और कहां यहीं उसके लिए दूसरा बंधन तैयार। कई दिनों से वह हर घड़ी छटपट करता फिरा है। घर में रहना दुश्वार हो गया। जरा देर आराम किया और बाहर निकल पड़ा। कभी-कभी तो जगते ही निकल पड़ा। समरजित बाबू रात रहते ही गंगा नहाने निकलते हैं। उनके बाहर जाने की आवाज कानों में पहुंचते ही वह भी निकल पड़ता। चलते-चलते बड़ी दूर चला जाता। जी में आता, तो कभी बस पर सवार हो जाता, कभी यों ही बेमतलब घूमा करता।

उस दिन भी यों ही घूम रहा था और उसी दिन वह घटना हुई। चलते चलते जब जी चाहा बस पर सवार हो गया था। उसके बाद गंगा किनारे पहुंचते ही वह घटना घटी।

कमरे में सदानन्द कुर्सी पर बड़ी देर तक बैठा रहा। बड़ी देर तक किसी-का कोई पता नहीं रहा। उसे यह भी पता नहीं था कि वह कहां और किसके यहां आया है।

इतने में वह बुढ़िया फिर आई। उसके साथ दूसरा कोई। खाली बदन,

नंगे पांव। गले में एक मैला जनेऊ। देखने से लगा, पुरोहित है। बुढ़िया के हाथ में एक रकाबी। रकाबी में धान, दूब, बेलपत्ता और घिसे चंदन की एक कटोरी। एक तरफ जलता हुआ एक दीया।

कमरे में आते ही बुढ़िया ने कहा, "मैंने बड़ी देर कर दी बेटे, कुछ ख्याल मत करना। बुरा तो नहीं माना?"

सदानन्द ने कुछ भी नहीं कहा।

हाथ की रकाबी को नीचे उतारकर बुढ़िया बोली, "मेरे साथ आओ बेटे, मुंह हाथ धो लो।"

वह आगे-आगे चली। उसके पीछे-पीछे सदानन्द।

अन्दर नल के पास जाकर सदानन्द ने अच्छी तरह मुंह-हाथ धोया। उसके बाद फिर बाहर निकल आया। बोला, "ज़रा जल्दी कीजिए, मैं ज्यादा देर रुक नहीं सकूंगा।"

एकाएक उनकी नज़र बगल की खिड़की पर गई। देखा, दो आंखें एकटक उसे देख रही हैं।

बुढ़िया बोली, "अरी ऐ छोरी, तू बाहर क्यों खड़ी है, अन्दर आ···"

कहना था कि एक स्त्री बिलकुल अन्दर आ गई।

इन लोगों की इन हरकतों से सदानन्द अचम्भे में आ गया था। कौन हैं ये? आखिर वह कहां आ निकला? यह स्त्री ही कौन है? उसे अपने को घेर-कर यह जो उत्सव चल रहा था, अच्छा न लगा।

पुरोहित ने कहा, "अब आप जरा फर्श पर खड़े हो जाइए—"

कुर्सी से उठकर सदानन्द बताई हुई जगह पर जा खड़ा हुआ। तब तक धूप जलाया जा चुका था। मानदा मौसी ने तैयारी में कुछ कोर-कसर नहीं रक्खी। उसे यह रकम पाने की बहुत दिनों से उम्मीद थी। सौ रुपये पेशगी मिल चुके थे। इसे ढूंढ़ निकालने पर बाकी नौ सौ मिलने की बात थी। इतने दिनों के बाद अब शायद वह आशा पूरी हो। बड़े बाबू के आने तक किसी उपाय से इसे रोक रखने से ही हो गया। वह आए नहीं कि इसे उनके हाथों सौंप दिया जाएगा। उस रकम में से कुछ हिस्सा बतासी को भी देना पड़ेगा। देने में मानदा मौसी को कोई एतराज भी नहीं। बड़े बाबू के बिना यह सब सम्भालेगा कौन?

बतासी पास खड़ी सब देख रही थी। पुरोहित ने अब बुढ़िया की ओर देखकर कहा, "अब आप इधर आइए मां! लोटे में लेकर इनके पांव पर जल ढालिए—"

पुरोहित जैसा-जैसा कहने लगा, बुढ़िया करने लगी। एक बार पावों पर पानी उंडेलने लगी, एक बार फूल देने लगी। फूल, बेलपत्ता, गंगाजल पैरों पर डालते-डालते वह जगह खासी गंदी हो गई। इन सबके साथ संस्कृत के श्लोकों का पाठ चल रहा था। पुरोहित श्लोक कहता, बुढ़िया उसे दुहराती। यह चरण-पूजा खत्म नहीं होना चाह रही थी।

अंत में पत्थर के एक छोटे-से कटोरे में गंगाजल रखा गया। पुरोहित

सदानन्द ने कहा, "मेरा ख्याल है, अच्छी ही है।"

"देखने-सुनने में ?"

सदानन्द ने कहा, "देखने में सुन्दरी हैं। मेरे पिताजी ने सुन्दरी लड़की देखकर ही मेरा विवाह किया था।"

समरजित बाबू फिर भी कुछ अनुमान नहीं कर सके। पूछा, "अपनी पत्नी से तुम्हारी बातचीत हुई है ?"

सदानन्द ने कहा, "जी हां।"

"तुम दोनों ने विवाहित जीवन कितने दिनों तक बिताया ?"

सदानन्द ने कहा, "एक दिन भी नहीं।"

समरजित बाबू स्तंभित हो गए। बोले, "आश्चर्य है…"

लेकिन उनकी बात पूरी नहीं हो पाई। उसके पहले ही उस दिन जैसा एक झमेला-सा हो गया। महेश दौड़ता हुआ आया, "मां जी, बड़े भैया जी आए हैं…"

सुनते ही उन दोनों प्राणियों का चेहरा उतर गया। पीड़ा से कातर हुई दृष्टि से समरजित बाबू ने अपनी पत्नी की ओर ताका। बोले, "तुम बहू से कहो, दरवाज़े की कुंडी लगा ले। मैं नीचे जाता हूं…"

परेशान-से होकर वह बिछावन से उठे।

सदानन्द वहां खड़ा नहीं रहा। वह सीधे अपने कमरे में गया और दरवाज़े को अन्दर से बंद कर लिया।

कई दिनों से सदानन्द के मन में यही सब बातें उथल-पुथल मचा रही थीं। बंधन से छुटकारे के लिए भागकर कहां तो उसने यहां आकर मुंह छिपाया था और कहां यहीं उसके लिए दूसरा बंधन तैयार। कई दिनों से वह हर घड़ी छटपट करता फिरा है। घर में रहना दुश्वार हो गया। ज़रा देर आराम किया और बाहर निकल पड़ा। कभी-कभी तो जगते ही निकल पड़ा। समरजित बाबू रात रहते ही गंगा नहाने निकलते हैं। उनके बाहर जाने की आवाज कानों में पहुंचते ही वह भी निकल पड़ता। चलते-चलते बड़ी दूर चला जाता। जी में आता, तो कभी बस पर सवार हो जाता, कभी यों ही बेमतलब घूमा करता।

उस दिन भी यों ही घूम रहा था और उसी दिन वह घटना हुई। चलते चलते कब जो वह बस पर सवार हो गया था। उसके बाद गंगा किनारे पहुंचते ही यह घटना घटी।

कमरे में सदानन्द कुर्सी पर बड़ी देर तक बैठा रहा। बड़ी देर तक किसी-का कोई पता नहीं रहा। उसे यह भी पता नहीं था कि वह कहां और किसके यहां आया है।

इतने में वह बुढ़िया फिर आई। उसके साथ दूसरा कोई। खाली बदन,

नंगे पाँव। गले में एक मैला जनेऊ। देखने से लगा, पुरोहित हैं। बुढ़िया के हाथ में एक रकाबी। रकाबी में धान, दूब, बेलपत्ता और घिसे चंदन की एक कटोरी। एक तरफ जलता हुआ एक दीया।

कमरे में आते ही बुढ़िया ने कहा, "मैंने बड़ी देर कर दी बेटे, कुछ ख्याल मत करना। बुरा तो नहीं माना?"

सदानन्द ने कुछ भी नहीं कहा।

हाथ की रकाबी को नीचे उतारकर बुढ़िया बोली, "मेरे साथ आओ बेटे, मुंह हाथ धो लो।"

वह आगे-आगे चली। उसके पीछे-पीछे सदानन्द।

अन्दर नल के पास जाकर सदानन्द ने अच्छी तरह मुंह-हाथ धोया। उसके बाद फिर बाहर निकल आया। बोला, "ज़रा जल्दी कीजिए, मैं ज्यादा देर रुक नहीं सकूंगा।"

एकाएक उनकी नज़र बगल की खिड़की पर गई। देखा, दो आंखें एकटक उसे देख रही हैं।

बुढ़िया बोली, "अरी ऐ छोरी, तू बाहर क्यों खड़ी है, अन्दर आ···"

कहना था कि एक स्त्री बिलकुल अन्दर आ गई।

इन लोगों की इन हरकतों से सदानन्द अचम्भे में आ गया था। कौन हैं ये? आखिर वह कहां आ निकला? यह स्त्री ही कौन है? उसे अपने को घेर-कर यह जो उत्सव चल रहा था, अच्छा न लगा।

पुरोहित ने कहा, "अब आप ज़रा फर्श पर खड़े हो जाइए—"

कुर्सी से उठकर सदानन्द बताई हुई जगह पर जा खड़ा हुआ। तब तक धूप जलाया जा चुका था। मानदा मौसी ने तैयारी में कुछ कोर-कसर नहीं रखी। उसे यह रकम पाने की बहुत दिनों से उम्मीद थी। सौ रुपये पेशगी मिल चुके थे। इसे ढूंढ निकालने पर बाकी नौ सौ मिलने की बात थी। इतने दिनों के बाद अब शायद वह आशा पूरी हो। बड़े बाबू के आने तक किसी उपाय से इसे रोक रखने से ही हो गया। वह आए नहीं कि इसे उनके हाथों सौंप दिया जाएगा। उस रकम में से कुछ हिस्सा बतासी को भी देना पड़ेगा। देने में मानदा मौसी को कोई एतराज भी नहीं। बड़े बाबू के बिना यह सब सम्भालेगा कौन?

बतासी पास खड़ी सब देख रही थी। पुरोहित ने अब बुढ़िया की ओर देखकर कहा, "अब आप इधर आइए मां! लोटे में लेकर इनके पांव पर जल ढालिए—"

पुरोहित जैसा-जैसा कहने लगा, बुढ़िया करने लगी। एक बार पांवों पर पानी उंडेलने लगी, एक बार फूल देने लगी। फूल, बेलपत्ता, गंगाजल पैरों पर डालते-डालते वह जगह खासी गंदी हो गई। इन सबके साथ संस्कृत के श्लोकों का पाठ चल रहा था। पुरोहित श्लोक कहता, बुढ़िया उसे दुहराती। यह चरण-पूजा खत्म नहीं होना चाह रही थी।

अंत में पत्थर के एक छोटे-से कटोरे में गंगाजल रखा गया। पुरोहित

दानन्द ने कहा कि उस पानी को बाएं पांव के अंगूठे से छू दो। सदानन्द
सा ही किया। बुढ़िया ने वह जल अपने मुंह में डाल लिया।

सदानन्द यह देखकर अवाक् रह गया कि पांव की धूल मिला वह पानी
या बेखटके पी गई।

सदानन्द ने कहा, "तो मैं अब जाऊं?"

बूढ़ी ने कहा, "हाय राम, जाओगे कहां? मैं मिठाई दूंगी, तुम मुझे
द नहीं दे लोगे?"

बुढ़िया की बात पूरी होने से पहले ही नीचे की सीढ़ियों पर भारी
की चरमराहट शुरू हो गई। वह आवाज धीरे-धीरे ऊपर आने लगी।

बतासी का मुंह सूख-सा गया। बड़ा बाबू अचानक फिर लौट आया
? वह बोली, "अरी ओ मौसी, लगता है, बड़ा बाबू आ गया।"

मौसी भी चौंकी, "ऐं! बड़ा बाबू? इस समय? असमय में?"

बतासी ने जो सोचा था, वही हुआ। वह आवाज ऊपर आते-आते सदेह
रे के अन्दर आ पहुंची। बड़े बाबू ने सारी रात यहीं गुज़ारी थी। सुबह
ं से गया था। अभी उसके लौटने की बात नहीं थी। लेकिन जाने किस
न से लौट आया। आते ही यह सब देख-सुनकर अवाक् हो गया। उसने
कुल सदानन्द को देखा—सदानन्द भी उसे एकटक देखता रह गया।

बड़े बाबू ने गम्भीर गले से पूछा, "यह कौन है?"

असल में बड़े बाबू ने सवाल बतासी से ही किया था, पर जवाब कोई
देता तो चल जाता। बड़े बाबू को पूछने का हक था। ऐसे अवांछित
ग अगर यहां आएं, तो फिर गांठ की रकम फूंककर अलग मकान लेकर
ासी को रखने से क्या लाभ! फिर तो वह मानदा मौसी के टिन की
नी वाले घर में थी, वैसे ही घर में रखना था।

"बताओ, यह कौन है?"

कुछ घंटे पहले जब बड़ा बाबू यहां से गया था, तो यहां कोई नहीं
।

मानदा मौसी के हाथ में गंगाजल वाली पत्थर की खाली कटोरी अभी
ही। वह सोच भी नहीं सकी थी कि बड़ा बाबू इसी वक्त आ जाएगा।

पुरोहित जी बड़े बाबू को भी नहीं पहचानता था, सदानन्द को भी
ीं पहचानता था। दो-चार आने पैसे के लालच से वह इस यजमान के
ां आया था। यही पेशा था उसका। नैवेद्य की रकाबी और घंटी उसके
थ में उस समय भी रखी हुई थी। लेकिन घटना की आकस्मिकता से वह
ी अचकचा गया था। यह आदमी कौन है? और जिसकी चरण-पूजा के
ए उसे बुलाया वही कौन है? और, इस नये बाबू के आते ही सब ऐसे
ौंक ही क्यों उठे?

मानदा मौसी कैफियत-सी देने लगी, "जी, बड़े बाबू, इसे मैं बुला लाई
। इसमें बतासी का कोई कसूर नहीं है।"

सामानों की ओर उंगली से दिखाते हुए बड़े बाबू ने कहा,

"यह सब क्या है ? यह पूजा कैसी हो रही है ?"

इसका कौन क्या जवाब देता, पता नहीं। बतासी उससे पहले ही बड़े बाबू को बगल के कमरे में बुला ले जाने लगी। बोली, "उधर चलो, सब बताती हूं—"

बड़े बाबू ने कहा, "उस कमरे में किसलिए ? मेरे घर में यह सब हो क्या रहा है, यह मुझे जानना नहीं होगा ? मैं क्या कोई नहीं हूं ? मेरे हुक्म के बिना यह सब कौन कर रहा है, यह भी नहीं बताओगी ?"

बतासी ने कहा, "आह, तुम इतना चिल्ला क्यों रहे हो ? सब बताती हूं, तुम उस कमरे में चलो तो सही।"

बड़े बाबू गरज उठा, "उस कमरे में क्यों जाने लगा ? मुझे यहीं, सबके सामने बताना होगा। इसमें छिपाने की बात क्या है ?"

"है। छिपाने की बात है। क्यों है, यह मैं तुम्हें वहीं बताऊंगी।"

बतासी खींचकर बड़े बाबू को उस कमरे में ले गई।

बतासी ने पूछा, "तुम एकाएक फिर लौट कैसे आए ?"

बड़े बाबू ने कहा, "दफ्तर की कुंजी यहीं भूल गया था। मगर मैं अपने घर में लौटकर आऊं तो तुम्हें इसकी कैफियत देनी होगी मुझे ? वह है कौन ? तुम्हारी मौसी यह पूजा-वूजा क्यों कर रही है ?"

बतासी ने कहा, "तुमने उसको पहचाना नहीं ?"

बड़े बाबू ने कहा, "नहीं। क्यों ? कौन है वह ?"

"यह वही है, मैंने तुम्हें जिसकी तसवीर दी थी और खोजने के लिए कहा था। वही है यह। अपने घर से भाग गया था। कहीं मिल नहीं रहा था। सुना, बहुत बड़े आदमी का लड़का है। इसका मामा आकर मौसी से बहुत गिड़गिड़ा गया था। कहा था, खोज देने से कुछ रुपया दूंगा। मौसी ने आज रास्ते में पकड़ा है। तुम्हें दिखाने के लिए पकड़कर यहां ले आई है।"

बड़े बाबू ने कहा, "तो मैं क्या करूंगा ?"

"तुम पुलिस के आदमी हो। डरा-धमकाकर उसे रोक रखोगे, नहीं तो फिर भाग जा सकता है न ?"

बड़े बाबू ने तब तक अलमारी से कुंजी निकाल ली। बोला, "यह सब बखेड़ा हमारे घर में क्यों ? मैं तुमसे कहे देता हूं, मुझे यह सब बरदाश्त नहीं होगा। तुम उन सबों को यहां से चला देने को कह दो—"

बतासी ने कहा, "हाय राम, चले जाने को इस तरह से कहा जा सकता है ?"

"फिर ये किस हिम्मत से मेरे घर में आते हैं ?"

"मौसी से हमारी इतने दिनों की जान-पहचान है, आने पर उसे भगा दूंगी ?"

बड़े बाबू ने कहा, "बेशक ! तुमसे भगाते न बने, मैं खुद जाकर अभी उन्हें निकाल बाहर करता हूं..."

ली। बोली, "नहीं-नहीं, वैसा न करो। मौसी का बहुत-सा रुपया मारा जाएगा।"

बड़ा बाबू झुंझला उठा, "मौसी का रुपया मारा जाएगा, तो मेरा क्या? मौसी मेरी कौन होती है? वह मेरे यहां क्यों आती है? तुम उसे आने से मना नहीं कर सकती हो? ये सब फौरन यहां से चले जाएं, नहीं तो मैं जूते मारकर इन्हें यहां से निकाल बाहर करूंगा। तुम उन सबको चले जाने के लिए कह दो—"

बतासी बोली, "खैर, मैं जाने के लिए तो कह देती हूं, पर उसका क्या होगा? उस आदमी का?"

"वह कौन है?"

"उसीका नाम तो सदानन्द चौधरी है?"

बड़े बाबू ने जैसे कुछ सोचा। बोला, "चलकर देखता हूं, क्या किया जा सकता···"

बड़ा बाबू उस कमरे में गया। पीछे-पीछे बतासी भी गई।

सदानन्द उस समय तक हतवाक्-सा खड़ा था। बूढ़ी से वह बोला, "तो अब मैं जाऊं, मेरा काम तो हो गया—"

इतनी आफतों के बावजूद बड़े बाबू के आने से मानदा मौसी को आशा की दुबली-सी किरण दिखाई दी थी। सदानन्द को वह कुछ कहे, उससे पहले ही बड़े बाबू कमरे में आ पहुंचा। आते ही सदानन्द से पूछा, "आप कौन हैं? क्या नाम है आपका?"

अचानक ऐसे प्रश्न के लिए सदानन्द तैयार नहीं था। लेकिन वह इस आसानी से घबरा जाने वाला आदमी नहीं था। बोला, "मेरा नाम सदानन्द चौधरी है।"

"आप अपने घर से भागते फिर रहे हैं?"

सदानन्द को पहले तो सूझा नहीं कि वह क्या जवाब दे। फिर उसने अपने को सम्भाल लिया। बोला, "यह तो मेरी खुशी है, मैं भागता फिर रहा हूं। मेरी उम्र इस लायक हो चुकी है। मैंने जो भी किया है, सोच-समझ करके ही किया है। इसके लिए मैं किसीको कैफियत देने को तैयार नहीं हूं—"

"मतलब आपका? आपको पता है, किसीके घर में घुसना एक क्राइम है। आप किसके हुक्म से मेरे घर के अन्दर आए? बोलिए, इस घर में आप क्यों आए?"

सदानन्द ने तीखी नजरों से बड़े बाबू को देखा। बोला, "आपको मालूम है, मैं इस घर में क्यों आया?"

बड़े बाबू ने कहा, "नहीं मुझे नहीं मालूम। आप बताइए।"

सदानन्द ने कहा, "अगर आपने अभी तक भी नहीं सुना है, तो इस बूढ़ी महिला से पूछिए।"

"मैं उससे क्यों पूछूं? वह कौन है? वह इस घर की कोई नहीं है। मैं

आपसे पूछता हूं, आप ही बताइए।"

मानदा मौसी बीच ही में बोल उठी, "जी बड़े बाबू, इसे मैं ही यहां ले आई हूं। मेरे ही कहने से यह यहां आया है।"

बड़े बाबू डपट उठे, "तुम चुप रहो, तुम क्यों बोल रही हो? मैं जिससे पूछ रहा हूं, वही जवाब देगा।"

मानदा मौसी हताश आंखों से बतासी की ओर देखने लगी। बोली, "अरी ओ बतासी, तू ही कह दे न, मैं ही इसे बुलाकर ले आई हूं—"

बतासी क्या कहे? बड़े बाबू के सामने बोलने की हिम्मत भी थी उसे? वह भी डर से कांपने लगी थी। गलती तो उसकी भी थी। बड़े बाबू से बिना पूछे उसीने तो अजाने आदमी को घर में आने दिया था।

बड़े बाबू ने फिर गरजकर पूछा, "बोलिए, आप यहां क्यों आए?"

सदानन्द से रहा नहीं गया। बोला, "देखिए, मैं नहीं जानता कि आप कौन हैं। मैं यहां के किसीको भी नहीं पहचानता हूं। लेकिन सब बात जाने बिना आप नाहक ही मुझे क्यों दोष दे रहे हैं?"

बड़े बाबू ने कहा, "मै अपनी आंखों जो देख रहा हूं, वही कह रहा हूं। आप यहां कहां रहते हैं?"

सदानन्द ने कहा, "आपको इतना पूछने-आछने की जरूरत भी क्या है? आप जब इतना ही ज्यादा नाराज हो गए हैं, तो मुझे कहिए, मैं चला जाता हूं···"

सदानन्द ने बाहर की तरफ कदम बढाया। मगर बड़े बाबू ने जाने नहीं दिया। बाहर जाने का रास्ता रोककर खड़ा हो गया। बोला, "आप जा कहां रहे हैं? पहले मेरी बात का जवाब दीजिए···"

सदानन्द ने कहा, "आपने क्या सोचा है कि आपकी लाल-पीली आंखों से मैं डर जाऊंगा? आप भले आदमी की तरह बात नहीं कर सकते हैं?"

"ऐं?"

बड़े बाबू ने सदानन्द का गला धर दबाया। सदानन्द ने भी उसका गला दबोच लिया। हाथापाई हो ही जाती। लेकिन उसके पहले ही एक अघटित घट गया। इस नाटकीय घटना में हठात् महेश का प्रवेश हो गया।

"बड़े भैया जी!"

अन्दर आते ही महेश भौंचक्का रह गया। ऐसी घटना की उसे उम्मीद ही नहीं थी। वह दौड़ता हुआ आ रहा था। हांफ रहा था। यहां वह एक ही साथ बड़े भैया जी और भैया जी, दोनों को देखेगा, इसकी उसे कल्पना ही नहीं थी। महेश को देखकर बड़े बाबू भी अवाक् और महेश भी अवाक्।

महेश को देखते ही बड़े बाबू सील-सा गया। बोला, "तू?"

महेश हांफ ही रहा था। यहां आने से पहले उसे पता [illegible] कि उसके लिए यहां इतना आश्चर्य इकट्ठा है। घटनाक्रम से उ[illegible] बार यहां आना पड़ा है। कभी तो बाबू को बताकर और [illegible] बताए। लेकिन खास मुसीबत पड़े बिना वह यहां कभी नहीं [illegible]

इस बार सदानन्द को यहां देखकर वह और भी चकित रह गया। सदानन्द का अचरज अभी भी गया नहीं था। इस अनजानी जगह में एक चीन्हे मुखड़े को देखकर वह मानो जी गया। बोला, "महेश ?"

महेश भी बोल उठा, "आप भैया जी ? आप यहां कैसे ? बाबू जी की तबीयत खराब हो गई है, मैं इसीलिए बड़े भैया जी को कहने के लिए आया हूं।"

एक मामूली-सी बात से सारी आबहवा ही एकाएक हल्की हो गई। सदानन्द को आज भी याद है, उस दिन महेश के वहां आ जाने से उसने मानो नये सिरे से सबको पहचाना। महेश का बड़े भैया जी यही है। और वह जो वहां खड़ी है, वह शायद वही है, जिसे महेश ने राक्षसी कहा था। आदमी की कैसी विचित्र नियति है और कैसा विचित्र है यह कलकत्ता शहर!

कलकत्ता सदानन्द अपने जीवन में और भी बहुत बार आया है, पर उसे ऐसी घटना का सामना कभी नहीं करना पड़ा। अपने भाग्य की सोचकर उसे आज भी हैरान रह जाना पड़ता है।

लेकिन उस समय इतना कुछ सोचने का समय नहीं था उसे। इस घटना के बाद बड़ा बाबू भी कुछ अनमना-सा हो गया था। इतने लोगों के सामने क्या करे, बड़े बाबू को कुछ सूझ नहीं रहा था। बोला, "बाबूजी की तबीयत खराब है ? क्या खराब है ?"

सदानन्द ने भी पूछा, "तबीयत कब खराब हुई ? कल रात भी तो उनसे मेरी बात हुई है···"

महेश ने कहा, "सुबह भी तो वह नहाने गए थे। वहां से लौटे, तो छाती दुखने लगी। उसके बाद लेट गए···"

बड़े बाबू ने कहा, "लेकिन मुझसे कहने के लिए तुझे किसने कहा ?"

महेश ने कहा, "कहा किसीने नहीं। मुझे डर लग गया। मैंने डाक्टर को बुलाया और फिर दौड़ता हुआ यहां आया···"

सदानन्द ने कहा, "चलो महेश, मैं चलता हूं।"

महेश ने बड़े बाबू की ओर देखकर पूछा, "आप नहीं चलेंगे बड़े भैया जी ?"

"मैं आ रहा हूं, तू जा···"

बाहर जाकर महेश ने कहा, "आप मुझे यहां मिलेंगे, मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सका था। आप यहां कैसे आ गए ?"

सदानन्द ने महेश को सारी घटना बताई। सुनकर महेश ताज्जुब में पड़ गया। बोला, "क्या आश्चर्य है! मैं यदि नहीं आ पहुंचा होता, तो क्या हो जाता, कहिए तो! उस राक्षसी को देख लिया न ? मेरे बाबू क्या खामखा ही बड़े भैया जी पर इतना नाराज हुए हैं ? और, आप भी जिसकी-तिसकी बात पर जहां-तहां क्यों चले जाते हैं, कहिए तो ? बाबूजी ने कितनी ही बार आपको मना किया है न!"

वहू बाजार के मकान में समरजित बाबू बिस्तर पर पड़े हुए थे। जरा ही देर पहले डाक्टर उनकी जांच करके जा चुका था। पूरे घर में उस समय सन्नाटा छा रहा था। और दिन इकतल्ले के पीछे की तरफ नौकर-नौकरानी रसोइए की गपशप, झगड़ा-झंझट से घर गूंजा करता था। कभी-कभी अन्दर से पकाने-चुकाने की आवाज आती। लेकिन आज वह सब कहीं कुछ नहीं। देखने से ही लगता था कि कहीं कुछ अघटित घटा है। सुख के संसार में कहीं जैसे विनाश की दरार पड़ी है।

आगे-आगे महेश और पीछे-पीछे सदानन्द घर में आ रहा था। महेश सीढ़ी से ऊपर जाने लगा, तो सदानन्द ने कहा, "तुम ऊपर जाकर देख आओ महेश, मैं फिर जाऊंगा।"

महेश ने कहा, "नहीं, आप भी चलिए भैया जी, चलने में क्या हर्ज है ?"

आखिर सदानन्द भी ऊपर गया। उनके ऊपर जाते ही जाने कौन तो घूंघट काढ़कर चुपचाप कमरे से बाहर चली गई। चाचाजी आंखें बंद किए पड़े हुए थे। चाचीजी बगल में बैठी हुई थीं। चाचीजी ने महेश को भी देखा, सदानन्द को भी देखा। लेकिन कुछ बोली नहीं। समरजित बाबू चित होकर लेटे हुए थे। उन्हें देखकर सदानन्द को लगा, उन्हें मानो सारी समस्याओं से छुटकारा पाकर शान्ति की गोद में आश्रय मिल गया है।

महेश को बुलाकर चाचीजी ने धीमी आवाज में कुछ कहा। महेश ने आकर सदानन्द से कहा, "भैया जी, मा जी आपको बुला रही हैं।"

सदानन्द उनके पास गया। चाचीजी ने कहा, "कहा चले गए थे तुम ? वे तुम्हें खोज रहे थे। अभी दवा पीकर सो रहे हैं···"

सिर के ऊपर पंखा जोरों से घूम रहा था। समरजित बाबू की तरफ देखकर सदानन्द को बहुत सारी बातें याद आ रही थीं। कहां का है वह ! किस चौधरी परिवार का लड़का और जाने किस अमोघ निर्देश से वह यहां आकर सम्बन्ध के किस जाल में जकड़ गया !

इतने में रास्ते पर गाड़ी की आवाज हुई। महेश ने कहा, "बड़े भैया जी आ गए।"

चाचीजी पहले तो समझ नहीं सकीं। बोलीं, "कौन ? मुन्ना ? मुन्ना इस समय क्यों आने लगा ? वह तो ऐसे समय कभी नहीं आता ?"

सदानन्द की कैसी ऊब-सी होने लगी। यहां फिर उसी आदमी से सामना हो जाएगा। सोचते ही उसे बुरा लगा। बोला, "चाचीजी, तो मैं अभी चलता हूं···"

चाचीजी ने कहा, "क्यों बेटे, तुमने उसे देखा नहीं है ? वह मेरा लड़का है। तुम रहो···"

सदानन्द ने कहा, "नहीं मैं जाता हूं।"

वह जा ही रहा था कि तब तक फिर उसी बड़े बाबू के सामने पड़ गया। सदानन्द को देखते ही बड़े बाबू की आंखें कैसी तो बेदर्द-सी हो गईं। अपने कालीघाट के मकान में उसने जिस नजर से सदानन्द को देखा था, अपने इस

मौरूसी मकान में भी उसकी वही नजर। जैसे सदानन्द को अगर वह जेल ठूंस दे सके, तो जी जाए।

सदानन्द को दिखाते हुए उसने पूछा, "मां, यह कौन है ?"

चाचीजी ने कहा, "वह ? वह सदानन्द है।"

बड़े बाबू ने कहा, "सदानन्द तो समझा, मगर यह हमारे यहां क्यों ? हमारे यहां किसने आने दिया ?"

चाचीजी ने कहा, "आः, तू इतना चिल्ला क्यों रहा है ? देख तो र है, मालिक बीमार हैं···"

"बीमार हैं तो क्या, सब कुछ सहना पड़ेगा ? मैं तुमसे यह जानना चाह हूं कि तुमने जिसको-तिसको घर में क्यों घुसने दिया है ? इसे यहां कौन आया ?"

चाचीजी ने कहा, "तू यह सब मुझसे क्यों पूछ रहा है ? मैं थोड़े ही बातों में रहती हूं ? जो घर के मालिक हैं, वे अच्छे हो जाएं, तो उन्हींसे पूछन अभी वह सो रहे हैं, तू चीख क्यों रहा है ?"

बड़े बाबू ने कहा, "तो मालिक जब तक बीमार रहेंगे, तब तक तुम ल इसे घर में ही रखोगी क्या ?"

चाचीजी बोलीं, "मुन्ने, चुप भी रह तू। धीरे-धीरे नहीं बोल सकता ?

"मैं जो पूछ रहा हूं, पहले उसका जवाब दो। यह कितने दिनों से हम यहां है ? क्यों है ? इससे हम लोगों का नाता क्या है ? तुमसे मैं पहले यह जान चाहता हूं।"

चाचीजी ने कहा, "तू अभी आया ही क्यों ? तुझे इस समय आने के लि किसने कहा ? सवेरे से मैं इनकी अस्वस्थता से परेशान हूं, विपत्ति पर विप आ रही है, ऊपर से तू तंग करने के लिए आ पहुंचा ? इतनी उमर हो गई है और अक्ल से कोई वास्ता नहीं ?"

बड़े बाबू ने कहा, "अपनी अक्ल का मैं समझूंगा, मगर तुम लोगों की अक्ल कैसी है ? यह चोर है कि डकैत, पता नहीं, और तुम लोग इसे सीधे अ महल में ले आए ?"

चाचीजी ने कहा, "मैं अभी तुझसे बात नहीं कर सकती, तू जा, तू घर निकल जा···"

"निकल क्यों जाऊंगा ? अपने घर से मैं निकल क्यों जाऊंगा ?"

चाचीजी ने महेश को बुलाया, "महेश, बड़े भैया जी को बाहर तो निक दे, मैं तो तंग आ गई···"

बड़े बाबू ने कहा, "देखो, तुम लोगों ने बहुत बार मुझे घर से निकाल दि है। लेकिन यह मत सोचो कि आज मैं नशे में हूं। मैं जो भी कह रहा हूं, स समझकर ही कह रहा हूं—आज मैं यहां से नहीं निकलूंगा।"

महेश पास ही खड़ा था।

चाचीजी ने उससे कहा, "क्यों रे, बात कानों में पहुंच नहीं रही है ?"

महेश की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। वह जैसे खड़ा था, खड़ा ही र

बड़ा बाबू सदानन्द की ओर बढ़ा। बोला, "आप देख क्या रहे हैं, घर से निकल जाइए…"

सदानन्द जहां खड़ा था, वहीं खड़ा रहा। जरा भी नहीं हिला। जैसे किसी-की भी कोई बात उसके कानों पहुंची ही नहीं।

चाचीजी अब स्वयं ही अपने लड़के और सदानन्द के बीच में जा खड़ी हुईं। बोलीं, "तू इसे जाने को क्यों कह रहा है? इसे तो मालिक स्वयं ही यहां ले आए हैं, चले जाने को कहेंगे, तो वही कहेंगे।"

बड़े बाबू ने कहा, "मैं भी तो इस घर का मालिक हूं, इसे निकल जाने को कहने का हक मुझे भी है। मैं ही इसे चले जाने को कह रहा हूं, यह चला जाए…"

इतने में समरजित बाबू की तंद्रा कुछ टूटी। शोरगुल सुनकर उन्होंने इस तरफ ताका। कमजोर स्वर में बोले, "कौन है? क्या हुआ है?"

चाचीजी तुरन्त उनके करीब गईं। बोलीं, "अब तबीयत कैसी है? छाती का दर्द अभी भी है?"

समरजित बाबू ने इसपर कुछ नहीं कहा। पूछा, "कौन आया है?"

चाचीजी ने कहा, "मुन्ना है। तुम्हारी तबियत खराब है, यह सुनकर आया है—"

"वह चिल्ला क्यों रहा है?"

बड़े बाबू ने कहा, "मैं कह रहा हूं कि यह आदमी हमारे यहां क्यों है? इसे आपने हमारे यहां क्यों आने दिया?"

"किसके बारे में कह रहा है तू?"

चाचीजी ने कहा, "वह सदानन्द को घर से निकाल दे रहा है।"

"क्यों?"

समरजित बाबू थोड़ा ही बोलने में हांफ रहे थे। ऐसा लगा कि वह आवेश में आ गए।

बड़े बाबू ने कहा, "आपने जहां-तहां से उठाकर जिसको-तिसको घर में क्यों लाया? जिसे जानते नहीं, पहचानते नहीं, उसे घर में कैसे ले आए?"

समरजित बाबू बीमारी की हालत में ही कुछ देर तक लड़के की ओर देखते रहे। फिर उठ बैठे। थके हुए शरीर को जैसे वह ढो नहीं पा रहे हों। बोले, "तुमने यह कैसे समझा कि मैं इसे जानता नहीं हूं, पहचानता नहीं हूं?"

चाचीजी बोल उठीं, "अजी, तुम उठ क्यों बैठे? लेट जाओ, सो रहो—"

समरजित बाबू ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। बोले, "बताओ, तुमसे यह किसने कहा?"

बड़े बाबू ने कहा, "मुझसे किसीने नहीं कहा, मैं खुद ही जानता हूं, पुलिस में इसकी रिपोर्ट है।"

"रखो अपनी पुलिस की रिपोर्ट। आज मैं तुमसे एक बात कहे देता हूं, सुन लो, आज से तुम मेरे लड़के नहीं हो—"

चाचीजी बोल उठीं, "अजी ओ, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, तुम चुप रहो, लेट जाओ—"

"नहीं, मैं लेटूंगा नहीं। इसने सोचा क्या है? वह जो करेगा, मैं वही सह लूंगा? वह चूंकि पुलिस की नौकरी करता है, इसलिए मैं डर जाऊंगा? उसे यह पता नहीं है कि इस घर का लड़का नहीं है वह। मैंने अगर उसे अपने घर में जगह नहीं दी होती, तो वह लिख-पढ़ पाता या उसे दाने नसीब होते? इसे आदमी किसने बनाया? उसके बाप ने या मैंने? बचपन से खिला-पिलाकर इसे पाला-पोसा किसने? वह आज इस लायक हो गया कि मेरा ही खा-पहनकर मुझी पर रौब गालिब करे? इतना बड़ा बेहया है यह कि शराब पीकर मेरे यहां आता है। घर में बहू के होते रात बाहर गुजारता है?"

बड़े बाबू भी तैश में आ गया। बोला, "मैं जो करता हूं, करता हूं, अपनी कमाई के पैसे से करता हूं। आपसे तो मैं कौड़ी भी नहीं लेता—"

"ठीक है। मेरे पैसों से अगर तुम्हें इतनी ही अश्रद्धा है, तो अबसे तुम्हें मुझसे बिलकुल रुपया-पैसा नहीं मिलेगा। अपना रुपया-पैसा, जगह-जमीन—सब मैं सदानन्द को ही दूंगा। सदानन्द के नाम ही सारे कुछ का वसीयत कर जाऊंगा।"

बड़े बाबू ने कहा, "आपका रुपया-पैसा मैं चाहता भी नहीं। लेकिन आप जिसे अपना सब कुछ दे जाने को कह रहे हैं, मालूम है, वह एक स्काउंड्रल है? मैंने आज उसे किस मुहल्ले में देखा है, मालूम है?"

समरजित बाबू ने कहा, "वह चाहे जो भी हो, मगर सदानन्द तुमसे अच्छा है, इस बात का सबूत मेरे पास है। वह सबूत है, इसलिए मैं ऐसा कह रहा हूं—"

बड़े बाबू ने कहा, "मेरे पास भी सबूत है—"

सदानन्द से अब नहीं रहा गया। उसने समरजित बाबू के पास जाकर कहा, "चाचाजी, आप चुप रहिए, आपकी तबियत अच्छी नहीं है। मैं अब इन बातों में नहीं पड़ना चाहता। आप मुझे इजाजत दीजिए, मैं चला जाता हूं। आपके घर में मैं अपनी वजह से खामखा क्यों झमेला पैदा करूं।"

समरजित बाबू ने कहा, "तुम चले क्यों जाओगे? तुम क्या उससे डरते हो? वह पुलिस की नौकरी करता है, तो उसने क्या सोच लिया है, वह जो चाहेगा, वही कर लेगा?"

सदानन्द ने कहा, "जी, इसलिए नहीं। मुझे रुपये-पैसे, जगह-जमीन की कोई जरूरत नहीं है। वह सब मैंने बहुत देखा है..."

समरजित बाबू बोले, "तुम्हें कुछ बताने की जरूरत नहीं। तुम्हारे बारे में सारी जानकारी मुझे मिल गई है। महेश को नवाबगंज भेजकर मैंने सब कुछ का पता कर लिया है। मैं तुम्हें अपने घर में रखूंगा। मैं यह भी जानता हूं कि तुम्हें रुपयों की कमी नहीं है। मगर मुझे तुम्हारे जैसे लड़के की कमी है..."

बड़े बाबू ने कहा, "लेकिन मैं यह साबित कर दूं कि यह आदमी एक इंपोस्टर है, स्काउंड्रल है ?"

समरजित बाबू ने कहा, "स्काउंड्रल वह नहीं, तुम हो। मैंने बहुत ही पाप किया था, इसलिए तुम्हारे जैसे एक स्काउंड्रल को अपने लड़के की नाईं आदमी बनाना चाहा था···"

चाचीजी को फिर डर हो आया। वह उनके पास आकर बोलीं, "तुम चुप भी रहो, लेट जाओ, तुम्हारा जी अच्छा नहीं है।"

समरजित बाबू ने कहा, "तुम मुझे चुप रहने को मत कहो, मुझे अगर इस समय शक्ति रही होती, तो मैं गला दबाकर ऐसे लड़के को मार डालता। तब कहीं चुप होता। यह सदानन्द को स्काउंड्रल कहता है, कहता है कि उसके नाम से पुलिस में रिपोर्ट है।"

"हां है। मैं फौरन आपको सबूत देता हूं। सबूत मेरे बैग में ही है।"

बड़ा बाबू वहां से निकलकर तुरन्त बगल के कमरे में चला गया। जरा देर में एक तसवीर ले आया। बोला, "लीजिए, देखिए। यह तसवीर इसकी है या नहीं, मिलाकर देख लीजिए आप···"

समरजित बाबू ने देखा, चाचीजी ने भी देखा, हां, तसवीर तो सदानन्द की ही है। इसमें तो कोई संदेह नहीं।

बड़े बाबू ने कहा, "मेरी बात का विश्वास नहीं हो रहा था, अब तो हो गया विश्वास ?"

सब अचरज से विमूढ़ हो गए।

बड़े बाबू ने फिर कहा, "कहिए, कहिए। किसकी तसवीर है यह ?"

किसीके मुंह से बोली नहीं निकली। सबके मन के विश्वास की इतने दिनों की भित्ति एक प्रचंड धक्के से एकबारगी हिल गई।

"चुप क्यों हो गए ? कहिए ?" बड़े बाबू ने कहा।

चाचीजी से रहा नहीं गया। पूछा, "इसकी तसवीर तेरे पास कैसे आई ?"

बड़े बाबू ने कहा, "यह तो उसीसे पूछो न, जिसकी यह तसवीर है। वह तो तुम्हारे सामने ही खड़ा है।"

सदानन्द वहां और खड़ा नहीं रहा। सबकी विमूढ़ दृष्टि से अपने को छिपाने के लिए वह कमरे से बाहर निकल आया। वहां से बिलकुल नीचे उतर आया और अपने कमरे में जाकर अंदर से कुंडी लगा ली।

उस हालत में कब तक बीता, पता नहीं। अचानक महेश ने बाहर से दरवाजे में धक्का दिया, "भैया जी, भैया जी, दरवाजा खोलिए···"

जाने कब, कितने दिन पहले, उस दिन वह बाजार के एक मकान के बंद कमरे में सदानन्द के मन में जो प्रतिक्रिया हुई थी, वह उसे आज भी याद है। इतना लंबा अरसा गुजर गया, मगर उतनी विपत्ति और विशृंखलता के होते

चाचीजी बोल उठीं, "अजी ओ, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, तुम चुप रहो, लेट जाओ—"

"नहीं, मैं लेटूंगा नहीं। इसने सोचा क्या है? वह जो करेगा, मैं वही सह लूंगा? वह चूंकि पुलिस की नौकरी करता है, इसलिए मैं डर जाऊंगा? उसे यह पता नहीं है कि इस घर का लड़का नहीं है वह। मैंने अगर उसे अपने घर में जगह नहीं दी होती, तो वह लिख-पढ़ पाता या उसे दाने नसीब होते? इसे आदमी किसने बनाया? उसके बाप ने या मैंने? बचपन से खिला-पिलाकर इसे पाला-पोसा किसने? वह आज इस लायक हो गया कि मेरा ही खा-पहनकर मुझी पर रौब गालिब करे? इतना बड़ा बेहया है यह कि शराब पीकर मेरे यहां आता है। घर में बहू के होते रात बाहर गुजारता है?"

बड़े बाबू भी तैश में आ गया। बोला, "मैं जो करता हूं, करता हूं, अपनी कमाई के पैसे से करता हूं। आपसे तो मैं कौड़ी भी नहीं लेता—"

"ठीक है। मेरे पैसों से अगर तुम्हें इतनी ही अश्रद्धा है, तो अबसे तुम्हें मुझसे बिलकुल रुपया-पैसा नहीं मिलेगा। अपना रुपया-पैसा, जगह-जमीन—सब मैं सदानन्द को ही दूंगा। सदानन्द के नाम ही सारे कुछ का वसीयत कर जाऊंगा।"

बड़े बाबू ने कहा, "आपका रुपया-पैसा मैं चाहता भी नहीं। लेकिन आप जिसे अपना सब कुछ दे जाने को कह रहे हैं, मालूम है, वह एक स्काउंड्रल है? मैंने आज उसे किस मुहल्ले में देखा है, मालूम है?"

समरजित बाबू ने कहा, "वह चाहे जो भी हो, मगर सदानन्द तुमसे अच्छा है, इस बात का सबूत मेरे पास है। वह सबूत है, इसलिए मैं ऐसा कह रहा हूं—"

बड़े बाबू ने कहा, "मेरे पास भी सबूत है—"

सदानन्द से अब नहीं रहा गया। उसने समरजित बाबू के पास जाकर कहा, "चाचाजी, आप चुप रहिए, आपकी तबियत अच्छी नहीं है। मैं अब इन बातों में नहीं पड़ना चाहता। आप मुझे इजाजत दीजिए, मैं चला जाता हूं। आपके घर में मैं अपनी वजह से खामखा क्यों झमेला पैदा करूं।"

समरजित बाबू ने कहा, "तुम चले क्यों जाओगे? तुम क्या उससे डरते हो? वह पुलिस की नौकरी करता है, तो उसने क्या सोच लिया है, वह जो चाहेगा, वही कर लेगा?"

सदानन्द ने कहा, "जी, इसलिए नहीं। मुझे रुपये-पैसे, जगह-जमीन की कोई जरूरत नहीं है। वह सब मैंने बहुत देखा है..."

समरजित बाबू बोले, "तुम्हें कुछ बताने की जरूरत नहीं। तुम्हारे बारे में सारी जानकारी मुझे मिल गई है। महेश को नवाबगंज भेजकर मैंने सब कुछ का पता कर लिया है। मैं तुम्हें अपने घर में रखूंगा। मैं यह भी जानता हूं कि तुम्हें रुपयों की कमी नहीं है। मगर मुझे तुम्हारे जैसे लड़के की कमी है..."

...कहा, "लेकिन मैं यह साबित कर दूं कि यह आदमी एक इपोस्टर है, स्काउंड्रल है?"

समरजित बाबू ने कहा, "स्काउंड्रल वह नहीं, तुम हो। मैंने बहुत ही पाप किया था, इसलिए तुम्हारे जैसे एक स्काउंड्रल को अपने लड़के की नाईं आदमी बनाना चाहा था…"

चाचीजी को फिर डर हो आया। वह उनके पास आकर बोलीं, "तुम चुप भी रहो, लेट जाओ, तुम्हारा जी अच्छा नहीं है।"

समरजित बाबू ने कहा, "तुम मुझे चुप रहने को मत कहो, मुझे अगर इस समय शक्ति रही होती, तो मैं गला दबाकर ऐसे लड़के को मार डालता। तब कहीं चुप होता। यह सदानन्द को स्काउंड्रल कहता है, कहता है कि उसके नाम से पुलिस में रिपोर्ट है।"

"हां है। मैं फौरन आपको सबूत देता हूं। सबूत मेरे बैग में ही है।"

बड़ा बाबू वहां से निकलकर तुरन्त बगल के कमरे में चला गया। जरा देर में एक तसवीर ले आया। बोला, "लीजिए, देखिए। यह तसवीर इसकी है या नहीं, मिलाकर देख लीजिए आप…"

समरजित बाबू ने देखा, चाचीजी ने भी देखा, हां, तसवीर तो सदानन्द की ही है। इसमें तो कोई संदेह नहीं।

बड़े बाबू ने कहा, "मेरी बात का विश्वास नहीं हो रहा था, अब तो हो गया विश्वास?"

सब अचरज से विमूढ़ हो गए।

बड़े बाबू ने फिर कहा, "कहिए, कहिए। किसकी तसवीर है यह?"

किसीके मुंह से बोली नहीं निकली। सबके मन के विश्वास की इतने दिनों की भित्ति एक प्रचंड धक्के से एकबारगी हिल गई।

"चुप क्यों हो गए? कहिए?" बड़े बाबू ने कहा।

चाचीजी से रहा नहीं गया। पूछा, "इसकी तसवीर तेरे पास कैसे आई?"

बड़े बाबू ने कहा, "यह तो उसीसे पूछो न, जिसकी यह तसवीर है। वह तो तुम्हारे सामने ही खड़ा है।"

सदानन्द वहां और खड़ा नहीं रहा। सबकी विमूढ़ दृष्टि से अपने को ...ाने के लिए वह कमरे से बाहर निकल आया। वहां से बिलकुल नीचे ...र आया और अपने कमरे में जाकर अंदर से कुंडी लगा ली।

...स हालत में कब तक बीता, पता नहीं। अचानक नरेश ने बाहर से ... में धक्का दिया, "भैया जी, भैया जी, दरवाजा खोलिए…"

...ने कब, कितने दिन पहले, उस दिन वह बाजार के एक मकान के अंदर ... सदानन्द के मन में जो प्रतिक्रिया हुई थी, वह तो आज भी याद है। ...बा अरसा गुजर गया, मगर उतनी विरक्ति और विरूपता के ...

हुए भी उसकी याद जरा भी धुंधली नहीं हुई।

उसे याद है, उसने सोच लिया था, दिन-भर वह इसी कमरे में बिता देगा। उसके जी में हुआ, यहां रहकर क्या होगा? भाग्य के जाने किस एक थपेड़े से जब वह घर छोड़कर निकल पड़ा है, तो यह सारी दुनिया ही तो उसका घर है। फिर वह घर की माया ही क्यों कर रहा है। इन चार दीवालों से घिरे आश्रय में वह क्या फिर एक बंधन में पड़ेगा?

बीच में महेश ने जाने कितनी बार दरवाजे में धक्का दिया, "भैया जी खोलिए..."

लेकिन जो दृढ़प्रतिज्ञ आदमी कभी माया के हजारों आकर्षण को ठुकराकर निकल आया, वह क्या इन मामूली समरजित बाबू के कुछ रुपयों के भुलावे में भूल जाएगा? एक दिन वह बड़े मालिक के भुलावे में पड़ा, उनकी बात पर नयनतारा जैसी एक निर्दोष लड़की की जिन्दगी बरबाद की। नयनतारा को अपने पति से हाथ धोना पड़ा, नयनतारा के मां होने की सम्भावना को भी उसने मिट्टी में मिला दिया और इतना कुछ के बाद भी अगर वह समरजित बाबू के आश्रय में लिपटा रहे, तो अपने विधाता पुरुष को इसकी कौन-सी कैफियत देगा? अपनी इस जिन्दगी में उसे आराम करने का हक भी है। शरीर और मन के सुख-भोग का जो मालिकाना स्वत्व है, वह उसीको तो अपनी इच्छा से लात मार आया है। इसी त्याग और कृच्छ साधन के द्वारा ही तो उसे सारा जीवन अपने पूर्वजों के पापों का प्रायश्चित करते रहना पड़ेगा। इससे तो अब उसे छुटकारा ही नहीं है। दूसरे का जीवन बरबाद करके स्वयं सुख भोगने की जो नीचता है, वह जिसमें उसे कभी न छू सके। उस नीचता से जिसमें उसे परित्राण मिले।

महेश फिर दरवाजे पर धक्का देने लगा। पुकारना शुरू किया, "भैया जी, दरवाजा नहीं खोलिएगा? नहीं खोलिएगा, तो मैं दरवाजा तोड़ दूंगा—"

लेकिन उसके बावजूद सदानन्द अचल-अटल-सा, दांत पर दांत रखे पड़ा ही रहा। लेकिन यह निबह नहीं सका। बाहर से चाचीजी का गला सुनाई पड़ा, "बेटा सदानन्द, तुम नहीं खाओगे, तो हम सब भी कोई नहीं खाएंगे। क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारे तरह हम सब भी दिन-भर उपवास ही करें?"

सदानन्द ने झट दरवाजा खोल दिया। खोलते ही देखा, महेश खड़ा है। उसके बगल में चाचीजी खड़ी हैं।

चाचीजी बोलीं, "तुम क्या चाहते हो बेटे, हम भी उपवासी रहें?"

सदानन्द अपराधी की नाईं चुप रहा।

चाचीजी ने फिर कहा, "तुम्हारे चाचाजी रोगी हैं। जानते हो, उन्होंने सुना कि तुमने खाना नहीं खाया है, तो उन्होंने पानी तक नहीं पिया। बहू ने भी अभी तक नहीं खाया था। अभी-अभी मैं उसे खिलाकर आ रही हूं। वक्त क्या हो गया, पता है? दिन के तीन बज गए—"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन आप लोगों ने खा क्यों नहीं लिया?"

चाचीजी ने कहा, "तुमने तो खूब कही बेटे! तुम घर के लड़के, कुछ खाया

नहीं और हम बूढ़ी-बूढ़े खा लेंगे ? ऐसा भी कर सकता है कोई ?"

सदानन्द बोला, "मगर चाचाजी तो बीमार आदमी हैं, उन्हें जो खिलाना था, क्यों नहीं खिला दिया ?"

चाचीजी बोलीं, "मैंने तो बहुतेरा कहा, उन्होंने एक नहीं सुनी। तुम कोशिश करके देखो, अगर उन्हें खिला सको—"

सदानन्द क्या करता। बोला, "चलिए। मैं उन्हें समझाकर कहता हूं—"

वह चाचाजी के कमरे में ऊपर गया। समरजित बाबू थके हुए-से बिछौने पर पड़े थे। सवेरे से आवेश में ही बीता। बीमार शरीर लिए लड़के से बहुत तर्क-वितर्क किया। जिन्दगी में उन्होंने कभी तकलीफ नहीं की थी। बिना मेहनत किए ही मिली दौलत ने उन्हें सिर्फ आराम ही आराम दिया, पर उस दौलत के दुरुपयोग की कुमति उन्हें कभी नहीं हुई। वह इस बात को समझते थे कि बिना कमाए जो धन उन्हें मिला है, उसपर उनका अपना कोई अधिकार नहीं। इसलिए अपनी जरूरत भर के लिए जितना आवश्यक था, उतना ही रखकर बाकी का उपयोग उन्होंने दान-खैरात में किया। फिर परलोक की चिन्ता थी। पुरखों की याद ही उनकी एकमात्र पूंजी थी। उन्हें यही चिन्ता बीच-बीच में परेशान किए देती थी कि अपनी उस पूंजी की थाती वह किसे दे जाएंगे। जिस लड़के को गोद लिया था, उसीपर भरोसा था। लेकिन उनके उस लड़के की उच्छृंखलता ने जब उन्हें उत्पीड़न की चरम सीमा पर पहुंचा दिया था, तभी उनका परिचय सदानन्द से हुआ। फिर तो जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, वह सदानन्द की ओर उतना ही आकृष्ट होते गए। उन्होंने तै कर लिया, अपने पूर्वजों की स्मृतियों की सारी पूंजी सदानन्द को ही सौंपकर वह अन्तिम सांस लेंगे।

लेकिन सदानन्द ने स्वयं ही उस दिन उनके उस अरमान को ठेस लगाई।

सदानन्द ने आखिर क्यों सब कुछ से इनकार किया, इसका कोई युक्ति-संगत कारण उन्हें ढूंढ़े नहीं मिला। तो क्या सदानन्द को यह सब कुछ भी पसन्द नहीं है। फिर क्या करें वह ? किसके हाथों सब कुछ सौंपकर वह अपने अन्तिम जीवन का परित्राण खोजेंगे ?

"अजी ओ, यह लो तुम्हारा सदानन्द आया है।"

समरजित बाबू ने आंखें खोलीं। सामने सदानन्द को देखकर उनके होठों पर फीकी-सी हंसी खेल गई।

सदानन्द ने कहा, "चाचाजी, आप खा क्यों नहीं रहे हैं ?"

समरजित बाबू ने कहा, "तुम नहीं खाओगे तो मैं कैसे खा सकता हूं ? मैंने भी नहीं खाने का ही सोच लिया है।"

"लेकिन क्यों ? आप आखिर खाएंगे क्यों नहीं ? मेरे नहीं खाने की वजह तो आप जानते हैं। मुझपर जो झूठे आरोप लगाए गए, आंखों के सामने उसका प्रतिवाद करने में भी मुझे घृणा हुई। मगर मैंने देखा, आप लोगों ने उन्हीं बातों को बिना कुछ कहे विश्वास कर लिया…"

समरजित बाबू ने कहा, "परन्तु किसी भी हालत में क्या इतना गुस्सा

करना चाहिए सदानन्द ? मैं तो तुम्हें धीर-गम्भीर ही समझता था। तुमसे मैंने ऐसे व्यवहार की आशा नहीं की थी। तुम्हें क्या यह मालूम नहीं है कि विश्वास करने में ही मन की उदारता प्रकट होती है।"

सदानन्द ने कहा, "तो क्या किसीके कहने पर काला को सफेद मानना होगा ?"

समरजित बाबू ने कहा, "तुमने इतने दिनों में भी मेरे लड़के को नहीं पहचाना ? यदि तुमने उसे नहीं पहचाना हो, तो तुमने मुझको भी नहीं पहचाना। तुमने अगर ठीक से मुझे पहचाना होता, तो मुझपर इस तरह नाराज होकर खुद भी कष्ट नहीं पाते और मुझे भी कष्ट नहीं देते।"

चाचीजी एकाएक बोल उठीं, "बेटे, तुमने लेकिन किया क्या था कि तुम्हारी तसवीर मेरे मुन्ने के दफ्तर में पहुंच गई ?"

सदानन्द ने कहा, "आप मुझसे इसका जवाब मत पूछिए चाचीजी ! जवाब के लिए अगर आप ज्यादा तंग करेंगी, तो मुझे इस घर से चला जाना पड़ेगा। इससे घिनौनी बात दूसरी और हो नहीं सकती।"

"तुम्हारे नाम से भी क्या कभी कोई पुलिस केस हुआ था ?"

समरजित बाबू ने बीच में बाधा दी। पत्नी की ओर देखकर बोले, "तुम क्या कहना चाहती हो, तुम्हारा लड़का ही अच्छा है, सदानन्द ही बुरा है ?"

सदानन्द बोल उठा, "अपने समर्थन में कुछ कहना ही मेरे लिए घृण्य है। उसके लिए मैं किसीको भी कोई कैफियत देने को तैयार नहीं। यहां तक कि उससे मेरे लिए इस घर को छोड़कर चल देना आसान है।"

चाचीजी ने कहा, "नहीं बेटे, तो तुम्हें कहने की जरूरत नहीं। बल्कि तुम खा लो, हम लोग भी दो कौर मुंह में डालें..."

चाचीजी ने आवाज देकर कहा, "महेश, भैया जी का खाना लगा—"

सदानन्द ने कहा, "मैं खाऊंगा, वचन देता हूं। पर चाचाजी बीमार हैं, पहले वह खा लें..."

सुनकर समरजित बाबू हंसे। वह हंसी नहीं थी, रुलाई का ही दूसरा रूप थी। उन्होंने पत्नी की तरफ देखा। बोले, "मैं जानता था, सदानन्द मेरी बात रखेगा। तुम्हीं सिर्फ यह कहती थीं, सदानन्द अब नहीं रहेगा, घर छोड़कर चला जाएगा—क्यों, अब मेरी बात पर विश्वास हुआ ?"

चाचीजी ने कहा, "यह मैं कैसे जानूं, कहो ? महेश इसका घर देखकर आया और जो कुछ वह बोला, उससे मुझे लगा, यह यहां क्यों रहने लगा ? उसका घर इस घर से हजार गुना बड़ा है, इसकी जगह-जमीन जायदाद का क्या अन्त है ? महेश तो वहां से सब सुनकर आया है..."

समरजित बाबू ने कहा, "मैं तुमसे आज एक अनुरोध करूंगा बेटे, तुम्हें आज वचन देना होगा। तुम बात दोगे, तभी मैं खाऊंगा।"

सदानन्द ने कहा, "कैसी बात, कहिए ?"

समरजित बाबू कहने लगे, "इतने दिनों में तुम इस घर का निश्चय ही

सब कुछ जान गए होंगे। और, तुम यह भी जानते हो कि हम ब्राह्मण नहीं हैं!"

सदानन्द ने कहा, "मैं जात नहीं मानता···"

समरजित बाबू ने कहा, "उसी भरोसे तो तुम्हें कहने की हिम्मत कर रहा हूं बेटे···मेरे कोई नहीं है, मेरे ऐसा कोई नहीं, जिसपर सब कुछ का भार सौंपकर मैं निश्चिन्त होकर अन्तिम सांस ले सकूं। फिर भी कम-से-कम यह भरोसा तो कर सकूंगा कि मैं ऐसे एक आदमी पर सब छोड़कर जा रहा हूं, जो मेरे पुरखों की स्मृति को बचाए रखेगा।"

उन्होंने जरा सांस ली। फिर बोले, "तुम शायद यह कहो कि मेरे तो लड़का है, फिर मैं नये सिरे से ऐसा अनुरोध क्यों कर रहा हूं! कर इसलिए रहा हूं कि उसपर अब मुझे भरोसा नहीं है—वह नालायक है, आदमी नहीं है। उस नालायक पर सब छोड़कर जाने से मैं नरक में रहकर भी शान्ति नहीं पाऊंगा···"

सदानन्द चुपचाप सब सुनता रहा। बोला कुछ नहीं।

समरजित बाबू ने कहा, "उस दिन मैं तुमसे यही सब कहने जा रहा था, पर बाधा पड़ गई। आज तुम मेरे सामने वादा करो, तुम राजी हो···"

सदानन्द ने कहा, "आप क्या कहना चाह रहे हैं, मैं समझ नहीं रहा हूं।"

समरजित बाबू ने अपनी पत्नी से कहा, "तुम कह दो, मैं क्या कहना चाहता हूं···"

चाचीजी ने कहा, "मैं क्या कहूं, तुम्हीं कह दो न···"

समरजित बाबू ने कहा, "ठीक है। मैं ही कहता हूं। मैं अपने बेटे को अपनी चल-अचल सारी सम्पत्ति से वंचित करके अपने सब कुछ का उत्तराधिकारी तुमको बनाना चाहता हूं, तुम राजी हो!"

सुनकर सदानन्द स्तंभित हो गया। वह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि समरजित बाबू ऐसा भी प्रस्ताव कभी कर सकते हैं।

जरा देर तक तो उसके मुंह से कोई बात नहीं निकली। उसके बाद वह बड़ी मुश्किल से बोला, "लेकिन मुझे यह कहने से पहले आपने सब तरह से विचार करके देख लिया है?"

"हां, मैंने सोच देखा है। तुम जिस दिन से यहां आए हो, मैंने उसी दिन से सोचा है, सोच-सोचकर अन्त तक मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं। मैं यह जानता हूं कि तुम ब्राह्मण हो, मैं शूद्र हूं। यह भी सोचा कि तुम विवाहित हो, तुम्हारे अभिभावक हैं। इसके सिवाय महेश को नवाबगंज भेजकर मैंने और-और जानकारी भी हासिल की है। और, उसके बाद भी मैं तुमसे यह प्रस्ताव कर रहा हूं···"

सदानन्द ने कहा, "मुझे इसपर थोड़ा सोचने का समय दीजिए चाचाजी! मैं इसी समय इसपर अपनी कोई राय नहीं दे सकूंगा···"

समरजित बाबू ने कहा, "नहीं, अब तुम्हें सोचने का समय नहीं दूंगा, तुम्हें इसी समय अपनी राय देनी होगी।"

सदानन्द ने कहा, "अभी ही राय कैसे दे दूं ? आपके लड़के से भी तो पूछना होगा कि वह इसपर राजी है या नहीं ?"

"लड़के से ? मेरा लड़का ? तुम जिसके बारे में कह रहे हो, वह मेरा लड़का नहीं, कुलांगार है। उससे फिर पूछना क्या ? तुम्हें तो मालूम है, वह शराबी, है, लम्पट है, वदचलन है। सोने की प्रतिमा जैसी लड़की से उसका व्याह कराया है, फिर भी वह रात को घर नहीं आता, उसकी दूसरी एक रखैल है। ऐसे लड़के से मैं पूछूंगा ? वह क्या कोई आदमी है कि मैं उससे पूछूं ? मेरी बहू को तुमने देखा नहीं है बेटे, शादी के बाद से किसीने उसके होंठों पर कभी हंसी नहीं देखी। उस लड़के ने केवल हम लोगों का ही नहीं, बहू का जीवन भी नष्ट कर दिया है। बहू के इस कष्ट से मुझे बड़ी तकलीफ होती है। मुझे लगता है, उसके इस दुःख का मैं ही तो ज़िम्मेदार हूं। वह दिन-भर किसीसे बोलती नहीं, कोई उसकी शक्ल भी नहीं देख पाता। उसका यह कष्ट तो मेरी ही वजह से है, मैं ही तो उसे अपने लड़के से व्याह कराके यहां ले आया हूं।"

सदानन्द ने कहा, "फिर भी, यह सब कुछ सुनने के बाद भी अगर आपका लड़का इसपर एतराज करे ?"

"एतराज कर सकता है। परन्तु अपनी चीज मैं जिसे चाहूंगा, दे जाऊंगा। इसपर किसीको क्या एतराज़ है, यह जानने की मुझे जरूरत क्या है ? मैं जानना भी नहीं चाहता।"

"लेकिन इसके लिए उससे मेरा टंटा खड़ा करने की क्या आवश्यकता है ? मैं तो यह सब नहीं चाहता। मुझे इन सबकी जरूरत भी नहीं। पर इसके लिए वह झगड़ा-झंझट, मामला-मुकदमा करेंगे—तब क्या होगा ? और फिर वह विवाहित हैं। आप अगर उन्हें छोड़ दें, फिर तो उन्हें यह घर भी छोड़ना पड़ेगा ?"

"बेशक छोड़ना होगा। अब मैं उसे इस घर में नहीं रहने दूंगा।"

सदानन्द बड़ी मुश्किल में पड़ा। अजीब आफत है तो ! बोला, "लेकिन उनकी पत्नी ? उनकी सहधर्मिणी ?"

नरनारायण बाबू ने कहा, "तुम क्या सोचते हो कि मैंने इस पहलू पर सोचा नहीं है ? मैंने वह व्यवस्था भी कर रखी है। आजीवन उसके गुज़र-बसर के लिए जो चाहिए, उसका इंतजाम मैं कर जाऊंगा। वह अगर चाहें तो इस घर के एक हिस्से में रह सकती हैं या चाहें तो अपने पति के साथ चली जा सकती है। चूंकि उनके भविष्य के लिए मुझे एक ज़िम्मेदारी है, इसीलिए मैंने ऐसा किया है।"

यह कहकर उन्होंने पत्नी से कहा, "मेरा वह दस्तावेज कहां है ?"

नानीजी ने कहा, "अपने तकिए के नीचे देखो, वहीं रक्खा है तुमने।"

तकिए के नीचे से दस्तावेज को निकालकर नरनारायण बाबू ने सामने रखा। बोले, "देख लो। वकील से मैंने सब पक्का काम कराके रक्खा है। इसमें तुम्हारा नाम भी दे दिया है। तुम राजी हो जाओगे, तो यहां पर सिर्फ तुम्हारी सही बनवा लूंगा। कल ही मेरे वकील साहब आएंगे—तुम राजी

हो न ?"

सदानन्द चुप रहा।

"बोलो, राजी हो या नहीं ?"

सदानन्द ने कहा, "आप मुझे माफ करें चाचाजी, मैं राजी नहीं हो सका।"

अचरज से अवाक् होकर समरजीत बाबू कुछ देर तक सदानन्द की ओर देखते रह गए।

उसके बाद बोले, "तुम राजी नहीं हो ?"

"नहीं।"

यह 'ना' समरजित बाबू को बड़ा बेदर्द-सा लगा। उन्हें ऐसी आशंका शायद नहीं थी। लेकिन उन्हें लगा, वह शायद गलत सुन रहे हैं। बोले, "तुम सचमुच ही राजी नहीं हो ?"

सदानन्द ने कहा, "मैं एक आदमी की दुनिया को बरबाद नहीं करना चाहता।"

"मेरे मन की शान्ति के लिए भी तुम राजी नहीं हो सकोगे ? न हो तो, मेरे मरने के बाद तुम यह जायदाद और किसीको दे देना। उस समय तो मैं यह देखने नहीं आऊंगा। मगर मैं जब तक ज़िंदा हूं, तुम तब तक के लिए भी राजी नहीं हो सकते सदानन्द ?"

सदानन्द ने कहा, "जी, हरगिज नहीं। आप इसके लिए मुझपर जोर न डालें—"

वह इतना कहकर धीरे-धीरे घर से निकल आया। धीरे-धीरे वह सीढ़ी से नीचे उतरने लगा। आते हुए उसे ऐसा लगा, जैसे बहुत ही दीर्घश्वास और बहुत ही आंसू का बोझ वह चाचाजी और चाचीजी के सिर पर रख आया। लेकिन वह यह बात किसे समझाए कि यह उसका त्याग नहीं, उसकी पीड़ा है। इसी पीड़ा के चंगुल से बचने के लिए वह इतनी दूर आ पहुंचा है और यहां आकर भी क्या वह उसी पीड़ा की जंजीर को अपने गले में पहन लेगा ? सदानन्द को लगा, उसके पैरों तले की ज़मीन जैसे हिल रही है।

"सुनो सदानन्द, सुनो, । चले मत जाओ।"

समरजीत बाबू का गला सुनकर वह ठिठक गया। उसके बाद पा-पा करके वह फिर कमरे में आया। बोला, "मुझे पुकार रहे थे ?"

"तुम किस तरह के हो, मैं समझ नहीं पा रहा हूं सदानन्द ! मैं तुम्हें दौलत देना चाहता हूं, पर तुम लेना नहीं चाहते, यह तो बड़े अचरज की बात है। ऐसा होता तो नहीं है। जानते हो तुम, मेरी इस सम्पत्ति की कीमत कितनी है ?"

सदानन्द ने कहा, "जानने से लाभ क्या है मुझे ?"

समरजित बाबू ने कहा, "मगर एक दिन तो तुमने मुझसे महज मामूली एक नौकरी ही मांगी थी ? नौकरी करोगे तुम ?"

"कौन-सी नौकरी ?"

"यही समझ लो कि मेरे पास-पास रहोगे, मेरी देखभाल करोगे, मेरी जायदाद का हिसाब-पत्तर रखोगे। उसके बदले तुम तनखाह पाओगे, यहां रहोगे। दोनों जून यहां खाना मिलेगा। राजी हो इसपर?"

सदानन्द ने कहा, "पहले मिली होती, तो शायद राजी हो जाता चाचाजी, मगर इतना कुछ हो जाने के बाद अब राजी नहीं हुआ जा सकता।"

वह फिर जाने लगा। लेकिन चाचीजी ने कहा, "पर बेटे, तब तो तुम्हारे चाचाजी आज कुछ भी नहीं खाएंगे। जब तुमने ही नहीं खाया—"

सदानन्द ने कहा, "मुझे अब इन बातों की चर्चा ही अच्छी नहीं लग रही है चाचीजी! मुझे केवल यही लग रहा है, आप लोग मुझे एड़ी-चोटी बांधकर रखना चाह रहे हैं। आखिर मैं घर छोड़कर चला क्यों आया, वहां मुझे किस बात की कमी थी? मैं क्या अपने घर में अपने परिचय के साथ अपनी गिरस्ती बसाकर आराम से नहीं रह सकता था?"

चाचीजी ने कहा, "सो तो ठीक ही है। आखिर वह सब छोड़कर तुम चले ही क्यों आए? किसलिए?"

सदानन्द ने कहा, "मैं अगर बताऊं भी, तो भी आप समझ नहीं सकेंगी चाचीजी! आदमी कितना नीच हो सकता है, यह आप जानती हैं? आप लोग अपने लड़के को देख रही हैं, सोचती हैं, इससे बढ़कर नीच नहीं है। पर आपने मेरे दादाजी को तो नहीं देखा। देखा होता तो समझतीं कि शायद जानवर भी उनसे अच्छे हैं। मेरे दादाजी की तुलना में तो आपका लड़का देवता है। इसीलिए जब आप लोग उसकी निन्दा कर रहे थे, तो मैं मन-ही-मन हंस रहा था। सोच रहा था, आप लोगों ने अगर मेरे दादाजी को, मेरे पिताजी को देखा होता तो क्या कहते! मेरे लिए यही लज्जाजनक है कि मैं उसी वंश का लड़का हूं।"

यह कहकर सदानन्द ने दोनों हाथों से मुंह को ढंक लिया।

चाचीजी ने कहा, "लेकिन तुम जो बहू को छोड़ आए, उसे कौन देखेगा? उसका कैसे चलेगा? क्या लेकर रहेगी?"

"छोड़कर नहीं आता तो क्या करता, कहिए? उसके साथ घर बसाने से मैं चौधरी वंश को बढ़ाने के सिवाय और कुछ कर जो नहीं सकता!"

"बाप के तो तुम इकलौते बेटे हो?"

"आप लोग नहीं समझेंगे चाचीजी, मेरी पीड़ा को आप लोग कोई नहीं समझेंगे, किसी भी तरह से नहीं। मैं जब चाचाजी के साथ यहां चला आया था, उस समय यह सोचा था कि कोई नौकरी जुटाकर सब लोगों की नजर से बाहर जिन्दगी के जो कुछ दिन हैं, बिता दूंगा, लेकिन वह भी नहीं हो सका। यहां आकर भी मैं दूसरे बंधन में बंध गया। अब मैं करूं क्या, यह तो कहिए! आप लोग मुझे इतना प्यार करने लगेंगे, मैं तो यह सोच भी नहीं सका था। आप लोगों ने मुझे इस कदर प्यार क्यों किया? आप लोगों ने मुझे इतना अपना क्यों बना लिया? आप लोग मुझे अपना सर्वस्व क्यों देना चाह रहे हैं? मेरा यह नुकसान क्यों कर रहे हैं?"

बोलते-बोलते सदानन्द की आंखें सुर्ख हो आईं। मानो उन आंखों में ज्वाला

जलने लगी।

कपड़े से आंखें पोंछकर वह फिर कहने लगा, "मेरा बड़ा ही दुर्भाग्य है कि मैं नवाबगंज के चौधरी परिवार में पैदा हुआ। नहीं तो मुझे यह दुर्गत नहीं भुगतनी पड़ती, इतना पाप इन आंखों नहीं देखना पड़ता। उसके बदले यदि मैंने आपके यहां जन्म लिया होता तो दुनिया में किसका क्या बिगड़ जाता? वैसे में मैं अपने जन्म के अधिकार से ही यह सब भोग-दखल करता। किसीको कुछ कहने की भी गुंजाइश नहीं होती—घर छोड़कर भागने की भी नौबत नहीं आती।"

चाचीजी ने कहा, "तब तो कोई बात ही नहीं थी बेटे, फिर तो सोच-सोचकर तुम्हारे चाचाजी की सेहत का भी यह हाल नहीं होता! लेकिन भाग्य की बात बेटे, हमारा ही भाग्य, वरना तुम्हारे जैसा लड़का रहने से हमें इतना कष्ट होता!"

समरजीत बाबू अब तक उठकर बैठे थे, अब लेट गए। कैसे तो छटपट करने लगे

चाचीजी उनके निकट गईं। बोलीं, "क्या हुआ? तकलीफ हो रही है? छाती सहला दूं?"

महेश बाहर खड़ा था। बाबूजी का यह हाल देखकर वह नजदीक आ गया। सभी समरजित बाबू के सामने गए। उनके मुंह के पास ले गए। चाचीजी ने पूछा, "कुछ खाओगे? दवा ला दूं?"

समरजित बाबू ने सिर हिलाया। मतलब, नहीं।

"खाओगे ही नहीं?"

सदानन्द असहाय-सा चुप खड़ा था। सदानन्द की ओर देखकर चाचीजी ने कहा, "तुम उनसे जरा कहो न बेटे, तुम्हारे कहने से ही वह दवा पिएंगे। डाक्टर इतना समझाकर कह गए, फिर भी उन्होंने कुछ नहीं खाया। डाक्टर ने देना के लिए कहा था, वह भी बनाकर रखा है। सवेरे से इस बकझक में उन्हों-ने मुंह में कुछ डाला ही नहीं—"

सदानन्द उनके सामने जाकर बोला, "चाचाजी, दवा पी लीजिए न—"

समरजित बाबू ने फिर सिर हिलाया, "नहीं।"

सदानन्द ने फिर कहा, "डाक्टर को फिर बुलवा लूं? महेश को भेज दूं?"

समरजित बाबू एक ही तरह से सिर हिलाने लगे, "नहीं।"

क्या जो हुआ, सुबह से ही घर में आंधी-सी उठती गई। लेकिन उसका नतीजा यह निकलेगा, यह कौन जानता था?

सदानन्द को सूझ नहीं रहा था कि क्या करे! चाचीजी से कहा, "आप ही जरा कह देखिए चाचीजी, आपकी बात शायद सुनें।"

चाचीजी ने कहा, "मेरी नहीं सुनेंगे, तुम्हीं बल्कि कहो। तुमको वह बेहद प्यार करते हैं, तुम्हारे बात पर ना नहीं करेंगे।"

सदानन्द ने कहा, "मगर मैं ही क्या कहूं? मैंने ही क्या उनकी बात रखी कि वह मेरा कहा सुनेंगे?"

चाचीजी ने कहा, "तो तुम कहो न कि तुम्हें उनकी बात से इनकार नहीं है—फिर वह मानने में आपत्ति नहीं करेंगे।"

"कहूं ?"

"हां हां, कहो। मुंह से महज बोलने में क्या हर्ज है ? उसके बाद जो अच्छा समझना, वही करना। कहो बेटे, कहो बूढ़े आदमी हैं, तुम्हारी बात से फिर भी उनका कलेजा ठंडा होगा।"

सदानन्द ने देर नहीं की। समरजित बाबू के मुंह के पास मुंह ले जाकर बोला, "चाचाजी, आप जो कहेंगे, मैं उसीपर राजी हूं। आप शांत हों। दवा पी लीजिए—"

समरजित बाबू का चेहरा कैसा तो दमक उठा। सदानन्द की ओर देखकर उन्होंने जाने क्या कहना चाहा। मगर बोल नहीं सके। एकाएक सदानन्द को देखने लगे।

सदानन्द ने कहा, "मैं राजी हूं चाचाजी, मैं राजी हूं।"

समरजित बाबू के होंठ सिर्फ हिल उठे।

"कुछ कहेंगे आप ?"

समरजित बाबू ने क्या कहा, कोई समझ नहीं सका।

"डाक्टर साहब को बुलाऊं ?"

समरजित बाबू के होंठ ज़रा खुले। लड़खड़ाई आवाज में बोले, "वकील···"

उनकी मंशा अब समझ में आई। महेश वकील साहब को बुलाने के लिए चला गया। वकील साहब के आते-आते और भी बेला हो गई। तब तक वह बहुत कुछ संभल गए थे। तकिए के अन्दर से वह दस्तावेज निकला, वसीयतनामा निकला। समरजित बाबू का सब किया-कराया ही था। कागज़ पर वकील साहब ने भी हस्ताक्षर किया। सदानन्द को भी अपनी सही बनानी पड़ी। समरजित बाबू और उनकी पत्नी के बाद उनकी चल-अचल सारी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी सदानन्द चौधरी होंगे। साकिन नवाबगंज, स्टेशन रेल-बाजार, थाना हांसखाली, जिला नदिया। और उनके पाले हुए लड़के सुशील सामन्त को सारे अधिकारों से वंचित करके···आदि-आदि।

सब कुछ के होते-हवाते वह बाजार में दिन ढलकर सांझ हो आई। नवाबगंज में इतनी जल्दी सांझ नहीं होती। समरजित बाबू को दवा पिलाकर सबको खिलाने-पिलाने के बाद रसोई-घर का झमेला निबटाने में और भी अंधेरा हो गया। समरजित बाबू निश्चिन्त होकर सो गए थे।

चाचीजी ने कहा, "अब तुम जाकर सो जाओ बेटे। मैं तो हूं। तुम्हारा समूचा दिन बखेड़े में ही बिता···"

सदानन्द अपने कमरे में आकर बिस्तर पर लुढ़क गया। बत्ती बुझा देने तक का ख्याल नहीं रहा। आखिर उसने यह किया क्या ! नयनतारा की ज़िन्दगी बरबाद करके अन्त में वह यहां समरजित बाबू की जायदाद का वारिस बनकर अपना जीवन बिताएगा ? इतने दिनों के इतने विद्रोह का आखिर इस निश्चिन्त आराम में अन्त होगा ! तो फिर नवाबगंज ने कौन-सा दोष किया है !

कल सवेरे उस दस्तावेज की बाजाब्ता रजिस्ट्री हो जाएगी। कायदा-कानून स्टाम्प-सही-सबूत समेत। उस दस्तावेज में इधर-उधर करने की किसीकी मजाल नहीं। फिर तो इस घर का निष्कंटक उत्तराधिकार उसीका हो जाएगा। समरजित बाबू का एकमात्र उत्तराधिकारी होगा यही सदानन्द चौधरी। यह तो हुआ सिर्फ सम्पत्ति का हिसाब। असली समझौता तो और भी कठिन, और भी कठोर था। सदानन्द को आजीवन दायित्व का यह बोझा ढोते रहना पड़ेगा। समरजित सामन्त के पुरखों के सारे पुण्य, सारे पापों का बोझा उसीके मत्थे आ रहा। अपनी इच्छा से और पूरे होशो-हवास के साथ उसने क्षण-भर में ही अपने पहले परिचय को बिलकुल बदल दिया। बदल दिया सिर्फ कलम की एक लकीर से, स्याही के एक निशान से। उसके जीवन की यह कैसी विचित्र गति! उसके बनाने वाले का यह कैसा निर्मम परिहास!

इतने में सदानन्द को एक अजीब ही चीज नजर आई। उसने देखा, उसके कमरे के दरवाजे के नीचे से कौन तो चुपचाप एक मुड़ा हुआ कागज अन्दर डाले दे रहा है। देखते ही वह अपने बिछौने से उठा। जाकर उस मुड़े हुए कागज को उठा लिया और खोलकर पढ़ने लगा। स्त्री के हाथ के मोटे-मोटे हरूफ में लिखा था—

"आपके इस घर में आने के बाद से हम लोगों के जीवन में विपर्यय शुरू हुआ है। मेरा भूत तो था ही नहीं, वर्तमान भी नहीं था। केवल एक भविष्य ही दीए की तरह टिमटिम जल रहा था। आपके आने से आज अकस्मात् वह भी बुझ गया। आज मेरा भूत, भविष्य, वर्तमान—सभी समाप्त हो गए। आप क्यों आए? मुझ जैसी अभागिन नारी का यह सर्वनाश करके आपको क्या मिला? आप क्या इस घर से चले नहीं जा सकते? मुझ जैसी एक निर्दोष स्त्री के लिए क्या आप यह साधारण-सा उपकार भी नहीं कर सकते? इतना उपकार अगर कर सकें तो मैं आपकी सदा आभारी रहूंगी।"

कौलिपद बाबू को यह बात पहले से ही मालूम थी कि उनके जीवन के अन्तिम दिन निरे निःसंग बीतेंगे। पत्नी तो पहले ही जा चुकी थीं, रह गई थी एक, उनकी इकलौती लड़की। लेकिन लड़की के जन्मते ही लोग अवश्य यही समझ लेते हैं कि यह तो पराए घर जाने के लिए ही पैदा हुई है। सुतरां उसपर कोई आशा नहीं करता, भरोसा नहीं करता। और, जब उस लड़की के भी मरने की खबर आई तो फिर उनके जिन्दा रहने का कोई मायने नहीं रह गया। सोचा था, सबको छोड़कर, सबको स्वस्थ-समर्थ देखकर वह इस दुनिया से विदा होंगे। वह लेकिन नहीं हुआ। पहले फिर भी नवाबगंज से कभी-कभी चिट्ठी आती थी। चिट्ठी में यह लिखा देख लेते थे कि प्रीतिलता सकुशल है, सदानन्द मजे में है, जामाता भी सानन्द हैं, तो वह निश्चिन्त हो जाते थे। इसके सिवाय उन्हें और कोई कामना नहीं थी। यह धरती जहन्नुम में

जाए, इनसे उनका कुछ जाता-आता नहीं। प्रीतिलता, सदानन्द और जामाता ठीक रहें, बस हो गया।

और जगह-जमीन? वह तो खैर रहेगी ही। जगह-जमीन रहने से ही प्रजा-पाठक रहेंगे और प्रजा-पाटक रहेंगे तो लगान देंगे ही। जब तक वे लोग लगान देते रहेंगे, उन्हें भी अन्न-वस्त्र की कोई चिन्ता नहीं रहेगी। आदमी इससे ज्यादा चाहता ही क्या है? एक ही तो पेट, आखिर कितना खाएंगे? जामाता भी हालत के कुछ ऐसे गए-बीते नहीं कि उनकी जायदाद के आसरे हों। रह गया सदानन्द। जो कुछ भी वह छोड़ जाएंगे, सब अन्त में उसीका होगा।

अकेले में पड़े-पड़े वह यह सब सोचा करते और सोचते-सोचते जाने कब सो जाते! प्रकाश की पत्नी आकर जगाती, "फूफा जी, जागिए। आपका खाना लगा दिया है।"

कीर्तिपद बाबू कहते, "तुम मेरा खाना ढककर चली जाओ, मैं बाद में उठकर खा लूंगा..."

सच तो यह कि फूफा जी प्रकाश को ही फूटी आंखों नहीं देख सकते थे। उनकी पत्नी कब की गुजर गई, इसका ठिकाना नहीं। लेकिन रुपये के लोभ से उनकी पत्नी के नातेदारों ने साथ नहीं छोड़ा है। वे लोग उनके पीछे लगे हुए हैं। लेई-से जिन्दगी-भर चिपके हुए हैं।

आखिर प्रकाश की पत्नी एक दिन रात को फिर पुकारने लगी, "फूफाजी उठिए। आपका खाना लगा दिया गया है..."

लेकिन उस दिन कोई जवाब नहीं मिला। बहुत बार आवाज दी गई, पर कीर्तिपद बाबू की ओर से कोई जवाब नहीं मिला। बस, बात उसी समय चारों तरफ फैल गई कि सुलतानपुर के कीर्तिपद बाबू चल बसे।

विनाश जब शुरू होता है, तो शायद ऐसे ही शुरू होता है। दुनिया ने एक दिन कालीगंज के हर्षनाथ चक्रवर्ती का अन्त देखा, अन्त देखा नवाबगंज के नरनारायण चौधरी का। और, दुनिया बहू बाजार के समरजित बाबू का भी अन्त देखने का इंतजार कर रही है। इस बार दुनिया ने सुलतानपुर के कीर्तिपद बाबू का अन्त देखा। बड़ा ही मौन अन्त। पहले पिता की मृत्यु होती है, उसके बाद मृत्यु होती है सन्तान की। यही स्वाभाविक नियम है। लेकिन कीर्तिपद बाबू के लिए यह नियम उलट गया। पहले संतान, उसके बाद पिता। बीसवीं सदी के बीचोंबीच आकर दुनिया का शायद सब कायदा-कानून पलट गया।

छोटे चौधरी जब सुलतानपुर पहुंचे, तो सब खत्म हो चुका था। क्रिया-कर्म करना ही था, सो किया। श्राद्ध-शान्ति हो जाने के बाद नवाबगंज लौट जाने की बात थी। मन-ही-मन उन्होंने यही सोच रखा था। लेकिन वह लौटकर भी कहां जाएं? जो हालत नवाबगंज की, वही सुलतानपुर की। वहां भी सांय-सांय करते हुए मकान में वैसे ही दम घोंटने वाला सूनापन और यहां भी वही। ससुर जी के इस विशाल मकान के छेद-छेद में छोटे चौधरी मानों अपने निःश्वास का मौन आर्तनाद सुनने लगे। वही-खाता, तमस्सुक-दस्तावेज देख-

कर दंग रह गए। इतनी जायदाद, इतनी दौलत, इतनी जगह-ज़मीन के मालिक थे उनके ससुर। पहले उन्हें इतनी ज्यादा की कल्पना नहीं थी। यानी इस सारे कुछ के मालिक अकेले वही हैं।

एक बूढ़ा-सा आदमी लंगड़ाता हुआ उस दिन उनके सामने आया।

"कौन हो तुम?"

"दंडवत चौधरी जी! मैं इस गांव का गरीब ब्राह्मण हूं। खाकसार का नाम निरापद चक्रवर्ती है। रैयत हूं आपका।"

"क्या काम है, कहो?"

"जी कीर्तिपद बाबू मुझे हर महीने तीन रुपये दिया करते थे। यह बंधा-बंधाया नियम था।"

छोटे चौधरी बिगड़ उठे। बोले, "जो आपको यह रुपया दिया करते थे, वे तो अब नहीं रहे। वे रहे होते, तो आपको ज़रूर नियम से यह रुपया दिया करते, मगर मैं अब मे आपको यह नहीं दे सकूंगा।"

निरापद ने कहा, "वह हम लोगों के मां-बाप थे। अब वे नहीं हैं। अब आप ही हम लोगों के मां-बाप हैं, इसीलिए आपके सामने हाथ पसार रहा हूं। देते, तो गरीब का उपकार होता···"

खीजकर छोटे चौधरी ने बक्से से एक रुपया निकालकर बूढ़े को दिया। बोले, "बस, यही लेकर खुशी से जाइए, इससे ज्यादा नहीं मिलेगा।"

हाथ फैलाकर रुपया ले करके निरापद आशीर्वाद करता हुआ चला गया। छोटे चौधरी ने सोचा, बला टली। दूसरे दिन सवेरे से ही दल के दल लोग आने लगे। एक आता तो उसके पीछे और एक। सबकी एक ही अर्जी। रुपया! कीर्तिपद बाबू शायद सबकी मदद किया करते थे। वह मदद उनके मरते ही जिसमें बंद न हो जाए। सबका यही निवेदन था।

छोटे चौधरी को अगर यह मालूम होता कि सुलतानपुर मे इतने भिखमंगे हैं तो वह पहले से ही होशियार हो जाते। बोले, "आप लोगों ने मुझे रुपये का पेड़ समझा है? मेरे ससुर जी के कोई नहीं था, इसलिए वे दे सकते थे। मगर मेरे साथ तो वह बात नहीं है, नवाबगंज में मेरी बहुत बड़ी गिरस्ती है—मुझे वहां भी तो खर्च करना पड़ता है···"

एक ने कहा, "फिर आपने कल निरापद चक्रवर्ती को क्यों दिया?"

जाने कहां से एक मुसांडा-सा आदमी आ पहुंचा। आते ही उसने सबको दुतकारा, "जाइए, जाइए, आप लोग यहां से जाइए। चौधरी जी अभी दुःख-शोक में डूबे हुए हैं और ऐसे में आप लोग आकर उन्हें तंग कर रहे हैं—जाइए···"

उसीने वास्तव में सबको हटाया, तब जान में जान आई। एकांत में उसने बड़े हितू-सा आकर कहा, "सुनिए चौधरी जी, इस सुलतानपुर के लोग जो हैं, बड़े कमीने और पाजी हैं। आप किसीको एक पैसा भी मत दीजिए। उन लोगों ने भांप लिया कि आप भले हैं, बस पड़ गए पीछे। आप यहां के लिए नये हैं, किसीको जानते-पहचानते नहीं। कहीं इस तरह से आपने दान-

बैरात शुरू कर दिया तो मुसीबत में पड़ जाएंगे। ये लोग आपकी नाक में दम कर देंगे। आपको मैं जिस-जिसको कहूं, उसी-उसीको दीजिएगा।"

छोटे चौधरी उसकी इतनी अधिक आत्मीयता से अचम्भे में आ गए। बोले, "आप कौन हैं? मैं तो आपको पहचान नहीं रहा हूं···"

उस आदमी ने कहा, "पहचानिएगा, पहचानिएगा। आपके ससुर जी मेरी राय के बिना एक कदम नहीं बढ़ाते थे। अचानक कोई ज़रूरत आ पड़ती, तो रात-बिरात को भी मुझे बुलाते थे। कहते थे, 'अश्विनी, ज़रा आना तो, ज़रा राय करनी है।' खैर, वह तो स्वर्ग गए। अब आप भी बुलाया करेंगे। हां, आपके खाने-पीने का क्या इंतजाम हुआ?"

छोटे चौधरी ने कहा, "मेरे साले की पत्नी है, वही दोनों जून खाना पका देती है।"

"वह खाना आपको रुचता तो है?"

"क्यों, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?"

"न-नः, असल में प्रकाश को तो मैं पहचानता हूं। वह तो सदा का आवारा था। पता नहीं, अब कैसा है! वह तो बीवी-बाल-बच्चे को यहां छोड़कर सदा आपके ही सिर पर सवार रहा है। इस समय वह कहां है?"

छोटे चौधरी ने कहा, "कलकत्ता में—"

"खैर, वह चाहे कलकत्ता रहे, चाहे जहां रहे, आपको जो-सो खाने की क्या पड़ी है। कीर्तिपद बाबू जो ऐसे असमय में मर गए, क्यों मर गए, मालूम है? इसलिए कि ढंग से उनका सेवा-जतन नहीं होता था। एक बार उन्होंने मुझसे चुपचाप कहा था, 'अश्विनी, मुझसे यह सब जो-सो खाया नहीं जाता। ऐसा खाना खाते रहने से मैं ज्यादा दिन जिन्दा नहीं रह सकूंगा। इन लोगों के पंजे से तुम मुझे बचाओ।' मैंने कहा, 'ठीक है। आइन्दा से आपकी बहू आपके लिए पका-चुका दिया करेगी। आप वही खाया कीजिएगा।' लेकिन मेरे करने से क्या होता, दो ही दिन में गांव में चर्चा शुरू हो गई, कीर्तिपद बाबू की जायदाद लिखा लेने के लिए ही मैं उनकी सेवा-जतन कर रहा हूं। ऐसी छिछोरी जगह तो दुनिया में दूसरी है ही नहीं चौधरी जी! आखिर जो होना था, वही हुआ। कीर्तिपद बाबू की जान लेकर ही लोगों ने दम लिया।"

उस आदमी का नाम था अश्विनी भट्टाचार्य। वह लगातार सांझ-विहान आने लगा। आते ही पूछता, "खाना हो चुका?"

छोटे चौधरी ने कहा, "हां।"

"पेट तो भरा?"

"हां-हां, पेट भरा।"

अश्विनी ने कहा, "देखिए, खजाने में घाटा होगा। यहां सभी लोग आपको खिलाने के लिए बड़ा आग्रह दिखाएंगे, समझ गए? शुरू-शुरू में सभी आपकी ऐसी खुशामद में लगे रहेंगे, पर आपको उनके उस जाल में नहीं पड़ना है। उनकी खुशामद में आ गए कि बस हो गया।"

"क्यों, लोग मेरी खुशामद क्यों करेंगे?"

अश्विनी ने कहा, "खुशामद नहीं करेंगे ? कह क्या रहे हैं आप ? सभी क्या मेरे जैसे निःस्वार्थी हैं ? यहां के सब लोगों को आपके रुपये की गंध जो लगी है। आपके अपनी दौलत तो है ही, ऊपर से आपके ससुर की दौलत। यह सारा कुछ अकेले आपको ही मिला है, यह क्या किसीसे छिपी है ? मैं खुद तो इस रुपये से बड़ी नफरत करता हूं। मैं जो आपके पास इतना आता हूं, क्यों आता हूं, कहिए तो ?"

छोटे चौधरी समझ नहीं सके। पूछा, "क्यों ?"

"क्यों आता हूं, सुनिएगा ? आता इसलिए हूं कि आपको भला पाकर लोग ठग न लें। सुलतानपुर का कोई आदमी अच्छा तो नहीं है न। ये लोग कीर्तिपद बाबू को भी ऐसे ही ठगा करते थे। वह तो गनीमत कहिए कि मैं था—बच गए। वरना यह सब कुछ बचता, आप समझते हैं ? सब लूट-पाटकर खा जाते लोग।"

अश्विनी रोज सवेरे ही आकर पूछता, "क्यों चौधरी जी, कैसे हैं ?"

उस दिन चौधरी जी की तबीयत अच्छी नहीं थी। बोले, "बहुत ठीक नहीं हूं···"

अश्विनी को चिन्ता हो आई, "क्यों, ठीक क्यों नहीं हैं ? बेशक आपका खाना-पीना ठीक नहीं हो रहा है। ऐसी जवानी में ठीक-ठीक खाना नहीं खा पाने से तबीयत कैसे ठीक रहेगी ? दूध पीते हैं ?"

छोटे चौधरी ने कहा, "दूध ? दूध यहां कौन देगा ?"

"क्यों, दूध कौन देगा का मतलब ? छिः, यह तो शरम की बात है। आप गांव के जमींदार भी हैं, दामाद भी हैं। आपको यहां दूध नहीं मिलेगा ? कितनी गायें चाहिए आपको, कहिए ? मैं गाय का बन्दोबस्त किए देता हूं। सुलतानपुर में गायों का अकाल है ? रुपया हो, तो यहां क्या नहीं मिल सकता ?"

छोटे चौधरी ने कहा, "नहीं-नहीं, गाय-वाय की मुझे जरूरत नहीं। मैं तो यहां रहने के लिए नहीं आया हूं—सुलतानपुर में ? नवाबगंज में मेरे पास ढेरों गायें हैं।"

"ठहरिए, कल से मैं आपके लिए दूध का इंतजाम करता हूं···"

अश्विनी चला गया। दूसरे दिन सवेरे ही वह फिर बदस्तूर हाजिर। उसके साथ एक लड़की। लड़की के हाथ में दूध का एक गिलास।

छोटे चौधरी चौंके। यह फिर कौन ?

"परनाम कर, परनाम। दूध का गिलास रखकर पहले चौधरी जी को परनाम कर।"

तांत की एक मोटी साड़ी में लिपटी, दूध का गिलास हाथ में लिए वह लड़की एक ओर खड़ी थी। गिलास को चौकी पर रखकर वह छोटे चौधरी को झुककर प्रणाम करने जा रही थी, लेकिन दोनों हाथ बढ़ाकर चौधरी जी ने बाधा दी। बोले, "हां-हां, रहने दो···"

अश्विनी डांट उठा, "क्यों, रहने क्यों दे ? कर, परनाम कर। परनाम करने

से तेरा सात जन्म सार्थक हो जाएगा री पुटिया, ऐसा ब्राह्मण इलाके में कहीं मिलने को नहीं है।"

बाप के कहने पर पुटिया ने चौधरी जी के पांव के अंगूठे को छूकर प्रणाम किया। छोटे चौधरी ने गौर से उस लड़की को देखा। खूब कसकर जूड़ा बांधा हुआ था। शरीर भी जूड़े जैसा ही सख्त-मजबूत। बनावट भी कूंदा हुआ-सा। सवेरे ही वह खासी बन-ठनकर आई थी। बोले, "यह तुम्हारी कौन होती है अश्विनी?"

"जी, यह पुटिया है। मेरी बेटी। इसका अच्छा नाम भी है, वह इसकी मां जानती थीं। क्यों री पुटिया, तेरा वह अच्छा-सा नाम क्या है?"

लड़की गिटपिटाकर बोली, "नलिनी।"

"हां-हां, याद आया। नलिनी। हम पुटिया ही कहते हैं। ले, अब दूध का गिलास आगे बढ़ा दे। लीजिए चौधरी जी, दूध पी लीजिए। पुटिया रोज सवेरे आपको दूध दे जाया करेगी। दूध नहीं पीने से सेहत कैसे ठीक रहेगी?"

छोटे चौधरी ने दूध का गिलास लेते हुए कहा, "यह दूध का कष्ट करने की क्या जरूरत थी अश्विनी? दूध पिलाकर मुझे जिलाए रखने से किसे क्या लाभ होगा? मैं अब जिन्दा भी किसके लिए रहूं? क्यों जिन्दा रहूं, कह सकते हो? इतने रुपये-पैसे मैं किसे दे जाऊंगा? मेरे है कौन?"

अश्विनी बिगड़ उठा, "छि:, ऐसा नहीं कहते चौधरी जी! आपकी जायदाद आपके वंशधर ही भोगेंगे···"

"मेरे वंशधर? मेरे वंशधर कहां हैं?"

अश्विनी ने कहा, "अरे! वंशधर नहीं है, इसलिए आप अपनी सेहत चौपट कर लेंगे? आप कह क्या रहे हैं, वंशधर अभी नहीं है, मगर होते कितनी देर लगती है? फिर शादी कर लीजिए, फिर बच्चे होंगे।"

छोटे चौधरी अब हंसी नहीं रोक सके। बोले, "तुम भी जो कैसी बात करते हो अश्विनी! इस उमर में अब शादी!"

"क्यों, ऐसी क्या उमर हुई है आपकी?"

चौधरी तब तक दूध पी चुके थे। गिलास लेकर पुटिता चली जा रही थी। बेटी की ओर देखकर अश्विनी ने कहा, "सुन, रोज सवेरे इसी तरह से दूध ले आया करना। भूलना मत, हां?"

पुटिया चली गई। मगर अश्विनी नहीं गया। इतनी बड़ी जायदाद का लोभ वह अपने मन से हटा नहीं सका। उसी दिन से पुटिया रोज सवेरे आकर दूध दे जाया करने लगी। बिलकुल ताजा, गरम दूध। वह गरम दूध पीकर कुछ ही दिनों में चौधरी जी की तंदुरुस्ती फिर बनने लगी। मन में भी जोर आया। इतना शोक-दुःख सब भूलने लगे। उन्हें गरम दूध पिलाकर उधर पुटिया जाती कि इधर अश्विनी आकर हाजिर होता। अश्विनी का आना शुरू हो जाने के बाद से दूसरे लोगों का आना-जाना बिलकुल बंद हो गया। दूसरे लोग कह-सुनकर छोटे चौधरी जी से कुछ वसूल नहीं कर सकते थे। अश्विनी अकेला ही मालिक, अकेला ही मालिक का रक्षक बन गया।

लेकिन सारा गुड़ गोबर कर दिया प्रकाश ने। अश्विनी को तब तक कुछ पता नहीं था। उसके दिन बड़े मजे में कट रहे थे। पुटिया को किसी तरह से चौधरी जी के गले में बांध दे कि बस। फिर उसके पूंछ कौन पकड़े! फिर तो सुलतानपुर और नवाबगंज, की छाती पर सवार होकर सबकी दाढ़ी नोचेगा वह, उसके जीवन की यही सबसे बड़ी जीत होगी।

भागलपुर में उस दिन भी सवेरा हुआ। और दिन की तरह अश्विनी ने पुटिया को जगाकर दूध लाने के लिए भेजा। उस दूध को चूल्हा सुलगाकर गरम किया गया। पुटिया बन-ठनकर छोटे चौधरी को दूध पिलाने के लिए गई।

उधर प्रकाश राय ट्रेन से उतरा। उतरकर उसने देर नहीं की। वहां से सीधे सुलतानपुर। रिक्शा से जल्दी-जल्दी उतरा और घर के अन्दर दाखिल हो गया। जाने कब से सुलतानपुर नहीं आया था। पहले उसे अपने बीवी-बच्चों के पास जाना चाहिए था, पर वह तो रहा। वह कुछ हाथ से निकले तो नहीं जा रहे हैं। पहले जीजाजी से भेंट नहीं करे तो सब बंटाढार हो जाएगा। अब दीदी नहीं है कि सिर्फ दीदी की खुशामद में लगे रहने से ही काम चल जाएगा। अब प्रकाश राय का भगवान कहो, अल्ला कहो—जो कुछ भी है, सब यही जीजाजी। जीजाजी उसे रखें तो रहेगा, मारें तो मरेगा।

लेकिन जीजाजी के कमरे में जाकर देखा, तो अवाक् हो गया। देखा, एक आरामकुर्सी पर बैठे जीजाजी दूध पी रहे हैं और एक लड़की बैठी उनके पांव दबा रही है।

जीजाजी को उस हालत में देखकर क्षण-भर के लिए प्रकाश मानो बुत बन गया। जीजाजी भी वैसे ही और पुटिया का तो कहना ही क्या! छोटे चौधरी सीधे होकर बैठ गए। बोले, "हां-हां, हो गया। अब पांव नहीं दबाना होगा।"

पुटिया उनके पैर छोड़कर गिलास लेकर चली जाना चाह रही थी, लेकिन प्रकाश उसकी राह रोककर खड़ा हो गया। बाहर जाने का रास्ता नहीं था। पूछा, "यह कौन है जीजाजी?"

चौधरी जी ने कहा, "यह अश्विनी भट्टाचार्य की लड़की है। खैर, तुम कब आए?"

"अश्विनी भट्टाचार्य की लड़की? लेकिन यह यहां क्यों?"

"यह दूध देने आई थी। पाव जरा दुख रहा था, इसलिए..."

प्रकाश ने कहा, "पांवों का क्या कसूर? पाव तो दुखेगा ही, मगर य[illegible] अश्विनी भट्टाचार्य की लड़की आकर आपका पांव दबाएगी? पाव दबाने [illegible] लिए और कोई आदमी नहीं मिला आपको?"

"इस सुलतानपुर में मेरा और कौन है, कहो? और तो कोई नहीं है।"

"और कोई न सही, मैं तो हूं?"

प्रकाश ने पुटिया को खेद दिया, "जा, तू जा यहां से..."

पुटिया वहां से भागे तो जी जाए। प्रकाश झट जीजाजी के पैरों के

बैठ गया और दोनों हाथों से उनके पैर अपनी गोद में रखकर वह दबाने लगा।

छोटे चौधरी ने कहा, "तुम पैर दबाने के लिए क्यों बैठ गए ?"

"आपका पैर दुख रहा है, दबाऊं नहीं ? कहां के किस अश्विनी भट्टाचार्य की लड़की से आप पैर क्यों दबवाने लगे ? उसके बदन में क्या मेरी जैसी ताकत है ?"

चौधरी जी ने कहा, "छोड़ो-छोड़ो, अब दबाने की जरूरत नहीं। अब नहीं दुख रहा है, छोड़ो…"

छोटे चौधरी ने अपने पैर प्रकाश की गोदी से खींच लिए। फिर बोले, "तुम तो रेलगाड़ी से उतरकर सीधे यहीं आए हो, अब जाओ, अपनी बहू से मिल आओ। मैं यहीं हूं।"

प्रकाश उठ खड़ा हुआ। बोला, "ठीक है। आप कहीं जाइएगा नहीं। मैं अभी आया।"

प्रकाश वहां से निकला। लेकिन घर नहीं गया। गया सीधे अश्विनी भट्टाचार्य के यहां। पहले इस बात का फैसला हो ले, फिर घर जाएगा।

अश्विनी के दरवाजे पर जाकर चिल्लाने लगा, "अश्विनी…अश्विनी…"

अश्विनी बाहर आया कि प्रकाश बोल उठा, "तूने सोचा क्या है, सो बता। सोचा है, अपनी कुंवारी उमरदार बेटी को भेजकर मेरे जीजाजी के मत्थे मढ़ देगा ? क्या सोचा है, मैं तेरा मनसूबा नहीं समझता ? खबरदार, मैं कहे देता हूं, तेरी बिटिया अगर उधर गई, तो मैं उसकी टांग तोड़ दूंगा।"

अश्विनी भी कुछ उन्नीस नहीं था। बोला, "इतनी हिमाकत हो गई तुझे, तू मेरे घर आकर मुझे गाली देता है ?"

तब तक आस-पास से लोग-बाग आ जुटे। एक इधर से फटकारता आता तो दूसरा उधर से।

सभी उस समय प्रकाश की तरफ हो गए थे। प्रकाश चिल्ला उठा, "तू आ तो सही, मैं देखता हूं, तुझमें कितनी जुर्रत है। मेरे जीजाजी को अपना दामाद बनाने की तेरी साजिश मैं निकाल देता हूं। तू क्या सोचता है कि मैं मर गया ?"

निरापद चक्रवर्ती ने कहा, "देखो न बेटे, यह अश्विनी हम लोगों को तुम्हारे जीजाजी के पास फटकने ही नहीं देता। उसने सोच लिया है कि अपनी बिटिया को उनके गले मढ़कर सारी सम्पत्ति हजम कर लेगा।"

प्रकाश ने कहा, "हजम करना मैं बता देता हूं। मैं था नहीं, इसलिए अन्दर-ही-अन्दर इतना मनसूबा बांध लिया। मैं आया तो देखता क्या हूं, इसकी बेटी मेरे जीजाजी के पैर अपनी गोदी में रखकर दबा रही है। इससे तूने अपनी बेटी को किराया कमाने के लिए बाजार क्यों नहीं भेजा ? उससे बेटी की कमाई से और ज्यादा पेट भरता—"

अश्विनी अब आग-बबूला हो गया। प्रकाश की ओर झपटकर आते-आते बोला, "अबे साले, मेरी बेटी पर तोहमत ? आज मैं तेरा खातमा ही करके

रहूंगा—

शायद खून-खराबी हो ही जाती, मगर तब तक अन्दर से आकर पुटिया ने अपने बाप को पकड़ लिया। बोली, "तुम इन लोगों के पास मत जाओ बाबूजी, अकेला पाकर ये लोग तुम्हें मार डालेंगे।"

बात और आगे नहीं बढ़ी। अश्विनी गुस्से के मारे गुर्राता रहा। प्रकाश भी। बीच में निरापद आदि ही सिर्फ जरा हताश हुए। कोई घटना घट जाती तो शायद उन्हें अच्छा लगता।

आते हुए प्रकाश सिर्फ यह कहता आया, "खैर, आज तो कुछ नहीं कहा, मगर खबरदार, उधर गए कि तू ही रहेगा या मैं ही रहूंगा। हां!"

जिस एक जीवन को केन्द्र करके इतने-इतने चरित्रों ने एक दिन चक्कर काटना शुरू किया था, वे सबके सब कहां बिखर गए, नियति की अंधी मार से कौन कहां खत्म होकर खो गया—सदानन्द को मानो यह सब सोचने की बला ही नहीं। वह जैसे इस दुनिया में सिर्फ निर्विकार, निर्विकल्प, निरंकुश और निःसंग होकर जीने के लिए ही पैदा हुआ हो। अथच लोगों के जितने सपने, जितने अरमान, जितनी साधना थी, सब उसीपर। शायद इसीलिए उसके नवाबगंज से चले आने के बाद सब कुछ छिन्न-भिन्न हो गया। अपमृत्यु से भरी कालीगंज की बहू की आत्मा मानो उसके सम्पर्क के सभी लोगों का तब भी पीछा करती चल रही थी।

बहू बाजार के उस मकान के अपने कमरे में लेटा-लेटा सदानन्द यही सोच रहा था। पता नहीं, रात कितनी हुई होगी। शायद रात की अन्तिम पहर ही हो। या कि आधी रात। सदानन्द की जेब में वह चिट्ठी थी ही। निकालकर वह उसे फिर से पढ़ने लगा। वह आप तो किसीको सुख नहीं दे सका। सुख देने की कोशिश करके भी नहीं दे पाया। शायद कोशिश करके किसीको सुख दिया भी नहीं जा सकता। हां, दुःख देना आसान है। कोई भी आदमी किसीको भी दुःख दे सकता है। इसके लिए खास कोई कठिनाई नहीं होती। मुझे मेरे पुरखों ने दुःख दिया, उनका दाय भाग लेकर मैंने दुःख दिया नयनतारा को। वंश परम्परा से हम मनुष्य इसी तरह से सुख-दुःख की जंजीर में बंधे हुए हैं। यहीं मेरा दुःख है। मैं इस दुःख से मुक्ति चाहता हूं। सारी शृंखलाओं से मैं छुटकारा चाहता हूं। मैं स्वयं भी मुक्ति चाहता हूं और सभी लोगों को भी सुख-दुःख के बंधन से मुक्ति दिलाना चाहता हूं। तो फिर मैं समरजित बाबू के यहां फिर से उस शृंखला में बंधने को क्यों राजी हुआ? कागज पर सही क्यों बनाई?

सदानन्द ने दृढ़ निश्चय कर लिया। अपने बिछौने पर से वह उठा। अलगनी से उतारकर कुरते को पहना। फिर धीरे-धीरे उसने दरवाजे की कुंडी को खोला। न, मैं यहां नहीं रहूंगा। मैं कहीं भी रहने के लिए पैदा—

हूं। मलना ही अपनी नियति है। लिहाजा तुम डरो मत। किसीका भविष्य बिगाड़ना मेरा काम नहीं है। नयनतारा के भविष्य को शायद मैंने बिगाड़ा है, पर उसकी जिम्मेदारी मेरी नहीं है। वह जिम्मेदारी मेरे पूर्वजों की है। पर तुम मेरी कौन हो? कोई नहीं। तुम्हें मैंने आंखों से कभी देखा भी नहीं। यह चिट्ठी तुमने नहीं भी लिखी होती, तो भी मैं यहां नहीं रहता। एक का भविष्य मैंने बिगाड़ा है, इसलिए तुम्हारा भी बिगाड़ूंगा, ऐसा पतित मैं नहीं हूं।

"कौन? भैया जी? कहां जा रहे हैं आप?"

उतनी रात को भी महेश ने ठीक भांप लिया।

सदानन्द ठिठका। महेश ने उसके नजदीक जाकर रोशनी जला दी।

"इतनी रात को कहां जा रहे हैं?"

"मैं यहां से चला जा रहा हूं महेश!"

"चले जा रहे हैं? क्यों? कहां?"

"यह नहीं मालूम। तुम किसीसे कहना मत। और कह भी दोगे, तो भी मुझे कोई रोक नहीं सकेगा।"

सदानन्द सदर दरवाजे के बाहर जा खड़ा हुआ। और दिन इसी समय समरजित बाबू गंगा नहाने जाया करते थे। रास्ते की बत्तियां फीकी हो आई थीं।

पीछे से महेश ने कहा, "आप अपने घर जा रहे हैं, लेकिन वहां तो कोई नहीं है। मैं तो देख आया हूं। आपका घर बिलकुल खाली पड़ा है।"

"क्यों, लोग-बाग गए कहां?"

"आपकी मां कई महीने पहले स्वर्ग सिधार गई।"

"ओ! हो सकता है।"

"मैंने आपसे कहा नहीं। बाबू ने कहने को मना किया था। कहा था, मां के मरने का समाचार सुनकर आपको दुःख होगा।"

सदानन्द ने कहा कुछ नहीं। सिर्फ जरा मुस्कराया। महेश सदानन्द को चूंकि पहचानता नहीं था, इसीलिए उसने वैसा कहा। और, समरजित बाबू ही क्या उसको पहचान सके हैं। नहीं तो उन्होंने ही यह बात क्यों कही!

सदानन्द ने कहा, "तुम चाचाजी से कुछ मत कहना।"

"यह तो खैर नहीं भी कहूंगा, मगर आप चले ही क्यों जा रहे हैं?"

सदानन्द इसका क्या जवाब देता? और जवाब देने से भी क्या महेश समझेगा? उसने सिर्फ यही कहा, "यहां अब अच्छा नहीं लग रहा है, इसीलिए जा रहा हूं। तो चलूं—"

महेश जरा और आगे गया। बोला, "बाबू पूछेंगे, तो क्या कहूंगा?"

सदानन्द ने कहा, "और क्या, मैं जो-जो कह रहा हूं, वही कहना। झूठ कहने की कोई जरूरत नहीं।"

"मगर लौटकर आइएगा तो?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं महेश? लौटने को न कहो। मुझे जिसमें यहां

फिर आना नही पड़े।"

"आप जब तक यहां थे, बाबू के मन में फिर भी कुछ शान्ति थी। उनके होंठों पर हंसी फूटी थी—"

सदानन्द ने कहा, "बाबू के मन में शान्ति हो शायद, पर तुम्हारे बड़े भैया जी को कष्ट हो रहा था—"

महेश से इसका कोई जवाब देते नही बना। सदानन्द और रुका नहीं रहा। वह तेजी से चलने लगा। लेकिन कहां जाए वह? किधर?

रास्ते पर लोगों का चलना-फिरना थोड़ा-बहुत शुरू हो गया था। कोई सियालदह स्टेशन की ओर जा रहा था, कोई गंगा नहाने। हरीसन रोड से सीधे चलकर वह एकबारगी बड़ा बाजार आ गया। सीधा और सुन्दर रास्ता। सदानन्द के जीवन जैसा सरल भी नहीं, जटिल भी नहीं। समरजित बाबू के यहां से निकलकर कितनी ही बार इन रास्तों में घूमा है वह। कितनी बार हावड़ा स्टेशन की बेंच पर जाकर बैठा है। और फिर पैदल ही घर लौट आया है। बहुत बार रास्ते के किनारे फेरी वालों के यहां खरीद-बेची देखी है—उनकी पैरों में घुंघरु बांधे हारमोनियम बजाकर टोटका दवाई बेचने की सफाई देखी है। इस बार जाना ही जाना है, लौटना नहीं। प्लेटफार्म की बेंच पर वह आज भी जाकर बैठ सकता है, लेकिन जिस घर से वह निकल आया है, अब वहां लौटकर नहीं जा सकता।

"बाबूजी!"

सदानन्द ने उलटकर देखा। अरे, यह तो वही पांडे है—"पांडे जी!"

बहुत दिन पहले एकाएक पांडे जी से परिचय हो गया था एक दिन। इसी रास्ते से जाते समय पांडे जी ने उसे पकड़ा। भले आदमी-सा चेहरा देखकर बोला, "एक अंग्रेजी चिट्ठी मेरी पढ़ दीजिएगा हुजूर?"

सदानन्द ने कहा, "लाइए..."

पत्थर की बनी विशाल धर्मशाला। पांडे जी वहां का खास दरबान है। भीतर पत्थर से बंधा हुआ आंगन। सामने विशाल फाटक। वहीं एक कोने में पांडे जी के रहने का कमरा। वह चिट्ठी वह मालिक को नहीं दिखाना चाहता था। वह उसके घर की तरफ की कचहरी से आई थी। उसका अपना कोई सगा-सम्बन्धी मर गया था। पांडे जी उसकी जायदाद का हिस्सेदार था। चिट्ठी इसी सम्बन्ध की थी। चिट्ठी पढ़ दी और सदानन्द चारों ओर गौर से देखने लगा। रहने का बड़ा अच्छा इंतजाम है। बीच में पांडे जी से और भी कई बार मुलाकात हो चुकी थी। पुरानी बात है यह। इतने दिनों के बाद आज अचानक फिर उनसे भेंट हो गई।

सदानन्द पूछा, "कहां जा रहे हैं पांडे जी?"

पांडे जी ने कहा, "गंगाजी नहाने गया था। आप कहां जा रहे हैं?"

सदानन्द एकाएक ही बोल उठा, "आपकी धर्मशाला में कोई कमरा है पांडे जी, जिसमें रहा जा सकता है?"

पांडे जी ने पूछा, "आप रहेंगे या और कोई रहेगा?"

सदानन्द ने कहा, "मैं ही रहूंगा, और कौन रहेगा ?"

"तो फिर मेरे साथ चलिए। मैं तो वहीं जा रहा हूं।"

सदानन्द ने कहा, "मालूम हो गया कि रहने की गुंजाइश है। आना हुआ तो आऊंगा। मैं घर से चला आया हूं पांडे जी···"

पांडे जी ने कहा, "घरवाले ने भगा दिया, क्यों ? तो रहिए न। जितने दिन रहना हो, मेरे ही साथ रहें।"

यह कहकर पांडे जी चला गया। सदानन्द और भी तेज़ चलने लगा। और···और तेज़। गज़ब है। कलकत्ता जैसा लम्बा रास्ता शायद संसार में और कहीं नहीं है। नवाबगंज का रास्ता तो झटपट खत्म हो जाता था। यहां उसका अन्त ही नहीं, खत्म ही नहीं होता। चलते-चलते इसे पार नहीं किया जा सकता। सड़कों पर लोगों की भीड़-भाड़ बढ़ने लगी थी। ट्राम-बस में भीड़ होने लगी थी। फुटपाथों पर भी खासी भीड़ हो गई। सदानन्द ने चौड़ा रास्ता छोड़ दिया। बगल की एक गली में घुस पड़ा। अब उसे उस मकान की याद आ गई। अब तक शायद उसके चले आने की बात चाचाजी के कानों पहुंच चुकी होगी। चाचीजी यह सुनकर चाचाजी के पास पहुंच गई होंगी। दोनों मिलकर महेश से पूछ रहे होंगे, "सदानन्द क्यों चला गया ? जाते समय क्या कह गया ? कहां गया ?" उन दोनों के सवालों का अन्त नहीं होगा। इतने आदर, इतने जतन को भी कोई इस तरह से पैरों से ठुकरा सकता है, इसे वे विश्वास ही नहीं कर पा रहे होंगे। लेकिन दूसरे एक घर में ? दूसरे कमरे की किसीके अन्दर के अन्तःपुर में ?

औचक ही एक खुशी ने सदानन्द को बिलकुल विभोर कर दिया।

चलते-चलते कहां से कहां चला आया था, सदानन्द को इसका ख्याल नहीं था। चारों ओर देखकर वह मानो चौंका। बड़ा बाजार से सीधे सियालदह स्टेशन के प्लेटफार्म पर। सभी लोग अपने लक्ष्य की ओर दौड़े चले जा रहे थे। पास ही एक ट्रेन खड़ी थी। ट्रेन शायद खुलने ही वाली थी, दूर खड़ा इंजन फुफकारते हुए सबको सचेत किए दे रहा था। इसीलिए सब इतनी जल्दी में थे। सभी दौड़ रहे थे।

लेकिन वह कौन है ? नयनतारा है न ? सदानन्द ने अपने कदम और भी तेज कर दिए। उसकी बगल में वह कौन है ? किसके साथ वह इतनी हड़बड़ में ट्रेन पर चढ़ने के लिए जा रही है ? स्वप्न तो नहीं देख रहा है वह ? हाथों से उसने अपनी आंखों को अच्छी तरह से पोंछ लिया। हां, नयनतारा ही तो है। कम-से-कम पीछे से तो ठीक वैसी ही लगती है। बगल से चेहरे का आधा हिस्सा नज़र आ रहा था। सिर पर घूंघट नहीं था। उसके साथ जो जा रहा था, उससे वह खूब बात कर रही थी। नयनतारा यहां कहां से आ गई ? कलकत्ता में !

अगल-बगल से, सामने से बार-बार बहुतेरे लोगों से ओट हो जाती थी। अजी ओ, तुम सब जाओ, ओट मत करो, मुझे जरा अच्छी तरह से देखने दो। सदानन्द ने चाल और तेज कर दी। फिर भी वे दोनों काफी दूर पर थे। उधर गार्ड ने सीटी बजा दी। टन्-टन् करके घंटी बज गई। इंजन ने भी

सीटी दी।

नयनतारा पीछे थी। साथ का छोकरा और आगे बढ़ गया था। ट्रेन चलने लगी कि वह छोकरा पहले ही डिब्बे में चढ़ गया। चढ़कर उसने नयनतारा को खींचकर ऊपर उठा लिया।

सदानन्द ने इस बार बगल से नयनतारा के चेहरे को साफ-साफ देखा। बिलकुल साफ। हां, कोई सन्देह नहीं, नयनतारा ही है।

सदानन्द को जाने कैसा मतिभ्रम हो आया। वह चिल्ला उठा, "नयन-तारा···नयनतारा !"

सदानन्द की आवाज पहले निखिलेश ने सुनी। बोले, "लगता है, किसी-ने तुम्हारा नाम लेकर पुकारा ?"

नयनयतारा ने कहा, "तुम भी अजीब हो। नाम लेकर मुझे यहां कौन पुकारेगा ? यहां मुझे कौन पहचानता है ?"

उसने खिड़की से मुंह निकालकर बाहर देखने की कोशिश की। नयनतारा सदानन्द को नहीं देख पाई, मगर सदानन्द ने उसे देखा। वही नयनतारा। कोई भूल ही नहीं। हुबहू वही नयनतारा। लेकिन साथ में वह कौन ? नयनतारा कलकत्ता क्यों आई ?

ट्रेन तब तक दौड़ती हुई दूर होती हुई आंखों से ओझल हो जाने लगी।

ट्रेन तो आंखों से ओझल हो गई, पर सदानन्द वहीं प्लेटफार्म पर बुत की तरह खड़ा रहा। जैसे इतने दिनों से वह जिस किताब को पढ़ रहा था, हवा के झोंके से उसके सारे पन्ने उलट-पुलट गए और वह तूफानी हवा एक-बारगी उसके पहले ही पन्ने पर आ अटकी। उसे याद भी नहीं कि किताब को वह वहां तक पढ़ चुका था, पर पहले पन्ने का पहला शब्द ही उसकी आंखों में झलमला उठा—नयनतारा, नयनतारा···

बस, एक ही शब्द। इस नयनतारा शब्द से ही मानो उसके जीवन का ग्रंथ आरम्भ हुआ था। इतने दिनों में तो उसे अन्त की ओर जाना चाहिए था, वैसे में बयार के किस झोंके से वह पहले ही पन्ने पर आ पहुंचा !

सच ही तो ! नयनतारा ही तो थी। नयनतारा के सिवाय वह और कोई नहीं। लेकिन वह अगर नयनतारा थी तो साथ में वह कौन था ?

महेश की बात भी याद हो आई। आज सुबह महेश ने उससे कहा था—'मैं नवाबगंज गया था। वहां देख आया, आपके यहा कहीं कोई नहीं था।' कोई नहीं था तो सबके सब गए कहां ? तो क्या नवाबगंज का वह मकान, वह बगीचा, वह खेत-खलिहान—सब कुछ पराए का हो गया ? मां के मरने के बाद उन लोगों की घर-गिरस्ती इस कदर लड़खड़ा गई, चकनाचूर हो गई कि वहां अब किसीका भी रहना मुमकिन न रहा ?

महेश जिस समय सदानन्द से उसके नवाबगंज के घर के बारे में कह रहा

था, तो उसे कुछ भी जानने की इच्छा नहीं थी। जिस जिन्दगी को वह अपनी इच्छा से ही छोड़ चुका है और जहां जाने का अब कोई सवाल ही नहीं उठता, तो उसके लिए आग्रह भी क्यों हो। लेकिन अभी उसके मन में यह इच्छा हो आई कि महेश से एक बार भेंट हो जाती तो अच्छा था। अब भेंट हो तो वह उससे पूछे कि वहां उसे किस-किससे भेंट हुई और किसने क्या कहा? लोगों ने नयनतारा का भी कुछ जिक्र किया या नहीं? वह कहां गई, यह बताया या नहीं। हठात् उसे ऐसी बहुतेरी ही बातें जानने की इच्छा हो आई।

ट्रेन चली गई तो प्लेटफार्म की भीड़ पतली हो गई।

सदानन्द लौटने के ख्याल से उलटी तरफ चलने लगा। मगर वह जाए भी कहां। जो आदमी अपना घर-द्वार छोड़ आया, जिसे दुनिया के आदर-जतन की कोई स्पृहा ही नहीं, उसके लिए तो सारी दुनिया ही घर होना चाहिए। वह तो यहीं इस खाली प्लेटफार्म पर ही बैठ जा सकता है, इसीको अपना घर समझ ले सकता है। माथे के ऊपर जो आसमान है, उसके घर की वही छत है। और चारों ओर ये जो लोग-जन हैं, चीख-पुकार है, रोशनी-अंधेरा है, स्नेह-प्रेम-घृणा है, वही सब उसके घर के चारों तरफ की दीवारें हैं। मुख्तसर में, यह पृथ्वी ही उसकी दुनिया है।

लेकिन नहीं, गृहस्थ आदमी के लिए ऐसी गिरस्ती तो नहीं हो सकती। दुनियादार के लिए थोड़ी-सी आड़-ओट चाहिए, थोड़ा-सा आबरू। मन-ही-मन विचार करने लगा सदानन्द। आखिर आदमी को ही तो आदमी अभागा कहते हैं। वह संसारी है या संसार से बाहर? उसने तो लक्ष्मी को अपने पैरों से ठुकरा दिया। लक्ष्मी को उसने चाहा नहीं। उसे ऐसा लगता रहा कि जिन लोगों ने लक्ष्मी को कैद किया है। उन्हें लक्ष्मी का आशीर्वाद नहीं मिला है। लक्ष्मी को सबके बीच बांट देना चाहिए। इस ढंग से बांटना चाहिए कि सबको उसका हिस्सा मिले। मगर ऐसा होता कहां है? कालीगंज के हर्षनाथ चक्रवर्ती ने भी ऐसा नहीं किया और नवाबगंज के नरनारायण चौधरी ने भी ऐसा नहीं किया। यहां तक कि बहू बाजार के समरजित बाबू को भी लक्ष्मी का प्रसाद नहीं मिला। सबने लक्ष्मी का सिर्फ अपमान ही किया। मगर इन सबों से असहयोग करके ही क्या वह लक्ष्मी के अपमान का प्रायश्चित करना चाहता है?

अचानक उसे लगा, अनजानते ही वह जाने कब फिर बहू बाजार की उस गली के पास ही आ खड़ा हुआ है। भोर-भोर के धुंधलके में जिस घर से वह निकल आया था, फिर वहीं क्यों आ पहुंचा? किसकी आशा में? सचमुच ही क्या वह नयनतारा के समाचार के लिए इतना उत्सुक हो पड़ा है?

लेकिन जिस घर से निकल आने को उसे मजबूर होना पड़ा, वहां वह फिर कैसे जाएगा! वहां जाकर किस मुंह से वह कहेगा कि मैं आ गया!

उसके आने की सुनकर समरजित बाबू शायद उसे बुलवा पठाएंगे। पूछेंगे, 'क्यों? मैंने सुना, तुम घर छोड़कर चले गए थे?'

सदानन्द कहेगा, 'जी हां, चला गया था।'

'लेकिन क्यों ? क्यों चले गए थे ?'

सदानन्द कहेगा, 'इसलिए चला गया था, क्योंकि आपके घर की लक्ष्मी का अपमान हुआ है।'

'लक्ष्मी का अपमान ? यह फिर कैसी बात हुई ? मेरी तो समझ में नहीं आया ?'

इसपर सदानन्द अपनी ही बात ठीक से समझाकर कहेगा, 'मैं कभी जिस वजह से अपना घर छोड़कर चला आया था, आपके यहां भी वही दुर्योग हुआ चाचाजी ! आपके पास बहुत ज्यादा दौलत है, वह दौलत आपके पूर्वजों ने किस तरह कमाई थी, यह मुझे नहीं मालूम। पर, अगर वह दौलत अच्छे उपायों से नहीं आई हो, तो उसे मैं अपने उपयोग में लाने के लिए नहीं ले सकता।'

हो सकता है, समरजित बाबू उसकी बात सुनकर अवाक् हो जाएं। कहें, 'तुम क्या पागल हो गए हो सदानन्द ! ऐसी बातें तो पागल करता है। तुम्हारी तरह बात करने से क्या दुनिया चलती ?'

सदानन्द कहेगा, 'आपका लड़का शराबी है, आपका लड़का दुश्चरित्र है— यह देखकर आपको जैसा बुरा लग रहा है, आपको अपने पूर्वजों के बारे में भी तो यही सोचना चाहिए। आपने क्या कभी यह सोचा है कि वे लोग शराबी थे या नहीं, चरित्रहीन थे या नहीं ? उन लोगों ने अपनी रियाया पर जुल्मों-सितम किया था या नहीं, इसका भी कभी विचार किया है ? यह भी तो सोचना पड़ेगा कि वे लोग भी वैसे ही बुरे थे या नहीं। उनका किया कोई पाप हो तो आपको तो उसका प्रायश्चित करना पड़ेगा।'

सदानन्द की इन दलीलों पर समरजित बाबू को अचम्भा ही होगा। सदानन्द फिर कहेगा, 'मैं खूब जानता हूं चाचाजी कि आप मुझे पागल कहेंगे, मेरी बातों पर आप हंसेंगे। आप ही क्यों, दुनिया के सारे लोग ही मेरी बात सुनकर कहेंगे कि इसका दिमाग खराब हो गया है। लेकिन लोगों की बात पर मैं चलू कि लोग मेरी बात पर चलें। आप ही कहिए, क्या अच्छा है ?'

लेकिन ये सारी ही बातें अनुमान की हैं। शायद ये सब बातें हों ही नहीं। शायद उसके आने की खबर उन तक पहुंचे ही नहीं। सदानन्द सिर्फ महेश से ये बातें पूछकर ही वापस आ जाएगा—'अच्छा महेश, तुम तो नवाबगंज गए थे। वहां से तुम क्या देख-सुन आए ?'

महेश कहेगा, 'मैं तो आपसे कह ही चुका हूं, वहां आपके घर में कोई नहीं हैं। आपके दादाजी नहीं रहे, आपकी मां चल बसी। आपके पिता···'

'मैं उन सबकी नहीं पूछ रहा हूं। नयनतारा कहां है, तुमने कुछ सुना ?'

'नयनतारा ? नयनतारा कौन ?'

सदानन्द कहेगा, 'मेरी पत्नी।'

हो सकता है, महेश इसका कुछ तो उत्तर देता, लेकिन उससे पहले ही सदानन्द कल्पना के जगत् से बिलकुल वास्तव में लौट आया। जिस घर से वह कुछेक घंटे पहले निकल आया था, उसके सामने अभी खूब तीखी धूप हो आई थी। और, उसके सामने बहुत-से लोग भी जमा हुए थे। वहां इतने

लोग क्यों हैं ? वहां पर काहे की भीड़ है ? कर क्या रहे हैं वे ?

रास्ते के एक कोने में खड़ा दूर से ही सदानन्द देखने लगा। धीरे-धीरे घर के सामने भीड़ मानो और बढ़ने ही लगी।

सदानन्द वहां से चला आना चाह रहा था, लेकिन फिर खड़ा हो गया। वहीं से उसने देखा समरजित बाबू का लड़का एक जीप पर आया। वहीं, बड़ा बाबू के आते ही कई लोग उसकी तरफ बढ़े। सबका चेहरा गम्भीर-सा। जैसे, किसी आकस्मिक विपत्ति से सब हक्के-बक्के हो गए हों। तो क्या सबको यह पता चल गया है कि समरजित बाबू अपनी सारी चल-अचल सम्पत्ति किसी सदानन्द चौधरी के नाम लिख गए हैं ? इतना डर क्या इसीलिए है ? इसीलिए इतनी उत्तेजना है ?

लेकिन महेश कहीं नहीं दिख रहा था। वह मिलता तो उससे पूछा जा सकता। घर में मात्र एक महेश ही ऐसा आदमी है, जिससे सारी बातों का ठीक-ठीक पता चल पाता।

बाहर का कोई एक आदमी सदानन्द के पास आकर खड़ा हुआ। पूछा, "यहां हुआ क्या है साहब ?"

सदानन्द ने कहा, "मुझे कुछ नहीं मालूम।"

वह आदमी कौतूहल वाला था। कुछ और आगे बढ़ गया। रास्ते में चलते-चलते भीड़ देखकर जिन लोगों को कौतूहल हो उठता है, यह कुछ उसी किस्म का था।

तीखी धूप सिर पर और भी तीखी हो गई। फिर भी किसीको उसका ख्याल नहीं। एक बार जी में आया, वह भी किसीसे पूछे कि आखिर। क्या है ? लेकिन सकुचाहट हुई। किससे पूछेगा ? कोई यदि उसे पहचान ले। इतने दिनों तक वह इसी घर में रहा, इसी टोले में रहा। बहुतेरे लोग उसकी शक्ल पहचानते हैं। कहीं कोई पूछ बैठे, आप यहां अकेले क्यों खड़े हैं ?

इतने में एक पहचाना हुआ चेहरा भीड़ में आया। तुरन्त फिर दूसरा। वही मानदा मौसी। उसके पीछे-पीछे बतासी।

ये लोग क्यों ? ये किसलिए आई हैं ?

उसकी चिंता-शक्ति ही अवश हो आई है। एक दिन पहले ही जिनसे इतनी बातें हुईं, इतनी जल्दी उनकी यह परिणति होगी, इसकी वह कल्पना ही नहीं कर सका था। महज चौबीस घंटा पहले तक भी वह इसके लिए उतावले थे कि अपने पूर्वजों की स्मृतियों की पूंजी को वह किस तरह सदानन्द चौधरी को सौंपकर निश्चिन्त होकर दुनिया से विदा होंगे। उनकी वह इच्छा पूरी हुई। लेकिन जाने से पहले वह यह जानकर नहीं जा सके कि उनकी सारी इच्छाओं पर पानी फेरकर अनजान में ही एक ने उनको धोखा दिया है ! नहीं जान सके कि सदानन्द चौधरी ने उनकी छोड़ी हुई सम्पत्ति की फूटी कौड़ी तक को नहीं छुआ ! नहीं जान सके, यह अच्छा ही हुआ ! जानते कहीं तो उनकी मृत्यु भी शान्ति की मृत्यु नहीं होती।

यही होता है शायद। संसार में ऐसा ही होता है, इसलिए लोग संसार को माया कहते हैं। इसीलिए शायद जीते जी ही माया के बंधन को काटकर आदमी वाणप्रस्थ लेकर मुक्ति की खोज करता है।

सामने से समरजित बाबू की अर्थी श्मशान की ओर जाने लगी। दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाकर उसने जाते हुए शव को प्रणाम किया। उस आत्मा के प्रति मन-ही-मन उसने कहा, 'मैं आपको प्रणाम करता हूं। आपकी अनन्त वेदना और असीम ममता को मैं प्रणाम करता हूं। आपकी दी हुई जायदाद को कबूल न करके आपके अनजाने ही जो मैं चला जा रहा हूं, इसका मुझे दुःख है, लेकिन चूंकि मैं आपका सम्मान करता हूं, इसीलिए किसी और को वंचित करने के कलुष से मैंने अपने को बचाया। आप मुझे क्षमा करेंगे।'

अर्थी धीरे-धीरे दूर चली गई। महेश से भी मुलाकात नहीं हो सकी। अथच वह महेश से भेंट करने के लिए ही यहां आया था। कहीं नहीं आया होता तो वह जान भी पाता कि इस घर से उसका नाता सदा के लिए समाप्त हो गया!

चलते-चलते सदानन्द सोचने लगा, जिस जायदाद के लिए समरजित बाबू के उद्वेग का अन्त नहीं था, अन्त तक वह किसको नसीब होगी, कौन जाने! उसे यह भी नहीं मालूम हो सकेगा कि समरजित बाबू के वसीयतनामे की आज रजिस्ट्री भी होगी या नहीं। जानने की अब शायद जरूरत भी नहीं होगी।

अचानक उसकी नजर पड़ी, महेश सामने से दौड़ता हुआ जा रहा है।

सदानन्द पुकार उठा, "महेश, महेश—"

लेकिन उसके गले से आवाज ही नहीं निकली। आज सवेरे ही जो अप्रत्याशित घटना घट गई, उसमें महेश का भविष्य अनिश्चित हो गया। अब महेश को बुलाकर वह पूछेगा भी क्या? वह तो उससे नयनतारा के बारे में पूछने के लिए आया था। लेकिन इस हालत में भी वह बात पूछी जा सकती है भला!

बड़ी देर के बाद एकाएक उसे धर्मशाला की बात याद आ गई।

•

कोई दानी व्यक्ति मरने के बाद स्वर्ग पाने की कामना से बीच शहर की छाती पर बड़ा बाजार की यह धर्मशाला बनवा गया था। बंगाल के बाहर का कोई शायद। सोचा था, इस शहर से रुपये तो बहुत ही कमाए। अब पुश्त-दर-पुश्त उस कर्ज को अदा किया जाए। उस जमाने में इसकी बड़ी उपयोगिता थी। जो लोग पारसनाथ का मंदिर, हावड़ा का पुल या गंगा मैया अथवा कालीघाट के दर्शन को आया करते थे, यह धर्मशाला उनके बहुत काम आती थी। उसके बाद से कलकत्ता धन-जन से और भी बड़ा, लेकिन उसका इस चीज की समृद्धि क्रमशः कम हो गई। भारतवर्ष में दूसरे कई शहर कलकत्ता से ज्यादा समृद्ध हो गए। जिन लोगों ने कभी कलकत्ता का शोषण किया था, वे

अब नहीं हैं। पर उनके वंशधर अब सीधे खुले तौर पर शोषण नहीं करते। उनके हाथों दिल्ली की बागडोर है। उस दिल्ली की गद्दी पर जो लोग विराजमान हैं, उनके हाथों से वे इस ढंग से कल-कब्जा घुमाते हैं कि शोषण अब शोषण-सा नहीं लगता। लगता है, गणतंत्र है। उस गणतंत्र की ओट से जाने किनकी कारगुजारी से एक राज्य रातोंरात फूल उठता है और दूसरा अर-मराता हुआ हांफता रहता है। अंग्रेजी सल्तनत के अंतिम दिनों से ही यह बात चली आ रही है। सन् 1912 से, जबसे देश की राजधानी दिल्ली चली गई, तब से। परन्तु धीरे-धीरे कलकत्ता से जब सब कुछ चला गया, तभी शायद अंग्रेजों का भी यहां ऊर्ध्वश्वास उठने लगा। अंग्रेज जरूर चले गए, मगर शोषण नहीं गया। सन् 1947 के बाद से सिर्फ अदला-बदली हुई।

कलकत्ता ने एक के बाद दूसरी—बहुत विपत्तियां देखीं। लेकिन जो विपर्यय उसने सन् सैंतालीस के बाद से देखना शुरू किया, उसकी मिसाल शायद ही हो। इस समय सिर्फ टूटने का ही इतिहास शुरू हुआ। रास्ते में जो गड्ढे एक बार खुदे, वे भरे नहीं जाते। भीड़ के मारे लोगों का चलना-फिरना मुश्किल। देश का बांट-बखरा करके दुःख भोगने का हिस्सा जैसे बंगाली के कंधों पर ही ज्यादा चढ़ा। कलकत्ता में गर्व करने लायक जो कुछ भी था, सब जा चुका था। रहने को रह गईं यहां-वहां कुछ धर्मशालाएं। वह भी इसलिए रह गईं, क्योंकि कंधे पर उन्हें उठाकर दूसरे शहर में ले नहीं जाया जा सकता था।

"पांडे जी!"

सदानन्द वहां गया, तो देखा, धर्मशाला के सामने भी भीड़ है। दुनिया-भर के भिखमंगों ने वहां भीड़ लगा रखी है। सबके ही हाथों में थाली, गिलास, मग—कुछ-न-कुछ जरूर है।

बिलकुल फाटक के सामने ही कोई खड़ा था। सदानन्द ने उससे पूछा, "पांडे जी? पांडे जी नहीं हैं?"

उसने बताया, "पांडे जी बाहर गया है। कोठी में नहीं है।"

सदानन्द फिर लौट आया। अथच पांडे जी ने उसको बुलाया था। उसने भी पांडे जी से कहा था कि वह यहीं आएगा। और रात से ही वह इसी तरह से चक्कर काटता फिर रहा है। सोचा था, यहां आकर सुस्ता लेगा। लेकिन अब उसे कोई और व्यवस्था करनी होगी।

तकदीर अच्छी थी। बड़ा बाजार के मोड़ पर आते ही पांडे जी से भेंट हो गई, "अरे! आप लौटे जा रहे हैं? मैं जरा बाहर चला गया था चलिए···"

और पांडे जी उसे खींचते हुए अन्दर ले गया। अन्दर बहुत ही बड़ा आंगन। पत्थर का बना विशाल मकान। कतार से चारों ओर कमरे। चार मंजिल। सभी कमरों में लोग गिज-गिज कर रहे थे। भीतर बेहद भीड़। जैसे कि कोई उत्सव हो।

कोने की तरफ के एक कमरे का ताला खोलकर पांडे जी ने कहा, "आइए अन्दर आइए। मैं तो सवेरे से ही आपके इंतजार में बैठा था। आपने इतनी

देर कर दी। मुझे लगा, आप शायद भूल गए।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं-नहीं, भूलता कैसे ? मैं तो कह ही गया था कि आज मैं यहीं रहूंगा···"

पांडे जी ने कहा, "आज ही क्यों बाबू जी, जब तक मरज़ी हो, आप रहिए न। कलकत्ता के ये मकान वाले कम्बख्त बड़े बदमाश हैं, किराया बाकी पड़ गया कि घर से निकाल बाहर करेंगे। मगर आपका सामान-वामान क्या वहीं पड़ा हुआ है ? आप भी उसे यों ही मत बख्श दीजिए, मामला ठोंक दीजिए। मेरी जान-पहचान के वकील हैं, बड़े ज़बरदस्त वकील···"

पांडे जी बहुत बोलने वाला आदमी है। चौदह साल की उम्र से वह इस धर्मशाला की देख-रेख करता आ रहा है। पढ़ना-लिखना बिलकुल नहीं जानता। पुराने ज़माने का आदमी। बहुत दिनों से कलकत्ता में रहने की वजह से अच्छी बंगला बोल लेता है।

पांडे जी अचानक ही बोल उठा, "आपने मेरी अंग्रेज़ी चिट्ठी पढ़ दी थी बाबूजी याद है ? उस चिट्ठी से मुझे बड़ा लाभ हुआ। मैं अब चालीस बीघा ज़मीन का मालिक हूं। यह बस आपकी किरपा से ही हुआ बाबूजी—"

सदानन्द एक खटिए के ऊपर बैठ पड़ा था। दिन-भर चलता ही चलता रहा। यहीं अभी बैठ पाया है। सदानन्द ने इतने-इतने लोग देखे, इतनी-इतनी जगह गया, इतने लोगों से मिला; लेकिन यहां पांडे जी के इस अंधेरे कमरे में बैठकर उसे जो आराम मिला, उसकी कोई तुलना ही नहीं। बोला, "आपका यह कमरा बड़ा अच्छा है पांडे जी, मैं ज़रा सो जाऊं ?"

"सो जाइए न। लेकिन कपड़े नहीं बदलिएगा ?"

सदानन्द ने कहा, "पहनावे में जो है, इसके अलावा मेरे पास और कपड़ा-लत्ता नहीं है।"

"सब शायद बक्से में ही पड़ा रह गया। खैर, काम चलाने लायक कपड़े बाद में खरीद लीजिएगा। पैसे नहीं लगेंगे···"

"पैसे क्यों नहीं लगेंगे ?"

पांडे जी ने कहा, "लगेंगे, लेकिन नकद नहीं। हम लोगों की इस धर्मशाला के मालिक का कपड़े का कारोबार है। कपड़े के व्यवसाय से मालिक को बेहिसाब रुपया है। बम्बई में इन्हें कपड़े की मिल है। मुझे कभी कपड़ा नहीं खरीदना पडता। मैं आपको कपड़ा ला दूगा।"

सदानन्द ने कहा, "उससे तो बल्कि आप मेरे लिए कोई नौकरी जुटा दे सकें तो···"

"नौकरी ? कैसी नौकरी ?"

सदानन्द ने कहा, "कोई भी नौकरी, कुछ भी तनखाह हो चाहे। नौकरी नहीं करूंगा तो रोटी कैसे चलेगी ? किसीका लड़का पढ़ाना हो, तो यह भी कर सकता हूं, बी० ए० पास हूं मैं। किसी भी क्लास के लड़के को पढ़ा सकता हूं।"

पांडे जी ने कहा, "मेरे मालिक के बहुत लड़के हैं, मैं उनसे किसी दिन

आपका जिक्र करूंगा। अभी तो उनकी लड़की की शादी हो रही है न···"

"मालिक की लड़की की शादी है ?"

"जी ! धर्मशाला में यह भीड़ नहीं देख रहे हैं ? बराती हैं ये लोग। कल शादी हो चुकी। अभी पन्द्रह दिनों तक खान-पान चलता रहेगा। ये सब लोग पटना से आए हैं।"

कि पांडे जी को याद आ गया। बोला, "मकान वाले ने तो आपको निकाल दिया है। आपने खाना कहां खाया ?"

सदानन्द ने कहा, "कुछ नहीं खाया।"

"अरे ! दिन-भर कुछ खाया नहीं है ? तो फिर अब तक मुझसे कहा क्यों नहीं ? खैर, ठहरिए। मैं ले आता हूं···"

पांडे जी कमरे से बाहर चला गया। थोड़ी ही देर में एक पत्तल में काफी पूरी-तरकारी ले आया। बोला, "लीजिए, खा लीजिए।"

सदानन्द खाट पर से उठा। पूरी-तरकारी वाली पत्तल ली। इतने में किसीने आवाज दी, "पांडे जी, पांडे जी !"

पांडे जी ने कहा, "मालिक पुकार रहे हैं। अभी आता हूं—"

पांडे जी झट बाहर चला गया।

सदानन्द पत्तल लिए बैठा ही था। बड़ी भूख लगी थी उसे। लेकिन हाथ-मुंह भी नहीं धोया था। जरा धो-धवा लेता तो अच्छा था। लेकिन पानी किधर है? आंगन में नल तो जरूर ही हो होगा।

बाहर निकलकर सदानन्द नल खोजने लगा। आंगन में सखुए के पत्ते के दोने बिखरे पड़े थे। एक आदमी से उसने पूछा, "नल किधर है ?"

उस आदमी ने बाहर की तरफ दिखा दिया।

अजीब जगह है यह धर्मशाला। कितने प्रकार के लोग आ रहे हैं, और जा रहे हैं। कोई किसीको नहीं पहचानता। पहचानने की चेष्टा भी नहीं करता। वह एक अजाना आदमी यहां आया है, इसके लिए भी किसीको सिर दर्द नहीं। आंगन पार करके सदानन्द बिलकुल सदर फाटक के पास जाकर खड़ा हुआ। कहां, नल या हौज कहां है ? किधर ?

सदानन्द की नजर सामने गई। देखा, एक भिखमंगिन सोए हुए लड़के को गोद में लिए उसके हाथ की पत्तल की ओर हा किए ताक रही है। एकटक।

सदानन्द को एक अजीब ही अनुभूति हुई। भिखमंगिन के आस-पास और भी थे। उन सबकी हसरत-भरी निगाह भी पत्तल पर ही थी।

"बाबूजी···"

एक करुणा-भरी लड़खड़ाई आवाज। लेकिन वही धीमी आवाज मानो सदानन्द को आर्तनाद-सी लगी। सदानन्द ने तुरन्त वह पत्तल उसकी ओर बढ़ा दी। भिखमंगिन ने अपनी फटी साड़ी का आंचल फैलाया कि सदानन्द ने पूरी-तरकारी समेत पत्तल उसमें डाल दी।

लेकिन नवाबगंज आखिर कलकत्ता तो नहीं। और वह जैसे कलकत्ता नहीं है, वैसे ही सुलतानपुर भी नहीं है। सदानन्द के जीवन में कभी यह कलकत्ता, नवाबगंज और सुलतानपुर एकाकार हो गया था। इतने दिनों के बाद इतनी उम्र हुए यह सोचने में उसे बड़ा अजीब-सा लगने लगा। पहले वह कभी सोच भी पाया था कि उसकी यह जिन्दगी इतनी-इतनी जगह और इतने-इतने लोगों को घेरकर खड़ी होगी ? और उसे इसी बात का पता था क्या कि जिस समरजित बाबू को देखकर वह अचम्भे में आ गया था, भविष्य में उससे भी अचम्भा में डालने वाले लोग उसे मिलेंगे।

जाने कितनी बार इसी सियालदह स्टेशन से रेलगाड़ी पर सवार होकर वह सुलतानपुर गया है। कितनी बार नवाबगंज गया है। अपने एक जीवन में उसने कितने अनगिनत लोगों का जीवन देखा। इसीकी क्या सीमा और परिसीमा है कि उसके जीवन पर कितने ही लोगों की छाप-छाया पड़ी है। कभी-कभी सोचकर भी चकित रह जाना पड़ता है—जिस मंशा से उसने अपनी जन्मभूमि को छोड़ा था, जो सपना पालकर उसने नयनतारा से नाता तोड़ लिया था—वह उद्देश्य उसका पूरा हुआ क्या? उसने इस रसिक पाल की अतिथिशाला में पड़े रहने के लिए ही इतने कष्ट स्वीकार किए थे ? दुनिया ने क्या उसकी बात सुनी ? दुनिया के लोग क्या वैसे बने, जैसा कि वह चाहता था ? नवाबगंज के लोगों के लिए ही जो उसने इतना कुछ किया, वह सार्थक हुआ ? सदानन्द के चलते ही नवाबगंज के लोगों को अस्पताल मिला। स्कूल मिला। यह सब क्या कुछ भी नहीं ? सदानन्द की ही वजह से नयनतारा की दुनिया की गरीबी मिटी, यह भी क्या कुछ नहीं ?

और उसके पिता ? नवाबगंज के चौधरी जी ?

जीवन के अन्तिम दिनों उन्हें जो कष्ट हुआ, उसके लिए भी क्या सदानन्द ही ज़िम्मेदार है ?

नवाबगंज के लोगों ने एक दिन देखा, चौधरी जी फिर आ गए। उनकी वह पहले जैसी शक्ल-सूरत नहीं रही। फिर बरवारी-थान होकर ही साइकिल-रिक्शा उनके यहां गया। उनके साथ प्रकाश मामा।

प्रकाश एक-एक करके घर में लगे तालों को खोलने लगा। सीढ़ियों से ऊपर गया। दुतल्ले के कमरे को भी खोला। गर्द से कमरा भर गया था। झाड़-बुहार लेने के बाद किसी कदर रहने योग्य बना।

आने की खबर मिलते ही बिहारी पाल आया। आमने-सामने प्रकाश से मुलाकात हो गई।

"पाल बाबू ? आप सब कैसे हैं ?"

बिहारी पाल ने कहा, "सुना, चौधरी जी आए हैं ?"

प्रकाश ने कहा, "हां। जीजाजी आए हैं।"

"समाचार तो सब ठीक है न ?"

धीरे-धीरे और लोग भी आए। बूढ़े तारक चक्रवर्ती को भी यह खबर मिली। लंगड़ाते हुए वह भी आ पहुंचे। पुराने सब लोग। सबकी उम्र हो चुकी

है। पुराने आदमी को देखते ही पुरानी यादें ताज़ा हो जाती हैं। किसी दिन इसी घर में सदानन्द के ब्याह में लोगों ने छूटकर खाया था। बूढ़े चौधरी के श्राद्ध में भी सबने भोज खाया। चौधरी जी की पत्नी का यहीं देहान्त हुआ। उसमें लेकिन वैसी कुछ खास धूम नहीं हुई। लेकिन जिस घटना की छाप सबके जी में अमिट-सी पड़ी थी, वह थी नयनतारा वाली उस दिन की घटना। इतने दिनों के बाद छोटे चौधरी के आविर्भाव से लोगों को वह सब पुरानी बातें नये सिरे से याद आने लगीं।

कई दिनों तक बहुतेरे लोगों का तांता बंध गया। लेकिन चौधरी जी ने किसीसे भेंट नहीं की। प्रकाश मामा ने भी जीजाजी से किसीको मिलने नहीं दिया। कहा, "उनकी तबीयत खराब है। भेंट नहीं हो सकेगी।"

एक ने कहा, "इतने दिनों के बाद चौधरी जी आए और हम उन्हें एक नजर देख भी नहीं पाएंगे साला बाबू ?"

प्रकाश ने कहा, "नहीं। मैं सबका मतलब समझ गया हूं।"

"मतलब क्या रह सकता है साला बाबू? गांव के जमींदार गांव में आए हैं। नमस्ते करके हम चले जाएंगे। इतना भी नहीं होगा ?"

बिहारी पाल ने पूछा, "सदानन्द की कोई खबर मिली ?"

प्रकाश ने कहा, "नहीं। वह अब जीवित नहीं है—"

"जीवित नहीं है ? मतलब ?"

प्रकाश के बोलने के ढंग से बिहारी पाल दुःखी हुआ। इस तरह से भी कोई बात करता है ? बोला, "जीवित नहीं है से क्या मतलब है ? आप लोगों ने कुछ खोज-खबर भी ली है ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "खोज-खबर क्या लें ? मर जाने पर भी कोई खोज-खबर मिलती है क्या ?"

"वैसा जीता-जागता आदमी मर गया और उसका पता भी नहीं चलेगा ? किसी जगह पुलिस की बही में भी तो कुछ लिखा-विखा होगा।"

प्रकाश ने कहा, "आप क्या समझते हैं, पुलिस वालों से पूछा-आछा नहीं है ? मैंने खुद छः महीने कलकत्ता में बिताए—पुलिस वालों के पीछे हजारों-हजार रुपये खर्च किए—कोई नतीजा नहीं निकला। अब मैं ही क्या कर सकता हूं और जीजाजी ही क्या कर सकते हैं ?"

"और नयनतारा ?"

प्रकाश ने कहा, "उसका नाम भी न लें। यह मुझसे ही भारी भूल हुई थी कि वैसी लड़की को इस घर की बहू बनाकर लाया था। उसी कुलच्छनी ने आकर तो इस घर को तहस-नहस कर दिया। नहीं तो आज जीजाजी की यह दशा नहीं होती और दीदी भी ऐसे मर नहीं गई होती।"

एक ने कहा, "फिर तो आपका ही पौबारह है साला बाबू ! अब तो चौधरी जी की सारी सम्पत्ति आपकी ही मुट्ठी में है···"

"राम कहो, वैसी किस्मत है अपनी !"

बिहारी पाल ने कहा, "क्यों-क्यों, आपके सिवाय तो और कोई वारिस

चौधरी जी के रहा नहीं।"

प्रकाश ने कहा, "कोई नहीं रहा, यह तो जानता हूं। जभी तो मैं जीजाजी को छोड़ता नहीं। लेकिन दुश्मनों की तो कमी नहीं है पाल बाबू! वे लोग तो अन्दर-ही-अन्दर और ही मनसूबा गांठ रहे हैं।"

"कैसा मनसूबा?"

प्रकाश ने कहा, "सुलतानपुर के लोगों को तो आप जानते नहीं हैं न। ऐसे बेहया हैं वे कि अपनी उमरदार कुमारी बेटियों को जीजाजी के पास भेजते हैं, उनसे जीजाजी का पैर दबवाते हैं। यह तो गनीमत कहिए कि मैं था···"

"क्यों, पैर क्यों दबवाते हैं? रुपये के लिए? उनकी खुशामद के लिए?"

"अजी नहीं, जीजाजी को अपना दामाद बनाने के लिए।"

"मगर छोटे चौधरी ने तो अक्ल नहीं बेच खाई है।"

प्रकाश ने कहा, "अभी शायद हो कि नहीं बेच खाई है। मगर बेच खाते देर क्या लगती है? मर्द होते हुए भी आप ऐसी बात पूछ रहे हैं? मर्द मर्द है, वह कभी बूढ़ा नहीं होता।"

बात सबने समझी। सो तो है। ब्याह करने में क्या देर लगती है? कर लिया ब्याह। जब रुपये की कमी नहीं है, तो लड़की की भी कमी नहीं है।

प्रकाश इसीलिए चौधरी जी का साथ नहीं छोड़ता। छाया-सा सदा साथ ही रहता है। चौधरी जी ने सुलतानपुर से यहां अकेले ही आना चाहा था। लेकिन प्रकाश ने नहीं आने दिया। जीजाजी को एक मिनट के लिए भी अकेला छोड़ने में उसे डर लगता है। कहता है, "भैया जी, सम्पत्ति का लोभ बड़ा लोभ होता है। उसमें लघु-गुरु का विचार नहीं रहता।"

चौधरी जी जब अकेले रहते तो हिसाब लेकर बैठते। उस समय वह प्रकाश को भी अन्दर नहीं रहने देते। उस समय वह किसीका भी विश्वास नहीं करते। कमरे का दरवाजा बंद करके हिसाब ही करते रहते। कितने बीघे का बगीचा है, कितनी जमीन धान की है, चौर कितना है! मकान का भी अलग ही दस्तावेज निकाल लेते। इसकी भी कीमत, नहीं भी कुछ होगी, तो तीस-चालीस हजार। रेल-बाजार का आढ़तिया है प्राणकृष्ण साह। उसीसे बेचने की बात चल रही थी। कुल का तीन लाख रुपया मिल जाए तो ज्यादा के लिए तंग नहीं करेंगे वह। जो मिल जाए। खुद यहां नहीं रहेंगे, तो एक पैसा भी नहीं मिलेगा। यहां का तीन लाख और सुलतानपुर का सात। ये दस लाख रुपये वह बैंक में रख देंगे। बाकी बचा सोना-दाना। उन सबका भी दाम है। सारा कुछ अपने पास रखना खतरे से खाली नहीं है। कोई जहर दे सकता है। दुनिया में किसीका विश्वास नहीं।

उस दिन हिसाब-किताब में काफी रात हो गई। चौधरी जी ने साह जी को कहला भेजा था। वह सवेरे आएगा। उससे पहले सब कागज-पत्तर दुरुस्त करके रख रहे थे। काफी रात हो चुकी थी। प्रकाश बाहर बरामदे पर लेटकर

सो रहा था।

एकाएक उनकी नजर बाहरी अहाते के फाटक पर गई। लगा, सदर दरवाजे को ठेलकर एक पालकी अन्दर आई। चार कहारों की पालकी। इतनी रात गए पालकी पर कौन आया!

चौधरी जी ने पैनी निगाहों से उधर देखा। देखा, पालकी से कोई घूंघट वाली उतरी। उतरकर धीरे-धीरे हवेली में आई। वहां फिर वह दिखाई नहीं पड़ी। उसके बाद सीढ़ी पर पैरों की आहट हुई। सीढ़ी से वह ऊपर आ रही थी। उसके बाद सीधे उनकी खिड़की के सामने। घूंघट के अन्दर शक्ल पहचानी-पहचानी-सी लगी।

उन्होंने पूछा, "कौन?"

औरत के गले की आवाज, "मैं कालीगंज की बहू हूं।"

जैसे ही कालीगंज की बहू सुना, चौधरी जी के गले से एक अस्फुट चीख निकली और वह बेहोश होकर वहीं गिर पड़े। उनके गिरने की आवाज प्रकाश के कानों में गई। निंदाई हालत में ही उसे ऐसा लगा, मानो अश्विनी भट्टाचार्य जीजाजी से बात करने के लिए आया है। आते समय उसे चौकठ से ठोकर लग गई है—

प्रकाश चिल्ला उठा, "अबे साला अश्विनी, तू मुझे तंग करने के लिए यहां भी आ पहुंचा?"

लेकिन नहीं, सपने की धुंध मिटते ही उसने देखा, जीजाजी फर्श पर बेहोश पड़े हुए हैं।

प्रकाश जोर-जोर से पुकारने लगा, "जीजाजी? जीजाजी? क्या हो गया आपको? आप वैसे क्यों पड़े हुए हैं? जीजाजी—"

प्रकाश की चीख-पुकार से आखिर उस दिन टोले-मुहल्ले के लोग आ जुटे थे। बिहारी पाल आया था, तारक चक्रवर्ती आए थे। निताई हालदार के चौंतरे पर जो लोग ज्यादा रात तक ताश खेल रहे थे, वे लोग भी हड़बड़ाकर दौड़ते आ पहुंचे थे।

चौधरी जी के यहां उस दिन एक भयंकर ही कांड हो गया।

आखिर सब्बल से दरवाजे को तोड़ा गया। नोनी डाक्टर आया। कई दिनों तक दवा-दारू चला, तब कहीं चौधरी जी सीधे खड़े हुए।

प्रकाश ने पूछा, "क्या हुआ था जीजाजी? आप वैसे चीख क्यों उठे थे?"

बिहारी पाल, तारक चक्रवर्ती वगैरह ने भी पूछा, "कुछ डर-वर लगा था?" लेकिन चौधरी जी ने किसीकी किसी बात का जवाब नहीं दिया। यह भी किसीसे नहीं बताया कि उन्होंने पालकी से किसे आते देखा था और किस-को देखकर डर गए थे। उस दिन की घटना पर वह अपने ही मन में सोचने लगे। जितना ही सोचने लगे, उन्हें उतना ही डर लगने लगा। उन्हें ऐसा लगने

लगा कि उनकी सारी जायदाद एक भारी जगद्दल पत्थर होकर उनके कलेजे पर सवार हो गई है। उस भार को वह छाती पर से हरगिज उतार नहीं पा रहे हैं।

सात दिन खाट से लगे रहे। कागज पत्तर सब हाथ के पास थे। उन्हींके लिए उन्हें बेहद चिन्ता थी। संसार में किसीका विश्वास नहीं। सबकी नजर उन कागजों पर ही है। जब तक वह उन कागजात को प्राणकृष्ण साह को दे नहीं लेते, निश्चिन्त नहीं हो सकते थे।

एक दिन उन्होंने प्रकाश से पूछा, "साह जी नहीं आए ?"

प्रकाश ने कहा, "जी, वह आए थे। आप उस समय बीमार थे, इसीलिए लौट गए। कह गए हैं, फिर आएंगे—"

चौधरी जी ने कहा, "उनको फिर से बुलवा भेजो—"

साह जी बड़े पुराने आढ़तिए हैं। बूढ़े मालिक के अमल से ही इस परिवार से लेन-देन चलती रही है। व्यापार के लिए जब कभी नकद रुपयों की जरूरत होती थी, साह जी बूढ़े चौधरी के पास आता था रुपयों के लिए।

वही साह जी उस दिन आया। उसके आते ही चौधरी जी ने प्रकाश से कहा, "तुम जरा बाहर तो जाओ प्रकाश—"

प्रकाश सकपका-सा गया। बोला, "मैं कमरे से बाहर चला जाऊं ?"

"हां। बाहर चले जाओ।"

प्रकाश फिर भी समझ नहीं पाया। बोला, "मैं क्यों बाहर जाऊं ? फिर कोई जरूरत पड़ जाए कहीं ?"

चौधरी जी ने कहा, "नहीं, मुझे तुम्हारी कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम अभी यहां से बाहर चले जाओ।"

प्रकाश ने कहा, "फिर कहीं आप बेहोश हो पड़ें, तो कौन देखेगा ! बेहतर है कि मैं नहीं जाऊं।"

चौधरी जी से अब बरदाश्त नहीं हुआ। वह खड़े हो गए और बिगड़कर बोले, "मैं कहता हूं, तुम निकलो, निकल जाओ यहां से···"

प्रकाश फिर भी नहीं डिगा। बोला, "जी, मैं रहूंगा तो क्या नुकसान होगा ? मैं कुछ कर तो नहीं रहा हूं ?"

चौधरी जी ने प्रकाश के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। बोले, "जितना ही मैं तुमसे कुछ नहीं कहता हूं, तुम्हारा मिजाज सातवें आसमान पर चढ़ा जा रहा है। बार-बार कहता जा रहा हूं, चले जाओ, तो नहीं, यहीं रहना चाहते हो। आखिर क्यों ? मेरी सब बातें जानने की तुम्हें जरूरत ही क्या है ? साह जी से मुझे अगर कुछ जरूरी बात करनी हो, तो तुम्हें वह भी सुननी है !"

तमाचा खाकर प्रकाश की आंखों में आंसू आ गए थे। खास करके साह जी के सामने तमाचा लगा—आंखों में आंसू तो आने ही थे। वह आंसू बहाते उसी हालत में कहने लगा, "आपने मुझे तमाचा मारा जीजाजी ? मेरी रही होती, तो मुझे यह लानत नहीं सहनी पड़ती, दीदी नहीं हैं इसी[illegible]

चौधरी जी डपट उठे, "तुम रुको तो ! अपनी दीदी की बात [illegible]

तुम्हारी दीदी तो तुम्हारी ही वजह से मरी। सारे अनर्थों की जड़ तो तुम्हीं हो—"

"दीदी मेरी वजह से मरी ? सारे अनर्थों की जड़ मैं हूं ? यह आप कह क्या रहे हैं जीजाजी ?"

साह जी रुपये पैसे की बाबत बात करने आया था। यह नहीं सोचा था कि उसे इन झगड़ा-विवादों में पड़ना होगा।

वह बीच ही में बोल उठा, "इन सब बातों के लिए नाहक ही कहा-सुनी क्यों कर रहे हैं चौधरी जी, अभी इन बातों को छोड़िए न—"

चौधरी जी ने कहा, "यह कितना बड़ा शैतान है, ज़रा देखिए न। मेरे लड़के को बचपन से इसीने बिगाड़ दिया। इसीकी वजह से सदानन्द ऐसा हो गया—"

प्रकाश बोल उठा, "बिगाड़ा मैंने कि आप लोगों ने ? आपने और बूढ़े मालिक ने—"

"तुम अब बोलो मत प्रकाश ! चुनकर वैसी बहू को कौन ले आया ? मैंने, बूढ़े मालिक ने या तुमने ? तुम यदि ऐसी बहू को नहीं लाते तो तुम्हारी दीदी इस तरह से मरती ? नवाबगंज का यह भरा-पूरा मकान ऐसा मरघट बन जाता ? देख नहीं रहे हो, यह घर क्या हो गया ? नहीं तो क्या मैं अपनी यह सम्पत्ति पानी के दाम बेचता ? साह जी तो सब कुछ जानते हैं, आप ही कहिए, आप तो सदा से देखते आए हैं साह जी, कहिए—"

वह ज़रा रुके। फिर कहने लगे, "जानते हैं साह जी, छुटपन से ही यह उस लड़के को कहां-कहां ले जाता था ? कहां राणाघाट, कहां कृष्णनगर, कहां कलकत्ता—वहीं सब देख-सुनकर तो वह बिगड़ गया।"

प्रकाश ने कहा, "खूब ! अब सारा दोष मेरे मत्थे···"

"दोष तुम्हारा नहीं तो क्या मेरा है ? तुम चुन-चुनाकर उस बहू को नहीं ले आए ? तुमने कहा नहीं था कि उस लड़की के आने से सदानन्द संसारी बनेगा, उसका रूप देखकर ही सब भूल जाएगा ? कहा नहीं था तुमने ?"

प्रकाश ने कहा, "यह तो मैंने कहा था। तो क्या कुछ झूठ कहा था ? आप कहिए न साह जी, आपने भी तो बहू को देखा था, वैसी रूपसी बहू कितनों के यहां है ? बाहर जिसके वैसा रूप है, उसके भीतर ऐसा विषैला गेंहुअन है, यह मैं कैसे जानता ? कहिए···"

प्राणकृष्ण साह ने कहा, "खैर, जो बीत गया सो बीत गया, अब तुम चुप ही रहो। चौधरी जी जो कह रहे हैं, वही करो—"

प्रकाश ने कहा, "यानी मैं यहां से बाहर चला जाऊं ?"

आया तो मैं अपना आदमी बन गया, है न? उस दिन जीजाजी जब बेहोश हो गए, तो किसने इनकी देख-भाल की? उस समय तो मेरे अलावा और कोई भी नहीं था।"

चौधरी जी के धीरज का बांध अब टूट गया। बोले, "मैं अब कुछ नहीं सुनना चाहता, तुम यहां से निकल तो जाओ, फौरन। तुम्हें अब रसोई नहीं बनानी पड़ेगी। रुपया फेंकने से आदमी की कमी नहीं है। तुम यहां से निकल जाओ, एकबारगी इस घर से ही निकल जाओ।"

चौधरी जी उसे ढकेलकर निकालने जा रहे थे। लेकिन ठीक उसी समय कोई अनजान आदमी वहां आ पहुंचा। उस आदमी को देखकर तीनों जने अवाक् हो गए। कौन है यह?

प्रकाश उसके सामने गया। पूछा, "आप?"

वह आदमी बोला, "मैं चौधरी जी से मिलने के लिए आया हूं—"

चौधरी जी ने कहा, "मैं ही चौधरी जी हूं—"

वह बोला, "आपसे मुझे एक बात करनी थी और वह बात मैं अकेले में करना चाहता हूं।"

चौधरी जी एक तो यों ही झुंझलाए हुए थे। आगन्तुक की इस बात से वह और भी खीझ गए। पूछा, "आप कहां से आ रहे हैं?"

प्रकाश भी साथ ही साथ बोल उठा, "हां पहले बताइए कि आप आ कहां से रहे हैं? कहा नहीं, सुना नहीं और भेंट करने आ गए। आपको जो कहना हो, सबके सामने ही कहिए। समझ गया, ब्याह की बातचीत करने आए हैं न?"

उस आदमी की अजीब शक्ल बन गई, "ब्याह? किसका ब्याह?"

प्रकाश ने कहा, "चौधरी जी का ब्याह। आप चौधरी जी के ब्याह का प्रस्ताव लेकर आए हैं न? जवाब मैं ही दिए देता हूं, मेरे जीजाजी ब्याह नहीं करेंगे। जायदाद के लोभ से आप सब लोग चौधरी जी का ब्याह कर देना चाहते हैं। मगर हम लोग ऐसा होने नहीं देंगे। मैं चौधरी जी का साला हूं, मेरा नाम प्रकाश राय है। मुझसे पूछे बिना चौधरी जी ब्याह नहीं करेंगे।"

उस आदमी ने कहा, "मैं लेकिन ब्याह की बात नहीं करने आया हूं—"

"फिर?"

चौधरी जी ने कहा, "तुम चुप तो रहो प्रकाश! तुम्हें इतना कहने की क्या पड़ी है? ये मुझसे बात करने आए हैं, जो कहना होगा, मैं कहूंगा। तुम कौन होते हो?"

प्रकाश ने कहा, "इसीलिए तो मैं आपको छोड़कर कहीं नहीं जाता। जाने कौन ठग-ठगाकर आपका ब्याह कर देगा और तब आप हाय-तौबा करते रहेंगे। सुलतानपुर के अश्विनी ने तो आपको करीब-करीब फंसा ही लिया था। मैं नहीं रहा होता तो आप उस फंदे से छूट पाते?"

प्राणकृष्ण साह के समय का मूल्य है। फिजूल की बातों में समय नष्ट हो रहा था, इसलिए वह भुनभुना रहा था। बोला, "प्रकाश जी, तुम जरा चुप

ही हो जाओ। ये सज्जन जो कहना चाहते हैं, कहने दो—"

उस आदमी ने कहा, "कालीकांत भट्टाचार्य आपके समधी थे न ?"

चौधरी जी ने कहा, "हां-हां। उन्होंने ही आपको भेजा है ?"

"नहीं। वे कैसे भेजें भला ! वे तो एक साल पहले ही गुजर गए।"

"गुजर गए ?"

"जी हां। वे मेरे मास्टर साहब थे। उनकी लड़की नयनतारा से ही आपके लड़के की शादी हुई थी न ?"

नयनतारा का ज़िक्र आते ही आबहवा मानो गरम हो उठी। इतनी देर के बाद चौधरी जी ने तीखी नजर से उस आदमी की ओर देखा। पूछा "आपका नाम ?"

उसने कहा, "जी मेरा नाम निखिलेश बंद्योपाध्याय है।"

अब प्रकाश ने उसे पहचाना। बोला, "अरे वाह, आपको तो मैं पहचानता हूं जनाब ! आप तो हमारे समधी जी के दाएं हाथ थे। ओ ! खैर, अचानक कैसे आना हुआ ?"

उस आदमी ने कहा, "बेटी के ब्याह के समय मास्टर साहब ने उसे प्रायः आठ-दस-हजार रुपये का गहना दिया था। अपने पतोहू को आपने उसके नैहर भेज दिया। लेकिन उसके गहने तो उसे नहीं दिए ? नयनतारा की ओर से अब मैं उन गहनों का दावा करने आया हूं—"

सामने ही अगर बिना बादल के गाज गिर पड़ती तो भी शायद चौधरी जी इतना नहीं चौंकते।

लेकिन प्रकाश राय आसानी से सहने वाला शख्स नहीं था। जवाब उसने दिया। बोला, "नयनतारा के गहने ! बहू के गहने आप मांगने आए हैं ?"

निखिलेश ने कहा, "जी—"

"गहना मांगने में आपको शरम नहीं आई ? जिस बहू ने इस वंश के मुंह में कालिख पोत दी, उसका नाम लेने में आपको लाज नहीं लगी ? और आप वह गहना मांगने के लिए हमारे घर तक आ धमके ?"

निखिलेश ने कहा, "मैंने कुछ गलत मांग तो की नहीं है। जो गहने उसे नैहर से दिए गए थे, मैं सिर्फ वही मांगने के लिए आया हूं। आपके घर से जाने के समय वह अपने साथ कुछ भी नहीं ले गई। सब यहीं छोड़ गई थी। आप लोगों ने उसे कुछ भी गहने पहनकर नहीं जाने दिया···"

अब चौधरी जी बोले, "तो, बहूरानी ने ही आपको भेजा है ?"

निखिलेश ने कहा, "जी नहीं। मास्टर साहब का सब कुछ देखता-सुनता तो मैं ही था। नयनतारा के ब्याह की सारी चीजें खरीदने से लेकर जाड़े की सौगात, जमाई-षष्ठी की सौगात, यह सब करना-धरना मुझे ही पड़ता था। मास्टर साहब के काम-धाम करने वाला तो और कोई था नहीं। उनके मरने के बाद जो भी क्रिया-कर्म करना होता है, सब मैंने ही किया है। नयनतारा के स्वार्थ का ख्याल भी मुझे ही रखना है, इसीलिए आया हूं···"

"लौटने के बाद बहू से आपकी भेंट होगी ?"

"बेशक।"

"तो आप जाकर उनसे एक बात पूछिएगा। पूछिएगा कि इतना तेज दिखाकर जिस घर से वह चली गई, उस घर के मांगे हुए गहने पहनने में उनकी इज्जत को आंच नहीं आएगी? इन गहनों को छूने में नफरत नहीं होगी?"

निखिलेश ने कहा, "लेकिन जहां तक मैंने सुना है, उससे मुझे लगता है, वह तेज दिखाकर इस घर से नहीं गई है। वह तो भलमनसाहत के साथ ही यहां से गई है···"

चौधरी जी ने कहा, "यदि जमाई-षष्ठी के लिए आई हुई सौगात को तोड़-फोड़कर तहस-नहस कर देना तेज दिखाना नहीं है, तो तेज दिखाना और किसे कहते हैं, मैं नहीं जानता! टोले-मुहल्ले के लोगों को जमा करके सास-ससुर की इज्जत पर स्याही फेरना अगर तेज दिखाना नहीं है, तो और क्या है, यह भी तो नहीं समझ पाता! यह रहे साहू जी, उस दिन यह भी तो यहां मौजूद थे, यह भी गवाह हैं—यही कहें कि मैं सच कह रहा हूं या झूठ। यही बताएं, आज तक किसी घर की बहू ने इस तरह से अपने ससुर के कुल पर कलंक लगाया है?

"आपको पता है, उस घटना से मेरी पत्नी को इतनी गहरी चोट पहुंची कि उन्होंने उसी दिन खाट पकड़ी और वही उनकी अन्तिम शय्या हो गई? महज बहू के चलते मेरा लड़का—इकलौता लड़का भी वैरागी हो गया और मेरी घर-गिरस्ती भी चूर-चूर होकर बिखर गई।"

निखिलेश ने कहा, "गहने आप दें, न दें, यह आपकी मरजी। मगर अपनी पतोहू पर नाहक ही गलत तोहमत न लगाएं।"

"गलत तोहमत? आप क्या कहना चाहते हैं कि इस उम्र में मैं झूठ बोलता हूं?"

निखिलेश ने कहा, "झूठ कहने की भी कोई उम्र होती है क्या? जिन्हें झूठ बोलने की आदत होती है, उन्हें बुढ़ापे में भी झूठ बोलने में झिझक नहीं होती।"

"मतलब?"

निखिलेश ने कहा, "मतलब समझाने का मुझे समय नहीं है। मैं बड़ी दूर से आया हूं। नयनतारा के गहने अगर आप देते, तो मैं यह कर सकता था कि वे गहने ठीक नयनतारा के हाथों पहुंचें। खैर, मैं चलता हूं···"

प्रकाश ने कहा, "हां, जाइए। और बहू से अगर आपकी भेंट हो तो कहिएगा, वह इस बात की याद रखें कि माथे के ऊपर भगवान नाम के भी कोई हैं। उनका एक नाम दर्पहारी मधुसूदन भी है। वह किसीको बरी नहीं करते। लंका के उतने बड़े राजा रावण, दस सिर वाले—उन्हें भी रिहाई नहीं मिली तो बहू किस खेत की मूली है। यह बहू से कह दीजिएगा···"

कहते-कहते प्रकाश निखिलेश के साथ बाहरी फाटक तक चला गया।

चौधरी जी ने देर नहीं की। उसके जाते ही कमरे की कुंडी लगा दी। सीढ़ी की तरफ की खिड़कियों को भी बंद कर दिया। उसके बाद आकर बैठे।

बोले, "एकान्त में आपसे दो बातें करूं, इसकी भी गुंजाइश नहीं है साह जी ! ऐसी ही हो गई है तकदीर अपनी···"

साह जी ने कहा, "आपकी तबीयत अच्छी नहीं है चौधरी जी, आप इतने परेशान न हों।"

चौधरी जी बोले, "परेशान क्या शौक से होता हूं साह जी ? आज अगर मेरा लायक लड़का मेरे पास होता, तो क्या मैं परेशान होता ?"

साह जी ने पूछा, "अच्छा, हां, सदानन्द की कोई खबर मिली ?"

चौधरी जी बोले, "मेरे सामने उसका नाम ज़बान पर मत लाइए। इस जीवन में मैं अब उसकी शक्ल नहीं देखूंगा। वह लड़का मेरे जीवन का बहुत बड़ा अभिशाप है।"

साह जी ने कहा, "लेकिन वह लड़का अगर कभी लौट आए ?"

चौधरी जी ने कहा, "इसीलिए तो यहां की, वहां की—सारी जायदाद मैं बेच दे रहा हूं। बेचकर सारी रकम बैंक में जमा कर दूंगा। उसके बाद आराम से रुपये निकालूंगा और मज़े से खाऊंगा—"

हाय रे आदमी की आशा और हाय रे आदमी का सपना। मनुष्य कितनी आशा करके घर बसाता है और मनुष्य का विधाता किस निपुणता से उस संसार को उजाड़ देता है। नरनारायण चौधरी के अपने हाथों से बनाई हुई अपनी दुनिया तीन ही पुश्त में इस तरह से तबाह और तहस-नहस हो जाएगी, इसे नरनारायण चौधरी सपने में भी सोच सके थे क्या ? इस घर की एक-एक ईंट, एक-एक लकड़ी, लोहे का एक-एक टुकड़ा तक उनकी बड़ी ममता का था। अपने वंशधरों के भविष्य को सुदृढ़ करने के लिए उन्होंने बड़ी ममता, बड़े स्नेह से इस घर की एक-एक चीज जुटाई थी। लेकिन यह बात क्या वह सोच भी सके थे कि उन्हींका पोता एक दिन सहाय-संबलविहीन होकर बड़ा बाजार की एक धर्मशाला के कोने के अंधेरे कमरे में अपना जीवन बिताएगा।

धर्मशाला का जीवन विचित्र तरह का जीवन है। वहां कब कौन आता है और फिर कब कौन कहां चला जाता है, यह कोई कह ही नहीं सकता। एक दिन एकाएक खचाखच भर गई और दो दिन के बाद फिर शायद बिलकुल खाली। उस समय भीतर का हिस्सा खां-खां करता रहता। लेकिन सदानन्द को यह देखने का मौका भी कितने दिन मिलता है ! अपने कमरे में वह रहता ही कब-कब है ! पांडे जी ने पढ़ाने के लिए दो छात्र ठीक कर दिए थे। एक को सुबह पढ़ाया करता, वह चालीस रुपये देता। एक को शाम को, वह पचास। लेकिन रुपये मिलने के दो दिन बाद ही हाथ खाली का खाली।

पांडे जी कहता, "आपका कपड़ा जो फट गया है बाबूजी, अब एक खरीद लीजिए—"

सदानन्द कहता, "रहने भी दीजिए। इतना-सा फटा होने से क्या नुकसान

है ? वे लोग कुछ कपड़ा देखकर तो तनख्वाह नहीं देते। हां, मेरा पढ़ाना बुरा न हो, बस…"

जाड़े में पांडे जी ने अपने मालिक की गद्दी से एक ऊनी चादर खरीद दी थी। जोरों की सर्दी पड़ रही थी, मगर सदानन्द को उसका ख्याल ही नहीं। उस सर्दी में कांपता हुआ पढ़ाकर लौटा करता।

पांडे जी कहता, "आपको जाड़ा नहीं लगता है ? किसी दिन आपको जरूर बुखार आएगा।"

बुखार चाहे न हुआ हो, कई दिन सदानन्द खांसी से बेतरह परेशान रहा। खांसते-खांसते दम अटक आता था।

उस दिन देखकर पांडे जी से नहीं रहा गया। पांडे जी उसके लिए एक ऊनी चादर खरीदकर ले आया। बोला, "आपको रात में बाहर जाना पड़ता है, इसे ओढ़कर जाइएगा…"

पढ़ाना तो सिर्फ घंटे-भर का काम था। उसके बाद सदानन्द कहां जो जाता है, पांडे जी की समझ में नहीं आता। सदानन्द जब लौटता, तो बड़ा बाजार का रास्ता लगभग सूना हो जाता। उसके पांव उस समय मानो चलना नहीं चाहते।

पांडे जी धर्मशाला के बड़े फाटक को बंद कर देता—सिर्फ बीच के छोटे दरवाजे को खुला रखता। आने वाले को झुककर उसीके अन्दर से आना पड़ेगा। जैसे ही कोई उसमें सिर डालता कि आंगन के कोने में रोटी सेंकते हुए पांडे जी पूछता, "कौन ? कौन है ?"

रोटी बनाकर पांडे जी देर तक सदानन्द की राह देखा करता। चूल्हे की आग ठंडी हो जाती। फिर भी पांडे जी फाटक की तरफ हा किए ताकता रहता। कभी-कभी लकड़ी के बक्से से 'रामचरित मानस' निकालकर जोर-जोर से पढ़ता रहता। बीच-बीच में आंगन की बड़ी घड़ी में समय भी देख लिया करता।

कलकत्ता में उस समय कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। सर्दी के मारे सब कांपते रहते। गरम चूल्हे के पास बैठकर पांडे जी हाथ-पांव सेंक लिया करता।

ठीक ऐसे ही समय सदानन्द आता।

पांडे जी उस दिन उसे देखकर ताज्जुब में पड़ गया। पूछा, "आपकी ऊनी चादर कहां गई बाबूजी ? उसी दिन नई ले दी थी ?"

सदानन्द उस बात पर कान नहीं दिया। कमरे में जाकर हाथ की किताब को रखते हुए पूछा, "रोटी बनाई है पांडे जी ?"

पांडे जी ने उस बात का जवाब न देकर कहा, "आपकी ऊनी चादर कहां गई बाबूजी ? कहां भूल आए ?"

सदानन्द ने कहा, "कहीं खो गई शायद।"

"खो गई ? बिलकुल नई चादर खो गई ?"

सदानन्द ने कहा, "खो गई तो क्या करूं, कहिए ? कुछ जान-बूझकर तो

रहा था दा मन !"

"छात्र के यहां तो नहीं छोड़ आए ? वहां भूल आए होंगे तो कल जरूर मिल जाएगी।"

सदानन्द ने कहा, "तब तो मिल ही जाएगी। कल ही जाकर तलाशूंगा। आप उसके लिए इतना परेशान मत होइए।"

दूसरे दिन सदानन्द जब लौटा, तो पांडे जी ने देखा, आज भी वह ऊनी चादर नहीं है। बोला, "कहां, चादर आपको मिली नहीं ?"

सदानन्द ने कहा, "जाने भी दीजिए, उस मामूली-सी चादर के लिए आप नाहक ही क्यों इतनी चिन्ता कर रहे हैं ?"

पांडे जी ने कहा, "सत्तर रुपये की चादर और वह मामूली हो गई ? यह मालूम है, उतने रुपए तो मेरे महीने-भर की तनखाह है। तब सचमुच चादर आपने खो ही दी।"

सदानन्द ने कहा, "आप समझते नहीं हैं पांडे जी, ऊनी चादर से जिन्दगी की कीमत कहीं ज्यादा है। कलकत्ता में बहुतों के ऊनी चादर नहीं है, तो क्या वे सबके सब मर गए ? खैर, आप खाने को तो दीजिए..."

आश्चर्य है, जो आदमी लाखों-लाख की सम्पत्ति को बेहिचक छोड़कर चला आया, पांडे जी उसे ऊनी चादर की कीमत समझाना चाह रहा है। लेकिन सदानन्द के लिए पांडे जी को इतना दर्द क्यों है ? आखिर पांडे जी है कौन, जो सदानन्द के लिए इतना सोचता है। बीच-बीच में पांडे जी के बारे सोचकर सदानन्द को आश्चर्य होता है। दुनिया में ऐसी घटना क्यों घटती है ? उसके लिए बिहार का रहने वाला एक आदमी रात में जगकर भूखा क्यों बैठा रहता है ? उसे सर्दी लगेगी, इसलिए ऊनी चादर क्यों खरीद देता है ? दुनिया में जब स्वार्थ के सिवाय और कुछ भी सोचने की किसीको फुरसत नहीं, तब यहां एक-एक ऐसा भी आदमी क्यों जन्म लेता है। यह पांडे जी कहां था, किसी घटना-क्रम से एक दिन मुलाकात हो गई—और कहां का, किरा नबाबगंज का यह सदानन्द चौधरी, दोनों एक ही कमरे में रहने लगे। समरजित बाबू के यहां रहते हुए भी तो उसे यह नहीं मालूम था कि आगे चलकर यहां उसे इस धर्मशाला में दिन बिताना पड़ेगा।

आखिर जो होना था, वही हुआ।

सदानन्द रोज सुबह ही उठ जाता था। उठते ही बाहर चला जाता था। उस दिन वह उठा ही नहीं। बिछावन से सिर ही नहीं उठ सका।

पांडे जी को ताज्जुब-सा लगा। उसने उसके सिर पर हाथ रखा और चौंक उठा। बोला, "इस्, आपको तो बुखार है बाबूजी ! बदन तो तवे-सा जल रहा है..."

सदानन्द को उस समय होश नहीं था। उसे न तो हिलने की क्षमता थी,

न बोलने की। इसी हालत में कई दिन बीते। कैसे दिन बीते, कैसे रात कटी, उसे इसका भी पता नहीं। सारा झमेला पांडे जी पर। डाक्टर बुलाना, दवा पिलाना—सब कुछ उसे ही करना पड़ा। जब होश आया तो सदानन्द ने देखा, पांडे जी झुककर उसके चेहरे की ओर देख रहा है।

पांडे जी पूछा, "कैसी तबीयत है बाबूजी ?"

सदानन्द ने कहा, "आज मैं उठूंगा पांडे जी! जरा मेरा हाथ थामिए तो—"

पांडे जी डांट उठा, "आप चुपचाप लेटे रहिए तो। डाक्टर ने आपको लेटे रहने को कहा है। मैं बाहर से दरवाजे की सांकल चढ़ा देता हूं, आप निकल नहीं सकेंगे।"

और, सचमुच ही पांडे जी सांकल चढ़ाकर चल देता।

सदानन्द का वह हरगिज़ कुछ बुरा नहीं होने देगा। जैसे पांडे जी ही उसके भले-बुरे का नियंता है।

लेकिन सदानन्द आखिर कब तक यों चुपचाप पड़ा रहेगा। उस दिन उससे रहा नहीं गया। बोला, "आज तो मैं जरूर ही निकलूंगा, आप मुझे रोक नहीं सकते पांडे जी, आप मुझे जाने दीजिए।"

पांडे जी ने कहा, "अगर यह कहिए कि आप जल्दी दिन रहते लौट आएंगे?"

सदानन्द ने कहा, "मैं न लौटूं, आपका क्या ? पता है, कितना काम है मुझे। बीमार पड़ जाने से मेरा कितना काम रुका पड़ा है ?"

पांडे जी ने कहा, "बीमार आप पड़ेंगे और कसूर मेरा ?"

सदानन्द ने कहा, "दोष तो आप ही का है। आप ही तो मुझे बाहर नहीं जाने देते। सांकल चढ़ाकर कमरे में बंद कर देते हैं ?"

पांडे जी ने कहा, "आपने ऊनी चादर खो नहीं दी होती, तो आपकी तबीयत खराब नहीं होती—आपने चादर खो क्यों दी ?"

सदानन्द ने कहा, "तो क्या जिन्हें चादर है, वे बीमार नहीं पड़ते ?"

और वह बिगड़कर जल्दी-जल्दी धर्मशाला से निकल गया।

घंटे-भर के बाद ही धर्मशाला के सामने एक बूढ़ी औरत आई। धर्मशाला उस समय खाली पड़ी थी। पांडे जी उसी समय सदर फाटक पर जाकर बैठा था। बूढ़ी को देखते ही पांडे जी को सन्देह हुआ। इसके बदन पर बाबूजी वाली चादर कैसे ?

पांडे जी ने झट बुढ़िया को पकड़ लिया। बोला, "कौन हो तुम ? तुम्हें यह चादर कहां मिली ? किसकी चादर है यह ?"

बूढ़ी ने कहा, "मैं मुन्ने की खोज में आई हूं बेटे !"

"मुन्ना ? कौन मुन्ना ?"

बुढ़िया डर से थर-थर कांप रही थी। पांडे जी ने उसका हाथ कसकर दबा रखा था। बोला, "बताओ, यह ऊनी चादर किसकी है ? कहां से चुराई है ?"

बूढ़ी रो पड़ी। बोली, "यह चादर मुझे मुन्ने ने दी है।"

पांडे जी ने कहा, "पहले तो यही बताओ कि यह मुन्ना कौन है? कहां है तुम्हारा मुन्ना? किस कमरे में, कहां रहता है?"

रोते-रोते बुढ़िया ने कहा, "मेरा मुन्ना तो यहीं रहता है, इसी धर्मशाला में। उसीने मुझे बताया था। कई दिनों से उससे भेंट नहीं हुई। इसीलिए उसे ढूंढ़ने आई थी।"

पांडे जी ने समझा, यह बुढ़िया चोर है। बोला, "मैं तुम्हें पुलिस में दूंगा। चलो, थाना चलो…"

बुढ़िया का हाथ पकड़कर पांडे जी उसे खींचने लगा। बोला, "बताओ, तुम्हारा नाम क्या है? यह ऊनी चादर बाबूजी को मैंने ही खरीदकर दी थी, यह मेरी पहचानी हुई चादर है। मैं तुम्हें जेल भिजवाकर रहूंगा, चलो…"

बूढ़ी डर से धाड़ें मारकर रो उठी। बोली, "नहीं दरवान जी, आप मुझे जेल मत भेजिए। आप मेरे मुन्ने को जरा बुला दीजिए। उसने खुद से यह चादर मुझे दी है, मैंने उससे चादर मांगी नहीं थी। आप उसे जरा बुला दीजिए…"

पांडे जी ने कहा, "यहां कोई मुन्ना नहीं है। तुमको थाना जाना होगा। नाम बताओ?"

बूढ़ी ने कहा, "मेरा नाम कालीगंज की बहू है बेटे! कालीगंज की बहू कहते ही मुन्ना मुझे पहचान लेगा। आप जरा उसे बुला दीजिए।"

सदानन्द उस समय उसी तरफ आ रहा था। वह जैसे ही धर्मशाला के पास आया, बूढ़ी उसे पहचान गई। उसे देखकर बूढ़ी जोरों से रो पड़ी, "अरे ओ मुन्ने, देख, दरवान जी मुझे पुलिस में दे रहे हैं—"

सदानन्द अवाक्! बोला, "अरे, कालीगंज की बहू? तुम यहां?"

बूढ़ी उस समय फफका फाड़कर रो रही थी। आनन्द की रुलाई। मुसीबत से बचने की खुशी में आंसुओं से नहा उठना।

पांडे जी तो देखकर दंग। कुछ देर तक तो उसके मुंह से बोली ही नहीं निकली। अब उसने पूछा, "आप इस बुढ़िया को पहचानते हैं बाबूजी?"

सदानन्द ने कहा, "आप इसे कुछ कहिए मत पांडे जी! यह मेरी बहुत अपनी है, यह है कालीगंज की बहू!"

"कालीगंज की बहू! कहां कालीगंज, किसकी बहू?" पांड़े जी ने यह सब कुछ नहीं समझा। इतना ही समझा कि बूढ़ी बाबूजी की बहुत अपनी है। लेकिन अपनी है तो क्या, इतनी कीमती चादर उसे देकर जाड़े में खुद ठिठुरना होगा।

बूढ़ी कहने लगी, "तुम कई दिनों से गए नहीं। मुझसे रहा नहीं गया बेटे, तुमने कहा था, इसी धर्मशाला में रहते हो। मरती-पड़ती आ गई। सोचा, जरा देख आऊं, मेरा मुन्ना कैसा है?"

सदानन्द ने कहा, "मुझे तो जोरों का बुखार आया था—"

"बुखार? बुखार क्यों आया था बेटे? सर्दी लगाई थी क्या?"

बीच में ही पांडे जी बोल उठा, "बुखार नहीं आएगा ? एक ऊनी चादर खरीद दी थी, बाबूजी ने वह भी तुम्हें दे दी। ऐसा करने से इनकी तबीयत ठीक रह सकती है ?"

बूढ़ी बोली, "अरे, तो तुम्हें अपने लिए और ऊनी चादर नहीं है क्या बेटे ? तो फिर यह चादर तुमने मुझे क्यों दे दी ?"

सदानन्द ने कहा, "वह सब बात रहने दो। तुम कहने क्या आई थीं, ऐसा कहो। दवा पी रही हो न ? डाक्टर साहब के पास गई थीं ?"

"हां बेटे ! तुम्हारी ही दया से इस बार बच गई ? तुमने मेरे लिए जो किया है, वह मैं मरने के बाद भी याद रखूंगी।"

सदानन्द ने कहा, "मगर इस कमजोरी में तुम यहां क्यों आई ? किसने यहां आने को कहा ? ज्वर के बाद कोई ऐसी सर्दी में बाहर निकलता है ? चलो, चलो—तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचा आऊं।"

बूढ़ी का हाथ पकड़कर सदानन्द सामने की ओर बढ़ने लगा। पांडे जी ने रोका। बोला, "आप क्यों जा रहे हैं बाबूजी ? आप मेरे कमरे में रहिए, मैं कालीगंज की बहू को घर पहुंचा देता हूं।"

बूढ़ी ने भी कहा, "हां बेटे, यही ठीक है। तुम क्यों जाओगे। तुम्हें अब तकलीफ नहीं करनी होगी। दरवान जी ही मुझे घर पहुंचा देंगे।"

यह कहकर बुढ़िया पांडे जी की बगल में चलने लगी। सदानन्द ने पीछे से कहा, "पांडे जी, आप इन्हें बिलकुल इनके घर पहुंचाकर तब आइएगा, समझ गए ? बीच रास्ते में छोड़कर मत लौट आइएगा—हां ?"

जाड़े की रात में बड़ा बाजार का रास्ता भी जल्दी ही अंधेरा हो जाता है। पतली-संकरी गलियां। टेढ़ी-मेढ़ी। शाम को दूकानें खुली थीं, इसलिए रास्ता रोशनी से चकाचक था। जरा देर पहले कारबारी लोग चले गए। सब अंधेरा हो गया। पांडे जी बूढ़ी को संभालते हुए चल रहा था। बुढ़िया का घर किधर है, पांडे जी को यह भी नहीं मालूम।

बूढ़ी ने कहा, "मुन्ना बड़ा भला है दरवान जी ! वह नहीं होता, तो मैं मर गई होती।"

बूढ़ी की उम्र काफी है। सीधी चल नहीं सकती। बोली, "अब जाने की जरूरत नहीं बेटे ! इतनी दूर मैं चली जाऊंगी।"

लेकिन पांडे जी ने माना नहीं। बोला, "नहीं। वह नहीं होगा बहू जी ! बाबूजी ने तुम्हें घर तक पहुंचा देने को कहा है। मैं तुम्हारे घर तक जाऊंगा, चलो…"

घर यानी वैसा ही घर। उस घर के न तो छत है, न दीवाल। एक विशाल महल के पीछे मदान-सी जगह। कनार से वहां गाय-भैंसें बंधी रहती हैं। सवेरे दूध के लिए वहीं लोगों की भीड़ लग जाती है। शाम को लेकिन उसका और ही चेहरा। उस समय कुछ ढिबरियां टिमटिमाती रहती हैं।

पांडे जी पहले तो हैरान रह गया—यह वहां आ पहुंचा। बोला, "तुम यहां कहां रहती हो बहू जी ? यह तो भैंसों की गटाल है !"

बूढ़ी बोली, "मैं भिखारिन हूं दरबान जी, दया करके इन ग्वालों ने ही मुझे रहने की जगह दी है…"

पांडे जी ने कहा, "लेकिन बाबूजी से तुम्हारी जान-पहचान कैसे हुई ?"

बूढ़ी बोली, "एकाएक। यों ही रास्ते पर। मैं भीख मांगती थी। रहने को जगह नहीं थी। मुन्ने ने यहां मुझे रहने की जगह दिलाई, कपड़ा खरीद दिया, जाड़े के लिए ओढ़ने को चादर ले दी…"

पांडे जी तो हक्का-बक्का रह गया। जिस आदमी को अपने रहने-खाने का ठौर-ठिकाना नहीं है, उसने अपनी इच्छा से एक दूसरे का भार अपने सिर पर उठा लिया है। चारों ओर से खटाल की बदबू नाक में लग रही थी। पांडे जी इतने दिनों से बड़ा बाजार में है, उसे यहां ऐसी जगह की आज तक धारणा ही नहीं थी। और, बाबूजी ने इन्हीं कै दिनों में इस जगह का पता कर लिया ?

पांडे जी लौटा आ रहा था। पर पीछे से बुढ़िया ने आवाज दी। बोली, "दरबान जी, एक बात सुनते जाइए।"

पांडे जी रुक गया। बोला, "क्या ?"

बुढ़िया बोली, "अच्छा बेटे, मुन्ना मुझे कालीगंज की बहू क्यों कहता है, तुम्हें मालूम है ? कालीगंज की बहू कौन है ?"

पांडे जी और भी हैरान। बोला, "कालीगंज की बहू तो तुम्हीं हो, तुम्हारा ही नाम तो कालीगंज की बहू है !"

"नहीं बेटे, मेरा नाम तो राजूबाला है। मैं कालीगंज की बहू क्यों होने लगी ? मुन्ना ही मुझे इस नाम से पुकारता है। मैं लाख कहती हूं, मेरा नाम राजूबाला है, पर वह मुझे कालीगंज की बहू कहता है। बता सकते हो, कालीगंज की बहू कौन है ?"

पांडे जी ने कहा, "यह तो तुम बाबूजी से ही पूछ सकती हो ?"

बूढ़ी ने कहा, "मैंने पूछा, है, मगर मुन्ना कुछ बताता नहीं है। जरा तुम उससे पूछना तो बेटे !"

पांडे जी ने कहा, "अच्छा, मैं पूछ देखूंगा।"

बुढ़िया ने कहा, "यह देखो, यही मेरा घर है। एक तरफ गाय-भैंसे रहती हैं। एक तरफ मैं रहती हूं। मुन्ने ने मुझे भीख मांगने को मना किया है। लेकिन मेरे भाग्य में अगर दुःख ही लिखा है, तो मुन्ना क्या करेगा ? इसमें उसका क्या दोष है ? बेटे, मेरी यही दुर्दशा सब दिन नहीं थी। एक दिन था कि मैं भी राजरानी थी। वह सब बात किसीको मालूम नहीं है…"

बुढ़िया अपनी लम्बी दुःख-गाथा सुनाने लगी। उस दुःख-गाथा का अन्त ही नहीं हो रहा था। जाने कब वह किसी जमींदार की पत्नी थी। जेठ और देवर के लड़के वालों ने उसकी सारी जायदाद हड़प ली। विधवा थी, किन कागजों पर उससे सही बनवा ली और एक दिन, जो पहने थी, उसी एक कपड़े में उसे घर से निकाल बाहर किया। तब से घर-घर भीख मांगकर उसके दिन बीत रहे थे।

पांडे जी को इतना पुराण सुनने की जरूरत नहीं थी। थोड़ा-बहुत सुनकर वह धर्मशाला लौट आया।

आकर देखा, बाबूजी के पास उस समय एक और कोई खड़ा था।

बिलकुल अनजान आदमी। पांडे जी पर नजर पड़ते ही सदानन्द ने पूछा, "क्यों पांडे जी, कालीगंज की बहू को उनके घर तक पहुंचा दिया?"

पांडे जी ने कहा, "हां बाबूजी! लेकिन बुढ़िया पूछ रही थी, आप उसे कालीगंज की बहू क्यों कहते हैं? उसका नाम तो राजूबाला है…"

सदानन्द हंसा। बोला, "वह आप नहीं समझेंगे पांडे जी! कोई नहीं समझेगा।"

पांडे जी ने कहा, "लेकिन उसने तो खुद ही बताया, उसका नाम राजूबाला है।"

सदानन्द ने कहा, "राजूबाला हो, चाहे जो हो, मैं उसे कालीगंज की बहू ही कहता हूं। उसी नाम से उसे पुकारने पर मुझे सुख मिलता है। मुझे अगर इसीमें सुख मिलता है, तो आपको एतराज क्यों है पांडे जी? जानते हैं पांडे जी, दुनिया में जिसका कोई भी देखभाल करने वाला नहीं, वह सभी कालीगंज की बहू हैं।"

इतना कहकर सदानन्द पास के आदमी की ओर मुखातिब हुआ। पूछा, "फिर? फिर क्या हुआ महेश?"

महेश एक ओर चोर जैसा खड़ा था। वह कहने लगा, "क्रिया-कर्म हो-हवा गया। अब बड़े भैया जी इसी घर में आ गए।"

"और चाचीजी?"

"उनकी मत पूछिए भैया जी, उन्हें बड़ा कष्ट है। पहले मां जी के हुक्म पर ही घर चलता था। अब बतासी के हुक्म पर चलता है। बतासी को जानते हैं न? वही, भैया जी की रखैल?"

सदानन्द ने कहा, "हां, जानता हूं—"

"साथ-साथ हम लोगों की भी छीछालेदर है। भाभी जी अब कोई नहीं है, मां जी भी कुछ नहीं। अभी घर की सर्वेसर्वा बतासी ही है। जरा यह देखिए, आदमी का भाग्य क्या होता है! बाबू ने जिस चीज से बचने की इतनी कोशिश की, आखिरकार वही होकर रहा।"

"और तुम्हारी भाभी जी? वह कैसी हैं?"

महेश ने कहा, "वह जिन्दा हैं या मर गईं, यह जानने का भी किसीको उपाय नहीं। लेकिन वह पहले भी जैसे कमरे से बाहर नहीं निकलती थीं, अब वैसे ही और भी नहीं निकलतीं। सूखकर लकड़ी हुई जा रही हैं—"

फिर जरा रुककर बोला, "अभी मैं चलता हूं भैया जी, फिर कभी आऊंगा—"

सदानन्द ने कहा, "मैंने तुम्हें और एक बात पूछने के लिए बुलाया था महेश! तुम नवाबगंज गए थे न। मुझे वहां के बारे में और कुछ जानने की जरूरत है। उस दिन जल्दी में सब कुछ नहीं सुन पाया। बताओ तो, वहां और

बूढ़ी बोली, "मैं भिखारिन हूं दरबान जी, दया करके इन ग्वालों ने ही
के रहने को जगह दी है…"
पांडे जी ने कहा, "लेकिन बाबूजी से तुम्हारी जान-पहचान कैसे हुई ?"
बूढ़ी बोली, "एकाएक। यों ही रास्ते पर। मैं भीख मांगती थी। रहने को
जगह नहीं थी। मुन्ने ने यहां मुझे रहने की जगह दिलाई, कपड़ा खरीद
दिया, जाड़े के लिए ओढ़ने की चादर ले दी…"
पांडे जी तो हक्का-बक्का रह गया। जिस आदमी को अपने रहने-खाने
का ठौर-ठिकाना नहीं है, उसने अपनी इच्छा से एक दूसरे का भार अपने
सिर पर उठा लिया है। चारों ओर से खटाल की बदबू नाक में लग रही
थी। पांडे जी इतने दिनों से बड़ा बाजार में है, उसे यहां ऐसी जगह की आज
तक धारणा ही नहीं थी। और, बाबूजी ने इन्हीं कै दिनों में इस जगह का पता
लगा लिया ?
पांडे जी लौटा आ रहा था। पर पीछे से बुढ़िया ने आवाज दी।
बोली, "दरबान जी, एक बात सुनते जाइए।"
पांडे जी रुक गया। बोला, "क्या ?"
बुढ़िया बोली, "अच्छा बेटे, मुन्ना मुझे कालीगंज की बहू क्यों कहता है,
तुम्हें मालूम है ? कालीगंज की बहू कौन है ?"
पांडे जी और भी हैरान। बोला, "कालीगंज की बहू तो तुम्हीं हो,
तुम्हारा ही नाम तो कालीगंज की बहू है !"
"नहीं बेटे, मेरा नाम तो राजूबाला है। मैं कालीगंज की बहू क्यों होने
लगी ? मुन्ना ही मुझे इस नाम से पुकारता है। मैं लाख कहती हूं, मेरा नाम
राजूबाला है, पर वह मुझे कालीगंज की बहू कहता है। बता सकते हो, काली-
गंज की बहू कौन है ?"
पांडे जी ने कहा, "यह तो तुम बाबूजी से ही पूछ सकती हो ?"
बूढ़ी ने कहा, "मैंने पूछा, है, मगर मुन्ना कुछ बताता नहीं है। जरा तुम
भी पूछना तो बेटे !"
पांडे जी ने कहा, "अच्छा, मैं पूछ देखूंगा।"
बुढ़िया ने कहा, "यह देखो, यही मेरा घर है। एक तरफ गाय-भैंसे रहती
हैं। एक तरफ मैं रहती हूं। मुन्ने ने मुझे भीख मांगने को मना किया है।
लेकिन मेरे भाग्य में अगर दुःख ही लिखा है, तो मुन्ना क्या करेगा ? इसमें
उसका क्या दोष है ? बेटे, मेरी यही दुर्दशा सब दिन नहीं थी। एक दिन
था कि मैं भी राजरानी थी। वह सब बात किसीको मालूम नहीं है…"
बुढ़िया अपनी लम्बी दुःख-गाथा सुनाने लगी। उस दुःख-गाथा का अन्त
नहीं हो रहा था। जाने कब वह किसी जमींदार की पत्नी थी। जेठ और
देवर के लड़के वालों ने उसकी सारी जायदाद, हड़प ली। विधवा थी,
न कागजों पर उससे सही बनवा ली और एक दिन, जो पहने थी, उसी
कपड़े में उसे घर से निकाल बाहर किया। तब से घर-घर भीख मांगकर
उसके दिन बीत रहे थे।

पांडे जी को इतना पुराण सुनने की जरूरत नहीं थी। थोड़ा-बहुत सुनकर वह धर्मशाला लौट आया।

आकर देखा, बाबूजी के पास उस समय एक और कोई खड़ा था।

बिलकुल अनजान आदमी। पांडे जी पर नजर पड़ते ही सदानन्द ने पूछा, "क्यों पांड़े जी, कालीगंज की बहू को उसके घर तक पहुंचा दिया ?"

पांडे जी ने कहा, "हां बाबूजी ! लेकिन बुढ़िया पूछ रही थी, आप उसे कालीगंज की बहू क्यों कहते हैं ? उसका नाम तो राजूबाला है···"

सदानन्द हंसा। बोला, "वह आप नहीं समझेंगे पांड़े जी ! कोई नहीं समझेगा।"

पांडे जी ने कहा, "लेकिन उसने तो खुद ही बताया, उसका नाम राजूबाला है।"

सदानन्द ने कहा, "राजूबाला हो, चाहे जो हो, मैं उसे कालीगंज की बहू ही कहता हूं। उसी नाम से उसे पुकारने पर मुझे सुख मिलता है। मुझे अगर इसीमें सुख मिलता है, तो आपको एतराज क्यों है पांडे जी ? जानते हैं पांडे जी, दुनिया में जिसका कोई भी देखभाल करने वाला नहीं, वह सभी कालीगंज की बहू है।"

इतना कहकर सदानन्द पास के आदमी की ओर मुखातिब हुआ। पूछा, "फिर ? फिर क्या हुआ महेश ?"

महेश एक ओर चोर जैसा खड़ा था। वह कहने लगा, "क्रिया-कर्म हो-हुवा गया। अब बड़े भैया जी इसी घर में आ गए।"

"और चाचीजी ?"

"उनकी मत पूछिए भैया जी, उन्हें बड़ा कष्ट है। पहले मां जी के हुक्म पर ही घर चलता था। अब बतासी के हुक्म पर चलता है। बतासी को जानते हैं न ? वही, भैया जी की रखैल ?"

सदानन्द ने कहा, "हां, जानता हूं—"

"साथ-साथ हम लोगों की भी छीछालेदर है। भाभी जी अब कोई नहीं है, मां जी भी कुछ नहीं। अभी घर की सर्वेसर्वा बतासी ही है। जरा यह देखिए, आदमी का भाग्य क्या होता है ! बाबू ने जिस चीज से बचने की इतनी कोशिश की, आखिरकार वही होकर रहा।"

"और तुम्हारी भाभी जी ? वह कैसी हैं ?"

महेश ने कहा, "वह जिन्दा हैं या मर गईं, यह जानने का भी किसीको उपाय नहीं। लेकिन वह पहले भी जैसे कमरे से बाहर नहीं निकलती थीं, अब वैसे ही और भी नहीं निकलतीं। सूखकर लकड़ी हुई जा रही हैं—"

फिर जरा रुककर बोला, "अभी मैं चलता हूं भैया जी, फिर कभी आऊंगा—"

सदानन्द ने कहा, "मैंने तुम्हें और एक बात पूछने के लिए बुलाया था महेश ! तुम नवाबगंज गए थे न। मुझे वहां के बारे में और कुछ जानने की जरूरत है। उस दिन जल्दी में सब कुछ नहीं सुन पाया। बताओ तो, वहां और

ा था तुमने ?"

ा ने कहा, "मैंने तो आपको सब कुछ बताया था। बताया था कि वहां नहीं है। आपके दादाजी चल बसे, आपकी पत्नी को घर से निकाल या—"

च्छा ! यह बात ? यह तो तुमने नहीं बताया था ! क्यों निकाल दिया ?"

ं तो आपको वही बता रहा हूं, जो मुझे गांव के लोगों ने बताया। ाजरों से तो मैंने कुछ देखा नहीं। गांव के लोगों ने शायद अपनी आंखों

ानन्द ने पूछा, "क्या किया था नयनतारा ने ?"

ी, सास-ससुर से झगड़ा किया था। बस्ती के सारे लोग आपके यहां थे। मज़ा देखने के लिए सब दौड़े आए थे। अन्त तक रोना-धोना, झंझट—कुछ भी बाकी नहीं रहा। उसी लाज से आपकी मां गुजर गई। पिताजी ने भी गांव-घर छोड़ दिया—"

ांव-घर छोड़ दिया ?"

ी ! वह आपके नानाजी के पास सुलतानपुर चले गए।"

ानन्द क्या तो सोचने लगा। एक-एक करके पुरानी बातें याद आने उसकी वह जन्मभूमि, वह नयनतारा। इतने दिनों से कलकत्ता के वह और बड़ा बाजार की इस धर्मशाला में रहते हुए वह नवाबगंज के बारे भूल ही चला था। बीच में सिर्फ एक बार सियालदह स्टेशन के ं पर नयनतारा को उसने देखा था। वह भी एक पल। लेकिन वही ा का देखना ही मानो उसके जीवन में अक्षय हो गया है। जरा देर में ा, "तुमको और ज्यादा नहीं रोकूंगा महेश, अब तुम जाओ। तुम्हें देर है।"

हेश ने कहा, "हां। फिर किसी दिन आऊंगा भैया जी ! आज जाता

दानन्द ने कहा, "इसके बाद शायद अब मुझे यहां नहीं पाओगे। यों ही बीयत खराब रहती है। देखो न, कई दिन तो मैं बुखार में पड़ा रहा।"

ांडे जी पास खड़ा सब सुन रहा था। बोला, "बुखार तो आपको आपकी ह से हुआ। ठंड लगने से बुखार नहीं होगा ?"

हेश जा चुका था। घर में नये मालिक के हुक्मों का अन्त नहीं था। हुत फरमाइश, हुक्म—

दानन्द ने कहा, "मैं अब सचमुच ही यहां नहीं रहूंगा पांडे जी ! कल ही मैं जरा अपने गांव जाऊंगा।"

गांव जाइएगा ? और आपके छात्र ? वे क्या कहेंगे ? उन्हें कह दिया

दानन्द ने कहा, "वे बनियों के लड़के हैं। मैं नहीं पढ़ाऊंगा तो वे दूसरा रख लेंगे। लेकिन कल सुबह की ट्रेन से मुझे गांव जाना ही पड़ेगा।"

दानन्द कमरे में ही पायचारी करने लगा। पल में वह मानो कलकत्ता

से सीधे नवाबगंज पहुंच गया—एकबारगी अपने घर। टाल क सा[illegible]
जमा हैं। सब नयनतारा को घेरे हुए हैं। नयनतारा ने चौधरी परिवार की इज्जत मिट्टी में मिला दी, उस वंश के मुंह पर कालिख पोत दी—उसके इस अपराध की माफी नहीं। सब कह रहे हैं, इस अपराध के लिए इसे सजा दो, घर से निकाल दो इसे, अपमानित करके इसे इसके नैहर भेज दो।

रात में धर्मशाला के कमरे में लेटे-लेटे भी सदानन्द छटपट करता रहा। बहुत दिनों से उसे ऐसा लगा था कि उसने शायद सब बंधनों से छुटकारा पा लिया। संसार का बंधन, समाज का बंधन, यहां तक कि अपने बंधन से भी छुट्टी मिल गई है। अपनी जरूरत नाम की भी तो कोई चीज है। अपने प्रयोजन का बंधन ही मनुष्य का सबसे बड़ा बंधन है। जिसने अपने-आपको अस्वीकार कर दिया, उसके लिए तो प्रयोजन बंधन नहीं है। सदानन्द ने कामना से परित्राण चाहा था, भूख से परित्राण चाहा था, आघात से परित्राण चाहा था। उसने आघात पाना चाहा था। चाहा था आघात पाकर आघातों से ऊपर उठना। कुछ नहीं पाकर भी सब कुछ पाने की परितृप्ति पाना। उसने अपनी कमाई का धन सबमें बांट देना चाहा था, जिससे कि धन नहीं रहने की पीड़ा को वह अनुभव कर सके। जाड़े का कपड़ा उसने दूसरे को दे दिया, ताकि ठंड लगने के कष्ट को वह भोग सके। लोभ, सुख, सौभाग्य से उसने दूर रहना चाहा। दूर रहना चाहा संसार से दूर भागकर नहीं, संसार की सारी पीड़ा-यंत्रणा से आमने-सामने जूझना चाहा। इसी आदर्श के लिए वह अब तक यहां-वहां भटकता रहा।

लेकिन, उस रात धर्मशाला के उस कमरे में जगकर आत्म-समालोचना करते-करते उसे लगा कि उसने गलती की है। यह शायद उसके जीवन के जोड़-घटाव की गलती है। इस गलती को सुधारना होगा।

बगल के कमरे के सामने जाकर वह पुकारने लगा, "पांडे जी, पांडे जी···"

पांडे जी रात रहते ही जग जाता है। जगकर गंगा नहा आता है। उस समय चारों ओर अंधेरा ही रहता है। पांडे जी ज़ोर-ज़ोर से गंगा-स्तोत्र का पाठ करता है।

सदानन्द ने देखा, "गंगा-स्तोत्र पढ़ते हुए पांडे जी फाटक से धर्मशाला में आ रहा है।

सदानन्द को देखते ही पांडे जी ने पूछा, "इतनी भोर में कहां चले बाबूजी? ठंड लगेगी···"

सदानन्द ने कहा, "मैं सुबह की ही ट्रेन से गांव जाऊंगा पांडे जी, मुझे कुछ रुपये दे सकेंगे?"

"गांव? आपका गांव कहां है?"

"नवाबगंज।"

"नवाबगंज? यह कहां है? कितनी दूर?"

सदानन्द ने कहा, "वह आप नहीं जानते पांडे जी! यहां से ज्यादा दूर नहीं है। एक ओर का रेल-किराया चार रुपये के करीब होगा। बाकी पैदल

गा।"

लौटिएगा?"

न्द ने कहा, "दो-एक दिन के अन्दर ही लौट आऊंगा। दस रुपये से चल जाएगा।"

जी ने कमरे से लाकर दस रुपये का एक नोट सदानन्द को दिया। ही सदानन्द चला जा रहा था। पीछे से पांडे जी ने कहा, "तुरन्त चले ?"

न्द ने कहा, "हां। यहां से सियालदह स्टेशन तक पैदल जाना है। बजे ट्रेन खुलेगी।"

न्द ने अंधेरी सड़क पर कदम बढ़ाया। घड़ी में शायद चार बज रहे की बत्तियां जल ही रही थीं। उतना सवेरे भी बहुत से लोग रास्ते हे थे। ठंडी कनकन हवा। हड्डी के अन्दर तक छेद जाती थी। के जी में आया—सो हो, उसे चाहे जितना भी कष्ट हो, जितनी ही डरने से काम नहीं चलने का। रुकने से भी नहीं चलने का और ने से भी नहीं चलने का। बाधा जितनी ही आए, उतना ही अच्छा जितने भी चुभें, सुखकर ही हैं। इस राह के अन्त में जो है, उसी ओर बढ़ते जाना है। इस रास्ते को तै किए बिना वह अपने गंतव्य हीं पहुंच सकेगा। उसे और भी कष्ट, और भी पीड़ा हो। उसकी ड़ा मंगल बनकर एक दिन सबको अभिषिक्त करे—इतना ही उसका , यही उसकी आकांक्षा है।

टी स्टेशन पर जाकर खड़ा होने के जरा ही देर बाद डाउन ट्रेन गसे जिधर बना, टपाटप डिब्बे में सवार हो गए। पहले स्टेशन छोटा बनकर बड़ा हो गया। प्लेटफार्म भी कई। दिन-दिन आदमी भी रहे हैं। शहर भी हू-हू करके बढ़ता जा रहा है और शहर से होड़ आबादी भी तेजी से बढ़ती जा रही है।

री पाल की पत्नी ने कहा था, "तो आज ही क्यों चले जाओगे बेटे ? ों के बाद आए हो, दो दिन अपने गांव में रहो···"

नन्द ने कहा था, "कहां रहूंगा ?"

री पाल ने भी कहा, "क्यों हम क्या तुम्हारे बिराने हैं ? हमारे यहां सकते हो।"

न सदानन्द को रुकने की इच्छा नहीं रह गई थी। बोला, "जी यहां नहीं रह सकूंगा।"

री पाल की पत्नी ने कहा, "अंतिम दिनों में नयनतारा को यहां तीफ हुई थी बेटे ! वह घटना गांव के सबने देखी थी। मगर उस का दोष ही क्या था, कहो ? बहू होकर उसने उतने दिन तक ही जो

उतना बरदाश्त किया, यही आश्चर्य है।"

सदानन्द ने पूरी घटना ही सुनी। बोला, "उसके बाद ?"

बिहारी पाल की पत्नी ने कहा, "उसके बाद तुम्हारे नानाजी ने तुम्हारे पिताजी को दबाव डाला। तारक चक्रवर्ती ने भी कहा, 'चौधरी परिवार की बहू को इस तरह से घर से निकाल बाहर नहीं किया जा सकता। हम दस लोगों के रहते ऐसा नहीं होने देंगे।' "

"रजबअली ने बैलगाड़ी जोती। मुहल्ले के सारे लोग उस समय भी अहाते में भीड़ लगाए हुए थे। जमाई-षष्ठी की सौगात लेकर जो लोग कृष्णनगर से आए थे, उन्होंने मुंह में पानी तक नहीं डाला था। वे खाली थाली-परात लेकर लौट गए थे। वैसी कुलक्षण घटना नवाबगंज में कभी किसीने नहीं देखी थी। नयनतारा आकर आंगन में खड़ी हुई। मैंने देखा, वह एक बनारसी साड़ी पहने हुए थी। घर की बहू अपने मैके जा रही थी, मगर बदन पर एक भी गहना नहीं। कलाई में सोने की जो दो-चार चूड़ियां थीं, वहीं। बस।

"मैंने जाकर कहा, 'यह क्या बहू, तुमने गहने नहीं पहने ? तुम्हारे गहने-पाते कहां गए ?'

"नयनतारा ने मेरी ओर देखा। उसकी आंखें छलछला रही थीं।

"बोली, 'नानी जी, जब असली चीज ही धोखा दे गई, तो गहने लेकर मैं क्या धो-धोकर पिऊंगी।'

"और एकाएक वह एक कांड कर बैठी। आंगन में उस समय काफी लोगों की भीड़ थी। उसे मगर उसकी कोई परवाह नहीं। वह भीड़ ठेलती हुई एकबारगी कुएं के पास चली गई। वहां पानी भरा रखा था। वही पानी लोटे में लेकर वह मांग का सिंदूर धोने लगी।

"गोपाल की मां खड़ी थी। उसने दौड़कर जाकर बहू के दोनों हाथ पकड़ लिए। बोली, 'बहू, कर क्या रही हो ? सिंदूर क्यों धो दे रही हो।'

"लेकिन उस समय कौन तो सुने ? एक हाथ में लोटा लिए नयनतारा लोटे से मांग में पानी डालने लगी और दूसरे हाथ से मांग के सिंदूर को रगड़-रगड़कर मिटाने लगी। मांग को उसने विधवा की तरह सफेद कर दिया।

"मुझसे भी नहीं रहा गया। बोली, 'कर क्या रही हो ? कर क्या रही हो बहू ?'

"मैंने उसका हाथ पकड़ लेना चाहा। लेकिन झटके से उसने मेरा हाथ हटा दिया।

"बोली, 'आप मुझे रोकें मत नानीजी—'

"मैंने कहा, 'सिंदूर सधवा का चिह्न है। उसे भी भला पोंछना चाहिए ?

उससे तुम्हारा अमंगल होगा—'

" वह उखड़ गई। बोली, 'अमंगल का बाकी ही क्या रहा नानाजी कि अमंगल से मैं डरूं?'

" मैंने कहा, 'मगर तुम केवल अपने ही अमंगल की क्यों सोचती हो बहू, सदानन्द के अमंगल की भी तो सोचनी चाहिए?'

" नयनतारा ने कहा, 'उन्होंने ही क्या कभी मेरी सोची है कि मैं उनकी सोचूं?'

" और, वह एक दूसरा ही कांड कर बैठी। पीतल के लोटे से उसने दोनों हाथों की शंख की चूड़ियों को चूर-चूर कर डाला। उसके बाद हाथ में लोहे की जो चूड़ी थी, उसे मरोड़कर बगीचे की झाड़ी में फेंक दिया।

" बोली, 'ये सारी बलाएं गईं, अब आप आशीर्वाद दीजिए नानीजी कि जिससे जीवन में ये ढोंग फिर न पहनना पड़े।'

" आसपास के लोग अवाक् होकर उसका यह कांड देख रहे थे। नयनतारा ने किसी ओर देखा नहीं। वह सीधे जाकर रजबअली की गाड़ी में बैठ गई।

" मैं क्या कहती! और कोई भी उस समय क्या कहता?"

बिहारी पाल की बहू ने जीवन में बहुत कुछ देखा है। बिहारी पाल की बहू ही सिर्फ क्यों, बिहारी पाल ने ही क्या कुछ कम देखा है? इस दुनिया में रहकर किसने कम देखा है? तारक चक्रवर्ती भी तो बूढ़े आदमी हैं। उन्होंने भी बहुत कुछ देखा है। गोपाल की मां, चौधरी जी की पत्नी, चौधरी जी, प्राणकृष्ण साहु—किसीने किसी घर की बहू को कभी ऐसा करते नहीं देखा था, सुना भी नहीं था।

"रजबअली की गाड़ी चलने लगी थी। गौरी बुआ गाड़ी पर चढ़ने जा रही थी, नयनतारा ने उसे चढ़ने नहीं दिया। बोली, 'नहीं, तुम्हें साथ आने की जरूरत नहीं, यह आडम्बर नहीं दिखाना होगा।'

" गौरी बुआ हिम्मत नहीं कर सकी। लेकिन कैलास गुमाश्ता पीछे-पीछे जाने लगा।

" तारक चक्रवर्ती ने कह दिया, 'कैलास, तुम बेटे, बहू को कृष्णनगर जाकर उसके पिता को सौंपकर ही लौटना, समझे?'

" कैलास गुमाश्ता ने बात समझी या नहीं, पता नहीं। वह तब तक गाड़ी के पीछे-पीछे काफी दूर तक जा चुका था।"

बोलते-बोलते बिहारी पाल की बहू आंसुओं से नहा गई। बोली, "उसके बाद मैं बहू के बारे में बहुत सोचती रही। यह भी सोचा कि एक बार जाकर बहू से मिल आऊं। मगर कहां जाऊं, कहां जाने से बहू से भेंट होगी, यही तो नहीं समझ सकती। और अपने घर की जो हालत हो गई है तुम्हारी वह तो तुमने देख ही ली। उधर देखने से रुलाई आती है। तुम्हारी मां के मर जाने के बाद से मैं तो अब उधर ताकती ही नहीं।"

सुनते-सुनते ही सदानन्द उठ खड़ा हुआ।

नानीजी ने कहा, "खड़े क्यों हो गए बेटे ? कहां जा रहे हो ?"

सदानन्द ने कहा, "अब चलता हूं नानीजी—"

नानीजी बोली, "इतने दिनों के बाद लौटे, तो चले क्यों जा रहे हो ? दो दिन रह ही जाओ···"

सदानन्द ने कहा, "यहां रहने से मेरा काम नहीं चलेगा नानीजी !"

नानीजी बोलीं, "कौन-सा ऐसा काम है कि तुम दो दिन भी रुक नहीं सकते ? आजकल तुम कर क्या रहे हो ? कहां रहते हो ?"

सदानन्द ने कहा, "रहने की मेरी कोई निश्चित जगह नहीं है। जब जहां रहा, वही मेरी जगह हो गई।"

नानीजी ने कहा, "तुम्हारे बाप भी धन्य हैं बेटे ! मैं तुमसे कहूं, रेल-बाजार के आढ़तिए प्राणकृष्ण साह जी हैं, तुम्हारे बाप उन्हींको सारी जायदाद बेच रहे हैं। तुम्हारे नानाजी ने कुछ जमीन-बगीचा खरीदना चाहा था। तुम्हारे बाप ने क्या कहा, मालूम है ? कहा, 'मैं मेंत ही किसीको दे दूंगा, यह भी कबूल, मगर आपको मैं कुछ नहीं दूंगा।' चौधरी जी को हम लोगों पर ही इतना गुस्सा है।"

सदानन्द ने पूछा, "पिताजी को आप लोगों पर इतना गुस्सा क्यों है ?"

"इसलिए कि मैं नयनतारा की ओर से बोलती थी। हम कहा करते थे कि बेचारी बहू की ऐसी छीछालेदर क्यों करते हैं ? आगे चलकर तुम्हारी मां बहू पर कड़ी निगरानी रखती थी, कहीं वह मेरे पास न आए···"

सदानन्द ने आगे नहीं सुना। अब वह कमरे से बाहर आ खड़ा हुआ। उसे याद आने लगा, बहुत दिन पहले इसी नवाबगंज से उसने अपनी यात्रा शुरू की थी। बेसहारा, बेचारा-सा एक दिन इस चौधरी परिवार में जन्म लिया था उसने। उसके बाद बचपन के लाड़-प्यार में कब, किस मौके से उसमें एक दार्शनिक मन का जन्म हुआ, यह वह खुद भी नहीं जानता था। उसका वह मन सुख-आराम में चैन नहीं पाता था, दुःख वेदना से थकता नहीं था। वह सिर्फ अपने अन्दर के निज को खोजता रहा था। खोजता रहा था अपनी अदृश्य अन्तरात्मा को। उसे वह कभी देख नहीं पाता था। फिर भी वह उसके प्रति बोला करता था—मुझे यह बता दो कि मैं तुम्हें कैसे पाऊंगा? अपने सारे उलझे टेढ़े प्रश्नों का हल मुझे मिलेगा ?

सदानन्द के इस प्रश्न का उत्तर कौन देता ?

कृष्णनगर का यह ठिकाना सदानन्द को याद था। बहुत दिन पहले उस घर में नयनतारा के साथ उसका ब्याह हुआ था। उस ब्याह की बात सोचने में भी जैसे उसे आतंक हो आया। वह जैसे उसके जीवन का एक बहुत बड़ा विस्मय था।

"अच्छा, कालीकांत जी घर में हैं ?"

रास्ते से एक आदमी जा रहा था। सदानन्द ने उसीसे पूछा, "कालीकांत जी का यही मकान है न ? यहां के कालेज के मास्टर साहब का ?"

आदमी ने कहा, "हां। मगर वे तो नहीं हैं—"
ों हैं ?"
ों। दो साल के करीब हुए, उनका देहान्त हो गया। आप कहां से
?"
ान्त हो गया ?"
नन्द कुछ देर स्तंभित-सा वहां खड़ा रहा। तो ? नयनतारा को कहां
ला ? वह नवाबगंज से मांग का सिंदूर धोकर, शंख की चूड़ियां फोड़कर
आई, तो कहां रही ? अब वह किसके सहारे जिएगी ? आश्चर्य है।
अपने आप ही हंस उठा। नयनतारा की इस हालत का वही तो
है और वही उसके दुर्भाग्य के बारे में इतना सोच रहा है।
भी वह स्थिर नहीं रह सका। वह भला आदमी तब तक दूर जा
। सदानन्द तेजी से कदम बढ़ाकर भले आदमी के पास पहुंचा। पूछा,
कालीकांत जी के एक लड़की थी, उसका क्या हुआ, आप कुछ बता

े कहा, "उसकी तो नवाबगंज या कहां शादी हुई थी, शायद अपनी
में है। यहां तो नहीं है—"
ानन्द ने समझा, इन सज्जन को खास कुछ जानकारी नहीं है। इनसे
छ पूछना बेकार है। वह भले आदमी अपनी राह लगे। सदानन्द ने
र कुछ नहीं पूछा।
के बाद वह फिर धीरे-धीरे स्टेशन की ओर चला आया। कौन
ा कि उसके प्रतिशोध लेने की प्रचेष्टा का यह परिणाम होगा। मगर
ही क्या सकता है ! नयनतारा से भेंट नहीं हुई, अच्छा ही हुआ। भेंट
वह कहता भी क्या ! बहुत तो यही कह सकता था, 'मुझे क्षमा

क्षमा करने को कहते ही कोई क्षमा कर देता है। जैसे क्षमा करने
ा सबको है। जैसे क्षमा करने योग्य अपराध सदानन्द ने किया है।
कत्ता की ट्रेन पर सवार होकर डिब्बे के एक कोने में उसने अपनी जगह
। आने के समय में उसने पांडे जी से कहा था, दो-एक दिन में लौटूंगा।
से उसके पहले ही लौट आना पड़ेगा, खुद उसे ही क्या पता था !
के नैहाटी पहुंचने से पहले ही ट्रेन में हलचल शुरू हो गई थी।
से पहले स्टेशन में तीसरे दर्जे के डिब्बे के एक कोने में एक मुसाफिर को
चुपचाप बैठे देखा था। वैसी करारी सर्दी में भी उसके बदन पर कोई
ादर नहीं थी। बड़ी देर से वह आदमी थर-थर कांप रहा था। उसके
ानक जाने क्या हुआ, वह आदमी लड़खड़ाकर बेंच से नीचे लुढ़क

रहा था कि ट्रेन में शोरगुल मच गया।
या हो गया साहब ? वह आदमी गिर गया क्या ?"
न का आदमी तब भी अकबकाया हुआ ही था। अब उसके मुंह से

बात फूटी। बोला, "क्या पता, मैं तो समझ ही नहीं पाया। अब तक तो सज्जन आंखें बंद किए बैठे थे।"

बेंच से गिर जाने से सदानन्द के सिर में चोट आई थी। कपाल की उसी चोट लगी हुई जगह से झर-झर लहू बह रहा था।

"भले आदमी के साथ और कोई है?"

नहीं, कोई नहीं। सदानन्द के कौन होता! दुनिया में सदानन्द जैसे आदमी का शायद कोई भी नहीं होता। कोई हो, इसके लिए सदानन्द जैसे आदमी का जन्म ही नहीं होता। उसके अगर कोई हो ही, तो फिर मुक्ति कैसे आएगी? पृथ्वी का इतिहास कैसे आगे बढ़ेगा? सदानन्द के यदि कोई होता तो दुनिया का आगे बढ़ना कब का रुक गया होता।

ट्रेन नैहाटी स्टेशन पहुंची तो एक ने कहा, "उन्हें यहां उतार दीजिए साहब! गार्ड को खबर दे दीजिए। यहां डाक्टर, अस्पताल—सब कुछ है।"

दफ्तर का समय था। दफ्तर जाने वाले मुसाफिर भीड़ किए स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़े थे। लेकिन ट्रेन के आकर वहां लगते ही गार्ड के पास खबर चली गई। खबर चली गई कि डिब्बे में एक मुसाफिर बेहोश हो गया है। गार्ड के पास फर्स्ट एड का बक्स रहता है। मामूली कुछ हो तो वह प्राथमिक चिकित्सा कर सकता है।

दूसरे मुसाफिर ट्रेन पर चढ़ने की हड़बड़ी में थे। उनमें से कुछ लोगों ने उठाकर सदानन्द को डिब्बे से नीचे उतारा। स्टेशन मास्टर आया। चारों ओर भीड़ जमा हो गई।

गार्ड ने कहा, "इसे तुरन्त अस्पताल भेजने का इंतजाम कीजिए मास्टर बाबू, मुझे लगता है, केस सीरियस है—"

भीड़ के भीतर से अचानक एक महिला आगे आई। सदानन्द की ओर देखते ही वह बोली, "इन्हें मेरे जिम्मे दीजिए, मैं इनकी देखभाल करूंगी।"

सबने महिला की ओर ताका। विवाहित महिला। मांग में सिंदूर। लगा, दफ्तर जाने के लिए तैयार होकर आई थी। डेली पैसेंजर। बहुतों का पहचाना हुआ मुखड़ा।

स्टेशन मास्टर ने भी देखा। पहचाना। पूछा, "ये आपके कोई होते हैं क्या?"

वह बोली, "जी हां, मेरे 'आत्मीय' है। मैं इन्हें अपने घर ले जाना चाहती हूं।"

"आप यहीं नैहाटी में रहती हैं?"

महिला ने कहा, "हां।"

स्टेशन मास्टर ने फिर पूछा, "आपका नाम?"

"मेरा नाम नयनतारा है। नयनतारा बनर्जी।"

"आपके कैसे आत्मीय है य..."

"बड़े नज़दीकी। आप सिर्फ दया करके एक स्ट्रेचर का प्रवन्ध कर दीजिए। ज़रा जल्दी, देर मत कीजिए—"

सदानन्द के जीवन में वह एक महासंग्राम का समय था। संग्राम तो उसने सारा जीवन ही किया। वह केवल संग्राम करता रहा और वार-वार संग्राम को पार करके फिर दूसरे संग्राम के केन्द्र में पहुंचकर आत्म-परीक्षण के आमने-सामने खड़ा हुआ। और संग्राम भी क्या सिर्फ वाहर से ? वाहर का संग्राम तो केवल संग्राम है। जो संग्राम अन्दर से होता है, वही संग्राम कठिन-कठोर होता है। उसी कठोर संग्राम के सम्मुखीन होकर उस दिन वह विह्वल हो गया था।

उस दिन वह नवावगंज से जब कृष्णनगर गया, तो यही सोचकर गया था कि वह नयनतारा से सिर्फ एक वार मिलेगा। भेंट करके उससे क्षमा मांग लेगा। इतना ही कहेगा, 'तुम मुझे क्षमा कर दो···'

क्षमा ! मुंह की क्षमा क्षमा नहीं होती, यह क्या सदानन्द जानता नहीं था ? क्षमा सबको किया भी नहीं जा सकता और सबसे क्षमा भी नहीं मांगी जा सकती। हज़ार अपराध के वावजूद जो क्षमा मांगता है, उसके क्षमा मांगने का कोई महत्त्व नहीं होता। लेकिन उसपर भी जो क्षमा करता है, उसकी क्षमा का महत्त्व होता है। पर, सदानन्द ने क्या आशा की थी, नयनतारा उसे क्षमा करेगी !

उस दिन चौधरी जी को सारी रात नींद नहीं आई। वह भोर-भोर को ही विस्तर से उठ गए थे। सारा घर सूना। पहले सुवह-सुवह ही दीनू चाय देने के लिए आया करता था। चाय पीने के ज़रा ही देर वाद परेश मौलिक पहुंच जाता था। चंडीमंडप में बैठकर जमींदारी की देखभाल का काम हो जाता था। एक-एक करके रैयत-प्रजा, देनदार-लेनदार आया करते। कौन-सा खेत जोता जाएगा, किस खलिहान में चने की दौनी होगी, कौन-सा अनाज आढ़त में भेजना होगा—सब कुछ का हुक्म वहीं बैठे-बैठे दे दिया करते थे। उसके वाद ऊपर से बूढ़े मालिक की वुलाहट आती। वहां भी विषय-सम्वन्धी वातें। वैषयिक काम ही उनका जीवन था। वचपन से इसी काम में हाथ मांजते-मांजते यह उनका नशा-सा हो गया था।

दोपहर हो आती, तो दीनू उन्हें नहाने की ताकीद करता। मिट्टी के नाद में दीनू कुएं से पानी भर देता। वही उन्हें तेल मालिश कर देता। तेल लगा लेने के वाद चौधरी जी लोटा-लोटा पानी सिर पर डालने लगते। उसके वाद खाने की वारी। गौरी उनके सामने लाकर थाली रख देती। इसी समय जो थोड़ी-सी नींद ले पाते। खाते-खाते पूछते, "मुन्ना कहां है, मुन्ना ? उसने

भोजन कर लिया ?"

प्रीति कहती, "मुन्ना क्या घर में है ? वह तो राणाघाट गया है।"

चौधरी जी कहते, "राणाघाट ? राणाघाट क्यों गया है ? किसके साथ ?"

प्रीति कहती, "प्रकाश के साथ रामनवमी का मेला देखने गया है।"

चौधरी जी को यह पसन्द नहीं था कि सदानन्द प्रकाश के साथ राणाघाट रामनवमी का मेला देखने के लिए जाए। मगर उनकी बात सुने कौन ! सिर्फ इतना ही पूछते, "कब लौटेगा ?"

प्रीति कहती, "जब वह प्रकाश के साथ गया है, तो तुम खामखा चिन्ता क्यों करते हो ? कुछ पानी में तो नहीं पड़ा है।"

चौधरी जी उसी समय से जानते थे, बात यह अच्छी नहीं हो रही है। लेकिन उपाय नहीं था। लड़के पर जितना अधिकार उनका है, उतना ही उनकी पत्नी का। और, पत्नी की अगर यही इच्छा है कि लड़का यही सब करे, तो करे। कचहरी का काम-काज सीखने की जरूरत नहीं। घर-गिरस्ती भाड़ में जाए। जब तक वह है, तब तक यह घर-गिरस्ती ऐसी है। उनके न रहने के बाद जो हालत होगी, वह तो उसे लौटकर देखने नहीं आएंगे। यही सब सोचते हुए वह थाली छोड़कर उठ पड़ते।

प्रीति कहती, "हाय राम, उठ गए ? दूध नहीं लिया ?"

वे दिन कहां चले गए। उन्होंने सोचा कुछ था, हुआ कुछ। वह लड़का ही कहां गया और उनकी वह पत्नी ही कहां चली गई। वही लोग इनसे पहले चले गए। उन्हें जो सुबह एक प्याला चाय नहीं मिली, आज यह देखने वाला भी कोई नहीं रहा। कल रेल-बाजार के साह जी ने सारी जायदाद पानी के मोल खरीद ली। दस्तावेज की रजिस्ट्री भी हो गई। वह तो खैर चालाकी से उन्होंने प्रकाश को भागलपुर भेज दिया था, नहीं तो खैर नहीं थी। वह बड़ा अड़ंगा लगाता। आज जो वह इस घर में है, यह गैर-कानूनी काम है। साह जी अवश्य कुछ कहेंगे नहीं। वह और भी कुछ दिन यहां रह सकते हैं, पर घर यह अब साह जी का है। कानूनन अब उन्हें इसमें रहने का कोई हक नहीं है।

बरवारी-थान में शायद रात-भर कवि-गान चलता रहा। इसीलिए सवेरे सब शान्त है। चौधरी जी बिस्तर से उठकर बाहर बरामदे पर आए। उन्हें दो दिन पहले के उस सपने की याद आई। आश्चर्य है। जगे-जगे एकाएक वैसा सपना ही क्या देखना ! भला कालीगंज की वह यहां क्यों आने लगी और आएगी भी कैसे ? जो मर गई है, वह भला फिर से जी सकती है। बड़ी दादी ने तो सदा के लिए उसका काम तमाम कर दिया। उसकी पालकी के जो कहार थे, उनको भी नहीं छोड़ा। फिर ? वह ऐसा क्यों डर गए थे ? डर से बेहोश क्यों हो गए थे ?

कालीगंज की बहू के कहे वे शब्द उनके कानों में गूंजने लगे, "मैं तुम्हें यह शाप दिए जाती हूं नायब जी, मैं अगर ब्राह्मण की बेटी हूं तो एक दिन मेरा यह शाप फलकर ही रहेगा, देख लेना, तुम निर्वंश होगे—"

आज बिलकुल सूने पड़े आंगन की ओर देखकर चौधरी जी को यह लगा

गए तो, कालीगंज की वहू का शाप इस तरह से अक्षर-अक्षर फला। बूढ़े मालि
के अरमानों के इस घर को ऐसा निर्वंश होना था ! उस दिन क्या
खुद ही समझ सके थे कि उस बुढ़िया की बात कभी ऐसी निर्ममता से स
निकलेगी !

जरा ही देर बाद प्रकाश आ पहुंचा। यह कम्बख्त प्रकाश, उसने वहीं
चौधरी जी का साथ पकड़ा है, लगता है, उनके मरने तक उनका पिंड
छोड़ेगा नहीं। शायद हो कि उनको एकबारगी मटियामेट करके ही वह उ
छुटकारा देगा।

चौधरी जी ने पूछा, "क्या खबर हैं सुलतानपुर की ?"

प्रकाश ने कहा, "खबर ठीक ही है। मैं अश्विनी भट्टाचार्य को खूब फटक
आया—"

"अश्विनी भट्टाचार्य की छोड़ो, जिस काम के लिए तुम्हें भेजा था
उसका क्या हुआ ?"

प्रकाश ने कहा, "देख आया, सब ठीक ही है। चौर में इस बार सिकद
लोग धान और पटसन दोनों ही लगा रहे हैं।"

"लेकिन पिछले साल का रुपया ? रुपये के बारे में क्या कहा ?"

"जी रुपया तो नहीं दिया ?"

"क्यों, रुपया क्यों नहीं दिया।"

प्रकाश ने कहा, "कहा कि रुपया तुमको नहीं दूंगा। जो मालिक हैं
रुपया उन्हींको दूंगा। तुम कौन होते हो ? और भी कितना कुछ सुनाय
मुझे। मैं भी कह आया—ठीक है, मैं भी तुम्हें देख लूंगा। इस बार तुम्हार
जमीन नाश करके ही दम लूंगा—"

चौधरी जी कुछ बोले नहीं। जरा देर के बाद उन्होंने कहा, "चलो, आज
ही सुलतानपुर चलें। अभी, सवेरे की ही गाड़ी से—"

"सवेरे की गाड़ी से ? और, खाना-पीना ? भात बना लूं ?"

चौधरी ने कहा, "मैं नहीं खाऊंगा—"

प्रकाश हैरान रह गया। बोला, "नहीं खाइएगा ? मतलब ? उपवास
करेंगे ?"

चौधरी जी ने कहा, "एक शाम उपवास ही किया, तो क्या हानि है ?"

"आप बूढ़े आदमी हैं उपवास करके रह सकते हैं, मगर मैं ? मुझे तो
नहीं खाने से कष्ट होगा। मैं उपवास करके थोड़े ही रह सकूंगा ?"

"बखूबी रह लोगे, बखूबी। मैं अब यहां नहीं रहूंगा, मेरा यहां का सब
खतम हो गया। चलो···"

"मतलब आपका ?"

"मतलब कि मैंने यह मकान बेच दिया। आज से यह घर रेल-बाजार के
प्राणकृष्ण साह का है।"

प्रकाश ठिठककर खड़ा हो गया। उसे जैसे इसपर विश्वास नहीं हुआ।
पूछा, "और जगह-जमीन, खेत-खलिहान ?"

"सब कुछ ?"

"सब कुछ बेच दिया ? कितने में बेचा ?"

चौधरी जी बिगड़ उठे। बोले, "तुमको इन बातों से क्या मतलब ? मैं अगर नुकसान सहकर ही बेचूं, तो तुम्हारा क्या ?"

प्रकाश ने कहा, "जी, वह बात नहीं। विहारी पाल कह रहे थे, वह ज्यादा कीमत दे सकते हैं।"

"ज्यादा कीमत ? पाल के बहुत रुपया हो गया है, क्यों ? यह रुपये की गरमी दिखा रहा है ? तो तुम पाल से कह देना प्रकाश, मैं सारी जायदाद सरकार को बल्कि दे दूंगा, मगर पाल को नहीं दूंगा। दस लाख रुपया देने पर भी नहीं दूंगा। दस लाख रुपया है पाल के पास ?"

प्रकाश हक्का-बक्का-सा चौधरी जी को देखने लगा। जीजाजी कह क्या रहे हैं। दस लाख। यह तो बहुत बड़ी रकम है।

चौधरी जी ने कहा, "कल तो सदा आया था···"

"सदा ? सदानन्द ? कहां ? कब आया था।"

"हां। कल बरवारी-थान में यात्रा या कवि-गान क्या तो हो रहा था। वह शाम को मेरे पास आया था।"

"आकर क्या बोला ?"

"बोलना क्या ! मैंने क्या कुछ कहने दिया उसे ? मैंने उसे भगा दिया।"

प्रकाश ने कहा, "आपने ठीक देखा कि सदा आया था ? आपने तो उस बार इसी तरह से कालीगंज की बहू को आते देखा था। भ्रम तो नहीं हुआ ?"

चौधरी जी उस समय जाने के लिए उतावले हो रहे थे। रात-भर वह सोए नहीं। खाना नहीं खाया। तिसपर सदानन्द को निकाल दिया। उनका मन खिजला-सा गया था। उस समय उन्हें प्रकाश की बात सुनने का समय नहीं था। बोले, "चलो-चलो। अभी यह सब बात रहने दो—"

प्रकाश ने कहा, "रहने क्यों दूं ? सदानन्द आया और आपने उसे निकाल दिया ? वह गया कहां ?"

"कहां गया, मैं क्या यह देखने गया था ? देखने जाए मेरी बला। वह क्या मेरा लड़का है ? वह मेरा शत्रु है। मगर जाएगा भी कहां ? जाने की कोई जगह भी है उसे ? शायद पाल के यहां गया होगा। उसीके यहां खाया-पिया होगा। उन्हीं लोगों की वजह से तो मेरा यह सर्वनाश हुआ···"

प्रकाश ने कहा, "जरा देख आऊं, सदा है या नहीं।"

चौधरी जी ने कहा, "सो तुम जाओ, मगर मैं कहे देता हूं, खबरदार उसे यहां मत लाना। मैं उसकी शक्ल नहीं देखना चाहता।"

"जी नहीं। यहां बुला सकता हूं भला। उसीकी वजह से तो हम लोगों की इतनी हेठी हुई, उसीके कारण तो मेरी दीदी मर गई, उसीकी वजह से तो आपने जमींदारी बेच दी। क्या मैं जानता नहीं हूं ? उसे ढूंढ़ने के लिए मैंने कितनी बार कलकत्ता की खाक छानी, पुलिस को कितने रुपये रिश्वत के लिए

और अब वह यहां आया है।"

यह कहकर प्रकाश भागता हुआ बाहर गया। पीछे से चौधरी जी ने कह दिया, "ज्यादा देर मत लगाना, इसी समय यहां से रवाना होना है—"

तब तक प्रकाश पाल की दूकान जा पहुंचा था। बिहारी पाल ने अभी-अभी ही दूकान खोली थी। धूप-गंगाजल भी ठीक से नहीं दे पाया था। पुकार सुनकर पीछे मुड़ा, तो देखा, साला बाबू। पूछा, "क्या खबर है साला बाबू? कब पधारे?"

प्रकाश ने कहा, "सुना कि सदा आया है पाल बाबू, आप ही के यहां है? कहां है?"

पाल ने कहा, "सदा! वह तो कल आया था। रात को मेरे यहां था। अब तो नहीं है, चला गया—"

"चला गया? कहां चला गया? किस समय?"

पाल ने कहा, "गए काफी देर हो चुकी। वह भी रहने वाला शख्स है। मैंने पूछा भी कि कहां जा रहे हो, तो उसने कोई जवाब नहीं दिया।"

"आप उसको रोक नहीं सके? आप तो जानते हैं, मैं उसके लिए दर-दर की खाक छानता फिर रहा हूं। कलकत्ता में पुलिस को हजारों रुपया रिश्वत देकर उसे पकड़ने की कोशिश की, और आपने हाथ में पाकर भी उसे छोड़ दिया? जरा देर और रोक नहीं सके?"

बिहारी पाल ने कहा, "अरे बाबा, तुम्हारे भांजे को रोक रखने की मजाल है किसीकी! तुम्हारे जीजाजी के पास तो वह गया था। उन्होंने तो उसे भगा दिया।"

"भगा नहीं दें? भगा देना कुछ अन्याय हुआ है? आप ही कहिए न। उसी लड़के की वजह से तो आज जीजाजी का यह हाल हुआ। नहीं तो जिस घर में कभी लोगों की भीड़ रहती थी, वह घर ऐसा मरघट हो जाता। उसी घर में आप गांव-भर के लोग छूटकर जा आए हैं, वह सब बात क्या किसी-को याद नहीं है? इसीलिए—जिस लड़के के चलते इतना कुछ हुआ, जिस लड़के के चलते मेरी दीदी मरी, जिस लड़के के चलते बहू ने जीजाजी की इतनी छीछालेदर की, उस लड़के का भी कोई मुंह देख सकता है? आप लोग समझ नहीं रहे हैं कि कितनी गहरी पीड़ा होने से कोई बाप अपने बेटे को घर से निकालता है?"

पाल बाबू ने कहा, "हजार हो, आखिर बेटा ठहरा। अपने बेटे को कोई इस तरह से भगा देता है? जानते हो, जब मैंने कहा कि बहू ने मांग का सिंदूर पोंछ डाला, कलाई की शंख की चूड़ियां फोड़ दीं, तो वह खड़ा नहीं रह सका। हरगिज रहने को तैयार नहीं हुआ। फौरन घर से चल दिया···"

"मगर आप लोगों ने उससे ये बातें कही ही क्यों?"

"कहता नहीं? जो कुछ हमने अपनी आंखों देखा, नहीं कहता? बहू के साथ तुम लोगों ने क्या कोई अच्छा सलूक किया था?"

प्रकाश ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। लौट आया। देखा, इतने में

चौधरी जी जाने के लिए तैयार हो गए हैं।

प्रकाश को देखते ही पूछा, "क्यों जी, वह है ?"

"जी नहीं जीजाजी, वह चला गया।"

"अच्छा ही हुआ। चलो। साह जी के आने की बात है। उन्हें कुंजियां दे देनी है। कुंजियां देने के बाद ही मैं निश्चिन्त हो सकूंगा।"

दुतल्ले के कमरे में ताला लगा दिया गया। सदा के लिए अपने गांव-घर को छोड़कर जाना था। दोनों जने नीचे उतरे। साथ ले जाने को खास कुछ सामान नहीं था। खाट-बिस्तर, आलमारी-बर्तन-बासन—जो कुछ थोड़ा बहुत था, पहले ही ले जाया जा चुका था। जो रह गया, सो रह गया। बोझा है, यह सब। सुलतानपुर में यह सब बहुत है। और ले जाना भी किसके लिए। खुद को अब बचना ही कितने दिन है ? उनके मरने के बाद तो सात भूत लूट खाएंगे।

फिर भी एक बार देख लेने को जी चाहा। नीचे उतरे। पीछे-पीछे प्रकाश भी आने लगा। फर्श पर धूल की मोटी परत पड़ गई थी। चलने से पैरों की साफ छाप पड़ती थी। हवेली का दरवाजा खोलते ही कैसी तो एक गंध लगी। बहुत दिनों की पहचानी हुई जगह। बहुतेरी स्मृतियों की जन्मभूमि। वहां पर वह खाने के लिए बैठते थे, यह रहा उनके सोने का कमरा। और, कोने का वह जो कमरा है, वह सौर-घर है। सदानन्द उसी कमरे में पैदा हुआ था। गौरी ने ही आकर सबसे पहले यह खुशी की खबर दी कि बूढ़े मालिक के पोता हुआ।

बूढ़े मालिक उस समय राणाघाट में थे। सुनकर पहले तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ। पूछा, "क्या कहा, लड़का ? लड़का हुआ है ?"

कैलाश गुमाश्ता ने कहा, "जी हां सरकार—"

घर में उस दिन आनन्द की न पूछिए। बूढ़े मालिक के पोता हुआ है, पोता। शंख फूंको, उलू-लू करो, खुशी मनाओ। जो भी जहां है, सबको खबर भेजो। गांव-भर के लोगों को बुलाओ। सब आएं, आकर देख जाएं। देख जाएं, चौधरी-वंश में लड़का हुआ है, खानदान का वारिस पैदा हुआ है। फूंको, शंख फूंको।

"कौन ?"

चौधरी जी चौंके। उन्हें लगा, सचमुच ही किसीने शंख फूंका, उलू-लू किया। सारा घर मारे खुशी के झूम उठा।

लेकिन नहीं, प्रकाश उनके पीछे ही था। उसने उनका भ्रम दूर कर दिया। बोला, "जीजाजी, साह जी आए हैं···"

"आ गए।" चौधरी जी ने उलटकर देखा, साह जी खड़े हैं। बोले, "आ गए आप ? अच्छा ही हुआ। मैं आप ही की सोच रहा था···"

"आप क्या आज ही चले जा रहे हैं ?"

"हां। यह लीजिए कुंजियां—"

साह जी ने कुंजियां लीं। फिर कहा, "मगर इतनी ज

क्या पड़ी थी ? और भी दो दिन रह सकते थे। यह आपका गांव है अपना, अपना घर है। मैं कुछ इतनी जल्दी तो यहां नहीं आ रहा हूं…"

"न, अब यहां रहा नहीं जा सकता।" चौधरी जी ने कहा, "यहां रहने से सुलतानपुर की जगह-जायदाद को कौन देखेगा ? वहां भी तो ससुर जी की सम्पत्ति है और उनकी देखभाल करने वाला भी तो कोई नहीं है।"

उन्होंने प्रकाश की ओर मुड़कर कहा, "चलो प्रकाश…"

प्रकाश उनके पीछे-पीछे चलने लगा। एक दिन बड़ी-बड़ी आशा लेकर नरनारायण चौधरी ने जिस वंश, जिस घर की बुनियाद डाली थी, चौधरी जी के चले जाने के साथ-ही-साथ वह समाप्त हो गया, निश्चिह्न हो गया। शायद अन्त तक कालीगंज की बहू का ही शाप फला। कौन जाने !

नयावगंज के चौधरी परिवार में एक दिन जिस असहाय शिशु के भूमिष्ठ होने के साथ शंख बजा था, उलू ध्वनि हुई थी, उस दिन नैहाटी शहर की एक गली के मकान में वही शिशु ही फिर उसी तरह से असहाय होकर बिस्तर पर पड़ा हुआ था। लेकिन उसके लिए आज न तो कोई शंख ही फूंक रहा था और न ही कोई उलू-लू-लू कर रहा था।

उधर पांडे जी धर्मशाला के फाटक पर बैठकर रोज रास्ते की ओर टकटकी लगाए रहता, कहां, बाबूजी तो नहीं आ रहे हैं। धर्मशाला में जाने कितने लोग आते और कितने लोग चले भी जाते। कलकत्ता शहर में आने-जाने वालों का कभी विराम नहीं। बड़ा बाजार में विशाल जन-प्रवाह और कर्म-स्रोत मिलकर एकाकार हो गया था।

महेश आया करता। पूछता, "भैया जी नहीं आए हैं पांडे जी ?"

पांडे जी कहता, "नहीं।"

महेश कहता, "भैया जी के आने में इतनी देर क्यों हो रही है ?"

महेश ही नहीं, कालीगंज की बहू भी आती थी। किस एक विशाल भवन के पिछवाड़े की खटाल से वह बूढ़ी सदानन्द की दी हुई ऊनी चादर ओढ़े लंगड़ाती हुई धर्मशाला के सामने आकर हाजिर हो जाती। पांडे जी से पूछती, "मेरा मुन्ना आ गया दरवान जी ?"

पांडे जी रोटी सेंकते हुए कहता, "नहीं बूढ़ी माई, बाबूजी नहीं आए हैं।"

महेश भी लौट जाता। कालीगंज की बहू भी लंगड़ाती हुई लौट जाती।

उनमें से लेकिन किसीको भी इसका पता नहीं था कि वे लोग जिसकी तलाश में इतने परेशान हैं, वह आदमी नैहाटी के एक मकान में चेतन-अचेतन अवस्था से परे होकर बिछावन पर पड़ा हुआ है।

मुहल्ले का डाक्टर आता। जांचता। कहता, "देखिए, मरीज जिसमें उठकर बैठे नहीं। चुपचाप लेटे ही रहने दीजिएगा। हिलना-डुलना सब बंद…"

शुरू में जिस दिन स्टेशन से उठाकर सदानन्द को यहां लाया गया था,

उस दिन दिन-भर उसे होश नहीं था। शाम को होश आने पर पहली बार उसने आंखें खोलीं। बोला, "कालीगंज की बहू, ओ कालीगंज की बहू···"

गिरिबाला घर साफ कर रही थी। सदानन्द को बोलते सुनकर वह अवाक् हो गई। हाथ का काम छोड़कर भागी-भागी कमरे में आई। वहां से आवाज़ देने लगी, "दीदीजी, दीदीजी···"

नयनतारा नहानघर में थी। उसने अन्दर से ही पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

गिरिबाला ने कहा, "नये बाबू को होश आया है दीदीजी! बुदबुदाकर क्या तो बोल रहे हैं।"

नयनतारा ने विलम्ब नहीं किया। गिरिबाला को वहां रखकर ही वह नहानघर में गई थी। इसी बीच सदानन्द की चेतना लौटी। उसने झटपट साड़ी बदली, जूड़े को ठीक किया और सीधे सदानन्द के कमरे में आई। आकर देखा, सदानन्द की आंखें खुली हुई हैं। लेकिन दृष्टि विह्वल-सी। मुंह से कुछ बुदबुदा रहा है।

वह सदानन्द के बिलकुल मुंह के सामने जाकर खड़ी हो गई। शायद उसे पहचाने। लेकिन फिर भी सदानन्द की निगाह में कुछ फर्क नहीं आया।

वह सदानन्द के मुंह के पास अपना मुंह ले गई। पूछा, "मुझसे कुछ कह रहे हो?'

सदानन्द ने वैसी ही निगाहों से देखते हुए बुदबुदाकर कहा, "मैं प्रायश्चित्त करूंगा कालीगंज की बहू, तुम कोई चिन्ता न करो···"

नयनतारा समझ नहीं सकी कि क्या कहे! अजीब है, वह शायद नयनतारा को पहचान भी नहीं रहा है। पहचान पाता तो, ठीक पहले की तरह बिछावन से उठने की कोशिश करता, कमरे से बाहर भाग जाना चाहता।

नयनतारा ने कहा, "तुम इन बातों को भूल जाओ। यह सब अब न सोचो—"

सदानन्द बोल उठा, "तो फिर उन लोगों ने मुझे ठगा क्यों?"

नयनतारा अपना मुंह सदानन्द के कान के पास ले जाकर बोली, "अजी ओ, तुम ये बातें भूल जाओ। यह देखो, मैं हूं। मुझको पहचान रहे हो? मैं हूं, नयनतारा···"

सदानन्द ने इस बार नयनतारा की ओर देखा। उसकी आंखों में आंसू बहने लगा। नयनतारा ने अपने आंचल से उसकी आंखें पोंछ दीं। बोली, "छिः! रोओ मत। रोते नहीं—"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन उन लोगों ने मुझे धोखा क्यों दिया? मैंने तो कहा था, 'तुम्हारे रुपये दिए बिना मैं ब्याह नहीं करूंगा,' उन लोगों ने तो भी मुझे धोखा क्यों दिया? फिर भी उन लोगों ने तुम्हारा खून क्यों किया?"

नयनतारा ने फिर कहा, "तुम सो जाओ। सो जाने की कोशिश करो। समझे? आंखें बंद करो।"

सदानन्द ने कहा, "तुमने तो कोई दोष नहीं किया, फिर भी

क्या पड़ी थी ? और भी दो दिन रह सकते थे। यह आपका गांव है अपना, अपना घर है। मैं कुछ इतनी जल्दी तो यहां नहीं आ रहा हूं···"

"न, अब यहां रहा नहीं जा सकता।" चौधरी जी ने कहा, "यहां रहने से सुलतानपुर की जगह-जायदाद को कौन देखेगा ? वहां भी तो ससुर जी की सम्पत्ति है और उसकी देखभाल करने वाला भी तो कोई नहीं है।"

उन्होंने प्रकाश की ओर मुड़कर कहा, "चलो प्रकाश···"

प्रकाश उनके पीछे-पीछे चलने लगा। एक दिन बड़ी-बड़ी आशा लेकर नरनारायण चौधरी ने जिस वंश, जिस घर की बुनियाद डाली थी, चौधरी जी के चले जाने के साथ-ही-साथ वह समाप्त हो गया, निश्चिह्न हो गया। शायद अन्त तक कालीगंज की बहू का ही शाप फला। कौन जाने !

नवाबगंज के चौधरी परिवार में एक दिन जिस असहाय शिशु के भूमिष्ठ होने के साथ शंख बजा था, उलू ध्वनि हुई थी, उस दिन नैहाटी शहर की एक गली के मकान में वही शिशु ही फिर उसी तरह से असहाय होकर बिस्तर पर पड़ा हुआ था। लेकिन उसके लिए आज न तो कोई शंख ही फूंक रहा था और न ही कोई उलू-लू-लू कर रहा था।

उधर पांडे जी धर्मशाला के फाटक पर बैठकर रोज रास्ते की ओर टकटकी लगाए रहता, कहां, बाबूजी तो नहीं आ रहे हैं। धर्मशाला में जाने कितने लोग आते और कितने लोग चले भी जाते। कलकत्ता शहर में आने-जाने वालों का कभी विराम नहीं। बड़ा बाजार में विशाल जन-प्रवाह और कर्म-स्रोत मिलकर एकाकार हो गया था।

महेश आया करता। पूछता, "भैया जी नहीं आए हैं पांडे जी ?"

पांडे जी कहता, "नहीं।"

महेश कहता, "भैया जी के आने में इतनी देर क्यों हो रही है ?"

महेश ही नहीं, कालीगंज की बहू भी आती थी। किस एक विशाल भवन के पिछवाड़े की गटाल से वह बूढ़ी सदानन्द की दी हुई ऊनी चादर ओढ़े लंगड़ाती हुई धर्मशाला के सामने आकर हाजिर हो जाती। पांडे जी से पूछती, "मेरा गुन्ना आ गया दरबान जी ?"

पांडे जी रोटी सेंकते हुए कहता, "नहीं बूढ़ी माई, बाबूजी नहीं आए हैं।"

महेश भी लौट जाता। कालीगंज की बहू भी लंगड़ाती हुई लौट जाती।

उनमें से लेकिन किसीको भी इसका पता नहीं था कि वे लोग जिसकी तलाश में इतने परेशान हैं, वह आदमी नैहाटी के एक मकान में चेतन-अचेतन अवस्था से परे होकर बिछावन पर पड़ा हुआ है।

मुहल्ले का डाक्टर आता। जांचता। कहता, "देखिए, मरीज जिसमें उठकर बैठे नहीं। लगातार लेटे ही रहने दीजिएगा। हिलना-डुलना सब बंद···"

शुरू में जिस दिन स्टेशन से उठाकर सदानन्द को यहां लाया गया था,

उस दिन दिन-भर उसे होश नहीं था। शाम को होश आने पर पहली बार उसने आंखें खोलीं। बोला, "कालीगंज की बहू, ओ कालीगंज की बहू···"

गिरिबाला घर साफ कर रही थी। सदानन्द को बोलते सुनकर वह अवाक् हो गई। हाथ का काम छोड़कर भागी-भागी कमरे में आई। वहां से आवाज देने लगी, "दीदीजी, दीदीजी···"

नयनतारा नहानघर में थी। उसने अन्दर से ही पूछा, "क्यों, क्या बात है ?"

गिरिबाला ने कहा, "नये बाबू को होश आया है दीदीजी ! बुदबुदाकर क्या तो बोल रहे हैं।"

नयनतारा ने विलम्ब नहीं किया। गिरिबाला को वहां रखकर ही वह नहानघर में गई थी। इसी बीच सदानन्द की चेतना लौटी। उसने झटपट साड़ी बदली, जूड़े को ठीक किया और सीधे सदानन्द के कमरे में आई। आकर देखा, सदानन्द की आंखें खुली हुई हैं। लेकिन दृष्टि विह्वल-सी। मुंह से कुछ बुदबुदा रहा है।

वह सदानन्द के बिलकुल मुंह के सामने जाकर खड़ी हो गई। सही उसे पहचाने। लेकिन फिर भी सदानन्द की निगाह में कुछ फर्क नहीं आया।

वह सदानन्द के मुंह के पास अपना मुंह ले गई। पूछा, "मुझसे कुछ कह रहे हो ?'

सदानन्द ने वैसी ही निगाहों से देखते हुए बुदबुदाकर कहा, "मैं प्रायश्चित्त करूंगा कालीगंज की बहू, तुम कोई चिन्ता न करो···"

नयनतारा समझ नहीं सकी कि क्या कहे ! अजीब है, वह शायद नयनतारा को पहचान भी नहीं रहा है। पहचान पाता तो, ठीक पहले की तरह बिछावन से उठने की कोशिश करता, कमरे से बाहर भाग जाना चाहता।

नयनतारा ने कहा, "तुम इन बातों को भूल जाओ। यह सब अब न सोचो—"

सदानन्द बोल उठा, "तो फिर उन लोगों ने मुझे ठगा क्यों ?"

नयनतारा अपना मुंह सदानन्द के कान के पास ले जाकर बोली, "अजी ओ, तुम ये बातें भूल जाओ। यह देखो, मैं हूं। मुझको पहचान रहे हो ? मैं हूं, नयनतारा···"

सदानन्द ने इस बार नयनतारा की ओर देखा। उसकी आंखों से आंसू बहने लगा। नयनतारा ने अपने आंचल से उसकी आंखें पोंछ दीं। बोली, "छिः ! रोओ मत। रोते नहीं—"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन उन लोगों ने मुझे धोखा क्यों दिया ? मैंने तो कहा था, 'तुम्हारे रुपये दिए बिना मैं ब्याह नहीं करूंगा.' उन लोगों ने तो भी मुझे धोखा क्यों दिया ? फिर भी उन लोगों ने तुम्हारा खून क्यों किया ?"

नयनतारा ने फिर कहा, "तुम सो जाओ। सो जाने की कोशिश करो। समझे ? आंखें बन्द करो।"

सदानन्द ने कहा, "तुमने तो कोई दोष नहीं किया फिर भी उन्होंने

निखिलेश ने सिर्फ 'नहीं' कहा।

नयनतारा बोली, "तो ? तबीयत खराब हो गई क्या ? देखूं, तुम्हारा ...ल देखूं तो—"

नजदीक आकर उसने निखिलेश के कपाल पर हाथ रखना चाहा ...लेश ने अपने हाथ से नयनतारा के हाथ को हटा दिया। बोला, "नहीं ... कुछ भी नहीं हुआ है।"

नयनतारा निश्चिन्त होकर बोली, "कुछ नहीं हुआ है, तो ठीक ही है ... तो डर हो आया था। तुम तो इस तरह से कभी छुट्टी लेते नहीं। ग़ैर ...र क्या कांड हो गया है, पता है ? मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ गई। उस ...रे में कौन है, पहचाना ? बोल नहीं रहे हो ? पहचाना या नहीं पहचाना ...?"

निखिलेश ने सिर हिलाया। बोला, "पहचाना—"

"पहचाना ? तो फिर यह बताओ कि वह यहां कैसे आया ? बताओ न ... कैसे आया ?"

निखिलेश ने कोई जवाब नहीं दिया। चुप था, चुप ही रहा।

नयनतारा ने कहा, "मैं नौ चालीस की ट्रेन पकड़ने के लिए स्टेश... । देखा, ट्रेन आ चुकी है। जल्दी-जल्दी गई। जाकर देखती क्या हूं ... पर बड़ी भीड़ है। मैंने उझककर देखा तो वह था। बिलकु... ...। स्टेशन मास्टर उसे अस्पताल भेज रहा था। कह-सुनकर मैं यह... आई।"

निखिलेश ने अब बात की। बोला, "वे लोग अस्पताल भेज रहे थे तो क्या बुरा कर रहे थे ? अस्पताल से क्या घर में अच्छी सेवा होगी ?"

नयनतारा बोली, "सो नहीं। सोचा, वहां तो उसका अपना कोई नहीं है, इसलिए—"

निखिलेश ने कहा, "लेकिन उसके चलते आज आफिस में ग़ैरहाज़िर होना पड़ा तो ?"

"वाह, मेरी तो छुट्टी बाकी है।"

"छुट्टी बाकी है तो क्या ! किस मुश्किल से तुम्हारी यह नौकरी जुटा है, बी० ए० पास करके भी कितनी लड़कियां नौकरी के लिए मारी-मारी फिर रही हैं, और तुमने बगैर कोई खबर दिए खामखा ही गैरहाजिरी की यह अच्छा हुआ ?"

नयनतारा बोली, "तुम इसे खामखा कह रहे हो ?"

"खामखा नहीं तो और क्या है ? राह-घाट में कितनों के साथ ऐसी दुर्घटना होती है; तुम सबको अपने घर लाकर सेवा कर सकोगी ? अपनी सेवा से सबको बचा सकोगी ?"

सुनकर नयनतारा को मन में कष्ट हुआ। बोली, "तुमने सबके सा... इसकी तुलना की ? सभी और यह एक है। आखों के सामने इसकी य... हालत देखी, फिर भला चुप रह सकती थी, तुम्हीं कहो ?"

निखिलेश ने कहा, "ठीक है फिर आफिस-टाफिस जाने की जरूरत नहीं, तुम उसकी सेवा ही करो।"

निखिलेश उठ खड़ा हुआ। बोला, "मैं चलता हूं।"

नयनतारा ने कहा, "कहां जा रहे हो ?"

निखिलेश ने कहा, "एक काम है—"

"अभी तुम्हें ऐसा कौन-सा काम है ? आफिस से छुट्टी लेकर आए हो ?"

निखिलेश ने कहा, "अभी बजट का काम चल रहा है। अभी छुट्टी मिल सकती है ?"

"फिर ?"

"टिफिन में तुम्हें यह कहने के लिए तुम्हारे आफिस में गया था कि आज मैं आठ उन्नीस की ट्रेन से घर आऊंगा। तुम आफिस में मेरा इंतजार मत करना, घर चली आना। लेकिन वहां सुना, आज तुम आफिस ही नहीं आई हो। मुझे चिंता हो गई। सोचा, ऐसा तो कभी होता नहीं था। मन में आशंका भी होने लगी, कोई दुर्घटना हो गई ! मैं तुरन्त अपने आफिस आया। जाकर कहा, 'मेरी पत्नी की तबीयत बहुत खराब है, मैं जाता हूं—' "

नयनतारा ने कहा, "मेरी तबीयत खराब हो गई है, तुम्हें यही सन्देह कैसे हुआ ? जाने के समय तो तुम देख ही गए थे, मैं स्वस्थ हूं—एकाएक मेरी तबीयत क्यों खराब होने लगी ?"

"ठिकाना क्या है ! पहले तो तुम कभी आफिस में गैरहाजिर नहीं हुई। मुझे क्या मालूम कि घर में यह कांड हुआ है। नाहक ही आज आफिस का आधा दिन मेरा गया। अथच अभी बजट तैयार हो रहा है।"

"तो अभी कहां जा रहे हो तुम ?"

निखिलेश ने कहा, "देखता हूं, कहां जाता हूं। किसी तरह से समय तो बिताना होगा न।"

नयनतारा बोल उठी, "यानी आज तुम्हें समय बिताने के लिए बाहर जाने की नौबत आ गई। आज तक तो घर ही में तुम्हारा समय ठीक से बीतता था।"

"वह बीतता था, इसलिए कि तुमको समय था। आज तो तुम्हें खुद ही समय नहीं है। आज तो तुम रोगी की तीमारदारी में व्यस्त रहोगी। तुम्हें काम भी तो बहुत है।"

"तुम मुझे इतनी चुभाकर बात क्यों कह रहे हो ?"

निखिलेश ने कहा, "चुभाकर कब कहा है ? मैं तो सच ही कह रहा हूं। तुमको काम नहीं है ?"

नयनतारा ने कहा, "हजार काम हों, फिर भी तुमसे बात करने का भी समय है। उसे घर ले आई हूं, इसलिए तुम नाराज क्यों हो रहे हो ? तुम क्या चाहते हो, एक आदमी यों ही जान गंवाए ?"

"मैं क्या यही कह रहा हूं ? मुझे तुम इतना नीच समझती हो ?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं नहीं, तुम मुझपर रंज न हो। तुम उसे पहचानते नहीं हो, इसीलिए तुम्हें उसपर इतनी रंजिश हो रही है। यदि उसे पहचानते होते, तो समझते, उसपर नाराज होना अन्याय है, बल्कि उसपर सबको दया ही होनी चाहिए।"

निखिलेश ने कहा, "आश्चर्य है। आज तुम उसकी ओर से सफाई दे रही हो। और, तुम्हें जो भी कष्ट है, जो भी पीड़ा है, सब उसीकी वजह से है। याद है, एक दिन इन लोगों ने तुम्हारी कैसी तौहीनी की थी, ससुराल के उन जुल्मों को तुम इतनी जल्दी भूल गईं ? ऐसा भुलक्कड़ है मन तुम्हारा ? तुम जितने दिन भी उनके यहां थीं, एक दिन को भी शान्ति मिली थी तुम्हें ? क्या समझती हो, तुम्हारा वह रोना-पीटना मैं भूल गया हूं ?"

नयनतारा ने कहा, "तुम जो कह रहे हो, सच कह रहे हो। लेकिन उसमें इसका कोई कसूर नहीं है। यह क्या करता ? देखो न, बेहोशी में भी यह 'कालीगंज की बहू, कालीगंज की बहू' बोल रहा है। जिस दिन मेरा 'बहूभात' था, उस दिन इसके दादाजी ने कालीगंज की बहू को मरवा दिया था, उस बात को यह अभी भी भूल नहीं सका है।"

"कसूर उसके दादा ने किया और सजा उसको तुमको मिलेगी ? कोई भी भला आदमी अपनी स्त्री के साथ ऐसा सलूक करता है ? ऐसा कभी किसीने सुना है ? और तुम उसी आदमी को सपोर्ट कर रही हो ?"

नयनतारा ने कहा, "मैं देख रही हूं, तुम सचमुच ही मुझपर नाराज हो गए हो। नहीं तो सब कुछ जानते हुए भी तुम उसे भला-बुरा क्यों कह रहे हो ?"

"भला-बुरा नहीं कहूंगा ? यह जानती हो, मैं अगर उसी दिन नवाबगंज में होता, तो मैं उसे कोड़े लगाता।"

"छिः ! यह क्या कह रहे हो ? यह बगल के कमरे में ही है, अगर सुन ले ? गुस्सा होने पर तुम्हें क्या होश भी नहीं रहता ? उस व्यवहार के लिए क्या यह जिम्मेदार है ?"

"यह नहीं तो कौन जिम्मेदार है ?"

"जिम्मेदार है उसका बाप, उसका दादा। जिम्मेदार हैं उसके पुरखे।"

"मगर यह किस शास्त्र में लिखा है कि उसके पुरखों के लिए तुम दंड भोगोगी ? यह किस देश का न्याय है ?"

"तुम चुप भी रहो, बहुत जोर-जोर से बोल रहे हो तुम। सब जान-सुनकर भी तुम ऐसी बातें क्यों कह रहे हो ? इसने तो मुझसे सब कुछ खोलकर ही कहा था। उसके बाद भी मैं इसे दोष दे सकती हूं ?"

"तब तो तुम अपनी ससुराल में ही रह सकती थीं। वहां से चली क्यों आईं ?"

नयनतारा ने कहा, "नः, तुम मुझसे झगड़ा किए बिना आज नहीं मानोगे।"

निखिलेश ने कहा, "तुमने मेरा सिर्फ झगड़ा करना ही देखा, यह तो एक बार भी नहीं देखा कि मैंने तुम्हें प्राइवेट से मैट्रिक पास कराके नौकरी दिला दी। उस समय तो तुमने कहा था कि तुम ससुराल वालों का नाम भी जबान पर नहीं लाओगी—"

नयनतारा ने कहा, "ठीक है। बात छोड़ो, मैं चाय बनाती हूं। चाय पियो, मैं भी पिऊंगी। चाय पीने से तुम्हारा गुस्सा कम होगा।"

निखिलेश ने कहा, "नहीं। चाय मैं नहीं पिऊंगा। तुम पियो। मैं बाहर जाऊंगा—"

निखिलेश बाहर जाने लगा। नयनतारा राह रोककर सामने खड़ी हो गई। बोली, "बिना चाय पिए तुम बाहर नहीं जा सकते। आफिस में तो तुम इस समय एक बार चाय पीते हो। मैं गिरि से चाय बनाने को कहती हूं।"

नयनतारा जा रही थी। निखिलेश ने कहा, "सुनो, एक बात सुनती जाओ—"

"क्या?"

"इसे और कब तक यहां रक्खोगी?"

बात सुनकर नयनतारा भौंचक्की रह गई। बोली, "आखिर तुम चाहते क्या हो, इस बीमार आदमी को इसी हालत में घर से निकाल दूं?"

निखिलेश ने कहा, "मैं यह थोड़े ही कह रहा हूं। तुम मेरी बात का उलटा मतलब क्यों लगा रही हो? आज तो इसकी वजह से आफिस नहीं जा सकी। अब क्या रोज ही गैरहाजिर होओगी?"

नयनतारा ने कहा, "आफिस से गैरहाजिर नहीं रहूंगी तो इसकी देख-भाल कौन करेगा? गिरिबाला करेगी? उसीके जिम्मे लगाकर चली जाऊं? कहीं कुछ हो-हवा गया तो उस बूढ़ी से सम्भालते बनेगा?"

"अस्पताल भेज देती तो नहीं होता। वहां भेजने में हर्ज ही क्या है? वहां डाक्टर है, नर्स है, देख-भाल करने वालों की कमी नहीं—वहीं भेज दो न। और फिर खर्च की भी तो बात है। डाक्टर बुलाने में भी तो रुपया लगता है। महीने का अन्त है—"

नयनतारा ने निखिलेश की ओर अच्छी तरह से देखा। जिस आदमी ने मुसीबत की घड़ी में उसे सहारा दिया है, अपनी जेब से खर्च देकर प्राइवेट से इम्तहान पास कराया, छोटी-मोटी एक नौकरी भी दिला दी—उसका भी मन आज एक निहायत मामूली-सी घटना पर ईर्ष्या से कातर हो उठा क्या?

निखिलेश ने फिर कहा, "मैं जो कह रहा हूं, कुछ बेजा नहीं कह रहा हूं। तुम बल्कि जरा अच्छी तरह से सोचकर देखो। ये सज्जन कब तक चंगा होंगे, इसका कुछ ठीक तो है नहीं, और बिलकुल चंगा होंगे भी कि नहीं, इसका भी कुछ ठीक नहीं।"

नयनतारा मानो कुहक उठी। बोली, "अजी, तुम ऐसा न कहो। बल्कि यह कहो कि यह जल्दी से जल्दी चंगा हो जाए—"

"चंगा हो जाए, यह तो मैं चाहता ही हूं। मैं क्या यह चाहता हूं कि यह

ठीक न हो सके? मगर मैं तुम्हारी ही सोचकर ऐसा कह रहा हूं, तुम्हारे आफिस के बारे में सोचकर कह रहा हूं। आखिर रोज-रोज आफिस न जाओ तो कैसे चलेगा? इसे अच्छा होने में बहुत दिन लग जाएं, तो क्या करोगी? तब-तक आफिस में गैरहाजिर होती रहोगी?"

नयनतारा ने कहा, "मेरी तो छुट्टियां काफी पड़ी हैं। ऐसे में गैरहाजिर होने से तनख्वाह तो नहीं कटेगी। न होगा तो, जितने दिन की छुट्टी बाकी है, उतने दिन की ले लूंगी—

"और उसके बाद? जब तुम्हारी छुट्टी खत्म हो जाएगी?"

"तब तक क्या यह खाट पर ही पड़ा रहेगा? देख लेना, उससे पहले ही अच्छा हो जाएगा और अच्छा होते ही मैं इसे घर भेज दूंगी। और फिर यह भी है कि होश आ जाने पर वह खुद ही यहां नहीं रहना चाहेगा। मुझ पर नजर पड़ते ही वह घबराने लगेगा।"

निखिलेश ने कहा, "चला ही जाए तो अच्छा। मैं तो चाहता हूं कि वह ठीक हो जाए और अपने घर चला जाए। जिससे सारा नाता टूट चुका है, उसका तो यहां रहना ही उचित नहीं है।"

"लेकिन वह होश क्या अभी उसे है? होश होने से मैं क्या उसे यहां ला भी सकती थी?"

"डाक्टर क्या कह रहे हैं?"

"डाक्टर तो कह रहे हैं, ठीक होने में समय लगेगा। कहते हैं, बहुत दिनों से कोई शॉक लगने से नसों पर दबाव पड़ा है—और बदन में शायद खून ही नहीं है—"

"खून दिलाना पड़े तो यह तो बड़े खर्च की बात है।"

नयनतारा को बात अच्छी नहीं लगी। बोली, "तुम तो सिर्फ खर्च की ही बात सोच रहे हो। एक आदमी के जीवन से खर्च का सवाल ही क्या बड़ा है? पैसों की जरूरत पड़ेगी, तो जितना सम्भव होगा, दो-चार सौ रुपये मैं आफिस से कर्ज ले लूंगी।"

"कर्ज लोगी? कर्ज लेने से चुकाना नहीं पड़ेगा? तनख्वाह से हर माह रुपये काट नहीं लिए जाएंगे?"

नयनतारा ने कहा, "काट तो लेंगे ही। किन्तु कितनों के घर बूढ़े सास-ससुर रहते हैं, उनको खाना-कपड़ा नहीं देना पड़ता है? रोग-दुख होने से डाक्टर को इलाज का खर्च नहीं देना पड़ता है? सोच लो, वैसा ही कुछ हुआ। यह सोच लो न कि तुम्हारी ससुराल के बहुत नजदीकी रिश्ते के कोई बीमार होकर तुम्हारे यहां आ गए हैं?"

"तो यह क्या तुम्हारा कोई सगा-सम्बन्धी है? आज भी तुम इसे अपना कोई ही समझती हो?"

नयनतारा बोली, "जाओ, तुमसे मैं तर्क नहीं कर सकती। तुम्हारी जुबान पर कुछ रुकता ही नहीं? फिजूल की बात क्यों कह रहे हो?"

निखिलेश ने कहा, "मैं फिजूल की बात कह रहा हूं? तुम रास्ते से एक

जितको-तिसको उठा लाए और दोष मेरा हो गया। खैर, अब मैं नहीं बोलता, मैं चलता हूं, रास्ता छोड़ दो—"

नयनतारा ने रास्ता नहीं छोड़ा। निखिलेश के दोनों कंधों पर अपने हाथ रखकर बोली, "न, जाओ मत। जाना हो, तो चाय पीकर जाओ, नहीं तो मैं समझूंगी तुम मुझसे नाराज हो—"

निखिलेश ने कहा, "लेकिन चाय पीने से ही क्या मुझे मेरी बात का जवाब मिल जाएगा?"

नयनतारा ने कहा, "तुम्हारी बात का जवाब तो मैंने दिया, और किस बात का जवाब मांग रहे हो तुम? तुम तो सिर्फ खर्च की बात सोच रहे हो। मैं नौकरी नहीं करती होती तो मेरे अन्न-वस्त्र का भार तुम नहीं लेते क्या? कितने ही लोगों की पत्नियां तो नौकरी नहीं करती हैं, तो क्या वे उन्हें खाना नहीं देते हैं, कपड़ा नहीं देते हैं? बीमार पड़ने पर डाक्टर को नहीं दिखाते? इस स्थिति में समझ लो मैंने अपने वेतन के रुपये खर्च किए, यह तो मेरी कमाई की रकम है। मैं उन रुपयों को भी अपनी इच्छा के अनुसार खर्च नहीं कर सकती? बोलो, चुप क्यों हो गए, जवाब दो।"

निखिलेश आवेश में आ गया था। उसी आवेश में वह शायद नयनतारा को जवाब देने जा रहा था, लेकिन तब तक पीछे से गिरिबाला का गला सुनाई पड़ा, "दीदीजी—"

नयनतारा को मानो अब सुध आई। निखिलेश से बातें करते-करते वह भी मानो अपने पिछले दिनों में लौट गई थी। गिरिबाला की पुकार सुनते ही चौंक उठी, "आई—"

गिरिबाला ने फिर कहा, "डाक्टर साहब आए हैं—"

नयनतारा चौंकी। निखिलेश की ओर देखकर बोली, "डाक्टर साहब आ गए। सवेरे आए थे। मैंने शाम को भी आने को कहा था। तुम अभी चले मत जाना—डाक्टर साहब के जाते ही मैं चाय बना दूंगी, पी लेना, फिर जाना।"

नयनतारा जल्दी-जल्दी उस कमरे में चली गई। डाक्टर साहब तब तक रोगी के कमरे में पहुंच गए थे।

"रोगी कैसा है? होश आया था उसके बाद?"

नयनतारा तब तक उनके पास जा खड़ी हुई थी। बोली, "आपके चले जाने के बाद बड़बड़ा रहे थे। फिर पानी मांगा—"

"और क्या?"

"दवा दी है। आपने जो टेबलेट बताई थी, वह अभी तक मंगवा नहीं सकी। अब मंगवा लेती हूं।"

रोगी की जांच करते-करते डाक्टर ने कहा, "अब तक वे दवाएं खिला देनी चाहिए थीं। नहीं तो असली दवा है—विटामीन मैलन्युट्रिशन की वजह से ही तो ऐसा हुआ है—"

नयनतारा ने कहा, "मैं अभी तुरन्त मंगवा लेती हूं।"

"अच्छा तो पेशेंट को होश आया था।"

डाक्टर साहब ने जैसे अपने आपसे ही यह बात कही। रोगी को देख चुकने के बाद बोले, "ये दवाएं पेट में जाने से और भी जल्दी होश आ जाता।"

नयनतारा ने पूछा, "अच्छा होने में और कितने दिन लगेंगे डाक्टर साहब?"

"ज्यादा दिन नहीं लगेंगे, मगर आप दवाएं फौरन मंगवा लें।"

वह कमरे से बाहर निकले। नयनतारा ने हाथ धोने के लिए साबुन पानी बढ़ा दिया। तुरन्त फिर अन्दर गई। आलमारी को खोला। उसीकी दराज में उसके गिरस्ती-खर्च के रुपये रखे रहते हैं। रुपयों को गिनकर उसने देखा। महीना खत्म हो रहा था। गिने-चुने कुछ रुपये ही बच रहे थे। एक-एक रुपये के आठ नोट लाकर उसने डाक्टर साहब को दिए। सवेरे भी आठ रुपये दिए थे। मिक्सचर मंगाने में भी सात-आठ रुपये निकल गए थे। पर असली दवाएं अभी बाकी ही थीं। ये ही थी दामी-दामी विटामीन की दवाएं।

बाहरी आंगन के कोने में डाक्टर बाबू खड़े हो थे। तौलिया से हाथ पोंछ रहे थे। नयनतारा ने रुपये दिए। उन्होंने बिना गिने ही जेब में रख लिए। बोले, "कल सवेरे मैं फिर आऊंगा। जैसे बताया, आप इनको वे सब दवाएं खिला दीजिएगा।"

डाक्टर साहब रास्ते पर अपनी गाड़ी पर सवार हुए और चले गए।

इस बीच गिरिबाला ने चाय बना ली थी। उसने चाय के दो प्याले लाकर नयनतारा को दिए। चाय के प्यालों को हाथ में लेकर नयनतारा ने कहा, "तुम्हें एक बार दवा के लिए दूकान जाना होगा गिरि—"

कहकर वह सोने के कमरे में गई। कमरा खाली पड़ा था। निर्निमेष वहां नहीं था। गया कहां वह? चाय पिए बिना ही चला गया। दोनों प्याले हाथ में लिए नयनतारा देर तक वहीं बुत बनी खड़ी रही। निर्निमेष तो कहे बिना इस तरह से कभी नहीं जाता।

बाहर गई। गिरि से पूछा, "गिरि, ये कब बाहर निकल गए?"

गिरिबाला ने कहा, "एं, भैया जी कमरे में नहीं हैं?"

निर्निमेष चुपचाप कब निकल गया, किसीको पता नहीं चला। नयनतारा भी नहीं जान पाई, गिरिबाला भी नहीं। अपनी नयनतारा को छोड़कर वह इतने दिनों में कभी भी शायद बाहर नहीं गया। आफिस जाने के लिए निर्निमेष घंटा-भर पहले निकलता, क्योंकि उसका आफिस आधा घंटा पहले लगता है। नयनतारा जाती तो स्यालदा की ट्रेन से। लौटते समय निर्निमेष नयनतारा के आफिस में जाता और दोनों रोज साथ ही लौटा करते। अब तक सदा यही होता आया है। व्यतिक्रम आज ही पहली बार हुआ, आज ही यह नियम टूटा।

नयनतारा ने चाय पी। फिर वह झटपट बाहर के कमरे में आई। सदानन्द बिस्तर पर बेखबर सो रहा था। उसे खाक भी खबर नहीं कि वह

कहां आ गया है ! कहां, किसके यहां आकर उसने वहां की नियम-शृंखला को बिलकुल तोड़ दिया है !

संभवतः इसी तरह से किसी गिरस्ती, किसी वंश का इतिहास, भूगोल—सब कुछ एक दिन छिन्न-भिन्न हो जाता है। सामान्य तुच्छ किसी कारण से आदमी से आदमी अथवा एक दूसरे देश से देश के सम्बन्ध की कंकरीट फटकर उसमें दरार पड़ती है और दरार में किसी पीपल का सर्वनाशी अंकुर उग आता है। शुरू में जब वह अंकुर रहता है, तो किसीको पता नहीं चलता। कोई उसे देख नहीं पाता। पाप का यह बीज लोगों की नजरों की आड़ में चुपचाप अपना काम करता रहता है। कालीगंज की बहू एक ऐसी ही तुच्छ बीज थी। लेकिन वही तुच्छ बीज जो ऐसे एक विशाल महीरुह में बदल जाएगा, नवाबगंज के चौधरी परिवार को इस बुरी तरह से छिन्न-भिन्न कर देगा, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सका था। न तो बूढ़े मालिक ही कल्पना कर सके थे, न चौधरी जी ही। चौधरी जी के ससुर कीर्तिपद बाबू भी कल्पना नहीं कर सके थे। वह यदि इसकी कल्पना कर पाते तो अपनी इकलौती बेटी प्रीतिलता का इस परिवार में ब्याह ही नहीं करते शायद। और कृष्णनगर के कालीकांत जी भी कल्पना नहीं कर सके थे, नहीं तो क्या वही अपनी इकलौती बेटी नयनतारा को इस वंश के दुर्भाग्य के साथ जोड़ देते !

नयनतारा जिस दिन नवाबगंज से सारा सम्बन्ध तोड़कर, मांग का सिंदूर पोंछकर, हाथ की चूड़ियां फोड़कर कालीकांत जी के सामने जाकर खड़ी हुई, विपिन वगैरह उसके कुछ ही देर पहले लौटकर वहां पहुंच चुके थे। लेकिन भय और संकोच के मारे वे लोग पंडित जी के सामने खुले नहीं। पंडित जी ने पूछा, "नयनतारा कैसी है विपिन ?"

विपिन नाई ने कहा, "जी अच्छी है।"

"उसने मेरे बारे में कुछ पूछा ?"

"जी हां। मैंने कहा, आप अच्छे हैं।"

"और समधी-समधिन जी ?"

"जी, वे लोग भी आपके बारे में पूछ रहे थे।"

"और जामाता जी ? वे कैसे हैं ?"

सारा हाल सुनकर कालीकांत जी प्रसन्न हुए। खैर, नयनतारा अच्छे घर-वर में पड़ी। इससे खुशी की बात और क्या हो सकती है ? बोले, "तो अब तुम लोग जाकर आराम करो विपिन ! काफी परिश्रम पड़ा तुम्हें। जाओ। मेरे भेजे सामान तो उन्हें पसन्द आए न ?"

"जी पंडित जी ! बेहद पसन्द आए। सामान देखकर सब लोग वाह-वाह कर उठे। दही और मिठाई तो बहुत ही पसन्द आई। गांव के एक-एक आदमी सौगात देखने के लिए आए थे—"

"तुम लोगों को भरपेट खिलाया-पिलाया कि नहीं ?"

"जी हां। खूब खिलाया। समधी जी ने खड़े होकर अपने सामने खिलाया।"

"क्या-क्या खिलाया ?"

"मछली, महीन बासमती चावल का भात, खीर, कटहल, आम, रस-गुल्ला—"

परन्तु कहना उनका पूरा नहीं हो पाया। बातें पूरी होने के पहले ही हड़बड़ाती हुई नयनतारा आ पहुंची। कालीकांत जी ने तो मानो आंखों के सामने भूत देखा।

"बाबूजी !"

नयनतारा की आवाज़ सुनकर और उसका वैसा चेहरा देखकर कालीकांत जी तो आसमान पर से गिर पड़े।

"अरी बिटिया, तू ? सकल क्या हो गई है तेरी ? एकाएक चली आई ?" वह एक बार विपिन और एक बार नयनतारा की ओर देखने लगे।

"अभी-अभी तो विपिन बता रहा था कि तू अच्छी है, समधी जी वगैरह अच्छे हैं, इन लोगों को खूब छककर खिलाया…"

नयनतारा चीख उठी, "यह सब झूठ है बाबूजी, सब झूठ कहा। मैंने आपके भेजे हुए सौगात को मिट्टी में फेंक दिया—"

"हैं ! ऐसा क्या हो गया बेटी ?"

आवेश में कालीकांत जी के हृत्पिंड की गति एवं ध्वनि बढ़ गई। बेटी की सकल देखकर डर से वह कांपने लगे। बोले, "तेरा सधवा का चिह्न कहां गया? मांग का सिंदूर, हाथ की चूड़ियां, गले का हार ?"

"वह सब मैंने फेंक दिया बाबूजी ! सिंदूर भी पोंछ डाला और चूड़ियां भी फोड़ डालीं, चूर-चूर कर दीं।"

उत्तेजना से कालीकांत जी उठ खड़े हुए। बोले, "और जामाता जी ? वह कहां है ?"

नयनतारा ने कहा, "आपके जामाता नहीं हैं बाबूजी, वह कभी नहीं थे और कभी रहेंगे भी नहीं।"

"अरे ! यह क्या कह रही है तू ? मेरे जमाई नहीं हैं ?"

"हां। आपके जमाई, समधी, समधिन—कोई नहीं है। बस, आप यही सोच लें, आपकी बेटी का कभी ब्याह ही नहीं हुआ। मैं उस घर से सारा नाता तोड़कर चली आई हूं। अब लौटकर वहां कभी नहीं जाऊंगी—"

कालीकांत जी कुछ समझ नहीं पा रहे थे। साथ में कैलाश गुमाश्ता आया था। लेकिन हाल-चाल का ढंग देखकर वह कब जो चुपके से खिसक गया, कोई जान भी न पाया।

क्या करें, कुछ समझ नहीं पा रहे थे कालीकांत जी। बोले, "सदानन्द कहां है ? वह मेरे साथ क्यों नहीं आए ?"

नयनतारा बोली, "आप उसकी बात न करें, उसका नाम भी न लें मेरे

सामने; वह नहीं है—"

"नहीं है से मतलब? नहीं है के क्या माने? बीमार है? मैं तो कुछ समझ ही नहीं पा रहा हूं। वह कब बीमार पड़ा, यह भी तो नहीं मालूम हो सका। समधी जी ने भी तो नहीं बताया कि वह बीमार हैं। अब मैं क्या करूं? तेरे मां नहीं है। तेरा मां-बाप, सब कुछ मैं ही हूं। आखिर मुझसे तो खोलकर सब कहेगी। मैं बूढ़ा हूं तो क्या, समझता नहीं?"

नयनतारा ने कहा, "वह समझने की आपको जरूरत भी नहीं है। अपनी बात मैं आप समझ लूंगी। अब से मैं कहीं नहीं जाऊंगी। सदा आपके पास ही रहूंगी, मैं आपके पास रहने के लिए ही आई हूं।"

"लेकिन...लेकिन..."

कालीकांत जी इससे ज्यादा बोल नहीं सके। तुरन्त निखिलेश को बुलवाया। विपिन से कहा, "जरा निखिल को तो बुलाओ, बुलाओ तो..."

उसके बाद से ही पंडित जी कैसे तो हो गए। निखिलेश ने उस समय तक नौकरी नहीं की थी। पहले ही बी० ए० पास किया था। कोई काम नहीं मिला, तो कानून पढ़ रहा था। छुटपन से ही आजाद ख्याल का लड़का। विधवा मा कृष्णनगर में रहती थी और निखिलेश कृष्णनगर से पास करके रोज कलकत्ता जाता-आता था। बचपन में स्वदेशी आन्दोलन में हिस्सा लिया। शराब की दूकान में पिकेटिंग करके एक बार औरों के साथ कई महीने जेल भी हो आया। कलकत्ता से जब जो नेता कृष्णनगर आए, उनके पीछे-पीछे डोलता रहा। खद्दर पहनना जब पुलिस की नजर में गुनाह था, उस समय सबकी नजरों के सामने छाती फुलाकर उसने खद्दर पहना। सभा में मंच पर से गरम-गरम भाषण भी दिया। लेकिन रुपयों की चिन्ता से आखिर उस ओर और बढ़ नहीं सका। बीच-बीच में पढ़ाई-लिखाई में रुकावट आई। अन्त में जब मां चल बसी, तो फिर वह उस ओर ही नहीं गया। दिन में नौकरी खोजता और शाम को एक घंटे के लिए लॉ-कालेज में जाता। बाकी समय यहां-वहां लड़कों को पढ़ाकर गुजारा चलाया।

जिस दिन कालीकांत जी चल बसे, उस दिन श्मशान से लौटते ही निखिलेश ने कहा, "तुमसे एक बात कहनी है नयनतारा—"

नयनतारा शोक से विह्वल थी। एक ही सहारा थे पिताजी, उन्हें खोकर उसका भविष्य अंधेरा हो गया था।

"यह बात दो दिन बाद भी कहने से चलता। लेकिन मैंने अपने मन में तै कर लिया है। मैं जानता हूं कि मेरे पास पैसा नहीं, यह भी जानता हूं कि ब्याह करके पत्नी के भरण-पोषण की औकात भी मुझमें नहीं है। लेकिन तुम ना नहीं करना—"

खूब याद है, निखिलेश के प्रस्ताव से नयनतारा का मन उस दिन विषैला-सा हो गया था। लगा, निखिलेश मानो अब तक उसके बाप के मरने की ही प्रतीक्षा कर रहा था। नयनतारा की बेबसी की ताक में था मानो। मानो उसके लिए नयनतारा का ससुराल से चला आना ही काम्य था।

श्राद्धादि हो-हवा गया। एक दिन निखिलेश आया। पूछा, "तुमने कुछ सोचा नयनतारा?"

मन से उस समय तक भी शोक की छाया गई नहीं थी। नयनतारा ने पूछा, "क्या सोचूंगी?"

"मैंने जो प्रस्ताव किया था, उसके बारे में?"

"कौन-सा प्रस्ताव?"

"मैं कहता हूं कि तुम मेरी पत्नी होकर मेरे घर चलो।"

सुनकर उस समय तो नयनतारा को लगा कि वह उसी समय निखिलेश को अपने घर से निकाल बाहर करे। लेकिन बड़े कष्ट से उसने अपने को सम्भाला। फिर अपने आश्रय का, अपने गुज़र-बसर का ध्यान हो आया। अगले ही महीने से तो उसे मकान का किराया देना होगा। चावल-दाल, नमक-तेल, मिर्च-मसाला, सभी कुछ तो खरीदना होगा।

नयनतारा ने नज़र उठाकर कहा, "यह कैसे सम्भव है?"

निखिलेश ने कहा, "सम्भव क्यों नहीं है? इसलिए कि एक बार तुम्हारा ब्याह हो चुका है? अगर कानून की कहो, तो उसमें तो अड़चन नहीं, कानून पास हो चुका है। हां, संस्कार की बात बेशक कह सकती, मगर उस लिहाज से भी रुकावट नहीं पड़ती, क्योंकि सदानन्द बाबू के साथ तुमने एक भी रात नहीं बिताई—यह तो तुम स्वयं ही कह चुकी हो।"

निखिलेश की युक्ति से नयनतारा उस दिन हार ज़रूर गई थी, पर फिर भी हार जाना उसके लिए उतना आसान नहीं हुआ। उस समय उसकी नज़रों के सामने भविष्य नाम की कोई चीज़ नहीं थी, शायद वर्तमान भी नहीं था। सिर्फ एक ही था, अतीत। और वह अतीत भी इतना भयंकर था कि उसको याद करते हुए भी डर लगता था। दरअसल भविष्य उसीका होता है, जिसे आशा रहती है। उस दिन तो नयनतारा के लिए आशा नाम की भी कोई चीज़ नहीं थी।

लेकिन फिर तो एक दिन उसे आशा हुई। शायद निखिलेश ने आशा दी, इसीलिए आशा हुई। नहीं तो जिसके पैरों तले की ज़मीन तक खिसक गई, निराशा से उसे तो आत्महत्या ही करनी चाहिए। आखिर एक दिन निखिलेश उसे कलकत्ता ले गया। अब याद नहीं है कि उसे उसने कहां टिकाया। कौन-सा तो आफिस। निखिलेश ने पहले से ही सारी व्यवस्था कर रखी थी। वहां से निखिलेश के तीन मित्र आए। आफिस के किसीने क्या-क्या तो पूछा। उसने क्या जवाब दिया, वह भी ठीक से उसके कानों नहीं पहुंचा। उन लोगों ने किसी कागज़ पर सही करने को कहा। उन लोगों के कहे मुताबिक उसने सही कर दी। उसके बाद सब लोग उसे लेकर कालीघाट मन्दिर चले गए।

याद है, ज़रा-सी ओट मिली कि निखिलेश ने कहा, "तुम रो क्यों रही हो? तुम्हें रोते देखकर ये लोग क्या सोच रहे होंगे?"

नयनतारा को खुद ही नहीं मालूम था कि वह रो क्यों रही है? गाड़ी

के आंचल से उसने मुंह जो पोंछा, सिंदूर-पानी से सारा आंचल लाल हो गया। शुरू-शुरू में बड़ा बुरा लगता था। यह क्या किया उसने ! ऐसा क्यों कर बैठी ! दुनिया में किसीको भी अपनी शक्ल दिखाने में शरम आती थी। निखिलेश ने जब नैहाटी के इस मुहल्ले में किराए पर मकान लिया, तो वह कैदी की नाई सारा दिन घर के भीतर बंद रहती थी। लेकिन क्रोध और घृणा से मांग के जिस सिंदूर को उसने एक दिन सबके सामने धो डाला था, उसी सिंदूर को उसने नैहाटी के इस घर में आईने के सामने खड़ी होकर अपने ही हाथों मांग में लगा लिया। उसके जीवन का यह भी एक मर्मांतक परिहास था। सिंदूर लगे अपने मुखड़े को देखते-देखते उसे ऐसा लगा कि पीछे और एक मुखड़ा खड़ा है। इस मुखड़े को देखते ही शरम और नफरत से उसने आंचल से अपने चेहरे को ढक लिया। उस समय उसे अपना मुंह देखने में भी शरम लगी। वह बिस्तर में मुंह गाड़कर लेट गई।

यह सब तो शुरुआत की बातें हैं। फिर धीरे-धीरे कैसे तो सब कुछ सहज हो आया। सच पूछिए तो निखिलेश ने ही सब कुछ सहज कर दिया। बीच-बीच में वह नयनतारा को कलकत्ता घुमा लाता। कलकत्ता उसने पहले कभी देखा नहीं था। कृष्णनगर में पली और वहां से सीधे नवाबगंज चली गई। वह तो और भी सुनसान देहात। मगर तब सोचा किसने था कि कभी वह इस तरह से कलकत्ता भी देख पाएगी ? किसने यह सोचा था कि उसके बाप ने जिस आदमी के साथ उसकी किस्मत को बांध दिया था, उसके बजाय ठीक वहीं और एक पुरुष आकर उसे इस तरह से नये जीवन का स्वाद देगा।

रात को निखिलेश के साथ सोए-सोए कभी-कभी अचानक ही एक पुराने मुखड़े की छांव उसकी आंखों में थिरक जाती। वह फौरन उठ पड़ती। आंख-मुंह में पानी डालकर फिर सो जाने की कोशिश करती।

निखिलेश को पता चल जाता, तो पूछता, "क्या हुआ, नींद नहीं आ रही है, क्यों ?"

नयनतारा कहती, "नहीं।"

निखिलेश कहता, "क्यों नहीं आ रही है नींद ? दोपहर में सोई थी शायद ?"

नयनतारा कहती, "हां—"

इसके सिवाय वह और क्या कहे ! निखिलेश दिन-भर आफिस करता, फिर रोज का आना-जाना। सवेरे साढ़े आठ बजे की ट्रेन से जाता, शाम के सात बजे तक लौटता। नयनतारा का दिन-भर अकेले ही बीतता। बोस टोले के किराए के मकान में अकेली बंदिनी-सी आकाश-पाताल सोचती रहती। निखिलेश लौटकर आता तो उसे पढ़ाने बैठता। कृष्णनगर में दरजा नौ तक पढ़कर ही उसकी पढ़ाई खतम हो गई थी। उसके ब्याह के पहले भी निखिलेश उसे पढ़ाया करता था। अब जब निखिलेश की पत्नी हुई, तब भी पढ़ाई शुरू हुई ! हिसाब और अंग्रेजी, इतिहास और भूगोल, बंगला—कोई

विषय नहीं छूटा। फिर से नयनतारा निखिलेश की छात्रा हो गई। ऐसी छात्रा कि जिसे सज़ा भी नहीं दी जा सकती और प्रश्रय भी नहीं दिया जा सकता। प्रश्रय देने से पढ़ाई चौपट हो जाएगी। और सज़ा देने से उसके अहम को ठेस लगेगी।

उसके बाद प्राइवेट परीक्षा देने के लिए कलकत्ता गई। उफ़, निखिलेश के परिश्रम का क्या कहना, कैसी सज़ा! जैसे भी हो नयनतारा को वह सुयोग्य बनाकर ही रहेगा। बात-बात में वह नयनतारा से कहता, "पुरानी बातों को भूल जाओ, समझ लो कि नये सिरे से तुम्हारे जीवन का आरम्भ हुआ है।"

जवाब में नयनतारा कुछ नहीं कहती। निखिलेश जो कहता, वही करती। जैसे कल की गुड़िया हो। कुंजी देकर निखिलेश छोड़ देता, वह कल के खिलौने-सी सोती, सोचती, हंसती, हिलती। लेकिन कोई जान नहीं थी उसमें। आदमी नाम का एक जीव, जो संसार का एक प्राणी होकर, सबसे सम्बन्ध रखकर, सुख-दुःख का भागी होकर जीता है—वह मानो वैसी नहीं। उसके सामने उसका काम करना चाहिए, सिर्फ़ इसलिए काम करना; काम नहीं करने से नाखुश होगा, इसलिए हुक्म बजाना।

सच, निखिलेश ने उसके लिए क्या नहीं किया! एक दिन आकर उसने कहा, "जानती हो, तुम्हारी नौकरी लग गई है।"

नयनतारा अवाक् हो गई, "नौकरी? मैं नौकरी करूंगी?"

निखिलेश ने कहा, "हां। तुमसे एक दरख्वास्त लिखाकर ले गया था न, वही नौकरी। शुरू में ही डेढ़ सौ देगा। आगे चलकर ढाई सौ के लग-भग..."

नयनतारा दहल गई थी। बोली, "मैं लेकिन नौकरी कर सकूंगी?"

निखिलेश ने कहा, "अरे, नौकरी के हाथी-घोड़ा क्या है! सरकारी नौकरी में तो कोई काम ही नहीं करना पड़ता। आफ़िस जाकर हाज़री देना, बस और फिर तुम औरत हो। मर्द लोग ही कोई काम नहीं करते तो औरतें क्या करेंगी। काम रेकार्ड सेक्शन का है। दिन-भर में दो-चार चिट्ठियों को नम्बर मिलाकर फाइल में लगा देना, बस छुट्टी।"

"लेकिन रोज़ रेलगाड़ी से जाना-आना। डेली पैसेंजरी?"

"मेरे साथ दो-चार दिन जाने-आने से ही आदत हो जाएगी। मंथली टिकट कटवा दूंगा। रोज़-रोज़ टिकट कटाने की झंझट भी नहीं रहेगी। नैहाटी से बेहिसाब गाड़ियां हैं, जब चाहो, जा सकती हो। जब चाहो, आ सकती हो। कभी-कभी तुम्हें आफ़िस से साथ लेकर सिनेमा-थिएटर देखकर लौटेंगे।"

उस समय कलकत्ता के बारे में नयनतारा को कोई धारणा ही नहीं थी। सदावरज में एक तरह का, नैहाटी में और एक तरह का। यों वह भी ससुराल थी और यह भी ससुराल ही है। फिर भी दोनों में फ़र्क़ है।

इस तरह एक दिन नौकरी शुरू हुई। शुरू-शुरू में रोज़ निखिलेश ही

उसे अपने साथ ले जाया करता। उस समय भीड़ देखकर नयनतारा को दहशत होती थी। गिरिबाला अकेली घर पर पहरा देती। घर का भार उसीपर छोड़कर वे लोग चले जाते।

उसी समय से नयनतारा बदल गई। और ही नयनतारा हो गई। नहीं तो जो नवाबगंज में ससुराल के डर से एक बात भी नहीं बोल सकती थी, दुखड़ा रोने के लिए छिप-छिपकर बगल में नानीजी के यहां जाती थी—वही लोगों की भीड़ झेलती हुई आफिस कर रही है। पहले उसे खुद भी इसपर विश्वास नहीं होता था।

पहली बार उसे जिस दिन तनखाह मिली, निखिलेश ने कहा, "चलो, आज हम लोग घर में भोजन नहीं करेंगे—"

नयनतारा ने कहा, "घर में नहीं भोजन करोगे, तो कहां करोगे ?"

निखिलेश ने कहा, "वह तुम्हें नहीं मालूम है। यहां तुम्हारे नैहाटी बाजार जैसा वह गंदा होटल नहीं, दामी होटल है। खूब साफ-सुथरा। वहां खाने में रुचि होगी—"

नयनतारा ने कहा, "लेकिन होटल में क्यों खाएंगे ? मैं तो गिरिबाला से रसोई बनाकर रखने को कह आई हूं, वह तो पका-चुकाकर बैठी रहेगी—"

निखिलेश ने कहा, "पहली बार के वेतन के रुपयों से जरा आनन्द उठाना चाहिए। इसके बाद फिर नहीं खाएंगे। आज तुम्हें वेतन मिला है, इन रुपयों का थोड़ा सदुपयोग करना अच्छा है।"

जीवन में नयनतारा की अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं हुआ है। निखिलेश के लिए ही जब उसे नौकरी मिली, निखिलेश के लिए ही जब वह पढ़-लिखकर पास हुई, तो उसकी इच्छा के विरुद्ध करना उचित नहीं। सो पहले दोनों एक सिनेमा देखने गए। सिनेमा देखने के बाद टैक्सी से जाने उसे कहां ले गया निखिलेश। एक बहुत बड़े मकान में फाटक पार करके दाखिल हुए। चारों ओर से कैसी तो गंध नाक में आई।

नयनतारा ने फुसफुसाकर निखिलेश से पूछा, "यह काहे की गंध है ?"

निखिलेश ने कहा, "रसोई की। चाप, कटलेट, कलिया, पुलाव पकाने की गंध। चलो भी तो—खाने के बाद सब समझ जाओगी।"

अन्दर सचमुच ही एक स्वप्न-राज्य। नयनतारा को लगा, वह, मानो स्वप्नपुरी में पहुंच गई है। कतारों से कुर्सी-मेज पर बैठे कितने स्त्री-पुरुष खा रहे थे। सिर पर पगड़ी वाले आदमी परोस रहे थे। कोने की एक खाली मेज पर दोनों बैठे।

नयनतारा ने कहा, "तुमने पहले क्यों नहीं बताया कि यहां आओगे। जरा बन-ठनकर भद्र बनकर आती। मुझे बड़ी लाज लग रही है।

निखिलेश ने कहा, "तुम्हारे अच्छी साड़ी और ब्लाउज है ही कहां कि बन संवरकर आतीं—"

नयनतारा को भी लगा, सचमुच ही उसके कोई अच्छी साड़ी नहीं है—कम-

से-कम ऐसी जगहों में आने लायक कपड़े तो उसे पसन्द नहीं हैं।

निखिलेश ने कहा, "साड़ी की ही क्या बात, तुम्हारे तो गहना-गुरिया भी नहीं। सब तो तुम्हारी ससुराल में ही रह गए। आते समय तुम वह सब ला तो सकती थी—"

नयनतारा ने कहा, "उनपर तो मुझे घृणा हो गई थी। जिनसे झगड़ा करके चली आई, उनकी चीज छूने में भी मुझे घिन लगने लगी।"

"और तुम्हारी बाबूजी के दिए गहने? मास्टर साहब ने तुम्हें कुछ कम गहने नहीं दिए थे। वह सब तो ला सकती थी, अब काम आते। इस समय सोने की क्या कीमत है, मालूम है? एक सौ छत्तीस रुपये तोला। दाम शायद और भी बढ़े—"

नयनतारा को सब याद आने लगा। बोली, "उस समय क्या मेरा दिमाग ठिकाने पर था? मैंने आत्महत्या नहीं कर ली, यही तो आश्चर्य है। मुझे क्या कष्ट था, उसकी तुम कल्पना ही नहीं कर सकते। ससुर होकर रात में कोई कभी बेटे की बहू के कमरे में गया है कहीं! इसकी कोई कल्पना भी कर सकता है? सुनकर तुम समझोगे झूठ कह रही हूँ—"

निखिलेश ने कहा, "जाने भी दो। यह सब भूल जाना ही ठीक है। खाओ—"

मेज पर इस बीच खाना दे गया था। किस्म-किस्म की चीजें। नयनतारा ने कहा, "मैं चम्मच से नहीं खा सकूँगी, हाथ से ही खाती हूँ।"

"हाँ, खाओ। मैं तुम्हें काँटा-चम्मच से खाना सिखा दूँगा। अभी हाथ से ही खाओ—"

उस दिन उस होटल में निखिलेश के साथ खाते हुए उसे लगने लगा, उसके जीवन में जो कुछ हुआ, शायद भले के लिए ही हुआ। नहीं तो क्या वह यह सब देख पाती, यह सब खाना नसीब होता? अपने नवाबगंज में सास-ससुर के पास बहुत पैसे थे। पिताजी ने धन देखकर ही तो उसका वहाँ ब्याह किया था। मगर वहाँ तो यह सब नहीं था—यह रोशनी, यह ठाट-बाट, ऐसी खुशी, ऐसा ऐश्वर्य…

नयनतारा ने कहा, "देखो, यहाँ खाने से ऐसा क्या हुआ! इससे तो अच्छा कि अगले महीने से रुपये जमा करके साड़ी खरीदूँ। घर में हम क्या खाते हैं, यह तो कोई नहीं देखता, लेकिन साड़ी और गहने तो लोग देखेंगे—"

निखिलेश ने कहा, "एक दिन छुट्टी लेकर नवाबगंज जाने की सोच रहा हूँ—"

"क्यों, नवाबगंज किसलिए जाओगे?"

"तुम्हारे गहने वहाँ से ले आने के लिए। ठट्ठा है क्या! उस समय के आठ हजार रुपये के गहने, अभी उनकी कीमत नहीं भी कुछ होगी, तो कम-से-कम बारह हजार। बारह हजार रुपये आज हमारे पास होते तो हमें कोई चिन्ता होती? हर महीने मकान-किराया कितना देता हूँ? उससे तो हमारा अपना मकान ही हो जाता—"

नयनतारा को और एक दिन की बात याद आई। ब्याह करने के बाद ये लोग उस दिन नैहाटी नहीं लौटे। ऐसी एक शुभ घटना को चिरस्मरणीय बना रखने के लिए निखिलेश के एक मित्र ने अपने यहां इन लोगों को आमंत्रित किया। उस घटना को बंधु-वदान्यता भी कह सकते हैं और खुशी मनाना भी कह सकते हैं। खान-पान के बाद वह रात वहीं बितानी पड़ी। सुबह की ट्रेन से नैहाटी आना था। सवेरे जब यह सियालदह स्टेशन पहुंचे, तो ट्रेन खुलने-खुलने को थी। ट्रेन पर चढ़ते समय ही उसे लगा, पीछे से 'नयनतारा' कहकर किसीने उसे पुकारा।

लेकिन पीछे उलटकर देखने का मौका नहीं था उस समय। ट्रेन पर सवार होते ही ट्रेन खुल गई। निखिलेश ने कहा, "लगा, किसीने तुम्हारा नाम लेकर पुकारा—"

"मुझको ?"

नयनतारा को अचरज हुआ। बोली, "मुझे कौन पुकारेगा ? यहां मुझे पहचानता ही कौन है ?"

फिर भी उसने खिड़की से मुंह निकालकर पीछे छूटे प्लेटफार्म की तरफ देखा। बेहद भीड़ थी। उतने लोगों में किसने पुकारा, क्यों पुकारा—किसे पता ? और फिर यह कुछ कृष्णनगर तो नहीं, नैहाटी भी नहीं, और तो और, नवाबगंज भी नहीं। फिर वह घर से निकलने वाली स्त्री भी नहीं कि बाहर के लोग उसे पहचाने ! शहर कलकत्ता ठहरा। कलकत्ता में कौन किसे पहचानता है !

ट्रेन प्लेटफार्म से काफी दूर बढ़ गई थी। निखिलेश ने पूछा, "किसी पर नजर पड़ी ?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं-नहीं। यहां मुझे कौन पुकारेगा ! तुमने गलत सुना।"

इतने में सदर दरवाजे के कड़े बजते ही नयनतारा आपे में आई। इतने दिनों की स्मृतियों को रोमंथन में बाधा पड़ी।

दरवाजा बिना खोले ही पूछा, "कौन ?"

शायद निखिलेश लौटा हो। बाहर घूम-घूमकर थक-थका गया, इसलिए मजबूर होकर लौट आया।

बाहर से गिरिबाला ने कहा, "मैं हूं दीदीजी···"

नयनतारा ने दरवाजा खोला। गिरिबाला अन्दर आई। नयनतारा ने पूछा, "दवाएं मिलीं ?"

दवा का पैकेट बढ़ाते हुए गिरिबाला बोली, "इक्कीस रुपये लगे—"

इक्कीस रुपये। एक ही दिन में इतने रुपये निकल गए। इक्कीस रुपये में तो उसकी एक नई साड़ी हो जाती। और यह भी तो नहीं कि इसकी बीमारी जल्दी ही ठीक हो जाएगी। लेकिन अभी यह सब सोचने से काम नहीं चलेगा। बीमारी तो उसे भी हो सकती थी, बीमार तो निखिलेश भी पड़ सकता था। [illegible]

दवा लेकर नयनतारा सदानन्द के कमरे में गई।

केवल बीमारी ही क्यों, शायद किसी भी चीज़ पर आदमी का कोई वश नहीं। वश रहा होता तो क्या चौधरी जी को नवाबगंज की सम्पत्ति यानी कि मोल बेचकर सुलतानपुर आना पड़ता। हर जायदाद, घर की एक-एक ईंट तक किसी दिन एक आदमी के लिए उनके शरीर के रक्त के बराबर प्रिय थी। सच पूछिए तो अपने रक्त से ही बूढ़े मालिक इस जायदाद की बुनियाद डाल गए थे। चौधरी जी को भी यह सब कुछ मालूम था। और चूंकि जानते थे, इसलिए नवाबगंज से जब सदा के लिए चले जा रहे थे, तो उनके पांव कांप-कांप उठते थे। उसके बाद बरवारी-थान पहुंचते ही उनके कदम ठिठक गए। उन्हें ऐसा लगा, कपिल पायरापोड़ा के झूलते हुए पांव उनके सिर से छू जाएंगे। इसी पेड़ की डाल से फंदा डालकर कपिल पायरापोड़ा ने आत्महत्या की थी।

"कुछ भूल आए क्या जीजाजी?"

प्रकाश ने सोचा, जीजाजी शायद कुछ भूल आए।

चौधरी जी ने कहा, "नहीं। चलो। सब ठीक ही है।"

वह और भी तेजी से पांव बढ़ाकर चलने लगे। नवाबगंज से मुबारकपुर, मुबारकपुर से सीधा पैदल रास्ता। यह पैदल रास्ता मानो चलते-चलते अनन्त काल से आ मिला हो। इसी रास्ते से एक दिन मुगल-पठान-अंग्रेज आए थे। और फिर इसी रास्ते से वे सर्वस्व गंवाकर चौधरी जी की तरह ही इतिहास के पन्नों के इन्हीं अक्षरों की भीड़ में मुंह छिपाकर खो गए। उस दिन चौधरी जी का भी यही हाल था—मुंह छिपा के तो जी जाए। पठान-मुगल-अंग्रेजों की भांति ही वह मानो अंतिम बार सब कुछ लूट-पाट करके पोटली बांधकर भागकर बचना चाह रहे थे।

लेकिन वह भागेंगे कहां? कहां जाकर मुंह छिपाएंगे? कपिल पायरापोड़ा, पैट्रिक लार्ड, मानिक घोष, कालीगंज की बहू की आत्मा के हाथों से वह अपने को कैसे बचाएंगे? सुलतानपुर आखिर दुनिया से बाहर तो नहीं है। दुनिया से बाहर भी हो तो भी उनकी गति-विधि तो चर-अचर अन्तरिक्ष में भी है। तुम अगर जीवन से कतराना चाहो, तो मृत्यु हाथ बढ़ाकर तुम्हारी राह देखेगी। मृत्यु कभी तुम्हें समेट ले, तो भी तुम्हारे बाल-बच्चे तो रहे, तुम्हारी अगली पीढ़ी तो रही, उनको कौन बचाएगा? कपिल पायरापोड़ा, मानिक घोष, पैट्रिक लार्ड, कालीगंज की बहू वगैरह की तो मृत्यु नहीं होती। यह सब तो जन्म-मृत्यु से परे हैं। उन लोगों ने इतिहास में रोम साम्राज्य का पतन देखा है, मोहन जोदड़ो का ध्वंस देखा है, क्रमानुक्रम से वे उत्थान-पतन के कारण का लेखा लगाते आए हैं। उनकी आंखों में धूल झोंक सके, ऐसे सरलाशयन चौधरी अभी शायद पैदा नहीं हुए।

नहीं तो, अन्त-अन्त में चौधरी जी को एक चुल्लू पानी भी क्यों नहीं नसीब हुआ? सुलतानपुर के उस विशाल मकान के एक कमरे में वह कैदी की नाईं रह-कर मौत को चकमा देने की कोशिश क्यों करते? वे ऐसा क्यों सोचते थे कि पृथ्वी के और सब लोग सदा के नियम के अनुसार मृत्यु की गोद में लुढ़क पड़ेंगे—एक वही तब तक जीवित रहेंगे, जब तक चांद-सूरज उगते रहेंगे?

उन्होंने जैसे नवाबगंज की जगह-ज़मीन, घर-द्वार, रेल-बाज़ार के प्राण-कृष्ण साह को बेच दिया, वैसे ही सुलतानपुर की जायदाद को भी सबसे छिपा-कर एक दिन एक आदमी के हाथ बेच दिया। सारी रकम भागलपुर के बैंक में जमा करके सिरहाने में तकिए के नीचे पास बुक और चैक बुक रखकर निश्चिन्त सोने लगे।

अठारहवीं सदी से पहले से जिस वंश ने दौलत और इज्जत पाकर एक दिन सारे बंगाल में अपनी डाल और टहनियां फैलाई थीं, उनमें से किन्हीं-किन्हीं ने चूंकि मुगलों से सांठ-गांठ की थी, इसलिए अंग्रेजों के क्रोध की आग में वे राख हो गए। और, कोई-कोई अवस्था-विशेष से बिलकुल भिखारी बनकर टिमटिम करते हुए बड़े कष्ट से किसी प्रकार अपनी कौलिक मर्यादा को बर-करार रखते हुए सिर बचाए चल रहे थे। लेकिन असालतन बंदोबस्ती के अमल में बहुतों के लिए सिर बचाना भी दूभर हो उठा। उस समय चारों तरफ नई-नई ज़मींदारियों की नींव पड़ रही थी। अंग्रेजों के सूर्यास्त कानून का मौका पाकर कीर्तिपद बाबू के पुरखों ने जैसे बेनियान गिरि के रुपये पाकर सुलतानपुर में ज़मींदारी खरीदी थी, वैसे ही हर्षनाथ चक्रवर्ती के पुरखों ने भी कालीगंज में ज़मींदारी कायम की थी। सदानन्द के पूर्वज नरनारायण चौधरी के उत्थान का इतिहास वहीं से शुरू होता है। मुर्शिदाबाद, या जहांगीराबाद या गौड़ वंश के किसी उजड़े हुए ज़मींदार के वंशधर ने भाग्य के स्रोत में बहते-बहते वंश के पिछले गौरव के उद्धार के लिए भी शायद नावब की नौकरी लेकर अपने जीवन का आरम्भ किया था। फिर सुलतानपुर के दूसरे एक ज़मींदार से नाता जोड़कर उन्होंने अपनी मर्यादा को दुगना करने का मनसूबा गांठा था। लेकिन बीसवीं सदी के बीच में पहुंचते ही इतिहास उलट गया। कालीगंज पहले ही जा चुका था, नवाबगंज भी गया। अब शायद सुलतानपुर का भी अन्त समीप आया। सुलतानपुर के अन्तिम उत्तराधिकारी हरनारायण चौधरी को उस समय कोई देख भी नहीं पाता था। एक ग्वाला रोज़ आधा सेर दूध दे जाया करता था और मोदीखाने का एक आदमी एक पौंड की एक डबल रोटी दे जाया करता।

चौधरी जी अलमुनियम के एक बर्तन में स्वयं उस दूध को उबाला करते। फिर उस दूध में आधी डबल रोटी डालकर दिन का भोजन कर लेते। आधी रोटी रात के लिए रख छोड़ते। रात में भी वही एक ही भोजन। सवेरे जगकर साबुन से उस कड़ाही को धोकर रख लेते। चौधरी जी दुनिया में किसीपर विश्वास ही नहीं करते। सब लोग उनके रुपयों पर ताक लगाए बैठे हैं।

शुरू-शुरू में प्रकाश आया करता। कहता, "आप नाहक ही अपने से रसोई

क्यों बनाते हैं जीजाजी ! बूढ़े आदमी हैं। मैं घर से आपका खाना लाकर पहुंचा सकता हूं।"

चौधरी जी कहते, "चुप भी रहो। तुम मत बोला करो—"

प्रकाश कहता, "जी, मैं तो अच्छी बात ही कह रहा हूं। मेरी पत्नी के होते, मेरे होते आप अपने से रसोई बनाएं, यह भी अच्छा दीखता है ?"

"अच्छा दीखता है या नहीं, इसकी फिक्र तुमको नहीं करनी है। तुम अब मेरे सामने मत आया करो—" और, चौधरी जी ने उसके सामने ही दरवाजे को बंद कर लिया।

बंद दरवाजे के सामने निर्जीव की नाईं प्रकाश कुछ देर खड़ा रहा। उसके बाद धीरे-धीरे अपने घर की राह लेता। उस समय उसके पल्ले एक पैसा भी नहीं था। बीवी-बच्चों को ठीक से खाना नहीं नसीब होता। दीदी के मरने के बाद से ही उसकी हालत पतली हो गई थी। उसकी नजरों के सामने ही नवाबगंज की जायदाद बिक गई, उसकी नजरों के सामने ही सुलतानपुर की जायदाद बिक गई। जीजाजी ने सारी रकम भागलपुर के बैंक में जमा कर दी। वहां से सूद के रुपये लाने के लिए जीजाजी रिक्शे से अकेले ही चले जाते हैं। सिर्फ गुजारे भर का पैसा वहां से ले आया करते। प्रकाश दूर खड़ा सिर्फ टुकर-टुकर ताका करता।

मोदीखाने के सामने पहुंचते ही अनिल ने आवाज दी।

"क्यों राय बाबू, कुछ जुगत बैठी ? जीजाजी ने क्या कहा ?"

प्रकाश ने कहा, "राम-राम, जीजाजी का नाम न लो अनिल, वह बिलकुल कंजूस है, घोर मक्खीचूस।"

"क्यों, इतना गाली-गलौज क्यों दे रहे हो ?"

प्रकाश ने कहा, "गाली न दूं तो क्या ! मक्खीचूस नहीं है, तो खुद से दूध उबालकर पीते, मेरी पत्नी के हाथ की रसोई नहीं खाते ? तुम्हें डबल रोटी का दाम तो मिल जाता है न ?"

अनिल ने कहा, "बिलकुल नकद। एक हाथ से पाव रोटी देता हूं, दूसरे हाथ से नकद पैसे मिल जाते हैं। चौधरी जी कहते हैं, किसीका उधार मैं नहीं खाऊंगा—"

अनिल ही क्यों, दूध दे जाने वाली ग्वालिन भी नकद दाम पा जाती। यहां तक कि चौधरी जी रेजगारी तक पास में रखा करते जिससे किसीका कुछ बाकी न रह जाए।

अनिल आश्चर्य से पूछता, "आखिर इतनी तकलीफ से खुद चूल्हा-चक्की क्यों झेलते हैं, यह तो कहिए ?"

प्रकाश ने कहा, "इसलिए कि रुपये के लोभ से हम कहीं विष न दे दें।"

विष ! रुपये का इतना लोभ ! जो सुनता, वही अवाक् हो जाता। उन लोगों ने कीर्तिपद बाबू को भी देखा है। वह तो ऐसे नहीं थे। उनका खाना तो हमेशा प्रकाश की पत्नी ही पका दिया करती थी। उन्हें तो विष का कभी भय नहीं हुआ ? और उन्होंने कितनों को दान किया। कितनों को उनसे

नहीं तो, अन्त-अन्त में चौधरी जी को एक चुल्लू पानी भी क्यों नहीं नसीब हुआ? मुलतानपुर के उस विशाल मकान के एक कमरे में वह कैदी की नाईं रह-कर मौत को चकमा देने की कोशिश क्यों करते? वे ऐसा क्यों सोचते थे कि पृथ्वी के और सब लोग सदा के नियम के अनुसार मृत्यु की गोद में लुढ़क पड़ेंगे—एक वही तब तक जीवित रहेंगे, जब तक चांद-सूरज उगते रहेंगे?

उन्होंने जैसे नवाबगंज की जगह-जमीन, घर-द्वार, रेल-बाजार के प्राण-कृष्ण साह को बेच दिया, वैसे ही मुलतानपुर की जायदाद को भी सबसे छिपा-कर एक दिन एक आदमी के हाथ बेच दिया। सारी रकम भागलपुर के बैंक में जमा करके सिरहाने में तकिए के नीचे पास बुक और चैक बुक रखकर निश्चिन्त सोने लगे।

अठारहवीं सदी से पहले से जिस वंश ने दौलत और इज्जत पाकर एक दिन सारे बंगाल में अपनी डाल और टहनियां फैलाई थीं, उनमें से किन्हीं-किन्हीं ने चूंकि मुगलों से सांठ-गांठ की थी, इसलिए अंग्रेजों के क्रोध की आग में वे राख हो गए। और, कोई-कोई अवस्था-विशेष से बिलकुल भिखारी बनकर टिमटिम करते हुए बड़े कष्ट से किसी प्रकार अपनी कौलिक मर्यादा को बर-करार रखते हुए सिर बचाए चल रहे थे। लेकिन असालतन बंदोबस्ती के अमल में बहुतों के लिए सिर बचाना भी दूभर हो उठा। उस समय चारों तरफ नई-नई जमींदारियों की नींव पड़ रही थी। अंग्रेजों के सूर्यास्त कानून का मौका पाकर कीर्तिपद बाबू के पुरखों ने जैसे बेनियान गिरि के रुपये पाकर मुलतानपुर में जमींदारी खरीदी थी, वैसे ही हर्षनाथ चक्रवर्ती के पुरखों ने भी कालीगंज में जमींदारी कायम की थी। सदानन्द के पूर्वज नरनारायण चौधरी के उत्थान का इतिहास वहीं से शुरू होता है। मुर्शिदाबाद, या जहांगीराबाद या गौड़ बंग के किसी उजड़े हुए जमींदार के वंशधर ने भाग्य के स्रोत में बहते-बहते वंश के पिछले गौरव के उद्धार के लिए भी शायद नायब की नौकरी लेकर अपने जीवन का आरम्भ किया था। फिर मुलतानपुर के दूसरे एक जमींदार से नाता जोड़कर उन्होंने अपनी मर्यादा को दुगना करने का मनसूबा गांठा था। लेकिन बीसवीं सदी के बीच में पहुंचते ही इतिहास उलट गया। कालीगंज पहले ही जा चुका था, नवाबगंज भी गया। अब शायद मुलतानपुर का भी अन्त समीप आया। मुलतानपुर के अन्तिम उत्तराधिकारी हरनारायण चौधरी को उस समय कोई देख भी नहीं पाता था। एक ग्वाला रोज आधा सेर दूध दे जाया करता था और मोदीखाने का एक आदमी एक पौंड की एक डबल रोटी दे जाया करता।

चौधरी जी अल्युमुनियम के एक बर्तन में स्वयं उस दूध को उबाला करते। फिर उस दूध में आधी डबल रोटी डालकर दिन का भोजन कर लेते। आधी रोटी रात के लिए रख छोड़ते। रात में भी वही एक ही भोजन। सवेरे जगकर साबुन से उस कड़ाही को धोकर रख लेते। चौधरी जी दुनिया में किसीपर विश्वास ही नहीं करते। सब लोग उनके रुपयों पर ताक लगाए बैठे हैं।

शुरू-शुरू में प्रकाश आया करता। कहता, "आप नाहक ही अपने से रसोई

क्यों बनाते हैं जीजाजी ! बूढ़े आदमी हैं । मैं घर से अच्छा खाना लाकर पहुंचा सकता हूं ।"

चौधरी जी कहते, "चुप भी रहो । तुम मत बोला करो—"

प्रकाश कहता, "जी, मैं तो अच्छी बात ही कह रहा हूं । मेरी पत्नी के होते, मेरे होते आप अपने से रसोई बनाएं, यह भी अच्छा दीखता है ?"

"अच्छा दीखता है या नहीं, इसकी चिंता तुम्हें नहीं करनी है । तुम अब मेरे सामने मत आया करो—" और, चौधरी जी ने उसके सामने ही दरवाजे को बंद कर लिया ।

बंद दरवाजे के सामने निर्बोध की भांति प्रकाश कुछ देर खड़ा रहता । उसके बाद धीरे-धीरे अपने घर की राह लेता । उस समय उसके पल्ले एक पैसा भी नहीं था । बीवी-बच्चों को ठीक से खाना नहीं नसीब होता । दीदी के मरने के बाद से ही उसकी हालत पतली हो गई थी । उसकी नजरों के सामने ही नवाबगंज की जायदाद बिक गई, उसकी नजरों के सामने ही सुलतानपुर की जायदाद बिक गई । जीजाजी ने सारी रकम भागलपुर के बैंक में जमा कर दी । वहां से सूद के रुपये लाने के लिए जीजाजी रिक्शे से अकेले ही चले जाते हैं । सिर्फ गुजारे भर का पैसा वहां से ले आया करते । प्रकाश दूर खड़ा सिर्फ टुकर-टुकर ताका करता ।

मोदीखाने के सामने पहुंचते ही अनिल ने आवाज दी ।

"क्यों राय बाबू, कुछ जुगत बैठी ? जीजाजी ने क्या कहा ?"

प्रकाश ने कहा, "राम-राम, जीजाजी का नाम न लो अनिल, वह बिलकुल कंजूस है, घोर मक्खीचूस ।"

"क्यों, इतना गाली-गलौज क्यों दे रहे हो ?"

प्रकाश ने कहा, "गाली न दूं तो क्या ! मक्खीचूस नहीं है, तो खुद से दूध उबालकर पीते, मेरी पत्नी के हाथ की रसोई नहीं खाते ? तुम्हें डबल रोटी का दाम तो मिल जाता है न ?"

अनिल ने कहा, "बिलकुल नकद । एक हाथ से पाव रोटी देता हूं, दूसरे हाथ में नकद पैसे मिल जाते हैं । चौधरी जी कहते हैं, किसीका उधार मैं नहीं खाऊंगा—"

अनिल ही क्यों, दूध दे जाने वाली ग्वालिन भी नकद दाम पा जाती । यहां तक कि चौधरी जी रेजगारी तक पास में रखा करते जिसमें किसीका कुछ बाकी न रह जाए ।

अनिल आश्चर्य से पूछता, "आखिर इतनी तकलीफ से खुद चूल्हा-चक्की क्यों झेलते हैं, यह तो कहिए ?"

प्रकाश ने कहा, "इसलिए कि रुपये के लोभ से हम कहीं विष न दे दें ।"

छिः ! रुपये का इतना लोभ ! जो सुनता, वही अवाक् हो जाता । उन लोगों ने कालीपद बाबू को भी देखा है । वह तो ऐसे नहीं थे । उनका खाना तो हमेशा प्रकाश की पत्नी ही पका दिया करती थी । उन्हें तो विष का कभी भय नहीं हुआ ? और उन्होंने कितनों को दान कितना दिया । कितनों को उनसे

बंधा माहवार मिलता था। उनके दामाद का यह कैसा हाल ? अरे बाबा, ये रुपये क्या तुम्हारे साथ जाएंगे ? दौलत भी कभी किसीके साथ गई है ? दुनिया में सदा ही जिंदा रहने के लिए तो कोई आया नहीं है। फिर ? एक दिन तो आखिर सारी रकम छोड़कर ही जाना पड़ेगा। कौन खाएगा तुम्हारा रुपया ? रुपये की इतनी माया ?

लेकिन ये बातें जिनकी बावत थीं, उनके कानों तक पहुंचाने का कोई मौका नहीं होता, इसलिए उनके कानों पहुंच भी नहीं पातीं। सुलतानपुर के लोगों ने बहुत दिनों से यह आशा कर रखी थी कि कीर्तिपद बाबू की तरह कभी चौधरी जी भी उन लोगों से मिला-जुला करेंगे, मौके-बेमौके ये लोग भी उनके पास जाकर खड़े होंगे। वह आशा पूरी नहीं हुई। जाने कहां से किस इलाके का एक आदमी आया। और सुलतानपुर की सारी जगह-जमीन खरीदकर यहां का मालिक बन बैठा। और, सुलतानपुर वालों की जो हालत चल रही थी, वही चलती रही।

लेकिन उस दिन एकाएक अप्रत्याशित घटना घट गई। अखिल डबल रोटी लेकर जैसे रोज़ जाया करता था, उस दिन भी गया।

जाकर देखा, दरवाज़ा बंद है। दरवाज़ा तो खैर अक्सर बंद ही रहा करता था। बाहर के फाटक से होकर अहाते को पार करके सीढ़ी से वह ऊपर चढ़ जाया करता। चौधरी जी जगे होते, तो अखिल को देखते ही हाथ बढ़ाकर पाव रोटी ले लेते और उसे पैसे दे दिया करते। लेकिते वैसे समय कभी-कभी ही दरवाज़ा बंद रहता। आखिल जैसे ही आवाज देता, "चौधरी बाबू—" कि चौधरी जी दरवाज़ा खोलकर पाव रोटी ले लेते। ग्वालिन आती। उसके समय भी यही होता। जैसे दोनों के पैसे गिन-गुथकर ही वह रात को तकिए के नीचे रख दिया करते थे।

बराबर ऐसा होता था।

लेकिन उस दिन अखिल की पुकार पर अन्दर से कोई जवाब नहीं मिला।

वह हैरानी में पड़ गया। ऐसा तो कभी नहीं हुआ।

उसने फिर पुकारा, "चौधरी जी, चौधरी जी, दरवाज़ा खोलिए—"

फिर भी कोई जवाब नहीं। फिर भी दरवाज़ा नहीं खुला।

और कोई उपाय नहीं देखकर अखिल दरवाज़े में धक्का देने लगा, "चौधरी जी, ओ चौधरी जी—"

फिर भी वही चुप्पी। इतने में दूध लेकर ग्वालिन भी आ पहुंची। उसे इंतज़ार करने की कभी नौबत नहीं आई। कड़ाही में दूध देकर पैसा लेकर चली जाती थी।

उसने भी एक बार पुकारा, "चौधरी बाबू, दूध ले आई हूं···"

इसपर भी कोई जवाब नहीं मिला, तो दोनों ही घबरा गए। ऐसा तो कभी होता नहीं था। चौधरी जी इस कदर सोने वाले शख्स नहीं हैं।

कानोंकान खबर तब तक फैल गई। अश्विनी भट्टाचार्य दौड़ता हुआ आ पहुंचा। खबर मिलते ही प्रकाश भी भागा-भागा आया। उसने भी कई

बार आवाज दी, "चौधरी, जी चौधरी···"

अन्दर से कोई जवाब नहीं।

अब तो सभी डर से गए। जीता-जागता कोई आदमी भला इतनी पोल-पुकार के बाद इस तरह से सोया रह सकता है।

प्रकाश ने कहा, "तुम लोग जरा हट जाओ तो, मैं कार्निश पर चढ़कर किनारे-किनारे ऊपर की खिड़की की तरफ जाता हूं, झांककर देखूं जरा—"

पतले कार्निश पर पांव रखकर खिड़की की तरफ जाने से पहले ही प्रकाश ने देखा, काले चींटों की कतार कमरे के भीतर की ओर जा रही है। अन-गिनती चींटे। जाने इन्हें कैसे पता हो जाता है। इन्हें शायद आदमियों से पहले ही यह मालूम हो जाता है कि कहां मनुष्य के शरीर से प्राणवायु बाहर निकल गई है।

अनिल ने कहा, "प्रकाश बाबू, खूब होशियारी से जाइएगा। कहीं गिरे तो कचूमर निकल जाएगा।"

प्रकाश लेकिन ज्यादा दूर तक चढ़ नहीं सका। काले चींटों को देखकर उसे डर लगने लगा। वह लौट आया। बोला, "नहीं जी, चींटे काट खाएंगे—"

अश्विनी बोल उठा, "चौधरी जी बीमार तो नहीं पड़ गए?"

अनिल ने कहा, "कल भी तो मैं डबल रोटी दे गया हूं, उन्होंने मुझे रोटी का दाम दिया है।"

ग्वालिन ने भी कहा, "मैं भी दूध देकर दाम ले गई हूं।"

प्रकाश ने कहा, "तो फिर एक काम किया जाए। दरवाजे को तोड़ें—"

आखिर होते-हवाते यही तै पाया। दरवाजा ही तोड़ो।

सब्बल आया, हथौड़ा आया। दरवाजे पर धमाधम चोट पड़ने लगी। कीर्तिपद बाबू के दादाजी का बनाया मकान। लकड़ी तो नहीं, मानो लोहा हो। सब्बल की एक-एक चोट से लकड़ी मानो बात करने लगी। एक-एक हथौड़ी सत्रहवीं और अठारहवीं, उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के मध्य दशक तक के शासक-शोषक की आत्मा मानो पीड़ा से कातर होकर आर्तनाद करने लगी। उसके कलेजे से रह-रहकर पीड़ा का अस्फुट स्वर निकलने लगा—उः···उः।

दरवाजा टूटकर गिर गया तो सब अन्दर गए। देखा, चौधरी जी अपने बिछौने पर चित पड़े हुए हैं। और, खिड़की की फांक से चींटों की कतार ने आकर उनपर धावा बोल दिया है।

रोज की तरह उस दिन भी लोकल ट्रेन स्टेशन पर आकर रुकी। ट्रेन को ठीक से रुकने का भी मौका नहीं देते हैं लोग। अच्छी तरह से रुकने के पहले ही सब उतर पड़ते हैं। यहीं सवेरे ही लोग आफिस गए और छुट्टी के बाद दौड़ते हुए सियालदह स्टेशन आकर ट्रेन पकड़ी। इसलिए उस समय इसीकी

होड़-सी लग जाती है कि पहले कौन घर पहुंचता है। ट्राम-रास्ते से ही दौड़ना शुरू करते हैं। एक-एक बार सिर के ऊपर की घड़ी पर नजर डाल लेते हैं और दौड़ते हैं।

नयनतारा जब दफ्तर जाया करती थी, तो साथ में अखिलेश रहता था। उस समय उन दोनों को इतनी जल्दी नहीं थी। आफिस से निकलकर दोनों इतमिनान से स्टेशन आया करते थे। एक ट्रेन छूट ही गई, तो क्या, दूसरी है।

लेकिन अब बात ही और है। अब आफिस से निकलकर नयनतारा को साथ लेने की ज़िम्मेदारी नहीं है। अब निखिलेश को अकेले ही स्टेशन आकर ट्रेन पकड़नी पड़ती है और अकेले ही ट्रेन से उतरना पड़ता है। उसके बाद पैदल घर। लेकिन हाल यह कि घर न पहुंचने से ही मानो निखिलेश को राहत मिले। देरी से घर पहुंचकर झटपट खा-पीकर सो जाने से ही जैसे उसे छुटकारा मिले।

बाजार से गुजर रहा था कि पास की दुकान से किसीने पुकारा, "अजी ओ निखिलेश बाबू, निखिलेश बाबू···"

निखिलेश ने उलटकर देखा। सोने-चांदी की दूकान से कोई अपरिचित आदमी उसे पुकार रहा था। भले आदमी को वह पहचान नहीं सका। वह दुकान के सामने जाकर खड़ा हुआ।

भले आदमी ने कहा, "मेरा नाम मनोहर दत्त है। आप मुझे नहीं पहचानेंगे, पर आपकी पत्नी सोने का एक हार बंधक रख गई थीं, मैंने उसपर चार सौ रुपये दिए थे।"

निखिलेश जैसे आसमान से गिर पड़ा। नयनतारा सोने का हार गिरवी रखकर चार सौ रुपये ले गई है।

भले आदमी ने कहा, "वे कह गई थीं, एक महीने के अन्दर ही छुड़ा ले जाएंगी, मगर लगभग दो महीने होने को आए, वे आई नहीं। इसीलिए आपसे कह रहा हूं।"

निखिलेश को कोई जवाब नहीं सूझा। जरा सोचकर बोला, "खैर, आप चिन्ता न करें, मैं किसी दिन खुद ही रुपये देकर हार छुड़ा ले जाऊंगा।"

वह फिर घर की ओर बढ़ा।

चलते-चलते निखिलेश को लगा, उसका घर और भी दूर होता, तो अच्छा था। अच्छा होता, यदि घर जाकर नयनतारा के आमने-सामने नहीं खड़ा होना पड़ता। लेकिन नयनतारा ने ऐसा क्यों किया? डाक्टर की फीस और दवा के लिए हार गिरवी रखने की जरूरत भी थी, तो यह बात उसने उससे छिपाई क्यों? उससे कहा भी क्यों नहीं? कहती तो क्या वह मना करता या कि रोकता?

दफ्तर के लोग कहते, "तुम्हें हो क्या गया है। दिन-दिन ऐसे मायूस क्यों हुए जा रहे हो?"

निखिलेश हंसने की कोशिश करता। लाचार-सी हंसी हंसकर कहता, "नहीं तो। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है।"

निखिलेश को वास्तव में जो हुआ है, वह किसीको कहने योग्य नहीं। कहने से लोगों को मजा मिलेगा, हंसेंगे सब। मन-ही-मन कहेंगे, खूब हुआ है। अथच बाहर से सब उससे ईर्ष्या ही करते हैं। ईर्ष्या करते हैं उसके सौभाग्य पर। सौभाग्य नहीं तो क्या! पति-पत्नी दोनों का कमाना कितनों को नसीब होता है? आफिस के अधिकांश लोग सुबह से शाम तक एड़ी-चोटी का पसीना एक करके गिरस्ती चलाने में हांफ उठते हैं। सबकी जबान पर एक ही बात। बीवी-बच्चों का खर्च जुटाते-जुटाते ही महीने के बीच में सब खाली हाथ हो जाते हैं। उस समय से घर में मछली नहीं आती। चीजों के दाम पर जब लोग बात करते तो वहां निखिलेश भी जा पहुंचता। लेकिन सब उसे रोक देते। "अरे बाबा, तुम रुको। तुम मत बोलो—"

निखिलेश कहता, "क्यों, मैं रुकूं क्यों? मैं क्या गिरस्ती नही करता?

वे लोग कहते, "अरे बाबा, तुम तो हसबैंड-वाइफ, दोनों कमा रहे हो, तुम्हें किस बात की चिन्ता है?"

निखिलेश हंसता। कहता, "दोनों कमाते हैं, इसलिए सारी समस्याएं हल हो गई। रुपयों के अलावा इन्सान को और कोई समस्या ही नहीं?"

निखिलेश की बात सुनकर सब अवाक् हो जाते। आखिर रुपयों के सिवाय लोगों को और समस्या ही क्या है? दुनिया में रुपया ही तो असली चीज है। बेहिसाब रुपये पैदा करो, उन रुपयों को बैंक में जमा कर दो और बेफिक्र हो जाओ। खाओ-पिओ और मौज करो।

निखिलेश के आफिस में सब लोगों के मुंह में यही एक बात। अब तक निखिलेश को ही कमोबेश यही समस्या थी। आफिस से लौटते हुए बहुत बार उसने नयनतारा से कहा है, "चलो न, किसी रेस्टोरेंट में चलें—"

नयनतारा बोली, "क्यों? तुम्हें भूख लगी है क्या?"

निखिलेश ने कहा, "तुम्हें भूख नही लगी है। वही उतना सवेरे घर से खाकर चली हो।"

नयनतारा ने कहा, "खामखा पैसे बरबाद करने से क्या लाभ? किसी तरह चले चलो न, घर ही चलकर खाएंगे।"

निखिलेश सोचता, नयनतारा सचमुच ही बहुत कंजूस है। दोनो की तनखाह मिलाकर काफी रुपये ही तो हो जाते हैं। इतने दिनों मे नयनतारा ने बैंक मे कुछ जमा भी कर लिया था। वह सोचती थी, कुछ वर्षों के बाद जब और रुपये हो जाएंगे, तो कलकत्ता शहर में एक छोटा-सा मकान खरीदेगी। छोटा-सा लेकिन सजा-सजाया मकान।

मकान!

मकान के नाम से ही निखिलेश चौंक उठता। कहता, "कलकत्ता में मकान लोगी? दिमाग तो खराब नही हो गया है तुम्हारा? कलकत्ता में जमीन की क्या कीमत है, मालूम है? दस-बारह हजार रुपये कट्ठा। यों ही मकान बना लोगी—"

नयनतारा कहती, "तुम जरा खर्च कम किया करो। देख लेना, मकान

लोगों का हो जाएगा।"

परन्तु शुरू में उसने कोई गहना ही नहीं खरीदना चाहा। गहने का लोभ बहुत दिन पहले ही उसका जाता रहा था। वह कहती, "अजी, गहना पहनने से कौन-सा हाथी-घोड़ा मिल जाएगा! और रेस्टोरेंट में खाकर भी क्या होना! अगर कलकत्ता में एक मकान हो जाए, तो कितना आराम रहेगा। यह रोज-रोज जी-जान देकर दौड़ना, यह डेली-पैसेंजरी—इससे तो पिंड छूट जाएगा। सवेरे दस बजे घर से निकले और बस में बैठकर आधे घंटे में दफ्तर। हर महीने किराये के इतने रुपये भी नहीं लगेंगे। उन रुपयों से खाया जाएगा तो सेहत के लिए लाभ होगा।"

अजीब है। उसीने आज अपना हार तक गिरवी रख दिया। उससे ज़रा कहा तक नहीं कि कहीं मना न करे। बाहर के एक आदमी के इलाज के लिए इतनी मशक्कत की कमाई के रुपये उसने खर्च कर दिए।

जाने क्या ख्याल आया, चलते-चलते निखिलेश फिर लौटा। वह काफी दूर निकल गया था। वह लौटकर फिर मनोहर बाबू के सोना-चांदी की दूकान के सामने खड़ा हुआ।

मनोहर दत्त ने निखिलेश को देखा। पूछा, "क्यों, क्या बात हो गई? फिर लौट आए? कुछ कहना है?"

निखिलेश ने पूछा, "हां, ज़रा यह तो बता दीजिए, मेरी पत्नी हार कब बंधक रख गई थी? किस तारीख को? ज़रा वही निकालकर देखिए तो—"

मनोहर दत्त ने लोहे के सन्दूक से हिसाब-बही निकाली। पन्ने उलटते-उलटते वह एक जगह पर रुका। बोला, "जी, पिछले महीने की चौदह तारीख को। कहा था, तनख्वाह मिलते ही छुड़ा ले जाऊंगी···"

निखिलेश बोल उठा, "खैर, ठीक है। आप कुछ सोचें नहीं, जितनी जल्दी हो सके, मैं हार छुड़ा ले जाऊंगा।"

टूटे रेकार्ड की गीत की कड़ी की तरह एक ही बात बार-बार उसके मन में ग्रामोफोन पर बजने लगी—पिछले महीने की चौदह तारीख···पिछले महीने की चौदह तारीख···

दुनिया में आदमी का इतिहास जहां से शुरू हुआ था, आदमी आज वहां से काफी दूर खिसक आया है। पहले सूरज उगने के साथ-साथ जीवन-यात्रा शुरू होती थी और सांझ होते ही खत्म हो जाती थी। लेकिन यंत्र-युग की शुरुआत से इस दुनिया का सारा कुछ बदल गया। भूगोल बदल गया, इतिहास बदल गया। और, जिसके लिए यह इतिहास, भूगोल, दर्शन, विज्ञान सब कुछ है, वह आदमी ही आमूल परिवर्तित होकर और ही किस्म का हो गया। आदमी से आदमी के सम्बन्ध का जो सूत्र था, उसमें गांठ पड़ी। विश्वास की जगह संदेह, प्रेम की जगह दुश्मनी, उदारता की जगह अलगाव ने आकर आदमी को

निकट से दूर हटा दिया। दूसरी ओर ऐसा ही विरोध शुरू हुआ एक से दूसरे देश का, एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय का, कालों से कालों का, गोरों से गोरों का, एक से दूसरी भाषा का, धर्म से धर्म का। यही विरोध आगे चलकर आ घुसा परिवार में। परिवार-परिवार में विरोध शुरू हुआ, विरोध शुरू हुआ भाई-भाई में। और, अन्तिम झमेला हुआ पति से पत्नि का।

बीसवीं सदी के बीच में बंगाल के एक भूस्वामी का अन्तिम वंशधर शायद आखिरी साँसें लेने के लिए ही नैहाटी के एक मध्यवित्त परिवार में आ पहुंचा था। आने के साथ ही साथ वह एक दूसरे परिवार में विपर्यय भी ले आया।

यह कुछ कम विपर्यय है क्या ! निखिलेश जैसा आदमी, जिसने बचपन में स्वदेशी आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया, राष्ट्रीय झंडा लेकर कृष्णनगर में जलूस के आगे-आगे चला, पुलिस तक की परवाह न की—उसीको समय के फेर से सौदागिरी आफिस में नौकरी करनी पड़ी। खैर, नौकरी तो सबको करनी पड़ती है। नौकरी नहीं करता तो वह करता ही क्या ! देश की आजादी के बाद निखिलेश के बहुतेरे मित्र बड़े अच्छे-अच्छे ओहदों पर गए। कोई मन्त्री हुआ, तो कोई विधानसभा का सदस्य। और कोई-कोई कुछ भी नहीं हुआ। खाद्य विभाग की एक मामूली नौकरी से ही संतुष्ट हो गया। लेकिन उसके लिए इससे ज्यादा चाहा भी क्या था ? उसने क्या यह चाहा था कि वह कुछ कर्ता-धर्म-विधाता होगा ?

उसके जीवन के ठीक इसी समय आ गई नयनतारा। तब से नयनतारा के ही चारों ओर वृत्त में उसकी जिन्दगी घूमने लगी। एक छोटा-सा घर, छोटी-सी एक गिरस्ती और बैंक में मामूली-सी पूंजी। हर आदमी को साधारणतया जो चाहिए, निखिलेश उससे ज्यादा कुछ नहीं चाहता था। शुरू-शुरू में थोड़ी बहुत फिजूलखर्ची करता भी था, वह भी बंद कर दी।

सदानन्द ने आकर लेकिन सारी योजना का ही गड़बड़ घोटाला कर दिया। बिना बदली के वज्रपात की तरह निखिलेश का सारा जीवन ही चूर-चूर होकर बिखर गया।

निखिलेश उस दिन आफिस में कितनी देर तक काम करता रहा। इसका उसे कुछ ख्याल ही नहीं रहा। घड़ी पर नजर गई, तो देखा, शाम के सात बज गए। खूब सर्दी पड़ रही थी।

हठात् शीतेश की नजर निखिलेश पर पड़ी। शीतेश भौमिक। अपर डिवीजन क्लर्क। शादी-ब्याह नहीं किया है। जो तनखाह मिलती, दोनों हाथों खर्च करता। वह निखिलेश के पास आकर खड़ा हुआ।

"क्यों रे, तू अभी तक काम ही कर रहा है ?"

निखिलेश ने कहा, "कुछ एरियर रह गया था भाई—"

शीतेश ने कहा, "और तेरी पत्नी तेरा इंतजार नहीं कर रही होगी ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं। आज वह आफिस नहीं आई है।"

"आफिस नहीं आई है ? तबीयत खराब है ? तो तू कै बजे की ट्रेन से घर जाएगा ?"

निखिलेश ने कहा, "ट्रेन की कोई कमी है ? बहुत-सी ट्रेनें हैं। किसी-से भी जा सकता हूं। और दिन तो समय नहीं मिलता, इसीलिए आज बाकी पड़े काम सब किए दे रहा हूं—"

शीतेश को जाने क्या जी में आया। बोला, "बड़ी सर्दी है रे, चल न, कहीं चलकर जरा बैठें, बदन ज़रा गर्म कर लें—"

बदन गर्म करने का मतलब क्या है, यह निखिलेश को मालूम था। शीतेश की इस आदत को कमोबेश आफिस के सभी जानते हैं।

शीतेश ने कहा, "अरे, इतना सोच क्यों रहा है ? काम तो है ही। काम लक्ष्मी है। उसे घर से विदा नहीं करना चाहिए। चल, उठ। आज तो तेरी बीवी नहीं है कि जान जाएगी।"

निखिलेश को याद हो आया, घर जाने पर फिर वही एक ही दृश्य—डाक्टर और बीमारी। नयनतारा के शायद दर्शन ही न हों। गिरिबाला को चुपचाप बुलाकर खा-पीकर अपने कमरे में पड़ जाना। उसके बाद नयनतारा कहीं देख लेगी, तो हैरत में पड़ जाएगी—हाय राम, तुम कब आए ?

रोज यही होता है। रोज ही वह कहेगी, 'जानते हो, उसका बुखार तो अभी भी नहीं उत्तर रहा है—'

निखिलेश पहले तो उसकी बात का कोई जवाब नहीं देगा। कभी-कभी खीजकर कह देता, 'तो उसके लिए तुम्हें इतनी चिन्ता करने को किसने कहा था ? उसे अस्पताल भेज दे सकती थी, उसका बुखार भी उतर जाता...'

लेकिन, उंहूं, बोलते हुए भी बात निखिलेश के मुंह में अटक जाती। कहने को जी होता कि यदि उसी के बारे सोचना था तो मुझसे व्याह करने को क्यों राजी हुई ? तुमने मेरी जिन्दगी को इस तरह से क्यों बरबाद कर दिया ? तुमसे शादी करने के लिए तुम्हारे पैरों पड़कर किसने खुशामद की थी ?

नः, यह सब कहना भी निखिलेश को नहीं सोहता। लिहाजा वह कुछ नहीं बोलता। अपने वेतन के रुपये पहले वह जिस तरह से नयनतारा के हाथों दे दिया करता था, इस बार भी उसी तरह से दे दिया।

नयनतारा ने कहा, "और मेरी तनखाह ?"

निखिलेश ने कहा, "तुमने तो पे-अथॉरिटी मुझे दी नहीं।"

नयनतारा ने कहा, "मुझे क्या खाक ख्याल था। देख तो रहे हो कि मुझे आफिस के बारे भी सोचने का समय नहीं है, रात-दिन रोगी के पीछे परेशान हूं—मुझे याद तो दिला देना था ?"

शीतेश की बात से उसका ध्यान टूटा, "क्या बात है, गुम होकर यों क्या सोचने लगा ? नशा हो गया क्या ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं।"

"तो ? पी।"

थोड़ी-सी ही पीकर निखिलेश का दिमाग कैसा करने लगा था। जो पीड़ा भीतर-ही-भीतर आज तक उसे कुरेदकर खा रही थी, वह जैसे कुछ

कम हुई।

शीतेश ने कहा, "मैं तो भैया रोज़ पीता हूं। जाड़ों में थोड़ी-बहुत पीना अच्छा है। डाक्टर ने मुझे पीने को कहा है। तू भी थोड़ी-सी और पी—"

शीतेश ने एक वेटर से और थोड़ी-सी लाने को कहा।

निखिलेश ने कहा, "नहीं भाई, अब नहीं।"

क्यों, हर्ज क्या है? यह पीना तो कोई गुनाह नहीं है।"

निखिलेश ने शीतेश का एक हाथ पकड़ लिया, "नहीं भाई, प्लीज़। मुझसे और पीते नहीं बनेगा। मुझे घर जाना है। नौ बजे एक ट्रेन है, वही पकड़नी होगी।"

शीतेश ने कहा, "जाना। मैं तुझे जाने से थोड़े ही रोक रहा हूं? मैं भी तो घर जाऊंगा। सभी घर जाएंगे। यहां कोई सारी रात रहने के लिए आया है?"

निखिलेश ने कहा, "सो नहीं। सोचता हूं, कभी मैंने ही शराब की दूकानों में कितनी बार पिकेटिंग की है, और आज वह शराब मैं ही पी रहा हूं—"

शीतेश हो-हो करके हंस उठा, "हं, कह क्या रहा है तू? शराब की दूकान में पिकेटिंग करके मैं खुद भी तो जेल जा चुका हूं। उस समय महात्मा गांधी ने जो कहा, वही किया। पता है तुझे, मैंने चरखे पर स्वयं सूत काता है और उसी सूत का धोती-कुरता बनवाकर पहना है। मगर अब तो भारत आज़ाद हो गया है, अब थोड़े ही सूत कातता हूं और खद्दर पहनता हूं, देख ले न, अब तो टेरिलिन का पाजामा बुशशर्ट—"

निखिलेश ने कहा, "अपना भी तो वही हाल है—"

शीतेश ने कहा, "सिर्फ मेरी-तेरी बात क्या, अब तो कोई भी वह सब नहीं मानता। उस समय जो-जो भी शराब नहीं छूते थे, अब सभी पीते हैं।"

निखिलेश अचानक बोल उठा, "तू ही मज़े में है। शादी-वादी नहीं की। बिलकुल आज़ाद है। तुझे किसीके आगे जवाबदेही नहीं देनी पड़ती?"

शीतेश बोला, "और तुझे किसके आगे जवाबदेही देनी पड़ती है? काहे की जवाबदेही?"

निखिलेश की शादी के इतने दिन हो गए, अपने बारे में उसने कभी किसीसे कोई गपशप नहीं की। गप करने की ज़रूरत ही कभी महसूस नहीं की। रोज़ छुट्टी हुई नहीं कि वह दौड़ता हुआ नयनतारा के आफिस जाता। नयनतारा भी रोज़ फाटक पर खड़ी उसकी राह देखती रहती। लेकिन अब बात और ही हो गई है। अब घर लौटने की वह उतावली नहीं रही। जब जी चाहा, गया। अफिस की फाइलें निबटाना उसके लिए ज़रूरी हो गया है।

जवाबदेही?

बात निखिलेश के मन में भी लगी। हर बार उसे ही तो नयनतारा के सामने जवाबदेही देनी पड़ी है। खर्च की पाई-पाई का हिसाब देना पड़ा है। और अब? उस जो एक पराए के लिए नाहक ही इतना खर्च किए जा रही है सो?

निखिलेश बोला, "चल, अब चलें—"

शीतेश ने कहा, "पर मेरी बात का जवाब नहीं दे रहा है?"

निखिलेश ने कहा, "जवाब क्या दूं? तूने तो शादी नहीं की। शादी की होती तो समझता।"

"क्यों, तेरी बीवी तुझसे गहने-पाते खूब मांगती है, क्यों?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं-नहीं, गहना गुरिया कतई नहीं चाहती। वह सिर्फ कलकत्ता में एक घर बनाना चाहती है। नयनतारा को कलकत्ता में अपना एक खास मकान बनवाने का बड़ा शौक है।"

निखिलेश इतना कहकर उठ खड़ा हुआ। बोला, "नः, अब नहीं पिऊंगा। पीने से ट्रेन के सब लोगों को मालूम हो जाएगा—"

"मालूम हो जाएगा तो ठेंगे से। मेरे टोले के तो सब लोग जानते हैं कि मैं पीता हूं। पीता कौन नहीं है, बता तो? सभी तो पीते हैं। हां, सभी छिप-छिपाकर पीते हैं और मैं खुलेआम पीता हूं। फर्क बस इतना ही है। वे लोग तो शराब पीने से भी बड़ा-बड़ा पाप करते हैं…"

"कैसा पाप?"

"अरे, तुझे तो सब पता ही है, मुझसे क्यों पूछ रहा है? अपने आफिस में ही नहीं देखता, कम्पनी कितना टैक्स चकमे से बचाती है? वह पाप नहीं है? चूंकि वह राजनीतिक-पार्टी को चन्दा देती है, इसलिए सरकार कुछ कहती नहीं है। हम लोग तो फकत अपनी गांठ के पैसे से पीते हैं, यह ऐसा कौन-सा अपराध है?"

शीतेश ने इतने में बिल चुका दिया था। निखिलेश जाकर बाहर रास्ते पर खड़ा हो गया। बोला, "उन बड़ी-बड़ी बातों की आलोचना हमें नहीं सोहती। हमें इसीमें जीना है और इसीमें मरना है। हम लोग राजा राममोहन राय भी नहीं हैं और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी नहीं हैं—निरे किरानी हैं। कष्ट करके, कर्ज-उधार करके कभी अगर कलकत्ता में एक मकान बना पाएं, तो उसीमें हमारे पुरखों का उद्धार हो जाएगा।"

"चल, पान खा लें।"

"पान किसलिए?"

"तेरी नयनतारा को पता नहीं चलेगा। पान खाने से मुंह की गंध जाती रहेगी।"

नैहाटी के रास्ते पर चलते हुए निखिलेश सोच रहा था, सचमुच ही किसीको उसके मुंह की गंध का पता तो नहीं चल रहा है। नहीं-नहीं, सो पता नहीं चल रहा है। चलता तो ट्रेन में ही लोगों को मालूम हो जाता। यहां भी तो बहुतेरे जाने-पहचाने लोगों से मजबूरन बोलना पड़ा।

लेकिन अचानक मनोहर दत्त के यह बताने से उसका नशा फट जाने की नौबत हो आई। नयनतारा ने उससे यह बात कही क्यों नहीं! वह अपने शौक के हार को वहां गिरवी क्यों रख गई! इसलिए कि मुझे पता चल जाएगा!

घर के सामने पहुंचा। दरवाजे का कड़ा खटखटाए कि नहीं, सोचने लगा। कड़ा खटखटाने से कहीं नयनतारा ही दरवाजा खोलने के लिए आए। और कहीं उसके मुंह की गंध को भांप ले। फिर ?

गली के किनारे ही घर। खिड़की से जरा झांककर देख ले। अन्दर टिमटिम बत्ती जल रही थी। खिड़की के निचले दोनों पल्ले बंद थे। अन्दर जहां वह भला आदमी सोया हुआ है, वहां देखना हो, तो खिड़की के ऊपर से झांकना होगा।

और, निखिलेश एक कारस्तानी कर बैठा। एक कोने से वह खिड़की पर चढ़ गया। आहिस्ता-आहिस्ता चुपचाप उसने देखा, वह भला आदमी चौकी पर सोया हुआ है। उसे होश है या नहीं, समझ में नहीं आता। करवट लेकर सोया हुआ है। और उसके सिरहाने खिड़की की ओर पीठ किए बैठी नयनतारा उसके माथे पर आइस-बैग रखे हुए है।

देर तक निखिलेश एकटक उस तरफ देखता रहा।

आश्चर्य है। जिस आदमी ने एक दिन नयनतारा पर अत्याचार और अपमान का कुछ बाकी नहीं रखा, जिसने एक दिन नयनतारा के जीवन को विषाक्त कर दिया था, जिसकी वजह से ही कष्ट से ऊबकर सिंदूर पोंछकर, हाथ की चूड़ियां फोड़कर, नयनतारा फिर कुमारी बन गई थी, उसीकी ऐसी अमानुषिक सेवा। यह भी क्या किस्मत का मखौल नहीं है। यह कैसे सम्भव हुआ। इसी आदमी के लिए अपने उतने शौक के हार को भी सुनार के यहां गिरवी रखने में कोई हिचक नहीं हुई। नारी-चरित्र क्या इतना ही विचित्र होता है।

वहां खड़े-खड़े यह दृश्य देखने में निखिलेश को खुद ही शरम आने लगी। वह कर क्या रहा है यह ? यह उसका अपना घर है, अपनी पत्नी है और उसे खुलकर अन्दर देखने का साहस नहीं है ? यह कैसा कम्प्लेक्स ? यह कैसा व्यवहार है उसका ?

वह जल्दी-जल्दी खिड़की से उतरा। आंगन के दरवाजे के सामने जाकर खड़ा हुआ। अपने मन को उसने सख्त कर लिया। नहीं, उसने कोई गुनाह नहीं किया है। उसने ऐसा कुछ नहीं किया कि घर जाने में शरम आए।

वह कड़ा खटखटाने हो जा रहा था कि हठात् अंदर से आप ही दरवाजा खुल गया। गिरिबाला बाहर जा रही थी।

"कहां जा रही हो गिरिबाला ?"

गिरिबाला बोली, "दवा नहीं है। वही लाने जा रही हूं।"

फिर कुछ सोचकर बोली, "आप अभी खाएंगे ? खाना देकर जाऊं ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं। मैं खाकर ही आया हूं, नहीं खाऊंगा। तुम जाओ, मैं दरवाजा बंद किए देता हूं—"

उसने दरवाजे की कुंडी लगा दी। नहानघर में जाकर हाथ-मुंह धोया और धीरे से अपने कमरे में चला और बिस्तर पर पड़कर रजाई ओढ ली।

"दीदीजी, दीदीजी—"

गिरिबाला का गला सुनकर हाथ के आइस-बैग को रखकर नयनतारा उठी। जाकर दरवाजा खोल दिया। बोली, "क्या है ?"

गिरिबाला ने उसकी ओर दवाई बढ़ा दी।

"हाय राम, तुम दवा लाने कब चली गई ? मुझसे कहा तो नहीं—"

गिरिबाला ने कहा, "बाबूजी आ गए न, इसीलिए आपसे नहीं कहा—"

नयनतारा को अचम्भा हुआ, "बाबूजी ? बाबूजी कब आए ? मुझे तो पता नहीं चला, कब आए ?"

आश्चर्य है। उसे जरा भी पता न चला। दवा रखकर नयनतारा सोने के कमरे में देखने गई। देखा, निखिलेश बेखबर सो रहा है।

निखिलेश की इस करतूत से वह अवाक् हुई। पहले, जब दोनों साथ आफिस जाते थे, तब तो वह इतनी देर करके नहीं लौटता था।

नयनतारा ने पुकारा, "सुनते हो, अजी ओ—"

फिर भी कोई जवाब नहीं।

नयनतारा ने फिर आवाज दी, "अजी ओ, सुनते हो ?"

उसके बाद वह बाहर गिरिबाला के पास गई। पूछा, "क्यों री गिरिबाला, बाबू क्या बिना खाए ही सो गए ?"

गिरिबाला ने कहा, "नहीं दीदीजी, मैंने उनसे पूछा था, वह बोले, 'मैं आफिस से ही खाकर आया हूं, नहीं खाऊंगा—' "

कैसी आफत है ! बनाबनाया भात बरबाद हुआ न। बोली, "भात में पानी डाल देना। कल न होगा तो मैं ही खा लूंगी।"

फिर वह वहां रुकी नहीं। रुकने का समय भी नहीं था उसे। उधर उस कमरे में वह आदमी बेहोश पड़ा है। सिर पर आइस-बैग दे रही थी, उठकर चली आई है। वह फिर रोगी के पास जाकर बैठ गई। ये कई दिन किन मुसीबतों में गुजर रहे हैं, कहा नहीं जा सकता। उसका सारा शरीर इन्हीं दो महीनों में कंकाल-सा हो गया है।

"दीदीजी ?"

नयनतारा ने दरवाजे की तरफ ताका। गिरिबाला खड़ी थी।

"आप खाएंगी नहीं ?"

घड़ी की तरफ देखते ही ध्यान आया, रात के दस बज गए। पता भी नहीं चला, कब दस बज गए। बोली, "तो तुम जरा इनके माथे पर आइस-बैग दो, तो मैं झटपट जो बने, थोड़ा-सा खा आऊं।"

गिरिबाला ने आइस-बैग सम्भाला। नयनतारा चौके की तरफ चली गई।

किन्तु खाते-खाते भी वह अपने मन को रोगी के कमरे से अलग नहीं कर सकी। गिरिबाला के भरोसे उसे छोड़कर मानो चैन नहीं थी। जाने और कब तक ऐसा चलेगा। जो आदमी इतने अहंकार के साथ उसका कमरा छोड़कर चला गया था, वह फिर उसीके आश्रय में आकर ऐसी सेवा लेगा, यह भी उसके भाग्य में बदा था। कितने दिन रात में वह उसकी ओर

देखकर क्या जाने क्या कहना चाहता। अथच वह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वह जिसकी ओर देख रहा है, वह नयनतारा है। नयनतारा को वह पहचान लेता तो क्या करती, क्या जो!

एक दिन नयनतारा ने डाक्टर से पूछा, "हालत कैसी देख रहे हैं डाक्टर बाबू! चंगे तो हो जाएंगे न?"

डाक्टर ने कहा था, "पहले से तो हालत सुधरी है। दवाएं ठीक से देते जाइएगा, जरूर लाभ होगा।"

नयनतारा ने पूछा, "लेकिन अभी भी ये आदमी को पहचान क्यों नहीं रहे हैं?"

डाक्टर ने कहा, "आदमी पहचानने में अभी समय लगेगा। इतना तेज़ बुखार रहने से दिमाग पर तो उसकी प्रतिक्रिया होती है न? आजकल ऐसे रोगी बहुत से आ रहे हैं। इस नई किस्म का टाइफायड आजकल बहुत हो रहा है।"

नयनतारा ने कहा, "बहुतों ने अस्पताल भेज देने को कहा था। मैंने लेकिन आपके भरोसे ही घर पर रख लिया है। कोई विपत्ति तो नहीं होगी?"

डाक्टर ने कहा, "इतने दिनों तक जब अस्पताल नहीं भेजा, तो अब भेजने की जरूरत नहीं, क्राइसिस निकल गई—"

"देखिए डाक्टर बाबू, जिसमें मेरी लाज रहे, नहीं तो मैं बड़ी मुसीबत में पड़ूंगी।"

डाक्टर ने पूछा, "ये आपके कौन होते हैं?"

नयनतारा ने कहा, "मेरे बड़े नजदीकी हैं, ससुराल के आदमी है।"

"इनके बीवी-बच्चे कोई नहीं है? इनकी शादी हो चुकी है?"

नयनतारा ने कहा, "हां।"

"तो, इनकी पत्नी को खबर भेज दी है? वे लोग कोई आ जाते तो आपकी परेशानी कुछ कम होती। इस तरह आप कब तक अकेली रात को भी जगती रहेंगी? महीनों लगातार रात को जागने से आप भी तो चूर हो जाएंगी। और कहीं आप भी टूट पड़ें तो फिर तो सब ठप हो जाएगा। बनर्जी बाबू को थोड़ी मदद करने के लिए क्यों नहीं कहती हैं? कभी-कभी वह भी तो रात को जग सकते हैं—"

"वह तो दिन-भर आफिस में काम करते हैं। सवेरे निकलते हैं और रात को लौटते हैं। ऐसे में उनसे कहूं भी कैसे?"

"फिर तो आपको एक नर्स का इंतजाम करना चाहिए। उसमें खर्च बेशक बहुत पड़ेगा। एक नर्स से इतना होगा भी नहीं, दो नर्स चाहिए। बारी-बारी में ड्यूटी करेगी।"

नयनतारा बोली, "इतने दिनों तक बिना नर्स रखे ही जब सम्भाला है तो और कुछ दिनों के लिए खामखा ही रखना। फिर यह भी है कि मैं जैसी देख-भाल करूंगी, पैसा लेने वाली नर्स वैसा करेगी क्या?"

"बात तो सही है। परन्तु आप जो कर रही हैं, वह अपनी पत्नी तो क्या, किसीकी अपनी मां भी नहीं कर सकती।"

यह सुनकर नयनतारा का चेहरा कैसा तो फीका-सा हो गया। बोली, "आप ऐसा न कहें। सिर्फ यह कहें कि इनका कष्ट जल्दी से दूर हो जाए। मुझसे इनका कष्ट अब देखा नहीं जाता।"

डाक्टर ने कहा, "इन्हें जो कष्ट हो रहा है, सो तो हो ही रहा है, पर इनके लिए जो कष्ट आपको हो रहा है, वह क्या कम है?"

नयनतारा इसपर कुछ नहीं बोली। बोलने को कुछ था भी नहीं। वह भगवान से सिर्फ यही प्रार्थना करती थी कि यह जल्दी से जल्दी अच्छा होकर चला जाए। इसके चले जाने पर ही वह नियम से काम पर जा सकेगी, निखिलेश का भी सेवा-जतन कर सकेगी। आफिस जाने से पहले निखिलेश जब खाने बैठता, तो नयनतारा कभी-कभी आकर वहां खड़ी होती। कहती, "और, तुमने तो कुछ खाया नहीं।"

निखिलेश कहता, "मेरी चिन्ता तुम्हें नहीं करनी होगी।"

नयनतारा कहती, "खूब! नहीं करनी होगी माने? मैं नहीं चिन्ता करूंगी, तो कौन करेगा? अभी तो तुम्हारी ट्रेन में देर है, थोड़ा-सा और खा लो—"

लेकिन निखिलेश उससे पहले ही थाली पर से उठ जाता। नयनतारा कहती, "ऐसा खाने से तुम्हारी तंदुरुस्ती कैसे रहेगी?"

"मुझे अब भूख नहीं है।"

वह किसीकी कोई बात नहीं सुनता। आफिस चला जाता। ऐसा अक्सर ही होता। इसके चंगा हो जाने से कम-से-कम ऐसा नहीं होगा। गिरस्ती के कितने धंधे पड़े थे, किसी तरफ देख नहीं पाती थी नयनतारा। बिछावन की चादर फट गई थी। छत पर, दीवाल पर मकड़ी का जाला। किसी तरफ भी देखने की फुरसत नहीं थी उसे। अब यह अच्छा हो जाएगा, तो फिर सब बात का ख्याल कर सकेगी। फिर से निखिलेश के चले जाने के बाद वह आफिस जाया करेगी, लौटने के समय एक साथ घर लौटेगी।

"दीदीजी, नये बाबू कैसा तो कर रहे हैं—"

नयनतारा यह सुनकर खाना छोड़कर उठ पड़ी। बोली, "कैसा कर रहे हैं?"

गिरिबाला ने कहा, "लगा उन्हें खूब तकलीफ हो रही है। छटपट कर रहे हैं—"

नयनतारा बोली, "तुम खा लो, मैं वहां जा रही हूं।"

उसने झटपट हाथ-मुंह धोया। रोगी के कमरे में जाकर देखा, सदानन्द अपना सिर तकिए पर कभी इधर, कभी उधर कर रहा है। ऐसा तो नहीं करता था। नयनतारा को लगा, उसे बड़ी पीड़ा हो रही है। सह नहीं पा रहा है। सारा बदन पीड़ा से मानो कातर हो रहा है—

सदानन्द के सिर पर हाथ फेरते हुए वह बोली, "तकलीफ हो रही है? क्या तकलीफ हो रही है, मुझसे कहो। डाक्टर को बुलवाऊं?"

रात के लगभग दो बज रहे थे। निखिलेश गहरी नींद में था। हांक-पुकार से उसकी नींद खुल गई। निखिलेश ने आंखें खोलीं। देखा, सामने नयनतारा खड़ी है। नयनतारा ने उसे गिड़गिड़ाकर कहा, "मुझे बड़ा डर लग रहा है। तुमको एक काम करना होगा—"

निखिलेश की नींद का आलस गया नहीं था। रजाई हटाकर वह किसी तरह से उठ बैठा। आंखों में अभी भी तंद्रा-सी लगी थी लेकिन। नयनतारा बोली, "अजी ओ, जरा उठो तो—"

निखिलेश उठा। बोला, "क्या करना होगा ?"

नयनतारा ने कहा, "उस घर में वह कैसा तो कर रहा है—"

निखिलेश की आंखों में जो भी जड़ता थी, जाती रही। बोला, "तो मैं क्या करूं ?"

नयनतारा ने कहा, "जरा डाक्टर को बुलाना होगा। वह कष्ट से तड़प रहा है। डाक्टर को बुलाए बिना मैं थिर नहीं रह पा रही हूं, बड़ा डर लग रहा है।"

निखिलेश ने कहा, "इस ठंड में और इतनी रात में डाक्टर साहब आएंगे ? सवेरे जाने से नहीं होगा ?"

नयनतारा ने कहा, "लेकिन मुझे लक्षण तो अच्छा नहीं लग रहा है। कहीं रात न कटे ? डाक्टर साहब मुझसे कह गए हैं, जितनी रात भी हो, वह बुलाने से आएंगे।"

निखिलेश ने कहा, "लेकिन मैं कैसे जाऊं ?"

"तुम नहीं जाओगे, तो कौन जाएगा ? घर में तुम्हारे सिवाय और कौन है ? गिरिबाला औरत ठहरी, इतनी रात को उसे बाहर भेजना अच्छा होगा ? फिर मैं हूं, तुम कहो तो मैं ही जाऊं ?"

निखिलेश आजिज हो गया। एक तो शाम को शीतेश के साथ होटल में पी, फिर इतनी ठंड, तिसपर ऐसे समय नींद तोड़ देना। बोला, "इसीलिए तो मैंने तुम्हें इसे अस्पताल भेज देने को कहा था।"

निखिलेश की बात पर नयनतारा नाराज नहीं हुई। बोली, "देखो, अभी उस बात से कोई लाभ नहीं। मैंने शायद गलती ही की है। लेकिन तुम क्या सोचते हो, मेरी गलती की वजह से एक आदमी की जान चली जाए ?"

बोलते-बोलते वह निखिलेश के बहुत करीब पहुंच गई थी। परन्तु जैसे धक्का लगा हो, वह पीछे हट आई। उसे संदेह-सा हुआ। बोली, "तुमने शराब पी है ?"

निखिलेश समझ नहीं सका कि क्या कहे !

नयनतारा का संदेह पक्का हो गया। बोली, "यह क्या, तुमने शराब कैसे पी ? तुम तो पीते नहीं थे ? सच-सच बताओ, तुमने शराब पी है ?"

निखिलेश के मुंह में कोई जवाब नहीं। उसकी चोरी पकड़ी गई, यह जानकर कोई कैफियत खोजने की कोशिश करके भी हताश होकर हतवाक हो गया।

नयनतारा ने कहा, "और मैं सोचती रही कि आफिस में काम का दबा ज्यादा है, तुम इसलिए देर से घर लौटते हो। मैं साथ नहीं रहती हूं तो तु इस तरह से शराब पिओगे ? तुम क्या रोज ही पीकर आया करते हो ? तो कुछ भी नहीं जान सकी—तुम रोज पीते हो ?"

निखिलेश के विवेक में कहीं जैसे ठेस लगी। बोला, "नहीं, आज ही प है।"

"यह हरगिज नहीं हो सकता। जरूर तुम मुझसे छिपाकर रोज पीते ह नहीं तो तुम्हें घर लौटने में इतनी देर क्यों होती है ?"

निखिलेश ने कहा, "सच कहता हूं, रोज नहीं पीता।"

"तो फिर आज ही क्यों पी ? जो पीते नहीं, एकाएक आज ही उसने क पी ?"

निखिलेश ने कहा, "शीतेश ने बड़ी जिद की। उसीने अपने पैसे पिलाई—"

"शीतेश बाबू ने जिद की और तुमने पी ली ? माना, पैसे नहीं खर्च हु मगर तुमने किस अक्ल से पी, मैं यही पूछती हूं ? तुम क्या बच्चे हो कि उस जिद की और तुमने पी ली ? जरूर तुम्हें पीने का मन था।"

निखिलेश सकपकाया। बोला, "आज पी ली तो क्या रोज ही पिऊंगा एक दिन पी ही ली तो ऐसा क्या दोष हो गया ?"

"आदमी पीता है तो पहली बार एक ही दिन पीता है। एक दिन कर करते आखिर नशे की लत हो जाती है—यह नहीं मालूम है ?"

इतने में अचानक उसे रोगी की याद आ गई। बोली, "मैं दफ्तर न जाती हूं, इसलिए जो जी में आएगा, तुम वही करोगे ? एक तो घर में मुसीबत है और उधर तुम भी वैसे ही हो गए। मैं अकेली किधर सम्भालूं

निखिलेश ने कहा, "मैंने तो पहले ही अस्पताल भेजने को कहा था—"

नयनतारा ने कहा, "तुम बोलो मत। बोलने में शरम नहीं आती तुम्हें विपत्ति में मेरी मदद कहां करोगे कि किसके कहने से शराब पी आए। आफि से निकलकर दोस्तों से गप्पें न मारकर सीधे घर नहीं आ सकते ? मैं दि रात रोगी को लिए पड़ी हूं, कब से सो तक नहीं पाई। डाक्टर बाबू तो रहे थे, महीनों यों रात जगने से मुझे भी कोई सीरियस बीमारी हो जाएगी

निखिलेश ने कहा, "मगर मैं क्या कर सकता हूं, कहो ?"

नयनतारा बोली, "तुम ? मुझे कुछ मदद तो कर सकते हो ?"

"मैं तुम्हें मदद करूंगा ?"

"सो करने से क्या नुकसान है ? गिरिबाला बूढ़ी है। वह अकेली इतना सम्भाल सकती है ? मेरा भी शरीर अब चल नहीं रहा है। कभी भी शायद खाट की शरण लेनी पड़ेगी। फिर क्या होगा, भगवान ही जा तुम तो पीकर मजे में सो जाते हो, जरा मेरी तो सोचो—"

निखिलेश ने कहा, "मैं इन बातों का जवाब नहीं देना चाहता। अ करना क्या होगा, सो कहो।"

"डाक्टर को इसी समय बुलाना है। कहना, रोगी की हालत बहुत खराब है—"

"क्या बजे हैं अभी ?"

"दो।"

निखिलेश ने कहा, "सवेरे जाने से नहीं चलेगा ?"

"सवेरे की बात होती तो तुम्हें क्यों कहने आती ? तब तो गिरिबाला भी जा सकती, सम्भव होता तो मैं भी जाती। लेकिन इतनी रात को कैसे जाऊं मैं, कहो ? इतनी भी अक्ल नहीं है तुम्हें ? डाक्टर साहब ही क्या सोचेंगे ? सोचेंगे, घर में मर्द के होते, बनर्जी बाबू ने इतनी रात को पत्नी को भेज दिया है !"

निखिलेश बिगड़ गया। बोला, "मगर तुम्हें यह झंझट सिर पर लेने को कहा ही किसने था ! हम लोग तो बड़े सुख, शान्ति से रह रहे थे। कोई झमेला नहीं था। यह बखेड़ा तो तुमने ही मोल लिया—"

नयनतारा ने कहा, "अब वह सब गड़ा मुर्दा उखाड़ने का समय नहीं है। तुम जल्दी से स्वेटर पहन लो, नहीं तो फिर ठंड लग जाएगी—जाओ—"

निखिलेश को आपत्ति करने का मौका नहीं था। खुद से स्वेटर निकालकर पहन लिया। ऊपर से चादर डाल ली और निकल पड़ा। नयनतारा दरवाजे को बंद कर आई और फिर से रोगी के माथे पर आइस-बैग देने लगी।

कोई आदमी जब जगह-जायदाद करता है, तो यही सोचकर करता है कि वंशानुक्रम से उसका भोग-दखल करेगा। कब का, किस अलीवर्दी खां या मीरजाफर के अमल का वंश, कैसे जाने कितनी युग-परिक्रमा करके हजारों शाखा-प्रशाखा में फैला था। उनमें से कौन छिटककर कहां जा रहा था, किसी को पता नहीं था। संयोग से अचानक देखने पर भी वे शायद एक दूसरे को पहचान नहीं पाते। उसी विशाल महीरुह की एक छोटी-सी शाखा एक दिन नदिया जिले के एक साधारण से गांव में जाने कैसे तो इतिहास के समुद्र में बुलबुला जगा पाई थी—वह बुलबुला भी चौधरी जी की मौत के साथ ही कहां खो गया।

प्रश्न लेकिन यह नहीं था। प्रश्न था कि सरकारी सरिश्ते में इस सम्पत्ति के उत्तराधिकारी के रूप में नाम किसका लिखा जाएगा। कानूनन उसका सही उत्तराधिकारी कौन है ? कीर्तिपद बाबू के भी कोई लड़का नहीं था। लड़की एक थी, वह भी नहीं रही। अब उनके दामाद हरनारायण चौधरी जी भी चल बसे। रह गया सिर्फ सदानन्द। सदानन्द चौधरी। लेकिन वह है कहां ? उसका पता कौन बताए ? वह कब से ही तो लापता है। पर, वह कहीं जीवित हो ? फिर तो वह अकेले ही इन दोनों जायदादों का मालिक होगा। वह अगर एका-

एक आकर अपनी पैतृक सम्पत्ति का दावा कर बैठे तो यह प्रकाश कहां रह जाएगा ? प्रकाश राय ?

प्रकाश राय ने देर नहीं की। शुभस्य शीघ्रं।

अपने बीवी-बच्चों को वह पहले ही जीजाजी के यहां ले आया था। अश्विनी भट्टाचार्य की नजरों के सामने ही वह सब कुछ का मालिक बन बैठा। सुलतानपुर के सभी लोग रातों-रात प्रकाश राय के भक्त हो गए। कीर्तिपद बाबू बैठके में पांव पर पांव रखकर जैसे आम-दरबार लगाया करते थे, प्रकाश राय भी ठीक उसी तरह से पांव पर पांव रखकर आम-दरबार लगाने लगा। बैंक में जो जमा-जथा था, उसपर तो हाथ लगाते नहीं बना। बैंक के मैनेजर ने कहा, "ये रुपये तो हम आपको नहीं दे सकते। इस बात का पक्का सबूत चाहिए कि हरनारायण चौधरी के विधिसम्मत उत्तराधिकारी आप ही हैं।"

प्रकाश ने कहा, "सबूत मैं और क्या दूं ? सबूत तो गांव के लोग ही हैं। सबूत आपको वही देंगे, वही बताएंगे कि हरनारायण चौधरी जी के और कोई नहीं है। वह मेरे जीजाजी हैं। कानूनन उनके सब कुछ का हकदार मैं ही हूं।"

मैनेजर ने कहा, "यह कहने से तो बैंक नहीं मानेगा; आप कोर्ट से सक्सेशन सर्टिफिकेट ले आइए। कोर्ट अगर आप ही को हरनारायण चौधरी का वारिस मुकर्रर करे, तो रुपये आपको ही मिलेंगे।"

बड़ी मुश्किल में पड़ा प्रकाश। उसके इतने दिनों की पाली हुई उम्मीद का जब मौका आया तो वह क्या ऐसे ही मिट्टी में मिल जाएगा ? नाव बिलकुल किनारे लगकर डूब जाएगी ?

इस बीच प्रकाश राय के जी-हुजूरों की जमात जुट गई। अश्विनी भट्टाचार्य को अब वह गुस्सा नहीं रहा। अब वह बिलकुल बदल गया। सवेरा होते न होते सब खुशामदी प्रकाश राय की बैठक में आ पहुंचते। आते ही प्रकाश राय को प्रणाम करते। पूछते, "राय बाबू को रात नींद तो आई।" उस समय सभी प्रकाश राय के हितैषी हो गए थे। सभी कहते, "जरा अपनी सेहत का ख्याल रखिएगा राय बाबू, आप अच्छे रहेंगे, तभी हम लोग भी अच्छे रहेंगे।"

प्रकाश कहता, "अजी आप सोचें ही मत, मैं आप सबका भला करूंगा।" उसके बाद कीर्तिपद बाबू के हुक्के से धुआं निकालते हुए कहता, "चौपट तो सब जीजाजी ने कर दिया। वह अगर जगह-जमीन सब बेच नहीं गए होते, तो देखते, मैं आप सब लोगों की मालगुजारी माफ कर देता।"

भीम विश्वास ने पूछा, "मगर जगह-जमीन उन्होंने किसके लिए बेच दी ? लड़का नहीं, लड़की नहीं, बीवी नहीं—फिर इतने रुपये बैंक में रख किसके लिए गए ? उतने रुपयों का सूद कौन खाएगा ?"

अश्विनी कहने लगा, "वह सब कुछ आपके लिए रख गए राय बाबू ! महतोई की तो आपने ही सब दिन सेवा की। यह उस सेवा का दाम है—"

"राम कहो, यह रुपया मैं छूने वाला हूं। दूसरे का रुपया छूए मेरी बला।

जिसका रुपया है, उसके लौट आते ही पास बुक उसके हवाले कर दूंगा। कहूंगा, अपने रुपये तू आप ले, मुझे इस झंझट से छुटकारा दे।"

भीम विश्वास ने कहा, "इतने दिन तो हो गए। आपका भांजा क्या अब लौटेगा राय बाबू? लौटना होता तो अब तक लौट आता।"

प्रकाश ने कहा, "न लौटे तो मैं क्या कर सकता हूं, कहो? उसे ढूंढ़ने में तो मैं कोई कसर नहीं रख रहा हूं। सारी दुनिया की खाक छानी। अपने भांजे के भले के लिए मुझसे जितना भी बना, किया। बचपन में ही उसे अगोरते हुए पाला कि कुसंगत में पड़कर वह बिगड़ न जाए—"

भीम विश्वास ने कहा, "तो समझ लीजिए कि ईश्वर ने वह रुपया आपको ही दिया। भगवान तो आपको पहचानते हैं, उनकी दृष्टि में तो आपने कोई पाप नहीं किया है—"

"पाप?"

पाप के नाम से प्रकाश राय डर से उछल उठा। बोला, "बाप रे, पाप नहीं किया है? पता नहीं, जीवन में कितना पाप किया है? अजी, आदमी होकर पैदा होना ही तो पाप है। देखो न, राह चलते अनजाने कितनी चींटियों को रौंद डाला है, तालाब की मछली खाता हूं, मांस खाता हूं, कितने मक्खी-मच्छर मारता हूं—यह सब पाप नहीं है?"

"नहीं-नहीं, उस पाप की नहीं कहता। वह पाप कौन नहीं करता है राय बाबू? जो महापुरुष हैं, उन लोगों ने भी ऐसा पाप किया है।"

प्रकाश ने कहा, "लेकिन हां, शराब पीने को अगर पाप कहो तो शराब तो मैंने आंखों ही नहीं देखी, तो पीना। हां, यह झूठ नहीं कहूंगा, राह-बाट में शराब की बू कभी-कभी नाक में गई है। और स्त्री? मैं तो स्त्री मात्र को ही मां कहता हूं, यह तो आप लोग भी जानते हैं—"

सभी कबूल करते, "राय बाबू जैसे देवतास्वरूप आदमी भागलपुर में दूसरा नहीं है।"

प्रकाश बोला, "लेकिन अकेले मेरे भले होने से क्या होगा? सारी दुनिया के लोग ही तो बुरे हो गए, इसीका तो मुझे दुःख है।"

अश्विनी ने कहा, "आप इसके लिए न सोचें राय बाबू, यह सोचने में नाहक आपकी ही सेहत खराब होगी। आप जो अपने भांजे के लिए सोच रहे हैं, कोई सोचता है? और कोई होता तो एक ही दिन में बहनोई की सम्पत्ति बेच खाता। आप ही हैं कि अभी तक भांजे की राह देख रहे हैं।"

भीम विश्वास ने पूछा, "आपके भांजे का तो ब्याह भी हुआ था?"

"अरे, ब्याह तो मैंने ही कराया था। अच्छे वंश की बड़ी खूबसूरत लड़की से ब्याह कराया था। मगर कहा न, कम्बख्त बिटल गया—"

"बिटल गया माने?"

"बिटल गया माने बदचलन हो गया। आदमी के लिए असली चीज है चरित्र। वही अगर जाता रहा तो फिर रहा क्या? अपनी पत्नी को छोड़कर कहां तो कलकत्ता चला गया। एक बार पुलिस ने उसे जेल में भी डाल दिया

"क्यों ?"

"और क्यों ? चरित्र की वजह से। जिसका चरित्र नष्ट हुआ,
इहकाल भी गया और परकाल भी गया। इसीलिए तो मैं जीजाजी
करता था, आपका सब कुछ अच्छा है जीजाजी, सिर्फ आपका लड़
आवारा है।"

"तो फिर क्या हुआ ?"

"फिर वही मैं। मैं ही कलकत्ता गया। पुलिस के बड़े साहब के
पांव पड़कर उसे छुड़ाकर लाया। अजी, उस भांजे के लिए मैंने क्या कु
किया है ? मगर मैंने इतना जो किया, सब अपनी दीदी के लिए। भा
आकर फूफाजी का ख्याल करूं, या कि अपने बीवी-बच्चों को देखूं, इसक
चारा था मुझे ? यहां आने की कहते ही दीदी रोने-धोने लगती। कहती,
जा प्रकाश, तू चला जाएगा तो मेरा सदा जहन्नुम में चला जाएगा।
जो जहन्नुम में ही जाने की कसम खा लेता है, उसे क्या भगवान ही बचा
हैं ?"

जो लोग राय बाबू की बैठक में आते थे, वह सब अखीर के भ
आते थे। प्रकाश राय यह जानता था। जानता था, इसीलिए सबको
देता था। ऐसी आशा देता कि लोग जिसमें रोज़ आएं। लोग प्रकाश के
जी को जैसी भय-भक्ति करते थे, प्रकाश की भी ठीक वैसी ही करते
नवाबगंज में उसने दीदी के ससुर बड़े मालिक की आदर-कदर देखी है,
फूफाजी की भी देखी है। इतने दिनों के बाद लोगों से वैसी ही खातिर
प्रकाश को अच्छा लगता था।

अश्विनी ने पूछा, "आखिर आपके भांजे की पत्नी का क्या हुआ ?

प्रकाश ने कहा, "होगा और क्या ! जो गाय ब्यायगी नहीं, दूध भ
देगी, उसे सानी-भूसा खिलाए, ऐसा अहमक कोई है ?"

सुनकर भीम विश्वास भी चकित हो जाता, अश्विनी भी। बैठके
भी लोग होते, सभी अवाक् हो जाते। पूछते, "तो वह बहू आखिर है
कोई खोज-खबर नहीं लेता ?"

"उस कुलच्छनी की खोज-खबर कौन रखे ? उस बहू के आने के
ही तो दीदी और जीजाजी का यह हाल हुआ। नहीं तो नवाबगंज की
लाख की सम्पत्ति कोई पानी के मोल बेचता भला ?"

भीम विश्वास ने पूछा, "कितने पर वह जमींदारी बिकी ?"

प्रकाश ने कहा, "तीन लाख।"

तीन लाख। तीन लाख पानी के मोल हुआ। रुपये की तादाद
मौजूद सभी चौंके। वहां की जमींदारी अगर तीन लाख पर बिकी तो सु
पुर की भी कुल मिलाकर पांच लाख में तो जरूर बिकी होगी। जो वहां
थे, उनमें से किसीने एक साथ एक हजार रुपया ही नहीं देखा, यह तो
की बात है। तिसपर सूद भी है। हर महीने उसका सूद भी तो जमा ह

है। वह सूद भी तो राय बाबू को मिलेगा।

भीम विश्वास से रहा नहीं गया। पूछ बैठा, "इतने रुपये का सूद कितना होगा? प्रकाश ने यों ही लापरवाही से कहा, "और कितना, आठेक हजार होगा।"

"हर महीने?"

"हां, हर महीने।"

बाप रे! सूद की रकम सुनकर फिर सब आसमान से गिर पड़ते। हर महीने आठ हजार सिर्फ सूद। मूल में हाथ लगाने की जरूरत ही नहीं होगी और सूद का भी सब खर्च नहीं होगा। सूद से भी एक मोटी रकम हर महीने असल में जमा होती रहेगी। और आखिर उन रुपयों का पहाड़-सा होकर बैंक के सन्दूक से छलक पड़ेगा। नसीब इसको कहते हैं। किसका रुपया और कौन उसे भोगेगा। रैयतों को चूस-चूसकर नरनारायण चौधरी रुपया जमा कर गए और उस रुपये से फिर उनके समधी का रुपया जुड़ गया। लड़का भी था, लड़के की बहू भी थी। वे भी जानें कहां चले गए और सबके रुपये आकर प्रकाश राय की किस्मत में नाचने लगे।

"समझे राय बाबू, पिछले जन्म में आपने बड़ा पुण्य किया था, इसीलिए इस जन्म में इतने रुपयों के मालिक हुए। धन्य हैं आप, आप ही धन्य हैं राय बाबू!"

भीम विश्वास ने प्रकाश के चरणों की धूल को कपाल से लगाया।

दोनों पांव आगे बढ़ाकर प्रकाश बोला, "चरणों की धूल ले रहे हो, लो; मगर इसमें तो मेरी कोई बहादुरी नहीं है। हां, मैंने अपने चरित्र को ठीक रखा है, यही मेरी सिफत है। मैंने शराब भी नहीं पी, औरत भी नहीं रखी और कभी झूठ भी नहीं बोला। और शराब-औरत से वास्ता नहीं रखना, झूठ नहीं बोलना अगर अच्छा काम हो, तो मैंने अच्छा काम किया है।"

और आत्मगौरव से उसने मुंह से भक्-भक् करके धुआं निकाला।

लेकिन बैंक के मैनेजर ने ही अड़ंगा लगा दिया। सक्सेशन सर्टिफिकेट के लिए तो कोर्ट की शरण लेनी पड़ेगी। वहां अगर यह कलई खुल जाए कि हरनारायण चौधरी के एक लड़का है, तो क्या होगा? वह लड़का अगर जीवित न भी हो, तो उसकी शादी हुई थी। उसकी पत्नी तो जरूर होगी। नये कानून के मुताबिक लड़का जिन्दा नहीं, तो लड़के की पत्नी ही ससुर की सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी।

आखिर एक दिन प्रकाश वकील के यहां गया। वकील ने सब कुछ सुना। सुनने के बाद कहा, "आपका भाजा अगर जिन्दा हो, तो सारी सम्पत्ति वही पाएगा।"

"मान लीजिए, जिन्दा नहीं है। संन्यासी हो गया है।"

"वह अगर न मिले, तो सारी जायदाद उसकी पत्नी को मिलेगी। अब ऐसा ही कानून बना है। खैर, उसके पास से एक कागज लिखा लाइए न।"

"क्या लिखा लाऊं?"

"सिर्फ लिखा लाने से ही नहीं चलेगा। फुसला-फुसलाकर भांजे की बहू को जरा यहां कोर्ट में ले आइए, उसके बाद जो करना होगा, मैं करूंगा। आपके भांजे की बहू कहां है?"

प्रकाश ने कहा, "यह तो नहीं मालूम। शायद अपने नैहर ही में हो।"

"उन लोगों से आपका सरोकार कैसा है?"

प्रकाश ने कहा, "सरोकार तो बहुत अच्छा नहीं है। अन्त-अन्त में जीजाजी से पतोहू का बड़ा झगड़ा हुआ था। वह बड़ी हेठी का काम कर बैठी थी। उसीसे रंज होकर पतोहू अपने मैके चली गई, फिर आई नहीं—"

वकील ने कहा, "तलाक हो चुका है या नहीं, इसका कुछ पता है? विवाह विच्छेद? यह भी नया कानून बना है न। अगर तलाक हो चुका हो, तब तो आप जी गए—"

प्रकाश ने कहा, "जी, यह पता तो नहीं है।"

"तो, अब पता करिए। इतने-इतने रुपयों की बात है, कोई मजाक है। रुपये का हकदार होना चाहते हैं, तो यह सब अता-पता आपको करना होगा। जरा यह पता करिए कि आपके भांजे की बहू ने फिर से शादी-वादी की है या नहीं। और, भांजा भी तो जिन्दा हो सकता है। खोज-ढूंढ़कर निकालिए उसे, फिर रास्ता निकल आएगा। अगर वह वैरागी हो गया हो, तो उसे पकड़ लाइए, फिर जो करना होगा, मैं कर लूंगा।"

"उससे क्या करेंगे आप?"

"वह कोर्ट में खड़ा होकर कहेगा, मुझे ये रुपये नहीं चाहिए। उससे आप यह कहला सकेंगे?"

प्रकाश ने कहा, "यह बखूबी कहला सकूंगा। रुपये पैसे पर उसे कभी कोई लोभ मोह नहीं रहा। छुटपन से ही उसे रुपयों से कोई मतलब नहीं रहा है। वह एक अजीब लड़का है। वह तो ब्याह ही नहीं करना चाहता था, तो लाचार हम लोगों ने जोर-जबरदस्ती, धर-पकड़कर एक बहुत ही सुन्दर लड़की से ब्याह कराया।"

वकील ने कहा, "तब तो कोई झमेला ही नहीं है। लेकिन अगर वह न मिले, तो किसी तरह से उसकी बहू को ही राजी कराना पड़ेगा।"

प्रकाश ने कहा, "यही मुसीबत है। मेरी वह पतोहू अकेली होती तो मुझे कोई कठिनाई नहीं होती, जैसे भी होता, मैं उसे पटा लेता। लेकिन उसके पीछे एक आदमी जो है।"

"आदमी? यानी?"

"आदमी, यानी एक एकबग्गा छोकरा। निखिलेश या क्या नाम तो है उसका।"

"वह उसका कौन है?"

"होगा कौन? कोई नहीं। वह उसके पिता का छात्र है। ब्याह के समय सब कुछ उसीने किया-दिया था। और क्या! जीजाजी के पास बहू के गहने गापन मांगने के लिए वही एक दिन आया था। मजा देखिए जरा, बहू सास-

ससुर को गाली-गलौज करके शान दिखाकर नैहर चली गई, यहां तक कि मांग का सिंदूर पोंछ डाला, चूड़ियां फोड़ दीं और फिर किस मुंह से उसने गहना मांग भेजा।"

"कितने रुपये के गहने थे?"

प्रकाश ने कहा, "नैहर-ससुराल का मिलाकर सौ भरी सोना होगा।"

सब कुछ सुनकर वकील ने कहा, "खैर, यह सब छोड़िए इससे तो लगता है कि वह बहू भी इस सम्पत्ति का लोभ भला क्या छोड़ेगी। आप बल्कि अपने भांजे को ही तलाशिए, जब आप कहते हैं कि उसे धन-दौलत का लोभ नहीं है, तो उससे आपको ज्यादा कठिनाई नहीं होगी—मैं सारा इंतजाम कर दूंगा"

"तो मैं वही करता हूं।"

वकील के यहां से लौटकर प्रकाश राय उसी दिन नवाबगंज के लिए चल पड़ा। कहां भागलपुर और कहां नवाबगंज। नवाबगंज में वह न मिला, तो कलकत्ता जाना होगा। कलकत्ता के सिवाय और गति ही क्या है? बंगालियों की वही तो एक जगह है। वह और जाएगा ही कहां? पाप करना हो, तो कलकत्ता और पुण्य करना हो, तो कलकत्ता। सन् 1947 से कलकत्ता का आकर्षण मानो और बढ़ गया है। जीजाजी के रुपये किसी तरह से हाथ आ जाएं तो सुलतानपुर का मकान बेचकर वह सीधे कलकत्ता चला जाएगा। अब तक वह कालीघाट में मानदा मौसी के यहां ठहरता रहा है, अब वह अपने निज के मकान में ठहरा करेगा। कलकत्ता में वह बहुत बड़ा मकान बनाएगा—बड़े लोगों के मुहल्ले में। एक मोटर खरीदेगा। महज सूद से ही तो महीने में आठ हजार रुपये मिला करेंगे। फिर तो कितना खर्च करना है, करो न। कितना परांठा और अंडे का कोरमा खाओगे, खाओ न। मगर अब ठर्रा नहीं पिएगा। ठर्रा पीते-पीते पेट की अंतिड़यों में जंग लग गई है। अब तो विलायती। खांटी विलायती माल को छोड़कर छुएगा ही नहीं।

सोचते-सोचते प्रकाश राय भागलपुर स्टेशन से ट्रेन पर सवार हुआ।

सन् 47 के बाद जो दस साल बीते, उनके साथ-साथ पृथ्वी का मानचित्र बदला, पृथ्वी के लोगों के मन का मानचित्र भी बिलकुल बदल गया। बहुतेरे नीले रंग लाल हो गए, लाल नीले। लाल से नीले के विरोध से मनुष्यों के बीच के व्यवधान की दीवाल और ऊंची हो गई। इससे एक से दूसरे के आपसी सम्बन्ध में ओट आ गई। मिताई के बजाय दुश्मनी की ताकत से आदमी के लिए आदमी और भी खौफनाक हो उठा। इसीलिए बीसवीं सदी के पांचवें दशक के अन्त की ओर रुपये के लोभ से प्रकाश राय ने एक दिन धरती का चक्कर काटना शुरू किया। जिन रुपयों को सदानन्द ने आनन-फानन में ठुकरा दिया, जिन रुपयों को ठुकराकर उसने एक खैरात की धर्मशाला में पनाह ली, उन्हीं रुपयों के लिए प्रकाश एक से दूसरे जिले की खाक छानता फिरने लगा।

सदानन्द है कहां ? गोया उसे ढूंढ़े बिना उसकी सारी साधें, सारी इच्छाएं और सम्पूर्ण भविष्य रसातल में चला जाएगा।

बिहारी पाल ने कहा, "कहां, सदानन्द तो फिर यहां नहीं आया।"

सदानन्द को ढूंढ़ते फिरने के पीछे प्रकाश राय का असली इरादा क्या है, यह लेकिन किसीसे छिपा नहीं रहा। निताई हालदार की दूकान पर जो लोग अड्डा जमाया करते हैं, उन लोगों ने भी कहा, "अब सदा की तलाश क्यों नहीं करेंगे साला बाबू ? लेकिन सदा जब छोटे चौधरी के पास गया था, तब तो आप लोगों ने कुछ भी नहीं कहा ? अब शायद रुपयों के लिए उसकी खोज हो रही है।"

प्रकाश ने कहा, "अरे नहीं भाई, उसके पिता चल बसे, यह खबर उसे नहीं देनी होगी ? उसके रुपयों पर मुझे ज़रा भी लोभ नहीं।"

"प्राणकृष्ण साहू जी के बारे में सुना साला बाबू ?"

"क्या ?"

बिहारी पाल ने कहा, "अजी वह तो दिल के दौरे से मर गए। यह दुर्घटना तुम्हारी जीजाजी का मकान खरीदने के दूसरे ही दिन हुई। वह मकान जो भी खरीदता, उसीके साथ यह बात होती। मैंने खरीदना चाहा था, लेकिन छोटे चौधरी ने मेरे हाथ इसलिए नहीं बेचा कि कहीं मेरा भला हो। अब सोचता हूं, अच्छा ही हुआ। वह मकान खरीदने से मेरी भी तो यही हालत होती।"

प्रकाश अरसे के बाद नवाबगंज आया। कभी इसी नवाबगंज में उसने कितने साल गुजारे। यहीं की धूल से उसकी ज़िन्दगी जुड़ गई थी। उस समय कोई सोच नहीं सका था कि इस नवाबगंज की कभी यह दशा होगी। कल्पना भी नहीं कर सका था कि इतनी जल्दी यह चौधरी परिवार मिट्टी में मिल जाएगा। सारा मकान काल के दाग से दागी-सा हो गया था।

प्रकाश उठ खड़ा हुआ, "तो चलें पाल बाबू, फिर बड़ी दूर जाना होगा।"

"कहां जाना है अब ?"

"जाऊं भी कहां ! देखूं, सदा कहां मिलता है ! जिसकी सम्पत्ति है, उसे सौंपकर मैं हलका हो जाऊं। लाखों-लाख की सम्पत्ति है जीजाजी की, सदा अगर नहीं आए, तो सब तो सरकार जब्त कर लेगी..."

बिहारी पाल ने कहा, "यह क्यों ? सब कुछ आपको मिलेगा। आपके सिवाय तो चौधरी जी का और कोई नहीं है..."

"मुझे रुपयों का उतना लोभ नहीं है पाल बाबू ! पहले था भी तो अब नहीं, कतई नहीं रहा। रुपया रहने का क्या नतीजा होता है, यह तो मैंने अपनी आंखों देखा। लेकिन रुपया रहने का क्या फायदा हुआ ? मरते वक्त तो जीजाजी को चुल्लू पानी भी नहीं नसीब हुआ।"

प्रकाश राय उठा। कोई निर्णय लेकिन नहीं हो सका। जाते-जाते वह यही सोचने लगा कि यहां से कहां जाएगा ? कलकत्ता के सिवाय और कहां

जाए ? मगर कलकत्ता आखिर नवाबगंज थोड़े ही है कि वहां उसे ढूंढ़ निकाला जा सकेगा। और, कलकत्ता भी अब वह कलकत्ता नहीं। वह कलकत्ता और भी जम उठा है। शरणार्थियों की भीड़ से वहां के रास्तों पर चलना तक मुहाल हो गया है। ट्राम-बस में खड़े होने तक की जगह नहीं मिलती। आस-पास उन शरणार्थियों की झोपड़ियां और दूकानें खड़ी हो गई हैं। अचानक उसे मानदा मौसी का ख्याल हो आया। वह अब जिंदा भी है या नहीं, कौन जाने ! और पुलिस वाला वह बड़े बाबू ? बतासी का बाबू। उसे तो वह सदा की एक तसवीर भी दे आया था।

रेल-बाजार से प्रकाश राय कलकत्ता की ट्रेन पर सवार हुआ।

नैहाटी के एक मकान के कमरे में पड़े सदानन्द ने आंखें खोलीं। पहले थोड़ी फिर और भी धुंधली हो उठी उसकी निगाह। उसने फिर धीरे-धीरे करवट बदल ली।

तकिया सिर से खिसक गया था। नयनतारा ने उसे ठीक कर दिया। सिर पर नयनतारा के हाथ का स्पर्श लगते ही सदानन्द की चेतना जैसे लौटी।

उसकी आंखें जैसे किसीको ढूंढ़ने लगीं। नयनतारा को सामने देखकर कुछ देर तक वह उसीको एकटक देखता रहा। उसके बाद फिर आंखें बंद कर ली।

नयनतारा को लगा, वह शायद फिर से सो गया। वह आहिस्ता से बाहर निकल गई। खा-पीकर निखिलेश अपने आफिस के लिए जा चुका था। गिरिबाला को रोगी के पास बिठाकर जल्दी-जल्दी अपना नहाना-खाना समाप्त करके वह फिर रोगी के पास आ बैठी। गिरिबाला को फुरसत दे दी वहां से। आखिर वह भी तो आदमी है। बूढ़ी है गिरिबाला। अकेले उसीसे कितना करते बनेगा ! चौके में भात की हांड़ी उतारकर ही उसे डाक्टर के यहां जाना पड़ता है। वहां से लौटती है तो झाड़ू-बुहारु। किधर-किधर वह देखे ! सबसे ज्यादा कठिनाई निखिलेश के लिए ही है। आजकल वह अंतिम ट्रेन से पहले घर ही नहीं लौटता। पूछने पर कहता, आफिस में ज्यादा काम पड़ गया है—

मगर निखिलेश पहले भी तो आफिस जाता था और चाहे खास काम हो, ठीक छुट्टी होते ही नयनतारा के आफिस में आ जाता था। किसी भी दिन एक मिनट की भी देर नहीं हुई। नयनतारा समझती है कि यह जो आदमी इस घर में रोग-शय्या पर पड़ा है, इसके पीछे इतना जो खर्च हो रहा है, नयनतारा अपने काम पर नहीं जाती है—यह निखिलेश को पसन्द नहीं है। पर, मर्द लोग ऐसे नासमझ क्यों होते हैं ? इतनी-सी बात क्यों नहीं समझता कि आज भले ही उससे कोई सरोकार रखना उचित नहीं है, लेकिन कभी अग्नि को साक्षी रखकर उसके साथ इसका ब्याह हुआ था। तो, थोड़ी-सी भलमनसाहत, थोड़ी-सी सहानुभूति दिखाना भी क्या अन्याय है। घर में कुत्ता-बिल्ली को

पालने पर भी तो आदमी उसे खाने को देता है, बीमार-बीमार पड़ने पर उसकी सेवा-जतन करता है। यह तो खैर जीता-जागता आदमी ही है। इसके लिए भला इतना नाराज होना चाहिए।

सूखे कपड़ों को कमरे की अलगनी पर रखकर नयनतारा फिर कमरे में आई। आते ही वह अवाक् हो गई। देखा, वह आदमी आखें खोलकर जाग रहा है। नयनतारा के कमरे में जाते ही उसने इसकी तरफ ताका।

नयनतारा धीरे से उसके समीप जाकर खड़ी हुई। उस आदमी की दृष्टि भी उसका अनुसरण करते हुए उसके चेहरे पर थिर हो रही।

मुंह झुकाकर नयनतारा ने पूछा, "क्या देख रहे हो?"

ऐसा समझ में आया कि बोलने में उसे बड़ी तकलीफ हो रही। नयनतारा ने फिर पूछा, "तुम इस तरह से क्या देख रहे हो?"

वह फिर भी उसकी तरफ टुकुर-टुकुर ताकता ही रहा।

"बोलो, क्या देख रहे हो? मैं जो पूछती हूं, उसका जवाब दो।"

वह फिर भी कुछ नहीं बोला। अजीब है, बीमारी शायद ऐसी ही चीज होती है। वैसा हट्टा-कट्टा आदमी, जो उसे देखते ही गायब हो जाना चाहता था, जिसने एक दिन दूसरे के कसूर के लिए सिर फोड़कर अपने को लहू-लुहान कर लिया था—आज, बीमार होकर वही आदमी कैसा निर्जीव-सा पड़ा है। आज, महीनों से चुपचाप उसे नयनतारा की सेवा लेनी पड़ रही है। उसे इसकी भी खबर नहीं है कि अपनी जान का दायित्व नयनतारा पर छोड़कर उसने यहां लेटे-लेटे इतना दिन बिता दिया है। आदमी बीमारी से शायद इसीलिए इतना डरता है। इसी बीमारी को सोचकर ही लोग शायद घर बसाते हैं, बाल-बच्चों की कामना करते हैं।

"क्या बात है? क्या देख रहे हो?"

उस आदमी के फीके पड़े होंठ जरा हिल उठे। उसकी दोनों आंखों में अथाह कौतूहल दमक उठा।

"तुम कौन हो?"

नयनतारा अब और झुक गई। अपना मूंह वह उसके मुंह के पास ले गई। बोली, "मैं हूं, नयनतारा—"

उस आदमी के सारे बदन में सहसा बिजली-सी दौड़ गई। होंठ का एक किनारा थर-थर करके कांप उठा।

"मुझे पहचान रहे हो? नयनतारा की याद है तुम्हें? मैं नवाबगंज की वही नयनतारा हूं। जिसे छोड़कर तुम भाग गए थे। याद आ रहा है?"

वह तब भी नयनतारा को एकटक देख रहा था।

नयनतारा जोर-जोर से कहने लगी, "यह मेरा घर है। तुम रेलगाड़ी में बेहोश हो गए थे। इसीलिए मैं तुम्हें वहां से अपने घर ले आई, समझे? तुम्हारी तबीयत बहुत खराब हो गई थी। तुमको होश नहीं था। डाक्टर ने बताया है, डरने की कोई बात नहीं है। तुम जल्दी ही अच्छे हो उठोगे। उस तरह से ताक क्या रहे हो? तुम बहुत दिनों से बीमार हो न, इसीलिए तुम्हारा शरीर

बहुत कमजोर हो गया है। तुम जरा भी फिक्र न करो, मैं तुम्हें ठीक चंगा कर लूंगी—"

इतनी सारी बातें उस आदमी के कानों गई भी या नहीं, नयनतारा समझ नही सकी। वह नयनतारा की ओर टुकुर-टुकुर ताक ही रहा था।

नयनतारा समझ नही सकी कि वह उसकी बातें सुन रहा है या नहीं। उसके आंख-मुंह में वैसा कोई आभास नहीं दिखाई पड़ा।

जरा रुककर नयनतारा बोली, "मेरी बात समझ रहे हो?"

सदानन्द ने सिर हिलाने की कोशिश की।

नयनतारा ने पूछा, "मुझे तुमने पहचाना? पहचाना मुझको?"

सदानन्द ने फिर सिर हिलाया। कुछ कहना चाहा। बोल नहीं सका।

नयनतारा ने पूछा, "कुछ कहना है? मुझसे कुछ कहोगे?"

बड़ी बड़ी कोशिश से सदानन्द ने कहा, "मैं···मैं···यहां···कहां?"

नयनतारा ने कहा, "यह मेरा घर है। मैं तुम्हें अपने घर ले आई हूं—तुम काफी बीमार पड़ गए थे न—"

"मैं बीमार था?"

"हां। तुम कई महीने से मेरे ही यहां हो। रेलगाड़ी में बेहोश हो गए थे। मैंने देखा, और तुम्हें अपने यहां ले आई। अब तुम अच्छे हो गए हो, अब कोई खतरा नहीं।"

यह सुनकर सदानन्द उकुस-पुकुस करने लगा। इधर-उधर, चारों तरफ देखने लगा। जैसे वह चारों ओर के परिवेश को पहचानने की चेष्टा करने लगा। देखकर उसे कैसी तो बेचैनी-सी होने लगी। जैसे उसे यह लेटे रहना अच्छा नहीं लगने लगा। उसने उठ बैठने की कोशिश की।

"अरे उठ क्यों रहे हो। उठ क्यों रहे हो? लेटे रहो।"

नयनतारा ने पकड़कर उसे लेटे रखना चाहा। सदानन्द का शरीर कमजोर था—नन्हीं चिड़िया के पुल-पुल शरीर जैसा।

नयनतारा फिर बोल उठी, "उठना क्यों चाह रहे हो? गिर पड़ोगे।"

नयनतारा के कहने पर सदानन्द हताश होकर फिर निर्जीव-सा लेट गया। बेबस-सा नयनतारा की ओर ताकने लगा, जैसे वह कहना चाहता हो, मुझे छोड़ दो तुम, तुम मुझे मुक्ति दो—

पहले वह जैसे बोला था, वैसे ही फिर से बातें बोलने की कोशिश की। नयनतारा ने समझा, लेकिन नहीं समझने का भान करके वह कहने लगी, "पहले तुम अच्छे हो लो, फिर चले जाना। मैं तुम्हें यहां रोककर नहीं रक्खूंगी। तुम यहां रहना भी चाहोगे, तो भी नहीं रहने दूंगी।"

सदानन्द इस बार फिर बोला, "तुम···मुझे···यहां क्यों ले आई?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं ले आने से क्या तुम बचते? तुम तो बहुत ही बीमार पड़ गए थे। रेलगाड़ी में ही बेहोश हो गए थे—"

इसपर सदानन्द कुछ नहीं बोला। सिर्फ अपने हाथ वह कपाल पर रगड़ने लगा।

नयनतारा ने पूछा, "सिर दुख रहा है? दवा दूं?"

दबाने लगी। सदानन्द ने अपने हाथ से उसके हाथ को हटा दिया।

नयनतारा बोली, "देख रही हूं, अभी भी मुझपर से तुम्हारा गुस्सा गया नहीं है। अभी भी तुम वह सब बात भूल नहीं सके हो। सिर दबा देने से तुम्हारा कौन-सा नुकसान है ?"

सदानन्द ने साफ कहा, "नहीं।"

नयनतारा ने कहा, "नहीं क्यों ? तुम क्या अभी भी मुझसे घृणा करते हो ? मेरे हाथ लगाने से तुम्हारे बदन में कांटे चुभते हैं ?"

सदानन्द से इसका जवाब देते नहीं बना। नयनतारा के हाथों अपने को सौंपकर मानो उसे तृप्ति मिली। नयनतारा उसका सिर दबाने लगी और वह आंखें बंद किए पड़ा रहा। नयनतारा को लगा, यह आदमी इतने दिनों की बीमारी के बाद उसकी सेवा से कुछ आराम पा रहा है। दोपहर। चारों तरफ शान्त। दूर स्टेशन पर किसी ट्रेन की सीटी बज उठी। कहां की ट्रेन, क्या जाने ! शायद हो कि यही ट्रेन नयनतारा की पिछली ससुराल, रेल-बाज़ार को जाएगी ! या कि यह ट्रेन रेल-बाज़ार से ही आ रही है ! क्या पता ! रेल-बाज़ार ! यह नाम याद आते ही मन बहुत पीछे, पुराने दिनों में डूब गया। आश्चर्य है ! कौन सोचता था, ऐसा होगा ! उसका जीवन तो अभी तक दूसरी धारा में बह रहा था। आफिस जाती थी, महीने-महीने वेतन घर लाती थी। अपने जीवन को निखिलेश से जोड़कर वह तो बिलकुल और ही हो गई थी। तो वह अपने पिछले जीवन के उस छोड़े हुए आदमी को इस तरह से अपने घर क्यों ले आई ? भगवान ने उसके साथ यह क्या किया ? अब वह इस आदमी का क्या करे ?

सास ने उसे बहुत बार कहा था, "देखो बहू, मेरे मुन्ने को तुम जो समझती हो, यह वैसा नहीं है। उसके जैसा दया-माया वाला आदमी नहीं होता। उसे सबके लिए माया है, सबके दुःख से वह दुःखी होता है। उसके लिए कोई भी पराया नहीं, सब उसके अपने हैं—"

फिर कहती, "हां, औरों से कुछ जुदा है, यह एक बात है। टोले के दूसरे दस छोरे-छोकरों से जुदा है। देख नहीं रही हो, सब लोग बरबारी-थान में यात्रा-थिएटर-कविगान में मस्त हैं, मगर इसे उन सबसे कोई मतलब नहीं—यह खेत-खलिहान-बेहार में अकेला ही घूमता फिरता है। जब यह छोटा था, बाहर के अहाते में एक दिन 'प्रह्लाद चरित्र' हो रहा था। यात्रा। यह मेरी गोदी में बैठा देख रहा था। देखते-देखते यह बेहोश हो गया। मुझे तो तभी से यह आशंका हो रही थी, बड़ा होने पर यह संन्यासी न हो जाए कहीं !"

नयनतारा ने उस समय तक सदानन्द को ठीक से पहचाना नहीं था। उसके जी में आया, सास से कहे, 'बचपन से ही जब बेटे की मति-गति ऐसी थी, तो उस बेटे की आपने शादी क्यों कर दी ? वैसे लड़के की शादी कराना तो आपके लिए उचित नहीं था—'

लेकिन उस समय सास के सामने वह खुलकर बोल नहीं सकी। सास-ससुर पर मन-ही-मन उसे गुस्सा ही आया था। सास बेटे की जितनी ही गुण-गाथा

गाती, वह सास-ससुर पर इतना ही बिगड़ उठती ।

नयनतारा का चेहरा गम्भीर होते देखकर सास बेटे की प्रशंसा में पंचमुख हो उठतीं। कहतीं, "अभी तुम मुन्ने को ऐसा देख रही हो बहू, लेकिन उसकी और थोड़ी उम्र होने दो, तुम्हारी गोद में एक नन्हा-मुन्ना आ जाए, फिर देखना, वह तुम्हारे कमरे से हिलना ही नहीं चाहेगा। मर्दों का स्वभाव ही ऐसा होता है। मैंने तुम्हारे ससुर को भी तो देखा है न, सब एक ही किस्म के—"

लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, उसका स्वभाव और भी तीखा, और भी सख्त होने लगा। उस समय उसकी ओर ताकने में भी डर लगता था।

और सास भी अजीब। एक दिन वह सास ऐसी हो जाएगी, यह बात कल्पना से परे थी। रात में कमरे का दरवाजा बंद करके सोने नहीं देगी। यह कैसा रवैया! अच्छा हुआ। खूब अच्छा हुआ। वैसा वंश निर्वंश हो गया, बहुत अच्छा हुआ। सुनकर नयनतारा को खुशी हुई। रहने के लिए निखिलेश नवाबगंज गया था। वहां से सब सुन आया है। वह मकान अब भूतों का डेरा बन गया है। बनेगा नहीं! उसका अभिशाप मिथ्या होगा न क्या!

इतने में सदर दरवाजे का कड़ा बज उठा।

अभी-अभी गिरिबाला का खाना खत्म हुआ। चौके का जूठा-कूठा साफ-सुथरा करके वह हौज के पास हाथ धो रही थी। ऐसे बेमौके यह कौन आया। निखिलेश आफिस छोड़कर चला आया क्या।

गिरिबाला ने उसके पास आकर कहा, "दीदीजी, देखिए, आपसे कौन मिलने आई है—"

गिरिबाला के पीछे कोई खड़ी थी।

"अरे, नयन-दी! तुमने बीमार होने की वजह से छुट्टी ली है और तुम तो मजे में हो। मुझे तो डर हो गया था—"

"अरे, तू!"

नयनतारा हड़बड़ाकर उठ बैठी। नहीं तो माला एकबारगी कमरे में आ जाती। नयनतारा ने झट उसे ले जाकर अपने सोने के कमरे में बिठाया। लेकिन जो देखना था, माला ने इतने में ही देख लिया था।

बैठकर माला ने पूछा, "वह कौन है नयन-दी, उस कमरे में? कोई बीमार है?"

नयनतारा ने कहा, "हां। मगर तू एकाएक?"

माला ने कहा, "एकाएक क्या! इतने दिनों से आफिस नहीं जा रही हो। हम सब तो चिन्ता से परेशान। तुमने डाक्टर का प्रमाण-पत्र भेजा है, और मुझे चिन्ता न हो। तुमको जरा देखने भी नहीं आती?"

"लेकिन आज क्या तेरा आफिस नहीं है?"

"हाय राम, मालूम नहीं है? आज तो हमारे विभाग का थियेटर है। इसीलिए आधे दिन की छुट्टी हो गई। शाम को नाटक है। लोग जरा सवेरे-सवेरे खा-पीकर तैयार हो करके देखने जाएंगे। मैंने कहा, "मैं नाटक नहीं

देखूंगी बल्कि नैहाटी जाकर नयन-दी को देख आती हूं ।"

"तू आ गई, अच्छा ही किया । यह बता, तेरे खाने के लिए क्या मंगाऊं ?"

"क्या बात करती हो ! अभी-अभी तो मैं आफिस के कैंटीन से खाकर आई । खाने की छोड़ो, अपनी कहो । तुम्हारे तो कोई बीमारी-वीमारी नहीं देख रही हूं, फिर दफ्तर क्यों नहीं जाती हो ? हुआ क्या है तुम्हें ? और मैं उतनी दूर से भागती हुई तुम्हें देखने आई ।"

नयनतारा ने कहा, "बीमार ठीक मैं नहीं हूं, मेरे घर में एक बीमार है । और बीमारी ऐसी कि छूटना ही नहीं चाहती । इतने दिनों में अब लग रहा है कि कुछ-कुछ ठीक हो रहा है ।"

माला ने कहा, "कौन बीमार हैं नयन-दी ? ये कौन हैं ?"

नयनतारा ने कहा, "ये हमारे एक आत्मीय हैं । इन्हींके लिए तो मैं आफिस नहीं जा पा रही हूं । उन्हें किसपर घर में अकेला छोड़कर जाऊं ?"

"तुम्हारे नैहर के कोई हैं, क्यों ?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं, ससुराल के ।"

"तुम्हारे देवर हैं ?"

"नहीं । देवर नहीं हैं ।"

"तो ?"

माला को बड़ा कौतूहल हुआ । नयनतारा उस प्रसंग से हटकर बोली, "उनकी छोड़, तू आफिस की हाल-चाल बता । केतकी की क्या खबर है ? कोई नया गहना बनवाया है ।"

नयनतारा और माला—दोनों हंस उठीं । केतकी हाजरा के गहने के शौक की बात आफिस के सभी जानते हैं । पूंजी कुछ हुई कि केतकी गहने बनवाएगी ।

"हां, एक बात तो तुम्हें बताई ही नहीं नयन-दी, डिस्पैच सेक्शन की अरुणा-दी को पहचानती हो न ?"

"अरुणा बोस ?"

"नहीं-नहीं, अरुणा पाल । चालीस की हो गई है, याद नहीं है ? डिस्पैच सेक्शन की हेड-असिस्टैंट ?"

"हां-हां, पहचान गई । उसके क्या हुआ ?"

"वह शादी कर रही है ।"

नयनतारा चौंक उठी । बोली, "हाय राम, वह तो बूढ़ी हो गई है रे, बाल सफेद हो गए हैं !"

माला ने कहा, "सो आप जैसी बूढ़ी है, वैसा ही बुड्ढा दुल्हा भी मिला है । किससे शादी हो रही है, सो मालूम है ?"

"किससे ?"

"अपने बजट-सेक्शन के बड़े बाबू से ।"

नयनतारा और भी आश्चर्य में पड़ गई । बजट-सेक्शन के बड़े बाबू आर०

डॉ० चटर्जी—रसिकदास चटर्जी। बड़े बाबू की शादी पहले हुई थी, पर शादी के बाद ही बीवी मर गई। भले आदमी ने तब से शादी नहीं की।"

नयनतारा ने कहा, "वह तो थुल-थुल बुड्ढा है रे, उससे अरुणा-दी का ब्याह? वह तो जल्दी ही रिटायर करने वाला है। क्या देखकर अरुणा-दी ने उसे पसन्द किया? रुपया देखकर?"

माला ने कहा, "इसके सिवाय और क्या कहें, कहो! रिटायर करने के बाद बहुत पेंशन मिलेगा न। पेंशन कम्युट करके कई हज़ार रुपया उसे मिलेगा, उसी रुपये का लोभ। अरुणा-दी को भी तो कोई नहीं है, आखिर बूढ़ा पति रिटायर करके घर में बैठा रसोई करेगा, नौकर रसोइए का खर्च बच जाएगा।"

नयनतारा ने कहा, "यानी रुपया। रुपये के लिए ही अरुणा-दी इस उम्र में शादी कर रही है? लेकिन जब व्याह किए बिना इतने दिन रह गई, तो बाकी जीवन नहीं रह सकी?"

माला ने कहा, "आफिस की और भी कितनी खबर है मज़े की, तुमसे क्या कहूं! तुम थी नहीं, इसीलिए तो यह सब बताने के लिए दौड़ी-दौड़ी आई।"

गिरिबाला इतने में चाय बनाकर ले आई थी। चाय के साथ मिठाई।

"अरे, खामखा यह सब क्यों मंगाया नयन-दी! यह सब झमेला करोगी, तो मैं नहीं आया करूंगी, चलती हूं मैं।"

माला उठ खड़ी हुई। नयनतारा ने कहा, "उठने क्यों लगी? आखिर मैं भी तो चाय पिऊंगी। मेरे भी चाय पीने का वक्त हो गया। ले, पी—"

माला बैठ गई। चाय पीते-पीते बोली, "अब लेकिन मैं जाऊंगी नयन-दी, मगर तुमने तो बताया नहीं, उस कमरे में बीमार कौन है?"

बगल के कमरे में सदानन्द के कानों यह सब बात पहुंच रही थी। उसी दिन वह ज़रा अच्छा था। नयनतारा ने उसे गरम पानी से नहला दिया था। सदानन्द नयनतारा का भी गला सुन रहा था, किसी दूसरी स्त्री का भी। उसे लगा, वह मानो सब समझ रहा है। इधर कई दिनों से थोड़ी-थोड़ी करके एक धारणा हो रही थी उसे। आज जैसे वह धारणा और भी स्पष्ट हुई—

माला पूछ बैठी, "तुम आफिस कब जाओगी नयन-दी? तुम्हारे लिए तो हम सभी हा किए बैठी हैं—"

नयनतारा ने कहा, "मैं जाऊं तो कैसे, बता? फिर उस रोगी को कौन देखेगा?"

"क्यों, उनके अपना कोई नहीं है? शादी नहीं हुई है उनकी? उनके पत्नी, बाल-बच्चे कहां हैं?"

"वे सब नहीं हैं—"

माला ने कहा, "हाय राम, कोई नहीं है? तो यह झमेला तुमने ही अपने सिर पर क्यों लिया?"

नयनतारा ने कहा, "सभी तो यही कहते हैं।"

माला ने कहा, "सो तो कहेंगे ही। यों तुम लोगों को अपनी झंझट ही क्या है? अपनी और कफनी। यह पराई झंझट तुम अपने मत्थे क्यों लेने गई? आफिस के हम सभी तो तुम्हारे जीवन से ईर्ष्या करती थीं।"

सुनकर सदानन्द को कैसा तो बुरा लगा। तो वह इस घर में अवांछित है क्या? नयनतारा ने तो फिर से ब्याह किया। ब्याह करके वह सानन्द ही है। दफ्तर में नौकरी करती है। चूंकि काम पर नहीं जा रही है, इसलिए आफिस की मित्र उसकी खोज-खबर के लिए यहां तक आई है। ऐसी स्थिति में वह यहां क्यों आया? नयनतारा उसे अपने घर क्यों ले आई? और, वह ले भी आई, तो मैं यह सब जान-सुनकर यहां क्यों रहूं? मेरे यहां से चले जाने से ही तो इनके घर में फिर से शान्ति आएगी।

सदानन्द ने चारों तरफ गौर से देखना शुरू किया। यह कमरा, दीवाल से टिकी एक आलमारी। आलमारी में कुछ खिलौने। कमरे में दो-चार कुर्सियां। एक ओर ताखे पर दवा की शीशी-बोतलें। उफ्, उसने कितनी दवा पी-खाई। उसकी बीमारी में इनके कितने रुपये खर्च हो गए।

"निखिलेश बाबू कैसे हैं रे?"

"उनकी मत पूछ। मुझपर बेहद नाराज हो गए हैं।"

"क्यों?"

"इसलिए कि मैं आफिस नहीं जा रही हूं। आफिस नहीं जाने से मेरी तनख्वाह कट रही है। रुपयों का नुकसान हो रहा है, इसलिए बड़े रंज हैं वह। इधर तो कई दिनों से मुझसे ठीक से बात भी नहीं कर रहे हैं बहन!"

"इसमें निखिलेश बाबू का दोष भी क्या है नयन-दी? कोई भी पति यही करता। उतने रुपयों का नुकसान क्या कम है! उन रुपयों से कितनी साड़ियां हो जातीं।"

नयनतारा ने कहा, "दुर्, एक आदमी की जिन्दगी से साड़ी ही बड़ी है?"

"बात तो सही है, पर ये तुम्हारे कोई अपने तो नहीं हैं। अपना पति होता तो बेशक और बात थी, पर ये तो बिराने हैं—गर्ज कि अपने बाल-बच्चे और पति के सिवाय औरतों के लिए सभी तो बिराने हैं।"

सदानन्द से और रहा नहीं गया। बेशक, वह बिराना है। हज़ार बार बिराना है। नयनतारा के लिए अब वह अपना नहीं। निखिलेश बाबू से ब्याह कर लेने के बाद से वह नयनतारा के लिए सदा तो पराया हो गया। सच तो, उस महिला ने कुछ बेजा तो नहीं कहा। आज के लोगों के लिए पुरा-पड़ोसी, अपने-सगे, बंधु-बांधव, मां-बाप, सास-ससुर सब पराए ही तो हैं। अपना कहने को सिर्फ अपने बाल-बच्चे और अपनी बीबी। इनके अलावा और कोई भी तो अपना नहीं। फिर वह यहां क्यों रहे? क्यों रहे वह यहां? वह चूंकि यहां है, इसीलिए तो नयनतारा आफिस नहीं जा पा रही है। इसी की वजह से उसकी तनख्वाह कट रही है। ऐसे में कोई भी पति अपनी पत्नी पर नाराज होगा।

"जानती है तू, इनके लिए बहुत रुपये खर्च हो गए।"

"अच्छा। कुल कितने खर्च हुए?"

"बहुत।"

"निखिलेश बाबू को तब तो बहुत अच्छा आदमी कहना होगा नयन-दी! मेरे पति होते, तो रोगी को अस्पताल भेज देते।"

नयनतारा ने कहा, "लेकिन मैंने उन्हें खर्च के बारे में कुछ बताया नहीं है। उन्हें कुछ भी मालूम नहीं है। उनका यही ख्याल है, बहुत तो सौ या डेढ़ सौ रुपये खर्च हुए होंगे। मगर बहन, आजकल दवा की कीमत किस कदर बढ़ गई है। सुई के एक-एक ऐंपुल का दाम ही पचीस-पचीस, तीस-तीस रुपये। विटामिन की मामूली-सी गोली, वही रुपये, सवा रुपये की एक। फिर जितनी बार डाक्टर आ रहे हैं, आठ-आठ रुपये फीस देनी पड़ रही है। खर्च क्या कुछ कम हुआ है! जो थोड़े-से रुपये जमा हुए थे, सब इनकी बीमारी में ही निकल गए।"

"फिर भी? कुल मिलाकर कितना खर्च हुआ?"

नयनतारा ने कहा, "देख, किसीसे कह मत देना। वह सुनेंगे तो बेतरह बिगड़ उठेंगे। उन्हें तो सौ-डेढ़ सौ का अंदाज है, पर मेरे पास तीन सौ रुपये थे, वे चुक गए। फिर हाथ खाली। अब क्या करें। आखिर अपने गले का हार सुनार के यहां बंधक देकर चार सौ रुपये ले आई—"

माला चौंक उठी। बोली, "हाय-हाय, कैसी खूबसूरत डिज़ाइन का हार बनवाया था तुमने, पहनने से तुमको खूब फबता था, और तुमने वही हार सुनार के यहां बंधक रख दिया?"

"आहिस्ता, जोर से मत बोल, कहीं मेरी नौकरानी सुन लेगी। यह बात अभी किसीको नहीं मालूम है। किसीको नहीं बताई है। देखना, आफिस में किसीके कानों न पड़ जाए।"

सदानन्द ने कमरे से बाहर की तरफ देखा। दरवाजे से आंगन का एक टुकड़ा दिखाई पड़ता है। वहां कोई नही दिखाई पड़ा। जहां तक ख्याल है, बगल के कमरे के सिवाय कोई कहीं नहीं है। नः, यहां अब पल-भर रहना उचित नहीं है, सदानन्द ने धीरे-धीरे उठने की कोशिश की। सिर उसका चकराने-सा लगा। बड़ी मुश्किल से चौकी पर उठ बैठने में ही वह पसीने से नहा गया। उसके बाद खड़ा होने में तो सारे शरीर मे कसकर पीड़ा होने लगी।

लेकिन अब इन बातों को सोचने से नहीं चल सकता। दूसरे की गिरस्ती में गड़बड़ी कर देने का उसे कोई अधिकार नहीं। नयनतारा आज उसके लिए सचमुच ही पराई है। सदानन्द को आप ही शरम आने लगी। किसी तरह से एक हाथ से उसने दीवाल को पकडा। दीवाल को पकड़ते हुए ही वह बरामदे तक आया। कोई नहीं कहीं। बेला ढल आई थी। साझ होने-होने को थी। सामने का आंगन सूना था। जरा देर में अंधेरा हो जाएगा, तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा। बरामदे की दीवाल को पकड़-पकड़कर उसने सीढ़ी से आंगन में उतरने की कोशिश की। आंगन के दाएं दरवाजा। दरवाजा खोलते ही बाहर रास्ता।

किसी तरह से रास्ते में निकल पड़े तो फिर कोई चिन्ता नहीं। नयनतारा को उसने बहुत दिनों तक तकलीफ दी। बहुत रुपये खर्च करा दिए उसके। अब वह उसे इस बला से छुटकारा देगा। सच भी तो, जिसे उसने पत्नी की मर्यादा नहीं दी, उससे सेवा लेने का कोई अधिकार भी तो उसे नहीं है। जिसे उसने ठुकराया है, उससे उम्मीद करने का कुछ रह जाता है क्या? अथच उस जीवन को सुन्दर बनाने की साध लेकर ही तो वह एक दिन घर छोड़कर निकला था। उसने तो उस दिन यह सोचा था कि अपने सब लोगों को छोड़ने से बाहर के सब लोग उसके अपने होंगे। सबको अपना बनाने की कामना से ही तो वह घर छोड़कर निकल पड़ा था। सबको अपना बनाने का यही नमूना है उसका। सबको तो उसने कष्ट ही दिया, सबका बोझ बनकर ही रहा। दूसरे का बोझ होने के डर से ही एक दिन वह समरजित बाबू के यहां से भी इसी तरह चुपचाप निकल आया था। उसके बाद पांडे जी के यहां। धर्मशाला के पांडे जी के लिए भी वह बोझ के सिवाय कुछ नहीं है। मुंह से पांडे जी चाहे जो भी कहें। उसने अपनी दुनिया को मटियामेट किया, पर पराई दुनिया को तबाह करने का हक उसे किसने दिया? न, यहां से अगर वह किसी तरह से कलकत्ता पहुंच भी जाए, तो अब पांडे जी के यहां नहीं जाएगा। पांडे जी से जाकर यह नहीं कहेगा कि मुझे यहां आश्रय दो। वह अब दुनिया के किसीसे भी नहीं कहेगा कि तुम मेरे आश्रयस्थल हो। यदि कहीं रहा भी तो आश्रय के बदले उसका कोई काम कर देगा।

लेकिन काम ही क्या कर सकता है वह? लोग उससे चाहेंगे भी क्या? रुपया? रुपया उसके पास कहां! अथच आज अभी यहां से जाते समय वह कुछ रुपया दे जा सकता, नयनतारा ने सोने का हार जो गिरवी रक्खा है, उतना रुपया भी वह तकिए के नीचे रख जा सकता, तो इस घर के लिए कुछ सहूलियत कर देने का गर्व हो सकता था। लेकिन सो नहीं, जैसा समरजित बाबू के यहां, जैसा पांडे जी की धर्मशाला में, वैसा ही यहां भी। एक बोझ। बोझ ही बनना था तो नबाबगंज ने ही कौन-सा दोष किया था? वहां अपने बपौती धन का भारवाही होकर जीवन बिताना उसके लिए इतना असह्य क्यों हो उठा था?

माला ने कहा, "तो आज चलती हूं नयन-दी! कलकत्ता लौटने में रात हो जाएगी। देर होने से वह चिन्तित होंगे। होलदिल आदमी हैं न—"

"फिर किसी दिन आना, हां? बहुत दिनों के बाद भेंट हुई, बड़ा अच्छा लगा।"

माला इस बार सचमुच ही उठ खड़ी हुई। बोली, "जब तक तुम आफिस नहीं आती, हम लोगों का अड्डा ठीक जम नहीं नहीं रहा है नयन-दी!"

नयनतारा ने कहा, "लगता है, अब जा पाऊंगी। उस कमरे में वह जो बीमार हैं, अब अच्छे हो रहे हैं। आज तो उन्होंने बड़ी देर तक मुझसे बात की—"

माला कुछ कहने जा रही थी, उसके पहले ही बाहर धम्म से कैसी तो आवाज हुई। जैसे, पास ही कोई भारी चीज गिरी। नयनतारा तुरन्त चौंकी।

क्या गिरा? कहां?

वह कमरे से बरामदे में आई और देखकर उसके होश उड़ गए।

वह चिल्ला उठी, "गिरिवाला···ऐ गिरिवाला, कहां हो?"

कुछ गिरने जैसी आवाज गिरिवाला ने सुनी थी। वह उस समय चौके की सफाई में लगी थी। नयनतारा के पुकारने से पहले ही वह आंगन में आ गई थी।

"हाय राम! यह क्या!"

माला ने भी देखा, सदर दरवाजे की ओर अन्दर आंगन में एक आदमी गिरकर बेहोश पड़ा है। यही आदमी तो कुछ देर पहले कमरे में सोया हुआ था। बाहर कैसे आ गया?

लेकिन नयनतारा को उस समय और बातों का ख्याल नहीं था। वह झट झुक गई। उसके मुंह के पास मुंह ले जाकर देखा, यह होश में भी है या बेहोश हो गया।

गिरिवाला से बोली, "गिरि, एक लोटा पानी ले आओ। जल्दी। यह कैसी मुसीबत हो गई, कहो तो?"

गिरिवाला लोटे में पानी ले आई। सदानन्द के आंख-मुंह में पानी के छींटे देते-देते बोली, "तुम थीं वहां गिरिवाला, यह तो कहो? यह आदमी कमरे से बाहर निकल आया और तुम देख भी नहीं सकीं? अब क्या होगा, बताओ। और सदर दरवाजा ही इस तरह से खुला क्यों है?"

गिरिवाला सकपका गई थी। बोली, "दरवाजा तो मैंने नहीं खोला है दीदी-जी! लेकिन देख रही हूं खुला है—"

नयनतारा बिगड़ उठी। बोली, "तुमने नहीं खोला, तो दरवाजा और कौन खोलेगा? रोगी आदमी, बिस्तर से उठकर इतनी दूर आ गया, तुम देख भी नहीं पाईं? दिनों के बाद माला आई, मैं उससे जरा इस कमरे में बात कर रही थी और इतने में ही इतना कुछ हो गया। यों तो मैं कभी उन्हें अकेला नहीं छोड़ती; आज जरा उस कमरे में गई—तुम उनके पास जरा देर बैठ नहीं सकीं? जिस काम को मैं न देखूं, वही चौपट। अकेली मैं किधर-किधर देखूं चौका बाद में ही धो लेती, तो क्या बिगड़ जाता?"

गिरिवाला क्या जवाब दे! माला भी कैसा बुरा-सा महसूस करने लगी वह जरा देर गप-शप करने के लिए आई थी। सोच भी नहीं सकी थी उसके इस आने से नयन-दी को ऐसी एक दुर्घटना में पड़ना होगा।

माला ने कहा, "अब क्या होगा नयन-दी! यह तो मेरी ही वजह हुआ—"

नयनतारा ने कहा, "तेरा क्या दोष है! यह सब तो गिरिवाला की से हुआ। वह अभी रसोई-घर नहीं धोती, तो क्या हो जाता—"

गिरिवाला ने कहा, "शाम हो गई, इसीलिए सोचा—"

"तुम चुप रहो तो। अब बोलने की जरूरत नहीं। अभी अब तुम की ओर पकड़ो, मैं सिर की तरफ पकड़ती हूं, किसी तरह से उठाकर ब

"लेकिन वह सब बुरी चीजें पीने से तुम बचोगे ? वह सब पीना क्या अच्छा है ? मैंने सुना है, उसके पीने से बीमारी होती है, लकवा होता है, और भी क्या कम होता है ।"

"मुझे लकवा ही हो तो किसीका क्या आता-जाता है ? लकवा होगा, तो मुझको होगा, दूसरे किसीका क्या नुकसान होगा ?"

नयनतारा ने कहा, "अजी, ऐसा न कहो । ऐसा कहने से मेरे जी को बड़ा कष्ट होता है । तुम्हारे सिवाय मेरा और कौन है, कहो ? लोगों के बाप होता है, मां होती है, मौसी-फूआ-चाची, भाई-बहन कितने लोग होते हैं, मुझे क्या वैसा कोई है ? तुम अगर इस तरह से नाराज हो, तो मैं किस सहारे पर रहूंगी, किसकी ओर देखकर किस भरोसे से रहूंगी ?"

"क्यों, तुम्हें तो सब कुछ है । तुम्हें तो कोई भी चिंता नहीं है ।"

"कहते क्या हो, तुम्हारे सिवाय मेरे और कौन है ?"

"क्यों, उस कमरे में तुम्हारे सदानन्द बाबू हैं—"

नयनतारा चौंक उठी । उसके कानों में मानो किसी अमंगल की बात पड़ी । बोली, "छिः ! कैसे आदमी हो तुम । तुम्हारी जुबान पर कोई रोक ही नहीं ?"

"रोक क्यों हो ? मैंने तुम्हें दस भरी सोने का जो हार बनवा दिया था, सदानन्द बाबू के इलाज के लिए तुमने उसे चार सौ रुपये में बंधक नहीं रक्खा है ?"

नयनतारा की तरफ से कोई जवाब नहीं सुना गया ।

निखिलेश ने कहा, "क्या हो गया, जवाब नहीं दे रही हो ? जवाब दो, मैं कुछ शौक से शराब पीता हूं ? सदानन्द बाबू के लिए छिपाकर तुम्हारा हार गिरवी रखना दोष नहीं है और मेरा शराब पीना ही दुनिया-भर का दोष है, है न ?"

बिस्तर पर लेटे-लेटे सदानन्द कान लगाकर सब सुन रहा था । उस कमरे की बातें उसे साफ सुनाई दे रही थीं । लेकिन निखिलेश की इस बात का कोई जवाब नयनतारा की ओर से नहीं सुनाई पड़ा ।

सदानन्द समझ नहीं सका कि कमरे में लेटा-लेटा वह क्या करे ? ये बातें जितनी ही उसके कानों में आ रही थीं, अपने आपपर उसे उतना ही धिक्कार आ रहा था । चारों ओर गहरा सन्नाटा । दूर पर रेल-यार्ड से कभी-कभी इंजन की सीटी सुनाई पड़ रही थी । नैहाटी । दुनिया में इतनी जगहों के होते उसे आखिर जगह कहां मिली, तो इस नैहाटी में । कलकत्ता आते-जाते इस स्टेशन से वह कितनी ही बार गुजरा है । लेकिन तब क्या ख्याल में भी आया था कि कभी उसे इस नैहाटी में ही उतरना पड़ेगा, या कि इस नैहाटी में ही नयनतारा अपना घर बनाएगी, इसी नैहाटी में वह बीमार पड़ेगा और नयनतारा यों उसे अपने घर लाकर अपने ही जीवन में कांटे बोएगी ?

सिरहाने की ओर कम पावर की एक बत्ती जल रही थी । सदानन्द के

जी में आया, वहां से पड़े-पड़े ही वह उन लोगों को चीखकर पुकारे। कहे, 'अजी सुनो, तुम्हारी गिरस्ती में एकाएक टपककर मैंने अशान्ति फैलाई है, तुम लोग अपने घर से मुझे निकाल दो। मुझे यहां से निकल जाने को कहो। मैं जिन्दा रहूं या न रहूं, कम-से-कम तुम लोग इस अशान्ति और अंतर्द्वन्द्व से बच जाओ।'

सदानन्द वहीं पड़ा-पड़ा बड़ी देर तक छटपट करता रहा। कुछ ही घंटे पहले तो उसने इस घर से चले जाने के लिए कदम बढ़ाया था, लेकिन उसकी कलई क्यों खुल गई? दरवाजा खोलकर उसने चल ही तो देना चाहा था। यों चुपचाप चल देना चाहा था कि किसीको पता भी न चले। लेकिन वह क्यों नहीं जा सका? सबके सामने पकड़ा क्यों गया? उसका सिर कैसे चकरा क्यों गया?

बगल के कमरे से फिर निखिलेश बाबू का गला सुनाई दिया, "नहीं नहीं, हरगिज नहीं—"

नयनतारा शायद रो रही थी। रोते-रोते उसका गला भारी हो आया था। वैसी ही भर्राई आवाज में वह बोली, "तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, यों चिल्लाओ मत—"

निखिलेश ने कहा, "क्यों नहीं चिल्लाऊं? घर मेरा है, मेरे जी में जो आएगा, वही करूंगा—मैं चिल्लाऊंगा, मैं गीत गाऊंगा, हसूंगा, रोऊंगा, कोई कह क्या सकता है?"

नयनतारा ने कहा, "तुम नाराज क्यों हुए जा रहे हो? पहले तो तुम्हें इतना गुस्सा नहीं था—"

निखिलेश ने कहा, "तुमने मेरा ही गुस्सा देखा, अपना दोष नहीं?"

"मैं तो कह रही हूं कि मैंने दोष किया है, हो गया न? अब गुस्सा कम करो अपना—"

"तुमने दोष मान लिया, इसीमें तुम्हारे सात खून माफ हो गए। फिर तो खून करके कसूर कबूल करने से हर कोई रिहा हो जाता।"

नयनतारा ने कहा, "यह सब तर्क अभी छोड़ो। इस तीन बजे रात में मैं तुमसे तर्क नहीं करना चाहती।"

"करना भी क्यों चाहोगी? उससे तो तुम्हारे ही चेहरे पर कालिख पुतेगी। लेकिन आखिर हुआ क्या? तुम्हारे आफिस में तुम्हारी सारी दोस्त भी जान गई। मैं अपना मुंह बंद भी कर लूं तो तुम्हारी दोस्तों का मुंह कौन बंद करेगा? वे तो जान गई कि मुझसे तुम्हारा सम्बन्ध अब कहां उतर आया है—और इसकी जिम्मेदार कौन है?"

नयनतारा ने कहा, "देखो, उनका जिक्र न करो, उनका मन तुम्हारी तरह नीच नहीं है।"

"मतलब?"

"मतलब जो मैंने कहा है, ठीक ही कहा है। तुम्हारा अपना मन जैसा है, तुम लोगों के मन को वैसा ही समझ रहे हो। एक बेबस बीमार आदमी

अपने घर लाकर मैंने उसकी तीमारदारी की, इसके लिए तुम मुझे भी
में आएगा, कहोगे—"
निखिलेश बोला, "कहूंगा क्यों नहीं ? तुम अपने ऑफिस की मित्रों से
पूछ देखो कि क्या वे अपने पति के होते बाहर के किसी जिस-तिस आदमी
लिए छिपाकर हार बंधक रखती हैं ?"
अबकी नयनतारा बिगड़ उठी, "तुमने उसको जिसको-तिसको कहा ?
। कुछ जानते हुए भी तुम्हारी ज़बान से यह बात निकली। तुमने शराफत
भाषा नहीं सीखी ?"
"तुम मुझे शराफत मत सिखाओ। वैसी बात हो, तो एक दिन जिसने
मसे अभद्र व्यवहार किया था, तुम उसीके साथ जाकर सो सकती हो, मेरे
स क्यों आई ? मैंने क्या तुम्हें बुलाया था ?"
"ठीक है, अगर तुम्हारी यही ख्वाहिश है, तो मैं वही करती हूं।"
"हां, जाओ। मगर ज़िन्दगी में फिर कभी मेरे कमरे में मत आना।"
नयनतारा बोल उठी, "तो मैं भी कहे देती हूं, मैंने अपना हार बंधक
रखा है, अच्छा किया है—"
निखिलेश बोल उठा, "और मैं भी कह देता हूं, मैंने शराब पी है, अच्छा
। किया है। उस समय मुसीबत से उबारने के लिए तुमसे शादी करना ही
री गलती हो गई थी।"
"तुम्हारा अगर ऐसा ही ख्याल है, तो मुझे छोड़ दो। अब तो इसका
ो रास्ता खुला ही हुआ है। उससे तुम भी जी जाओ और मैं भी जी
ाऊं—"
"अब तो यह कहोगी ही। अब तुम्हारी नौकरी लग गई है न, अब
ेरी परवाह क्यों करने लगी ? पक्की नौकरी, मोटी तनखाह, रिटायर करोगी,
ो पेंशन मिलेगा, अब मेरा ख्याल क्यों करोगी ? औरतों की जात ही ऐसी
मकहराम होती है। पहले जानता होता···"
"चुप् स्कैंड्रल। तुम्हारी शक्ल देखने में भी मुझे घृणा होती है।"
गुस्से में निखिलेश और भी कुछ कहने जा रहा था, लेकिन उसके पहले
ो दोनों अपने सामने जैसे भूत देखकर चौंक उठे। उनके दरवाज़े के सामने
दानन्द खड़ा था—साक्षात्।
अपने को सम्भाल लेने में नयनतारा को एक क्षण का समय लगा।
फिर तो वह जैसे दूसरी ही नयनतारा हो गई। बोली, "तुम ? यह क्या ?"
चौकठ पकड़कर सदानन्द किसी तरह से सीधा खड़ा हुआ। बोला, "हां।
ं।"
"लेकिन तुम तो सो रहे थे। मैं तो तुम्हें सुलाकर यहां आई थी। तुम
ाग कब गए ?"
सदानन्द ने कहा, "मैं जग ही रहा था। मुझसे बिछावन पर और पड़े
हते नहीं बना। मैं सिर्फ एक बात कहने के लिए आया हूं—"
नयनतारा की हालत पागल-सी हो गई। बोली, "कुछ कहना ही था

तो तुम मुझे बुला ले सकते थे। तुम खुद ही उठकर क्यों आए? तुम्हारी तबीयत खराब है न। अंधेरे में तुम कहीं औंधे गिर जाते, तो कैसी मुसीबत होती, कहो तो? चलो-चलो, तुम्हें तुम्हारे कमरे में लिटा आऊं।"

नयनतारा उठकर सदानन्द का हाथ पकड़ने लगी।

सदानन्द ने कहा, "रहने दो, इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी।"

नयनतारा ने उसकी अनसुनी करके उसका हाथ पकड़ा। लेकिन सदानन्द ने अपना हाथ छुड़ा लिया और निखिलेश की ओर देखकर कहा, "निखिलेश बाबू, मैं आपसे क्षमा मांगता हूं—"

घटना की इस आकस्मिकता का असर निखिलेश पर से गया नहीं था। वह तुरन्त जवाब नहीं दे सका।

सदानन्द ने फिर कहा, "मैं जानता हूं कि आप मुझे माफ नहीं करेंगे, फिर भी आपसे माफी मांगना मेरा फर्ज है, इसलिए मैं मांग रहा हूं। आप मुझे माफ कर देंगे?"

नयनतारा ने एक बार सदानन्द की ओर देखा, एक बार निखिलेश की ओर, लेकिन निखिलेश अपराधी की नाईं बुत बना खड़ा था।

नयनतारा ने सदानन्द से कहा, "चलो-चलो। जो कहना है, तुम बिछावन पर लेटे-लेटे ही कहना।"

सदानन्द ने इस बात पर कान नहीं दिया। वह निखिलेश की ओर देखकर बोला, "आप अगर मुझे माफ न कर दें, तो मैं यहां से जा नहीं पाऊंगा निखिलेश बाबू! कहिए, आपने मुझे माफ कर दिया।"

अब निखिलेश के मुंह से बात निकल पाई। बोला, "आपने क्या दोष किया है कि मैं आपको माफ करूं?"

"क्या दोष किया है? इसमें बल्कि यह पूछिए कि क्या दोष नहीं किया है। नयनतारा ने आपसे आज जो ऐसा दुर्व्यवहार किया, यह मेरा ही दोष है। आपसे छिपाकर मेरे इलाज के लिए नयनतारा ने जो हार गिरवी रखा, यह भी मेरा ही दोष है। आपके घर में जो यह कच-कच हो रहा, यह मेरी ही वजह से। मुझे सब पता चल गया है निखिलेश बाबू! मगर मैं करूं भी क्या, कहिए! यह सारा कुछ मेरे अनजान में ही हो गया। आप मेरी बात का यकीन मानिए, मैंने सबका भला ही करना चाहा था। मैं जो एक दिन नयनतारा को छोड़कर चला गया था, वह नयनतारा के भले के लिए ही गया था—यकीन मानिए, नयनतारा के भले के लिए—"

निखिलेश ने गंभीर स्वर में कहा, "आपने उस दिन उतना भला करने की कोशिश नहीं की होती, वही अच्छा था सदानन्द बाबू, तब हम लोगों की भाग्य में यह दुर्दशा नहीं होती।"

"दुर्दशा?"

"जी। दुर्दशा नहीं तो और क्या? आपके पूज्य पिताश्री जब नयनतारा का सतीत्व नष्ट करने के लिए इसके कमरे में घुस गए थे, तब आपकी भलाई करने की चेष्टा कहां थी? लड़की की यह दुर्गत देखकर कृष्णनगर में जब इसके

ने की इच्छा ?"

नयनतारा निखिलेश के सामने जा खड़ी हुई। बोली, "अजी ओ, तुम यह सब जो-सो क्या कहने लगे ? देख तो रहे हो, रोगी हैं ये, अभी पूरी तरह चंगे भी नहीं हो पाए हैं, तुरन्त-तुरन्त बीमारी से उठे हैं—"

निखिलेश ने नयनतारा को डपट दिया, "तुम चुप रहो। एक गैर ज़िम्मेदार आदमी, जो अपमान से अपनी पत्नी तक को नहीं बचा सकता, जो अपनी व्याहता पत्नी को वैसे जालिम सास-ससुर के पल्ले छोड़कर भाग गया—तुम उसकी वकालत मत करो।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं निखिलेश बाबू, आप गलत समझ रहे हैं। मैं नयनतारा को किसीके पल्ले छोड़कर नहीं भागा, बल्कि उसे चरम अपमान के चंगुल से ही बचाया—"

"नयनतारा को बचाने का यही आपका नमूना है ?"

"बचाना आप किसको कहते हैं ? जो लोग बाहर से आदमी की शक्ल लिए डोलते चलते हैं, मगर अन्दर जिनकी प्रकृति पशु की है, उन लोगों को पहचानने का मौका देना क्या बचाना नहीं है ?"

निखिलेश ने कहा, "अपने मां-बाप के प्रति अगर आपकी यही धारणा है, तो नयनतारा जैसी लड़की को आप व्याह कर ले क्यों गए ?"

सदानन्द ने कहा, "आप चूंकि सारी बात नहीं जानते हैं, इसीलिए ऐसा कहते हैं। मैं उन लोगों को पहचानता था, इसीलिए व्याह के दिन घर से भाग गया था। हम लोगों में व्याह में जो नेग-नियम होता है, मेरे व्याह में वह भी नहीं हुआ। नयनतारा को शायद याद हो, मेरी उबटन की रस्म भी नहीं हुई।"

निखिलेश के सामने जाकर नयनतारा फिर निहोरा करने लगी, "जो बीत गया, उन गड़े मुर्दों को तुम खामखा क्यों उखाड़ रहे हो ?"

उसके बाद सदानन्द से बोली, "तुम अभी-अभी तो कुछ अच्छे हुए हो, यों दिमाग गरम मत करो, उनकी बात पर मत ध्यान दो। चलो, अपने कमरे में चलो—"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन यदि तुम लोगों से फिर कभी भेंट न हो तो मैं अपनी बात कब कहूंगा ? ऐसा मौका फिर कब मिलेगा ? निखिलेश बाबू से मैं फिर कब क्षमा मांगूगा ?"

निखिलेश ने कहा, "आपने नयनतारा के साथ जो किया, सो तो किया ही, लेकिन आपने मेरा जो नुकसान किया है, उसके लिए क्षमा मांगने का अधिकार आपको नहीं—"

नयनतारा निखिलेश पर डपट उठी, "तुम फिर उसी लहजे में बात कर रहे हो ? रोगी आदमी से कैसे बात की जाती है, तुम्हें इतना भी नहीं मालूम ? ये बातें तुम कल सवेरे भी तो कह सकते थे ?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं कल सवेरे तक अब मुझसे यहां रहते नहीं

बनेगा। जो कहना-सुनना है, मुझे आज रात ही कह-सुन लेना होगा।"

निखिलेश ने कहा, "आपको कल सवेरे तक रहने की जरूरत नहीं। आप इस घर से आज ही, इसी वक्त निकल जाइए···"

"तुम कह क्या रहे हो?"

नयनतारा निखिलेश से बिलकुल सटकर जाकर खड़ी हो गई। बोली, "तुम ऐसी बात क्यों कर रहे हो? ऐसी सेहत लेकर ये कहां जाएंगे?"

निखिलेश ने कहा, "सो इनके जहां जी में आए, चले जाएं। हमारे घर में इनको अब नहीं रहना है। मैं इन्हें अब यहां नहीं रहने दूंगा।"

नयनतारा अड़ गई। बोली, "नहीं। ये यहीं रहेंगे।"

निखिलेश पहले तो नयनतारा की बात पर जरा अवाक् हुआ। वह सोच भी नहीं सका था कि नयनतारा उसकी बात का इस तरह से प्रतिवाद करेगी। मगर पल-भर के ही लिए। फिर वह बोल उठा, "नहीं। तुम रहने को कहोगी, मैं तो भी इन्हें नहीं रहने दूंगा।"

नयनतारा बोली, "तुम पागल हो गए हो क्या? तुम स्वयं नहीं समझ रहे हो कि तुम क्या कह रहे हो! इतनी रात को कोई घर से बाहर जाता है? और फिर ये जाएंगे भी कहां?"

निखिलेश ने कहा, "कहां जाएंगे, मुझे यह जानने की क्या पड़ी है?"

नयनतारा अब जरा और सख्त हो गई। बोली, "नहीं, ये नहीं जाएंगे—"

"हां, जाएंगे।"

"नहीं, मैं कह रही हूं, नहीं जाएंगे। यह जाना भी चाहें तो मैं इन्हें इस हालत में नहीं जाने दूंगी।"

अब, इतनी देर के बाद सदानन्द बोला, "नहीं मैं अब यहां रहना नहीं चाहता। निखिलेश बाबू ज़बरदस्ती रखना भी चाहें, तो भी नहीं। और फिर बात यह है कि मैं अगर होश में रहा होता, तो यहां आता ही नहीं। लेकिन जाने से पहले मैं आपको बात का जवाब दिए बिना नहीं जाऊंगा। नहीं तो यहां से चले जाने के बाद भी मेरे मन को शान्ति नहीं मिलेगी। जरा देर पहले आपने पूछा था, नयनतारा को मैंने पत्नी के रूप में ग्रहण क्यों नहीं किया—यही जानना चाहा था न आपने?"

नयनतारा सदानन्द के सामने आ गई, "तुम्हें यह सब नहीं कहना पड़ेगा। मैं सब जानती हूं—"

सदानन्द ने कहा, "तुम जानती हो या नहीं, मैं नहीं जानता। मैं यह भी नहीं चाहता कि दुनिया का कोई भी आदमी जाने—मैं स्वयं किसीको वह बताना भी नहीं चाहता।"

निखिलेश ने कहा, "यही तो स्वाभाविक है। अपना पाप कोई भला अपने मुंह से जाहिर करता है? सब तो उसे छिपाना चाहते ही हैं—"

सदानन्द बोल रहा था और थकावट से हांफ रहा था। बोला, "आप ठीक कह रहे हैं। लेकिन यह परिस्थिति और ही है। नयनतारा से मेरा सम्पर्क ठीक उस किस्म का पाप नहीं है। पाप मेरे पुरखों का है।"

निखिलेश यह बात समझ नहीं सका। बोला, "अपने पुरखों के पाप के प्रति आप अगर इतने ही सचेत हैं, तो वैसे पापी पुरखे को छोड़ भी तो सकते थे? जबकि उनके पाप के लिए आपने घर छोड़ दिया। अकेले जाने के बजाय अपनी पत्नी को भी साथ ले लेते। वैसे सास-ससुर की निगरानी में स्त्री को छोड़कर आप क्यों चले गए?"

नयनतारा ने गौर किया, थकावट और कमज़ोरी से सदानन्द का दम घुटता आ रहा है। वह सीधा खड़ा नहीं हो पा रहा है।

वह निखिलेश की ओर मुखातिब होकर बोल उठी, "आखिर तुम हो क्या, सो तो कहो? अभी, इतनी रात में यह सब बोले बिना नहीं चल सकता था? देख रहे हो कि उन्हें बोलने में कष्ट हो रहा है..."

सदानन्द ने नयनतारा की बात पर ध्यान नहीं दिया। निखिलेश से बोला, "मैं क्यों चला गया, जानते हैं? सुनना चाहते हैं?"

नयनतारा ने सदानन्द से कहा, "वह सब इन्हें कहने की ज़रूरत नहीं। तुम्हें फिर बुखार हो आएगा, फिर तुम बीमार पड़ जाओगे। सवेरे डाक्टर साहब आएंगे तो वह मुझपर ही बकझक करेंगे। तुम चलो, अपने कमरे में सो जाओ—"

निखिलेश ने कहा, "तुम उन्हें बोलने से रोक क्यों रही हो? वह जो कहना चाह रहे हैं, कहने दो उन्हें।"

नयनतारा ने कहा, "वह जो कहेंगे, मैं भली तरह जानती हूं, अब कहना न होगा..."

निखिलेश ने कहा, "तुम्हारे जानने से क्या होगा? मैंने तो नहीं सुना है। मुझको सुनने दो—"

नयनतारा बोल उठी, "नहीं। तुमको नहीं सुनना। वह सुनकर तुम्हें क्या लाभ है? और, सुनकर भी तो तुम कुछ समझ नहीं सकोगे। तुम अगर समझ सकते तो मेरे साथ यह सलूक नहीं करते।"

"मैंने तुम्हारे साथ ऐसा क्या सलूक किया?"

"और कह रहे हो कि क्या सलूक किया है? कहते शरम नहीं आती है?"

निखिलेश ने कहा, "क्या सलूक किया है, कहो?"

"सबके सामने कहूं?"

"बेशक! मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है, जिसके लिए मुझे लज्जा हो।"

"तो फिर तुम शराब क्यों पीते हो, यह कहो?"

"शराब?"

"तुम खुद रोज़ शराब पीकर घर आते हो और दूसरे को यह दोष लगाते हो कि पत्नी को छोड़कर चला गया? बोलने में तुम्हें लाज नहीं लगती? शराब पीकर घर आना कोई दोष नहीं है शायद? और पत्नी को छोड़कर घर से चला जाना ही दोष है, क्यों?"

निखिलेश डपट उठा, "तुम चुप रहो।"

नयनतारा भी गरज उठी, "चुप क्यों रहूं? जब बात निकल आई, तो

अच्छी तरह से निकल ही आए। सदा के लिए निबटारा ही हो जाए। मैं किस कष्ट से भविष्य के लिए रुपये जोड़ती रही और तुम उन रुपयों को शराब पीकर उड़ा दोगे?"

निखिलेश अब आवेश में आ गया। बोला, "फिजूल की बकवास रखो। तुम सब अच्छी तरह जानती हो कि मैंने शराब क्यों शुरू की। तुमने अपना हार बंधक नहीं रखा होता, तो क्या मैं शराब पीता? इससे पहले कभी पी थी शराब? पहले तो आफिस से तुम्हें लेकर साथ ही लौटा करता था—उस समय तुमने मुझे कभी शराब पीते देखा था?"

नयनतारा ने कहा, "मगर अपना हार मैंने कुछ अपने लिए बंधक रखा है? घर में कोई बीमार पड़ा हो, तो कोई आखिर क्या कर सकता है? कर्ज नहीं लेता?"

"मगर तुमने मुझे बताया था? मुझसे पूछा था?"

नयनतारा ने कहा, "तुम्हें मैं बताने क्यों जाती? बताने से तुम हां कर सकते थे। चूंकि रुपये खर्च होंगे, इसलिए तुम तो इन्हें अस्पताल भेज देने को मजबूर कर रहे थे। आखिर इनके लिए खर्च होने से तुम्हें इतना गुस्सा क्यों होना है? तुम क्या सोचते हो, ये तुम्हारे यहां रहने के लिए आए हैं?"

निखिलेश फिर बिगड़ उठा। बोला, "तुम फिर फिजूल की बात कह रही हो। मैंने कभी यह कहा है कि सदानन्द बाबू यहां रहने के लिए आए हैं?"

नयनतारा बोली, "तुमने तो लेकिन यही सोचा था।"

निखिलेश बोला, "वह पाप तुम्हारे मन में है, जभी तुम ऐसा कह रही हो।"

"पाप? पाप मेरे मन में है कि तुम्हारे मन में? मैं जबसे इन्हें यहां ले आई हूं, तुमको तो उसी दिन से बरदाश्त नहीं हो रहा है। तुम क्या सोचते हो, मैं कुछ समझती नहीं?"

"मैंने तुमसे यह बात कभी कही है?"

नयनतारा बोली, "कहने क्यों लगे? मुंह से भी कोई कहता है? तुमने अपने काम से इसका सबूत दिया है।"

"काम से? मेरे किस काम से यह सबूत मिला कि मैं इन्हें बरदाश्त नहीं कर पा रहा हूं?"

नयनतारा अब तनकर खड़ी हो गई। बोली, "नहीं तो उन्हें देने के लिए दवा के बदले तुम विष क्यों खरीद लाए थे?"

"विष?"

"हां-हां, विष।"

निखिलेश की जबान से कुछ देर तक कोई बात नहीं निकली। उसके बाद थूक घोंटकर उसने कहा, "किसने कहा?"

"सबूत चाहिए?"

निखिलेश को सबूत चाहिए या नहीं, यह सुनने से पहले ही नयनतारा कमरे से बाहर चली गई। क्षण-भर के बाद ही बगल के कमरे से कोई चीज

लेकर लौट आई। दवा की शीशी निखिलेश को दिखाते हुए बोली, "तुम खरीदकर यह नहीं ले आए थे?"

निखिलेश को काठ मार गया।

"क्यों, चुप क्यों हो? जवाब दो। इसे तुम किसलिए खरीदकर ले आए थे?"

निखिलेश तब भी चुप खड़ा था। जुबान खुल ही नहीं रही थी।

"क्या हो गया? सबूत मांग रहे थे। सबूत मैंने दे दिया। अब बताओ?"

ज़रा रुककर नयनतारा फिर कहने लगी, "यह गनीमत कहो कि मैंने इन्हें पिलाया नहीं, नहीं तो क्या गजब हो जाता? मैंने इसे फेंका नहीं, रख छोड़ा था कि कभी मेरे काम आएगी। कैसे खूंखार आदमी हो तुम, कहो तो भला? कहीं, बगैर देखे-सुने मैं इन्हें यह पिला देती? किस्मत थी कि मैंने डाक्टर साहब को दिखाया। डाक्टर साहब ने कहा, 'यह तो विष है। कैसे आया? कौन ले आया?' मैं डाक्टर साहब की बात का कोई जवाब नहीं दे सकी। मैं तुम्हारी मति-गति पर सिर्फ मन-ही-मन सिहर उठी। सोचा, आदमी इतना नीच भी हो सकता है। किसी कुत्ते-बिल्ली को ज़हर देकर मारते भी आदमी बार-बार सोचता है। और तुम इतने गए-बीते हो कि एक निरीह आदमी को मारने में तुम्हें ज़रा हिचक भी नहीं हुई? यह ज़हर की शीशी खरीदने में तुम्हारा हाथ भी नहीं कांपा? तुमने मुझसे कहा, 'एक कप पानी में मिलाकर पिला देना।'"

सारा वातावरण स्तब्ध हो उठा। कैसे समय बीतता गया, किसीको पता नहीं चला। सदानन्द ने नयनतारा से वह शीशी लेनी चाही। बोला, "यह मुझे दे दो—"

नयनतारा ने हाथ हटा लिया। बोली, "नहीं। तुम क्या करोगे?"

सदानन्द ने कहा, "मुझे ज़रूरत है।"

नयनतारा बोली, "नहीं, जरूरत मुझीको है। मैं इसे रख लूंगी। मेरे ही पास रहे। जब सबको पहचान गई, तो शायद हो कि यह कभी मेरे ही काम आए। मैं इसे वैसे वक्त के लिए रख रही हूं—"

"दीदीजी!"

गिरिबाला का गला सुनकर सब चौंक उठे। नयनतारा ने दरवाज़े की ओर देखा। देखा, गिरिबाला खड़ी है।

"क्यों गिरि, कुछ कहना है?"

"डाक्टर साहब आए हैं।"

डाक्टर साहब का नाम सुनकर नयनतारा कैसी तो अनमनी हो गई। उसे अचम्भा भी कम नहीं हुआ। डाक्टर साहब इतनी रात को क्यों आए? उनको तो ऐसे वक्त आने को नहीं कहा गया है। एकाएक कैसे आ पहुंचे? उनके तो सवेरे आने की बात है, जैसा कि रोज़ आया करते हैं।

लेकिन बाहर की तरफ ताकते ही नयनतारा को होश आया। अरे, यह तो सवेरा हो गया। वह झटपट निकलकर आंगन में गई। डाक्टर साहब हाथ

में अपना वैग लिए खड़े थे।

नयनतारा को देखते ही उन्होंने पूछा, "मेरा रोगी कैसा है ?"

वहू बाजार में समरजित बाबू के यहां उस समय दूसरे ही एक नाटक का अभिनय चल रहा था। बाहर से तो घर बिलकुल शान्त दीखता था। कहीं कोई गड़बड़ी नहीं। दिन के समय कलकत्ता शहर की गतिमान सभ्यता की पालिश लगाए मजे में सिर ऊंचा किए खड़ा रहता। कभी इस मकान का एक सुनाम था कि यह एक बड़े आदमी का मकान है। वह सुनाम अब शायद और बढ़ गया था। इसलिए कि इसके जो पहले मालिक थे, वह थे गृहस्थ। किसी-के छह-पांच में नहीं रहते। कलकत्ता शहर की राजनीति और समाजनीति के प्रवाह में भी नहीं बहते थे। देश की स्वाधीनता के बाद कौन अपनी कितनी सुविधाएं भोग रहा है और किन्हें असुविधाएं हो रही हैं, इसके लिए भी वह मगज-पच्ची नहीं करते थे। उनका मत था, सभी लोग सुख-शान्ति से रहें, किसीको किसी बात की शिकायत नहीं रहे। कोई किसीका शोषण नहीं करे। और, जिन्हें दौलत है, ऐसे लोग अपनी जरूरत से ज्यादा पैसों में से कुछ दान-पुण्य करें। जिन्हें है, और जिन्हें नहीं है—इन दोनों के आपसी संघर्ष से जिसमें देश में अशान्ति नहीं आए। संक्षेप में कहा जा सकता है, वह उन्नीसवीं सदी के शिक्षित मध्यवित्तों की आबहवा में पले एक निरीह और शान्तिप्रिय सज्जन थे।

और, शान्तिप्रिय सज्जन ही शायद इस युग में सबसे अधिक दया के पात्र हैं। सच पूछिए तो उनका न तो यह कुल है, न वह कुल। उनकी सत्यता ही उनकी सबसे बड़ी शत्रु है। उनकी सत्यता को लोग मूर्खता मानते हैं। और चूंकि ऐसे लोग शान्तिप्रिय होते हैं, इसलिए वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहते।

अपने जीवन में समरजित बाबू एक ही बार जरा सख्त हुए थे। उसी बार उनकी सेहत भी गिर गई थी। अपनी शान्तिप्रियता का हरजाना भी वह अच्छी तरह से ही चुका गए। इसमें उन्होंने न केवल अपने जीवन की बलि दी, बल्कि अपनी पत्नी के जीवन को भी सदा के लिए बरबाद कर गए।

उनकी पत्नी ही इस घर की मालकिन थीं। लेकिन समरजित बाबू के चल बसने के बाद से उनकी कोई वक्त नहीं रह गई। अब इस घर की मालकिन बन बैठी मानदा मौसी।

शुरू-शुरू में समरजित बाबू की पत्नी कुछ कहना चाहती, पर मानदा मौसी रोक देती। कहती, "आप चुप रहिए न दीदी, आप बूढ़ी हैं, अपनी पूजा-अरचा में ही लगे रहिए। इन मामलों में दखल देने की आपको क्या पड़ी है ?"

समरजित बाबू के गुजरते ही रातोंरात इस घर का रंग-रवैया बदल गया। घर की गृहिणी सब देख-सुनकर चुप हो गईं। कभी यहां कितना सुख था, कितनी प्रतिपत्ति थी। वह स्मृतियां अभी भी आंखों में तैरती थीं।

सच पूछिए तो महज एक महेश ही उनकी खोज-पूछ रखता था। नई बहू ने आकर उन्हें घर के बिलकुल एक कोने के कमरे में डाल दिया था।

महेश आकर आहिस्ता से पुकारता, "मां जी—"

गृहिणी कहतीं, "कौन ?"

"मैं महेश हूं मां जी ! आप खा चुकीं ?"

गृहिणी कहतीं, "घर में किसीकी आहट नहीं मिलती है ? नई बहू कहां है ?"

महेश कहता, "बड़े बाबू नई भाभी जी को लेकर सिनेमा गए हैं।"

"ओ !"

इससे ज्यादा कुछ नहीं कहतीं वह। इससे ज्यादा बोलने को कभी जी भी नहीं चाहता। पहले कम-से-कम एक बार चौके की ओर जाती थीं। इसकी खोज-खबर लिया करती थीं कि मालिक क्या खाएंगे, नहीं खाएंगे। कमरे से दस बार बाहर निकलतीं। मालिक जब गंगा नहाकर आ जाते, तो उनके पास-पास ही रहतीं।

लेकिन असली आदमी के चले जाने से घर का चेहरा शायद ऐसा ही हो जाता है। इसीलिए घर की शक्ल ही बिलकुल बदल गई।

"बहू क्या कर रही है ?"

"भाभी जी का कमरा बंद है। सवेरे से ही नहीं खोल रही हैं।"

"खाया नहीं है ?"

महेश ने कहा, "नहीं।"

गृहिणी ने कहा, "दरवाजे को एक बार थपथपा कर क्यों नहीं देखा ?"

महेश ने कहा, "बाप रे ! फिर तो हो गया। भाभी जी की शक्ल देखने से ही मुझे डर लगता है। वह शक्ल मुझसे अब देखी नहीं जाती।"

गृहिणी कहतीं, "तो तू ही यहां क्यों है ? तुझे इतनी तौहीनी अच्छी लगती है ?"

"मैं ?" महेश कहता, "मैं चला जाऊंगा तो श्मशान कौन अगोरेगा ? मैं तो महज मसान अगोरने के लिए ही हूं। आप मरेंगी, भाभी जी मरेंगी तो देखेगा कौन ? फिर तो लाश फूंकने के लिए महेश की ही बुलाहट होगी।"

पुरानी बातें हैं यह सब। यह सब सुनने से गृहिणी के दुःख भी नहीं होता, कोई भावांतर भी नहीं। पहले होता था। पहले आंचल से आंसू पोंछा करती थीं। मन-ही-मन अपने भाग्य को कोसती थीं। इतनी अगाध सम्पत्ति, इस ऐश्वर्य और इस प्राचुर्य के विनाश की कामना करती थीं। लेकिन चिन्ता में ज्यादा देर डूबी नहीं रह सकती थीं। नीचे मानदा मौसी की चीख-पुकार से उनकी दुश्चिन्ता का जाल फट-चिटकर एकाकार हो जाता था।

लेकिन यहां आकर मानदा मौसी को ही सबसे ज्यादा आराम हुआ है। वह बचपन से ही बड़े कष्टों में पली। उसके मां-बाप का कहीं कोई पता नहीं। लोगों के अपना-सगा होता है, वही आम तौर से सबको पालते हैं। फिर जब वह चर-चुगकर चला लेने लायक हो जाता है, तो सब खिसक पड़ते हैं। फिर

धारा के सवार से सब राह-घाट में बहते फिरते हैं। कलकत्ता की सभी मानदा मौसियों के बीते जीवन का इतिहास ऐसा ही है। उस समय मानदा मौसी कालीघाट के मन्दिर के सामने भीख मांगती चलती थी। एक फटा फ्राक पहने यात्रियों के पीछे लेई-सी चिपकी चलती थी। रोनी-सी आवाज़ में गिड़गिड़ाती। मन्दिर के फाटक से ट्राम-बस के रास्ते तक रोती हुई पीछे लगी जाती। और सुई अटके टूटे रेकार्ड की तरह बार-बार एक ही बात कहती, "एक पैसा दो बाबा, एक पैसा—"

उस समय मानदा मौसी की दिन-भर की यही बोली थी। सोते-सोते आधी रात को कभी नींद खुल जाती, तो आपसे आप मुंह से वही बोली निकल आती, "एक पैसा दो बाबा···"

उसके बाद फ्राक के बदले मानदा मौसी के बदन पर साड़ी आई। उसके बाद तो जो होता है, वही हुआ। फिर तो उसे पैसे के लिए मारा-मारा नहीं फिरना पड़ता। बल्कि उसकी कदर ही बढ़ गई। कालीघाट की धर्मशाला और पंडों के यात्री-निवास में पुण्यार्थी लोग बुला-बुलाकर उसे पैसे देने लगे। उसके एक से दो साड़ियां हो गई।

फिर मानदा को रास्ते में चक्कर काटने की जरूरत नहीं रही। पंडों की बस्ती में कोई खपरैल किराए पर लेना नितांत अनिवार्य हो गया। उस समय मानदा को दिन में भी ग्राहक मिलने लगे, रात में भी। ऐसा कि कभी-कभी दिन के दस बजे भी उसके दरवाज़े पर ग्राहकों की भीड़ होने लगी।

मानदा मौसी के जीवन का वह एक स्वर्णयुग था।

लेकिन वह कितने दिन। महज़ कई साल। पर उन्हीं कुछ वर्षों में मानदा मौसी पूरे एक मकान की मालकिन बन बैठी। बिलकुल चकले वाली।

इतने दिनों तक वैसा ही चल रहा था। सुख-दुःख से काफी अरसा निकल गया। कभी काफी कुछ रुपये जमा हो जाते और कभी फिर पूंजी चुक भी जाती। ज्यादातर घूस देने में ही दिवाला पिट जाता। इस व्यवसाय में यही एक दोष है। रुपये मिलते है, लेकिन उन्हें ज्यादा दिनों तक रखा नहीं जा सकता। चूंकि साथ में शराब का काम रहता है, इसलिए रिश्वत देना ज़रूरी हो जाता है। रिश्वत का वह दबाव कभी-कभी इतना ज्यादा हो जाता है कि कारोबार समेट लेने को भी जी चाहता है।

मगर मानदा मौसी का नसीब अच्छा था। ऐन मौके पर बतासी आ पहुंची। और आ गया बड़े बाबू।

तब से मानदा का मुख्य काम हो गया बतासी को खुश रखना। वह बतासी को वह सब गुर सिखा दिया करती थी कि बाबू को कैसे वश में किया जा सकता है।

बतासी में एक गुण था कि वह मौसी की बातों को मन से सुनती थी।

मौसी कहती, "तुझसे एक बात कह दूं, ज़रा ध्यान से सुन ले। जी-जान से बाबू की खातिर किया करना, समझ गई? बाबू अगर शराब पीकर उलटी भी कर दें, तो घिन मत करना। अपने हाथ से कै को उठा लेना, मगर चेहरे

पर आजिजी मत झलकने देना। एक वह बात है न, बिल्ली चाहे मिट्टी
हो, चाहे काठ की—चूहा पकड़ने से काम।"

मौसी बतासी को और भी बहुत कुछ सिखाती। कहती "अरी, इस
पेट के लिए ही तो भात चाहिए, वरना भात की बला से कि वह पेट
खोजता फिरे—"

बतासी कहती, "लेकिन पी लेने पर बड़े बाबू को होशो-हवास जो
रहता है..."

मौसी कहती, "बला से होश-हवास न रहे। अरी भात भतार थो
देता है, भात तो देता है अपना शरीर। समांग। यह जब तक है, कमा
फिर कौन पूछता है।"

मानना पड़ेगा कि बतासी की तकदीर अच्छी थी। मगर शरी
बदौलत कि नसीब की बदौलत, क्या जाने! बड़े बाबू का बाप उधर मरा
इधर बतासी एकबारगी बहू बनकर उस घर में पहुंच गई। बतासी ने
"मौसी, तुम भी मेरे साथ चलो।"

मौसी का कारबार उस समय मंदा था। कलकत्ता में बम जो गिरा,
शहर छोड़कर भागने लगे। उसी समय से मंदा चल रहा था। फिर जब
मुसलमान का दंगा हुआ, तो व्यवसाय ठप हो गया। यहां तक नौबत
कि किसी-किसी दिन उसके यहां की औरतों की हांड़ी भी नहीं चढ़ती। ग्र
की छोड़िए, दरवाज़े से एक चींटी भीं नहीं गुज़रती। उतना पुराना बुनि
टोला, कभी कितना गुलज़ार था, कैसी चलती थी। उस समय ग्राहकों
ऐसा तांता लगा रहता था कि औरतों को नहाने-खाने की भी फ़ुरसत
मिलती थी। वही रौशन टोला मरघट-सा हो गया। ऐसा अकाल कि व
कभी बोहनी तक नदारद।

सुतरां बतासी का कहना मौसी के लिए वैसा ही हुआ, अंधा क्या च
तो दो आंखें। मानदा ने कहा, "जाने को तो खैर मैं तैयार हूं, पर तुझे
काम करना होगा। कर सकेगी?"

"कौन-सा काम?"

"बड़े बाबू तो बाप की उतनी दौलत का मालिक बन गया, मुझे
रुपये दिला देगी? मैं सेंत हीं नहीं लूंगी उधार लूंगी। सूद चाहे तो वह
दूंगी। तू कहेगी उनसे?"

बतासी बोली, "तुम्हारे तो खुद ही बहुत रुपये हैं, तुम रुपया
करोगी?"

"हाय राम, मुझे बहुत रुपया है? मेरे पास रुपया कहां? होता तो
बुढ़ापे में मैं तेरी खुशामद करती? घर-घर मारी-मारी फिरती?"

"अपने यहां अच्छी-अच्छी लड़कियों को क्यों नहीं रखतीं? खूबसू
और जवान लड़कियां रहने से ही बड़े लोग आया करेंगे।"

"धत् पगली, अच्छी लड़कियों को रखने के लिए भी तो रुपया चाहि
अच्छी लड़कियां क्या उड़कर आसमान से आती हैं? उसके लिए द

लगाना पड़ता है । दलाल भी कुछ ऐसा-वैसा नहीं । अच्छे दलाल चाहिए और वैसे दलालों का पेट भी बड़ा होता है । जिस पूजा का जो नैवेद्य । अरी, इस कारबार में बड़ा झमेला है । अच्छे दलाल के बिना अच्छी लड़कियां कहां से आएंगी ? मकान भी किसी अच्छे टोले में लेना होगा। अच्छे घर के लोग क्या इस टिन के टुटहे मकान में आना चाहेंगे ? मनसूबा मैं सब बता सकती हूं, पर सिर्फ पीठा खाने से तो नहीं चलता, उसकी लागत कौन गिने ?"

बतासी ने सब कुछ समझा था । बड़े बाबू के मरने की खबर मिलते ही उसने बक्सा-पिटारा सहेज लिया । मौसी भी घर का सामान बटोरकर चली आई ।

मानदा मौसी को देखकर बड़े बाबू ने पूछा, "तुम ? तुम कहां चलीं ?"

बतासी ने कहा, "मौसी मेरे साथ जाएगी ।"

बड़े बाबू ने पूछा, "क्यों ?"

बतासी बोली, "मौसी नहीं जाएगी, तो मेरी देख-भाल कौन करेगा ?"

बड़े बाबू ने कहा, "तुम्हारी देख-भाल के लिए क्या वहां लोगों की कमी है ? नहीं होगा तो और आदमी रख लूंगा । मौसी को खुद बहुत काम है । उसका कारबार कौन देखेगा ?"

मौसी ने कहा, "कारबार की कुछ न पूछो, वह तो चौपट हो गया ।"

"क्यों ?"

"ग्राहक कहां है ? ग्राहक ही लक्ष्मी है । अभी कलकत्ता का यह हाल है कि चकलों की लड़कियों को फाके की नौबत आ गई है। वह सब फिर बताऊंगी । अभी वह लम्बी दास्तान सुनने की तुम्हें फुरसत कहां है ? अभी तो तुम पर खुद ही बहुत फिक्र है, ऊपर से अपनी फिक्र का बोझ लादकर मैं तुम्हारे दिमाग को और भारी नहीं करना चाहती ।"

इस तरह सम्पन्न हुआ । उसी दिन से मानदा मौसी बड़े बाबू के पीछे पड़ गई थी । क्रिया-कर्म जब समाप्त हो गया, तो मौसी तभी से बतासी से कहती, "बाबू से कहा था ?"

उस समय बतासी के सुख का क्या ठिकाना ! इतने बड़े घर की गृहिणी । नौकर-चाकर, दाई-रसोईदारिन । एक गिलास पानी तक ढालकर नहीं पीना पड़ता । नींद से जगते ही सामने चाय आ जाती । सोने से पहले, जब तक बड़े बाबू नहीं आ जाते, मानदा मौसी उसका पैर दबा दिया करती । बिना पैसे की पैर दबाने वाली ऐसे कितने घरों की बहुओं को नसीब है ?

मानदा मौसी बतासी के पैर दबाती और बात करती रहती । कहती, "क्यों री बतासी, मेरे बारे में बड़े बाबू से कहा था ?"

बतासी आंखें बंद किए-किए ही कहती, "तुम्हारे बारे में मैं क्या कहूं मौसी, तुमने खुद ही तो कहा था ।"

मौसी ने कहा, "अरे, मैंने तो कहा ही था, पर तुझे याद तो दिला देनी चाहिए । व्यस्त आदमी को सब समय सब कुछ याद थोड़े ही रहता है ?"

बतासी ने कहा, "तो क्या समझती हो कि मुझे काम नहीं रहता ? मुझे

ही क्या सब बात याद रहती है ?"

मौसी कहती, "तुझे क्या काम है रे ? तुझे हुक्म बजाने वालों की कमी है ? तू एक बार मुंह से कह दे, फिर देख, कौन काम नहीं करता। मैं झाड़ू मारकर उसे घर से निकाल नहीं दूंगी ?"

बतासी बोली, "तुम्हारे झाड़ू में इतना ही दम है, तो उस दईमारी को घर से निकाल तो दो, देखूं ज़रा तुम्हारी ताकत।"

"किस दईमारी को ? उस बुढ़िया को ?"

"नहीं, उस छोरी को।"

"उस छोरी को तो देखती ही नहीं कभी। वह तो कमरे से निकलती ही नहीं है।"

"ऐसी कौन-सी शाहज़ादी है कि घर से निकलने ही की नहीं। घर के दाई-नौकर, रसोईदारिन, सब तो उसी शाहज़ादी के पीछे परेशान हैं—मेरी कौन सुनता है और मेरा ख्याल ही कौन करता है ?"

मौसी ने कहा, "तो तू बड़े बाबू से यह कहती क्यों नहीं ?"

बतासी बोली, "वह मेरा कहा सुनता है।"

मौसी ने कहा, "हाय राम, यह क्या कहती है ! तेरे लिए वह इतना करते हैं, कहां तू रास्ते में पड़ी थी, बड़े बाबू तुझे अपने घर ले आए, और तू उन्हींकी शिकायत कर रही है ?"

मौसी ने ज़रा रुककर फिर कहा, "खैर ठीक है। मैं आज उस कम्बख्त महेश से कहती हूं। सबकी जड़ वही है। वही महेश ही तो उस छोरी के कमरे में खाना पहुंचा आता है। तू उसे निकाल बाहर नहीं कर सकती ?"

बतासी कहती, "इतना पुराना आदमी है, उसे कैसे निकालूं ?"

मौसी कहती, "अच्छा, तुझसे नहीं बनता तो मैं उसे निकालती हूं। मैं अभी जाकर उसे निकाल देती हूं—"

और मौसी सचमुच ही उठ खड़ी हुई। उठकर वह घर को कंपाती हुई चिल्ला उठी, "महेश, अरे ऐ महेश—"

उस चिल्लाहट से घर गूंज उठा। दुतल्ले से नीचे तक पूरा घर उस पुकार से जहरीला हो उठा।

"कहां है, महेश कहां है ?"

घर में लोग ही कितने थे ? दुतल्ले पर कोने के एक कमरे में घर की मालकिन चुपचाप बैठी थीं। उन्होंने भी सुना। मन भिन्ना उठा। मालिक चले गए, जी गए वह। लेकिन वह मुझे यह किस नरक में छोड़ गए ? उन्होंने समझा तो होगा ही कि एक दिन ऐसा होगा। इसीलिए उन्होंने मुन्ने को सारी जायदाद से हाथ धुलाना चाहा था। लेकिन आदमी सोचता कुछ है, होता कुछ है। गृहिणी के सामने दीवाल पर समरजित बाबू की बंधी हुई एक तसवीर टंगी थी। उसीको देखकर वह मन-ही-मन क्या कहने लगी, कोई समझ नहीं सका।

"महाराज जी, महेश कहां गया ?"

महाराज अपने रसोई के धंधे में व्यस्त था। बोला, "मुझे तो नहीं मालूम मौसी—"

"तुम्हें मालूम ही नहीं तो बैठे बिठाए तनखाह क्यों लिया करते हो? बसन्त कहां गया, बसन्त?"

"वह बाजार गया है।"

"बाजार गया है। हरामजादे को बाजार जाने का और समय नहीं मिला। जब तब बाजार जाना मैं निकाल देती हूं उसका। किसने उसे बाजार भेजा?"

यह मौसी और नई बहू जब से इस घर में आई तभी से घर के पुराने लोगों के मन में खुशी नहीं है। नौकर-महाराज ने पहले भी यहां काम किया है। कोई भी झमेला नहीं था। वे सब घर के सदस्य की तरह ही काम करते रहे। किसीसे गाली-गलौज सुनने की नौबत नहीं आई।

महाराज ने कहा, "उसे महेश ने बाजार भेजा है—"

"मैं महेश को इसका मजा चखाती हूं, देखती हूं उसे—"

महेश लेकिन उस समय दरवाजे पर खड़ा किसी भले आदमी से बात कर रहा था। वह भला आदमी गांव से आया था। कलकत्ता में खास किसीको जानता नहीं था। बड़ी-बड़ी मुश्किल से पूछता-आछता यहां तक आया था।

महेश ने पूछा, "यह मानदा मौसी आपकी कौन होती है?"

भले आदमी ने कहा, "होगी कौन? कोई नहीं। मैं कालीघाट उसके घर गया था। सुना, मौसी यहां है। इसीलिए आ गया। तुम इस घर के कौन हो?"

"मैं यहां नौकरी करता हूं। आप कौन हैं? नाम आपका?"

भले आदमी ने कहा, "मौसी मुझे पहचानती है, तुम नहीं पहचान सकोगे। मैं नवाबगंज से आ रहा हूं।"

"नवाबगंज? नदिया जिले का नवाबगंज? मैं तो वहां गया हूं। रेल-बाजार से उतरकर जाना पड़ता है।"

"तुम वहां गए हो? किसलिए? उधर तुम्हारा घर पड़ता है क्या?"

महेश ने कहा, "मैं वहां सदानन्द बाबू के घर का समाचार लेने गया था···"

"सदानन्द बाबू? सदा? अरे, वही तो मेरा भाजा है। मैं तो उसीकी तलाश में कलकत्ता आया हूं। कहां है वह? मुझसे तुम कुछ छिपाना मत भाई, मैं उसका मामा हूं। मैं उसके लिए दर-दर की खाक छानता फिर रहा हूं, और वह तुम्हारे यहां है। अजीब है। मेरा नाम प्रकाश है। प्रकाश चन्द्र राय। मेरा नाम कहने से ही वह पहचान लेगा। उसे जरा बुला दो तो—"

महेश ने कहा, "लेकिन वह तो यहां नहीं है···"

"नहीं है? कहां गया फिर?"

महेश ने जरा सोचा, इस आदमी को सदानन्द का पता बताए या न... भले आदमी को उसने गौर से देखा। फिर बोला, "लेकिन मैं तो [illegible] सुन आया, सदानन्द बाबू [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] जो दे—[illegible]

चले गए। मैं जब गया था, तब तक नवाबगंज में कोई भी नहीं था ?"

प्रकाश ने कहा, "सदा के पिताजी भागलपुर में थे। वह मर गए। मैं उन्हींके मरने की खबर उसे देने आया हूं..."

"लेकिन सदानन्द बाबू के तो ब्याह भी हुआ था, मैं वहीं सुन आया था—"

प्रकाश ने कहा, "खूब। तुम तो खूब चालाक आदमी हो। खैर, मुझे उसका पता तो बता दो। उसके बाप लाखों-लाख रुपया छोड़ गए हैं, अब वह रकम आखिर कौन लेगा ? उसे खबर न दूं, तो सारी रकम सरकार के पेट में चली जाएगी। जभी इस कष्ट से उसे खोज रहा हूं, नहीं तो मुझे क्या पड़ी है, मेरे ठेंगे से। उसीका भला होगा, बहुत सारा रुपया उसे मिल जाएगा—"

महेश हंसा। बोला, "जी, आप रुपये की कहते हैं ? रुपये का उन्हें लोभ ही नहीं—"

"उसे रुपये का लोभ नहीं है, यह तुमने कैसे जाना ?"

"वह यहां थे न। मैं कैसे नहीं जानता। हमारे बाबू अपनी सारी जायदाद उन्हींके नाम वसीयत करना चाह रहे थे, वह राजी नहीं हुए।"

"तुम्हारी बाबू के कितने रुपये हैं ?"

"गांव में इनकी बहुत जगह-जमीन है, फिर कलकत्ता का यह मकान। उन्होंने सब कुछ सदानन्द बाबू के नाम लिख दिया था—"

"फिर ?"

"उसी डर से वह एक दिन चुपचाप यहां से भाग गए।"

सुनकर प्रकाश दंग रह गया। वह इसकी कल्पना ही नहीं कर सका कि सदा से बढ़कर दूसरा अहमक भी इस दुनिया में है। सदा को रुपया नहीं चाहिए और रुपया ही सदा का पीछा करता फिर रहा है। हाय रे, प्रकाश को तो कोई पैसा नहीं देना चाहता ! इसीको कहते हैं, लक्ष्मी-भाग्य !

"मेरे भांजे का स्वभाव सदा से ऐसा ही है भैया ! अहमकों का सरताज। भला रुपयों से ऐसी लापरवाही करनी चाहिए ? तुम्हीं बताओ न, तुम तो चालाक-चतुर हो। रुपया लक्ष्मी है। उस लक्ष्मी की तुम लापरवाही करोगे, तो वह भी तुम्हें हिकारत से देखेगी। है या नहीं ?"

"खैर," इस प्रसंग को छोड़कर प्रकाश बोला, "जाने दो, जिसे जो जंचे, करे। उसमें मेरे-तुम्हारे सिर खपाने से कोई लाभ नहीं। तुम मुझे यह बताओ कि वह गया कहां ? मैं उससे कुछ भी नहीं कहूंगा, सिर्फ उसके बाप का रुपया उसके हाथों सौंपकर मैं छुटकारा पाना चाहता हूं भाई ! दूसरों के रुपये की झंझट झेलते मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

महेश ने कहा, "लेकिन उन्होंने किसीको बताने को नहीं कहा है—"

"अरे बाबा, मैं कोई बिराना तो नहीं हूं। मैं तो मामा हूं उसका। मैं तो उसीके भले के लिए उसको खोज रहा हूं। मैं उसकी पत्नी तक को नहीं बताऊंगा। क्योंकि सुना, उसकी पत्नी ने भी फिर से शादी कर ली है..."

"पत्नी ने शादी कर ली ? किसने कहा आपसे ? मैं तो नहीं जानता

था।"

"मुझे भी क्या मालूम था। मैं कृष्णनगर से आ रहा हूं। वहीं सदा की ससुराल थी। सदा के ससुर का मरना था कि सदा की पत्नी एक छोकरे से ब्याह करके भाग गई। अभी वह उस छोकरे के साथ शायद नैहाटी में है···"

महेश ने कहा, "सदानन्द बाबू बड़े भले हैं—"

प्रकाश ने कहा, "भला है, इसीलिए तो इतना झमेला है। भला नहीं हो तो किसीकी पत्नी इस तरह से भागती है? तुम्हीं कहो न। खैर, उसका पता तो बताओ, मैं जाकर उसे पकड़ूं···"

महेश ने कहा, "बड़ा बाजार जानते हैं? पत्थर पट्टी? वहीं पर एक बहुत बड़ी धर्मशाला है। वहीं खोजिए, पता चल जाएगा।"

तब तक पीछे से मानदा मौसी चिल्ला उठी, "अरे ऐ हरामजादा, यहां खड़ा-खड़ा अड्डा मार रहा है और इधर चिल्लाते-चिल्लाते मेरा गला···"

"मौसी!"

प्रकाश पहचान गया। वह मौसी की तलाश में ही कालीघाट से यहां आया था। मौसी लेकिन नहीं पहचान सकी। बोली, "कौन हो तुम, भाई?"

"अरे, मुझे नहीं पहचान रही हो? मैं प्रकाश हूं। वही प्रकाश राय तुम्हें मैं अपने भांजे की तसवीर दे गया था, याद आ रहा है? तुमने कहा था कि बतासी के बाबू को दिखाओगी। नहीं याद आ रहा है?"

मौसी ने अब शायद पहचाना। बोली, "तो तुम्हें मेरा यह पता कैसे मालूम हुआ?"

"कालीघाट की तुम्हारी बासंती से पूछा। उसीने बताया। लेकिन तुम अपना वैसा फला-फूला रोजगार छोड़कर यहां कैसे चली आई?"

मौसी ने उसका जवाब न देकर पूछा, "तुम्हारा भांजा कहां है? मिल गया?"

"नहीं। उसीकी खोज में निकला हूं। मेरे बहनोई मर गए। वही धनी बहनोई। और इधर भांजा लापता। उसका बाप आठ लाख रुपया छोड़ गया है। मैं उसे यही कहने के लिए आया हूं।"

मानदा मौसी अब जरा नर्म पड़ी। बोली, "आठ लाख रुपये?"

प्रकाश ने कहा, "हां।"

सुनते ही मौसी का रूप बिलकुल बदल गया। पूरा चेहरा ही बदल गया। बोली, "तो भैया, तुम इस तरह से बाहर क्यों खड़े हो? अन्दर आओ, अन्दर आकर बैठो न। ऐ महेश, हरामजादा, तू खड़ा-खड़ा देख क्या रहा है? भले आदमी को अन्दर लिवाकर बैठा नहीं सकता?"

प्रकाश की ओर देखकर बोली, "इन लोगों की अक्ल देख रहे हो। तुम्हें बाहर ही खड़ा रखा है। आओ न भैया, आओ। भीतर आओ।"

मौसी ने झट प्रकाश का हाथ पकड़ लिया और खींचने लगी। बोली, "इन्हीं हरामजादों के साथ मुझे निबाहना पड़ता है। जिस ओर भी नजर न रहे, बंटाढार।"

है। हां, यह कहो कि तुम नहीं जाओगी—"

"तुम चले मत जाओ, तुम रहो। कोई चाहे कुछ कहे, मैं तुम्हें कोई कष्ट नहीं होने दूंगी, तुम्हारा कोई अपमान नहीं होने दूंगी। तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, तुम रहो—"

सदानन्द ने कहा, "अब तो मेरा यहां रहना नहीं चल सकता नयनतारा, मुझे जाना ही होगा।"

"क्यों? क्यों जाना ही होगा? मैं तो हूं। अब मैं रहने को कह रही हूं, तो तुम्हें रहने में क्या एतराज़ है?"

सदानन्द ने आवाज़ ऊंची करके कहा, "नहीं-नहीं, हरगिज़ नहीं···"

कहकर उसके चले जाते ही सदर दरवाज़ा आवाज़ करते हुए बंद हो गया। उसी क्षण स्टेशन में किसी ट्रेन की सीटी से लगा, निखिलेश मानो उसे बुला रहा है, "ऐ, हो क्या गया तुम्हें? क्या हो गया? सपना देखा?"

नयनतारा अब मानो वास्तव में लौट आई। वह बिस्तर से उठी।

निखिलेश ने पूछा, "क्या हुआ? कहां जा रही हो?"

नयनतारा ने कहा, "ज़रा उस कमरे में देख आऊं, वह कैसा है? मैं उसे नींद की दवा देना भूल गई थी।"

निखिलेश ने कहा, "तुम पागल हो गई क्या? सुबह जाती···"

नयनतारा ने जवाब नहीं दिया। दरवाज़े की कुंडी खोलकर बाहर चली गई। निखिलेश भी उठकर उसके पीछे-पीछे चला।

लेकिन बगल के कमरे में जाकर जो देखा, उससे नयनतारा के आश्चर्य की सीमा न रही। वह आदमी गया कहां! बिस्तर ज्यों का त्यों पड़ा है! कमरे की और-और चीज़ें भी जहां की तहां पड़ी हैं, सिर्फ सदानन्द नहीं है। नयनतारा को एक बार संदेह-सा हुआ। उसने आंगन के दरवाज़े की ओर देखा। उसका भी हुड़का खुला था। तो क्या वह चला गया? इस अंधेरी और इतनी रात में अस्वस्थ शरीर लिए कहां चला गया?

निखिलेश की ओर देखकर वह बोल उठी, "यह ज़रूर तुम्हारी करतूत है—"

निखिलेश ने कहा, "मेरी क्या करतूत?"

"तुम्हींने उसको घर से भगा दिया। तुम सब कर सकते हो।"

निखिलेश ने कहा, "मैं सदानन्द बाबू को क्यों भगाने लगा?"

नयनतारा ने कहा, "तुम्हारे सिवा और कौन भगाएगा? तुमने ही तो उसे मार डालने का उपाय किया था। मैं तुम्हें खूब पहचान पाई हूं।"

"लेकिन गिरिबाला भी तो जान सकती है। उससे ज़रा पूछ देखो—"

"वह तुम जैसी नीच नहीं है। बूढ़ी है। दिन-भर की थकी-थकाई सो रही है। सब कुछ जानती होती, तो मुझे ज़रूर बताती। यह और किसीका नहीं, बेशक तुम्हारा ही काम है—"

निखिलेश ने कहा, "विश्वास करो, सच कह रहा हूं, मैं कुछ नहीं जानता—"

"तो फिर वह गया कहां, यह बताओ ? तुम क्या कहना चाहते हो, वह अपने-आप चला गया ? इतनी रात कोई घर से बाहर जाता है ? उसपर भूत तो नहीं सवार हुआ। यह जरूर तुम्हारा काम है, तुम्हारा—"

निखिलेश ने कहना चाहा, "तुम नाहक ही मुझपर नाराज हो रही हो नयन ! सुनो—"

"नहीं। मैं तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहती। जाओ, तुम मेरे सामने से चले जाओ—"

और नयनतारा ने धड़ाम से कमरे का दरवाजा बंद कर लिया और सदानन्द के बिस्तर पर तकिए में मुंह गाड़कर वह औंधी पड़ी फूट-फूटकर रोने लगी।

निखिलेश बाहर से पुकारता रहा, "नयन, दरवाजा खोलो, दरवाजा खोलो—"

पत्थर पट्टी को ढूंढ़ निकालने में प्रकाश राय को खास देर नहीं हुई। बरसों से कलकत्ता आता-जाता रहा है, यहां की गली-गली उसे मुखस्थ हो गई है। उस समय उसकी उम्र कम थी। दीदी के पैसों से प्रकाश राय कलकत्ता आया; गांठ की रकम खत्म हुई कि फिर नवाबगंज वापस। ये सब बातें बहुत पहले की हैं। दीदी स्वर्ग सिधारी, नवाबगंज और सुलतानपुर की जायदाद भी बिक-बिका गई। सच पूछिए तो बहनोई के मर जाने के बाद से प्रकाश राय का आसा-भरोसा भी जाता रहा। अब महज सदानन्द का ही भरोसा है।

मगर उसे ख्याल भी नहीं था कि उस सदानन्द की खोज इस तरह से मिलेगी। अथच पहले वह उसे कितना खोजता फिरा। कहां कालीघाट, कहां सियालदह, कहां बड़ा बाजार। जो आदमी घर से भाग निकला, वह तो कलकत्ता से भी बाहर चला जा सकता है। और कलकत्ता से बाहर चला गया होता, तो उसे ढूंढ़ निकालना कठिन था।

मौसी प्रकाश के लिए नाश्ते का इंतजाम कर रही थी। उसने जैसे ही सुना कि सदानन्द को आठ लाख रुपये मिलेंगे, आव-भगत का सिलसिला जरा जोरदार कर दिया। रुपया ऐसी ही चीज है। तुम्हारे पास रुपये हैं, यह जानते ही लोग तुम्हारी खातिर करना शुरू कर देंगे। नहीं तो सुलतानपुर के लोग रातों-रात प्रकाश की इस कदर खातिर क्यों करने लगे ?

बड़ा बाजार के पास आते ही मारे भीड़ के प्रकाश का दम घुटने लगा। उसे लगा, बड़ा बाजार की भीड़ पहले से मानो बहुत बढ़ गई है।

पीपल के एक पेड़ के नीचे सिंदूर से पुती हुई एक मूर्ति की धूप-दीप,

घंटी बजाकर लोग पूजा कर रहे थे। कौन-से देवता है, क्या जाने ! फिर भी प्रकाश राय खड़ा हो गया और उसने हाथ जोड़कर देवता को प्रणाम किया। प्रणाम करने में पैसे थोड़े ही लगते हैं। और देवता यानी देवता ही। सो वह पत्थर का हो चाहे माटी का।

प्रकाश बोला, "हे देवता, तुम ज़रा मेरी ओर निहारो, मुझपर तनिक नेक-नज़र डालो। मेरा भांजा रुपया-पैसा नहीं चाहता, खैर, न चाहे। वह संन्यासी है। बिना पैसों के ही उसका चल जाता है। लेकिन मुझे तो रुपयों का बड़ा हाहाकार है। तुम मेरा वह अभाव मिटा देना बाबा ! मैं तुमसे और कुछ नहीं मांगता बाबा, औरों को तुम चाहे जो भी दो, मैं कुछ नहीं बोलने का। लेकिन मुझको तुम खासी मोटी रकम दो। दे देने से मैं फिर कभी तुम्हें तंग नहीं करूंगा। मेरी घर-गिरस्ती का हाल तो तुम्हें मालूम ही है बाबा—"

इतने में पीछे मोटर का भोंपू बज उठा। सुनते ही प्रकाश राय बगल हो गया। जैसे कम अक्ल लोग हैं ये। गाड़ी से दबा देंगे क्या ? देख रहा है कि भगवान को प्रणाम कर रहा हूं और ठीक उसी समय पीछे से भों ! यह आखिर कौन-सा ज़माना आ गया कि लोग भगवान तक को नहीं मानना चाहते।

मोटर निकल गई तो प्रकाश ने फिर ध्यान लगाना चाहा। बड़ा-बाजार में इसकी भी गुंजाइश नहीं कि मन लगाकर ज़रा भगवान को पुकारें। सदा क्या चुन-बीनकर ही ऐसी बुरी जगह में आया है।

प्रकाश फिर देवता को आठ लाख रुपये का लेखा देने लगा। पूरे आठ लाख का ही हिसाब देने लगा, "मुझे पूरा का पूरा आठ लाख ही नहीं चाहिए, हे भगवान, तुम मुझे उतना लोभ न दिखाओ। लोभ बड़ी बुरी चीज़ है देवता ! कहते हैं, लोभ से पाप, पाप से मृत्यु। मुझे चार लाख ही मिल जाए, तो किसी प्रकाश से मेरा काम चल जाएगा। पहले तो एक लाख से कलकत्ता में एक मकान बनवाऊंगा। बाकी तीन लाख बैंक में फिक्स्ड डिपॉज़िट कर दूंगा। उसीसे हर महीने सूद के तीन हज़ार रुपये आते रहेंगे। उन्हीं तीन हज़ार रुपयों में मैं गुजर-बसर कर लूंगा। बाकी चार लाख सदानन्द ले ले। असल में रुपया तो उसीके बाप का है, मैं तो फाव हूं। और, सदा की पत्नी ? उस दईमारी का नसीब ही खराब है। वह नाहक ही ब्याह कर बैठी। यदि वह ब्याह नहीं करती तो ये सारे रुपये उसीके होते। उसने ब्याह किया, खैर, अच्छा ही किया। मेरा ही भला हुआ। तुम सिर्फ इतना ख्याल रखना देवता, जिसमें आधा रुपया मुझको मिले।"

आठ लाख का आधा चार लाख। प्रकाश राय फिर हिसाब लगाने लगा। यह हिसाब उसने बहुत बार किया है। जबसे उसके जीजाजी मरे हैं, तब से वह हिसाब करता ही आया है।

उसकी बीबी कहती, "काहे को बार-बार हिसाब कर रहे हो ? तुम्हें रुपया देगा ? ठिठुआ देगा, खाक देगा—"

प्रकाश कहता, "तुम चुप तो रहो। तुम औरत हो, औरत ही की तरह रहो। हर बात में टांग अड़ाने क्यों आ जाती हो ?"

बीवी कहती, "तमाम जिन्दगी तो तुम रुपये के लिए सबके पांवों तेल लगाते आए, आखिर कितने रुपयों के दर्शन हुए, सुनूं ज़रा ?"

प्रकाश कहता, "अजी, अबकी देखो क्या होता है ! अबकी बैठी-बैठी देखती रहो, बस, सिर्फ देखती रहो । जब कलकत्ता में इमारत खड़ी कर दूंगा तब कहना..."

"तुम क्या सोचते हो, तुम्हारा भांजा तुम्हें रुपया देगा ?"

"देगा नहीं तो इतना रुपया वह करेगा क्या ? अपने भांजे को मैं पहचानता हूं कि तुम मुझे सिखाओगी ? यह मालूम है, रुपया उसके लिए हाथ का मैल है ?"

बीवी कहती, "वही रुपया किसी दिन तुम्हें दर-दर की खाक छनवाएगा । मैं इतने दिनों से तुम्हारा घर कर रही हूं, क्या कहना चाहते हो कि तुम्हें पहचानती नहीं हूं ?"

बिगड़कर प्रकाश फिर कुछ नहीं बोलता । कहता, "औरतों से बात करना ही गलती है । इसीलिए तो औरतों से मैं बात नहीं करता..."

कहता जरूर था कि मैं औरत से बात नहीं करता, पर एक ही मिनट में फिर बात भी करने लगता । कहता, "तुम तो बस मुझपर नाराज होना ही जानती हो। मगर रुपया क्या मैं अपने लिए चाहता हूं ? अपने लिए रुपया चाहे मेरी बला । रुपया तो मुझे तुम लोगों के लिए ही चाहिए । सो रुपये से अगर तुमको इतना वैराग है, तो आइंदा मेरे सामने रुपये का नाम न लेना—"

बीवी भी बिगड़ जाती । कहती, "रुपया मैं तुमसे नहीं मांगू तो किससे मांगू क्या चाहते हो, मैं रुपया कमाने के लिए जाऊं ? अगर वही कहो तो इस उम में वह भी कर सकती हूं ।"

प्रकाश राय खा रहा था । बीवी की बात उससे खाया नहीं गया । था को एक लात लगाई और उठ पड़ा । भात-दाल-तरकारी—सब फर्श पर छि छितराकर एक-सी हो गई ।

उसीपर से होते हुए वह कुंए पर गया । हाथ-मुंह धोया और ब बैठके में गया—धत्तेरे रुपये की ऐसी की तैसी ।

बैठक में मुसाहब लोग उसके इंतजार में बैठे ही होते । प्रकाश जाकर जाता । फूफाजी के हुक्के पर चिलम चढ़ा ही होता । वह भुड़क-भुड़क पीने लगता ।

अश्विनी भट्टाचार्य पूछता, "सेवा हो चुकी राय बाबू ?"

प्रकाश कहता, "हां, हो चुकी ।"

फिर ज़रा रुककर धुंआ छोड़ते हुए कहता, "सेवा हुई तो क्या, म में क्या शान्ति है ?"

सभी उद्विग्न हो उठते, "क्यों, मन में शान्ति क्यों नहीं है राय बा

प्रकाश कहता, "अजी, यह रुपया। यह रुपया जो क्या बुरी बला होती है, लोग क्या जानोगे? तुम्हें रुपया हो जाए, तो समझोगे कि यह कैसी खतर- चीज़ है। उफ्, जीजाजी मेरा क्या सर्वनाश जो कर गए—"

"चौधरी जी की कह रहे हैं? वह आपका क्या सर्वनाश कर गए?"

"नहीं कर गए? अजी, यह लाखों-लाख रुपया भला मेरे नसीब को ा? अभी-अभी तो इसी बात पर बीवी से झमेला हो रहा था। पहले मुझे ा नहीं था, तो मज़े में था। खाता था, पीता था, जी भर सोता था। ा हो जाने के बाद से नींद ही नहीं आती है जी, बिस्तर पर केवल करवटें लता रहता हूं। इसीसे मेरी बहू कह रही थी, यह अपनी कैसी तबाही हुई। से बेहतर है, रुपये तुम लो ही नहीं, गांव के लोगों को बांट दो।"

"बहू जी ऐसा कह रही थी? तो वही कीजिए न, हम लोगों को बांट जेए, हम लोग ज़रा रुपये का मुंह देखें।"

प्रकाश कहता, "खबरदार, रुपये का नाम भी ज़बान पर मत लाओ। ा बुरा हाल हो जाएगा तुम लोगों का—"

भीम विश्वास कहता, "हो बुरा हाल। जिस दुर्दशा से दिन बिता रहे हैं , उससे और बुरा क्या हो सकता है, हम यही देखना चाहते हैं।"

प्रकाश ने कहा, "अजी, मैंने भी तो बहू से यही कहा। कहा, 'इतनी झट मुझसे झेलते नहीं बनता। रुपये सबको बांट देता हूं—' "

"यह सुनकर बहू जी ने क्या कहा?"

प्रकाश कहता, "बहू ने कहा, 'तुम सब जान-सुनकर भले आदमियों गत करोगे? हम अपने जो भोग रहे हैं, भोग रहे हैं, नाहक ही औरों को ा बला का शिकार क्यों बनाना?' जीजाजी की हालत तो मैं अपनी आंखों ा चुका हूं न। इतने-इतने रुपये एकबारगी जो हाथ आ गए, सो वह कैसे हो गए। तब से होंठों की हंसी गायब हो गई, पेट की भूख जाती रही, खों में नींद नदारद। जो आदमी बुल-बुलाकर मुझसे बात किया करता था। त-अन्त में वही आदमी मुझे देखकर चिढ़ जाता था।"

"अच्छा, ऐसा क्यों होता था राय बाबू?"

अश्विनी कहता, "सो जो भी हो, हो। पहले हमें रुपया तो हो, उसके बाद होना होगा सो होगा। रुपया तो हो जाए, फिर तो हम आंख-कान बंद करके ा भी बीतेगा, सब सहेंगे। आप हमें कुछ-कुछ दीजिए। रुपया हो जाए तो बिटिया की शादी कर दूं—"

भीम विश्वास ने कहा, "मैं भी एक जोड़ा बैल खरीद लूं, पिछले महीने रे दोनों बैल चोरी चले गए—"

आशु चक्रवर्ती ने कहा, "हां-हां, मैं भी अपने फूस के छप्पर को टिन का रा लूं…"

प्रकाश राय कहता, "खैर, रुपया तो माना कि मैंने तुम सबको दो-पांच ज़ार करके दे दिया, लेकिन बाद में मुझे दोष मत देना, कहे देता हूं—"

"जी, आपको क्यों दोष दूंगा। हम सबके नसीब में जो लिखा है, उसे

कौन मेट सकता है ?"

प्रकाश कहता, "तो ठीक है, दूंगा। अश्विनी, तुम्हें कितना चाहिए ?"

अश्विनी कहता, "जी मुझे दस हजार दीजिए, तो मेरा बड़ा उपकार हो···"

प्रकाश कहता, "वही सही। तुम्हें दस ही हजार दूंगा।"

फिर भीम की तरफ देखकर पूछता, "तुम्हें कितना चाहिए ?"

भीम विश्वास कहता, "जी, मुझको आप जो दे देंगे, वही लूंगा। मेरे लिए तो जो एक रुपया है, वही एक हजार है।"

प्रकाश कहता, "ठीक है। तुम्हें भी दस हजार ही दूंगा। जितना हलका हो सकूं, मेरे लिए तो उतना ही अच्छा है।"

अश्विनी पूछता, "कब दीजिएगा ?"

प्रकाश कहता, "रुपये तो मैं अभी ही दे दे सकता हूं। मगर पहले मेरा भांजा आ जाए ? उनके आए बिना बांट-बखरा कैसे कर लूं ?"

"मगर आपका भांजा अगर नहीं आए, तो ?"

"नहीं आए ? जैसे भी हो, उसे पकड़कर लाना ही होगा। उसे लाए बिना छोड़ कैसे सकता हूं, वह नहीं आएगा, तो सरकार सारा रुपया जब्त कर लेगी। उसे यहां पकड़कर लाऊंगा, फिर उसे सब सौंपकर तब कहीं मुझे छुटकारा मिलेगा।"

यह सुनकर सबका मुंह सूख जाता। फिर तो रुपया मिला। चौधरी जी का बेटा यहां आया कि सब किया-कराया चौपट हो जाएगा। आश्चर्य है। इतने-इतने रुपये दूसरे के हाथ लग जाएंगे ? फिर क्या हम सबको कोई पहचानेगा ?

सब जब वहां से उठकर जाने लगते, तो उनका चेहरा गंभीर हो जाता। फिर तो अश्विनी भट्टाचार्य की लड़की का ब्याह हो गया। भीम विश्वास ने बैल खरीद लिए और आशु चक्रवर्ती का छप्पर टिन का हो गया। भगवान के जी में क्या है, भगवान ही जाने !

प्रकाश रास्ते पर खड़ा-खड़ा देवता को अपनी मनोकामना मन-ही-मन जता ही रहा था। कह रहा था, "प्रभो, ज़ुबान खोलकर तुमसे कुछ कह नहीं पा रहा हूं, आस-पास लोग खड़े हैं। हाट में क्या मन की बात खोलकर कही जा सकती है ? तुम्हीं बताओ न। लेकिन लोग तो कहते हैं, तुम अंतर्यामी, हो, तुमसे कुछ कहना बेकार है। तुम तो सब जानते हो, सभी समझते हो—"

हठात् एक सांड के करीब आते ही प्रकाश चौंका। चौंककर खिसककर खड़ा हो गया। जरा ही देर में वह उसे सींग से भुरता बना देता। बोला, "दुर्-दुर्, हट जा—"

सबने हट-हट किया। आखिर शिवजी का वाहन वहां से चला गया। प्रकाश ने हाथ जोड़कर फिर ध्यान लगाने की कोशिश की। कहने लगा, "देख लो प्रभु, अच्छे काम में विघ्न कितना है ! देख लिया न ? जरा देर पहले एक मोटर दबा देने को थी, अब एक सांड आ गया। जी लगाकर तुम्हें स्मरण

करूं, इसका भी उपाय नहीं। खैर, फिज़ूल की बात रहे। काम की बात ही पहले कर लूं। बड़े कष्ट से सदा का पता पाया है प्रभु! कालीघाट में मानदा मौसी की बस्ती से लेकर बहू बाजार के बड़े बाबू के घर तक गया। अब पत्थर पट्टी की मारवाड़ी धर्मशाला जा रहा हूं। वहां जिसमें सदा मिल जाए। देखना, सदा को जिसमें सुमति हो और वह रुपया मुझको दे दे। सदा के बाप का वह आठ लाख रुपया मिल जाए तो मेरा बड़ा उपकार हो प्रभु···मुझे अरसे से बड़ा अरमान है कि मैं कलकत्ता में एक मकान बनवाऊं, असली व्हिस्की पिऊं, देशी ठर्रा पीते-पीते मेरी जीभ में जंग लग गई है।"

"राजा बाबू, राजा बाबू!"

एक भीड़ का शोर-सा हुआ। प्रकाश राय फिर हटकर एक किनारे हो गया। पचासेक भिखमंगों ने एक आदमी को घेर लिया था। किसको घेर रक्खा था, यह दिखाई नहीं पड़ रहा था। लेकिन गोल घेरे में सबने उसे घेर लिया था और चिल्ला रहे थे, "राजा बाबू, एक पैसा दो, एक पैसा···"

वह आदमी शायद पैसा दे नहीं रहा था। कह रहा था, "मेरे पास पैसा नहीं है—"

मगर उसकी कोई सुन नहीं रहा था। सब बस कहते ही जा रहे थे, "राजा बाबू, एक पैसा—"

यह बड़ा बाजार भी अजीब जगह है। पैसे की आमद-रफ्त दो सौ साल पहले इसी बड़ा बाज़ार से शुरू हुई। पैसा से ही बड़ा बाज़ार की नींव पड़ी और पैसे में ही बड़ा बाजार का अन्त है। जब दुनिया में पैसे का तमाशा नहीं रहेगा तो यह बड़ा बाजार भी तबाह हो जाएगा। उस समय और सब कुछ रहेगा, यह बड़ा बाजार नहीं रहेगा। इस बड़ा बाजार में आने से ही पता चलेगा, पैसा किसे कहते हैं, पैसे की मांग कितनी है! बड़ा बाजार पहुंचने से ही पता चलता है कि संसार में सब कुछ मिथ्या है सत्य एक ही चीज है, वह है पैसा। पैसे की बदौलत ही बड़ा बाजार है और बड़ा बाजार की बदौलत ही पैसा है। यहां सिर्फ बड़े लोगों की ही भीड़ नहीं है, भिखमंगों की भी भीड़ है। यहां चूंकि पैसा है, इसलिए जैसे पैसा वाले आते हैं, वैसे ही वे लोग भी आते हैं, जिन्हें पैसा नहीं है।

यह दृश्य प्रकाश राय को बड़ा अच्छा लगा। कहां, उसे तो कोई पैसे के लिए नहीं तंग करता। उसी आदमी को सब क्यों पकड़ रहे हैं? शायद सबको मालूम है कि उस आदमी के पास पैसा है। धनी आदमी है शायद।

धनी लोग प्रकाश राय को देखने में बड़े अच्छे लगते। पैसा वालों के आस-पास रहने में भी उसे बड़ी खुशी होती।

भीड़ हटाकर प्रकाश ने उस आदमी की शक्ल जो देखी, सो अवाक् रह गया। सदानन्द है न। ठीक सदानन्द जैसा। लेकिन बड़ा दुबला हो गया है।

भिखमंगों का दल—औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे—चिल्ला ही रहे थे, "राजा बाबू, एक पैसा—"

सदानन्द का चेहरा खूब गम्भीर-सा। वह हाथ हिलाकर कह रहा था,

"आज मेरे पास फूटी पाई भी नहीं है भाई, फिर कभी दूंगा, आज मेरा पिंड छोड़ दो—"

मगर यह सब नाछोड़ बंदा। अजीब एक खींचातानी।

"अरे सदा, ऐ—"

उस शोरगुल में सदा के कानों में वह आवाज नहीं पहुंची। वह भिखमंगों से पिंड छुड़ाने की जी-जान कोशिश कर रहा था। बार-बार कह रहा था, "अभी मेरी जान बख्शो भाई, मैं अभी खाली हाथ हूं, फिर कभी दूंगा।"

भीड़ को हटाते हुए प्रकाश बिलकुल सदा के पास जा पहुंचा, "ऐ सदा, कहां जा रहा है?"

अब मानो सदा ने सुना। मुंह घुमाकर देखा। प्रकाश मामा को पहचाना। बोला, "प्रकाश मामा? तुम?"

प्रकाश ने कहा, "तू यहां है? और मैं इतने दिनों से तुझे तमाम ढूंढ़ता फिर रहा हूं। महेश ने मुझे बताया, तू कहीं धर्मशाला में रहता है···"

"महेश? उसको तुमने कैसे पहचाना?"

"वहीं से तो आ रहा हूं मैं। तुझे ढूंढ़ने के लिए मैं कालीघाट गया था—मानदा मौसी की बस्ती में। उसने एक कप्तान को पकड़ा और अब पुलिस के बड़े बाबू को चौपट करने पर पड़ी हुई है, समझा। उस कलमुंही को तो सदा रुपये की हाय-हाय रहती है, तुझे मालूम ही है?"

सदानन्द ने कहा, "मैं वह सब कुछ नहीं जानता।"

प्रकाश मामा ने कहा, "तू नहीं जानता है, कह क्या रहा है? मौसी ने तो कहा, तू उसे पहचानता है। और मौसी भी तुझे खूब पहचानती है।"

सदानन्द ने कहा, "उसने गलत समझा है—"

"भला मौसी गलती करने वाली है कि गलत समझेगी? उसने तो यहां तक कहा है कि उसने तेरी चरण-पूजा की थी?"

चरण-पूजा। अब उसे उस बार की वह घटना याद आ गई—कालीघाट के रास्ते से ले जाकर चरण-पूजा की थी।

प्रकाश मामा ने फिर कहा, "मैं तो मौसी की बात समझ नहीं सका। वह तो झूठ का जहाज ही है। सच ही तो, वह तेरी चरण-पूजा क्यों करने लगी और तू ही उससे चरण-पूजा क्यों कराने लगा? सच ही तो।"

सदानन्द ने कहा, "हां-हां मामा, उसने मेरी चरण-पूजा की है—"

"ऐं! मौसी ने तेरी चरण-पूजा की है? इतने लोगों के होते उसने तेरी चरण-पूजा क्यों की? किस इरादे से?"

सदानन्द ने कहा, "सपना देखा था।"

"सपना देखा था? मतलब?"

"सपना देखा था कि जगते ही जिस ब्राह्मण पर सबसे पहले नजर पड़े, उसकी चरण-पूजा करने से कमर का दर्द अच्छा हो जाएगा।"

प्रकाश मामा ठठाकर हंस पड़ा। बोला, "वह दईमारी तो कुछ कम मतलबी नहीं है। फिर, फिर क्या हुआ?"

फ़र क्या ! अचानक बड़ा बाबू आ गया। सब बंटाढार हो गया।"
ड़ा बाबू ? पुलिस का बड़ा बाबू ? तू उसीकी रखैल के यहां गय

ानन्द ने कहा, "हां।"
रे, मौसी ने तो उसी बड़े बाबू पर चंगुल मारा है। बाप के मरने वे
बाबू अपनी रखैल को भी तो वहीं ले गया है। मैं तो जाकर सब देख
अब मौसी को बहुत रुपये चाहिए। मेरे पास रुपये की गंध मिली कि
झे पकड़ा। मैं भाग निकला। किन्तु उसके पहले ही महेश ने तुम्हार
झे बता दिया था। खैर, तू है कहां ? किस धर्मशाला में ? अच्छा ह
झसे रास्ते में भेंट हो गई।"
दानन्द को उन दिनों की याद है। एकाएक प्रकाश मामा से रास्ते में भेंट
र्मशाला जाना। आदमी का जीवन सचमुच ही विचित्र है। सदानन्द ने
तरह से अपना जीवन बिताना चाहा था और अन्त तक उसका जीवन
ता ! और रुपये के लिए प्रकाश मामा भी उसे किस तरह से खोजत
हा था !
काश मामा पूछ बैठा, "तेरा चेहरा कैसा हो गया है रे ? बीमार-बीमार
?"
दानन्द ने कहा, "हां।"
हत पर ध्यान नहीं देने से सेहत तो खराब होगी ही। आखिर सेहत क
सूर ? लेकिन तू इतनी तकलीफ क्यों उठा रहा है, यह तो बता ? तुझे
इतना गुस्सा है ?"
दानन्द ने कोई जवाब नहीं दिया।
हां, तुझसे एक बात नहीं कही। तूने शायद सुनी भी नहीं है। दीदी और
ी, सभी चल बसे, जानता है ? दीदी अवश्य पहले ही मर चुकी थी।"
दानन्द ने कहा, "यह मैंने महेश से पहले ही सुना था..."
कसम, तू भी गजब का लड़का है। अपनी मां के मरने खबर पाकर जब
बाबगंज गया ही तो फिर वहां दो दिन रहा नहीं क्यों ? मिला तक
"
दानन्द ने कहा, "गया था। बाबूजी से जो व्यवहार मिला उसके बाद वह
ी इच्छा नहीं हुई।"
तेरे बाप ने बुरा व्यवहार किया, इसकी तुझे ठेस लगी। और तेरी
ने सास-ससुर से कैसा व्यवहार किया, सो सुना ? उस समय मैं तेरी खोज
लकत्ता की खाक छानता फिर रहा था, इसलिए अपनी आंखों से नहीं
का। तू सुनता तो अपनी पत्नी पर तुझे भी गुस्सा होता—"
दानन्द ने कहा, "मुझे मालूम है—"
काश मामा सुनकर दंग रह गया, "अरे, तू सब जानता है ? कैसे जाना ?
तुझसे कहा ?"
नानीजी ने।"

"नानीजी ? तेरी नानीजी कौन है ?"

"बिहारी पाल की बहू । मैं उस रात उन्हीं लोगों के यहाँ तो था।"

प्रकाश ने कहा, "असल में दोष तेरी पत्नी का ही था। समझा ? मैंने उसका रूप देखकर तुझसे ब्याह कराया था, लेकिन मन से वह इतनी छिछोरी है, यह कौन जानता था ! पता है, इस बीच तेरी पत्नी और भी एक कांड किए बैठी है। यहां आने से पहले मैं तेरी ससुराल, कृष्णनगर गया था। वहां जो सुना, अवाक् रह गया। तेरी पत्नी ने दुबारा ब्याह किया है। सुना, अपने नये पति के साथ वह नैहाटी में रह रही है—"

सदानन्द ने इसपर कुछ भी नहीं कहा।

प्रकाश मामा ने कहा, "तू कुछ बोल नहीं रहा है ?"

"क्या बोलूं मैं !"

प्रकाश मामा ने कहा, "सो तो ठीक ही है। तू बोलेगा भी क्या ! तेरी पत्नी यदि ब्याह करे तो इसमें तेरे बोलने का है भी क्या ! खैर, भाड़ में जाए ! तू अपना जी छोटा मत कर। तू भी अपना ब्याह कर ले, समझा ? तुझे चिन्ता ही किस बात की है। मैं तभी समझता था, स्त्रियों के इतना रूप अच्छा नहीं। सुन्दर स्त्रियों का जीवन कभी सुख का नहीं होता, यह मैं सदा से देखता आया हूं।"

उसके बाद एकाएक मानो याद आया। बोला, "क्यों रे, और कितनी दूर तेरी धर्मशाला और कितनी दूर है ?"

सदानन्द ने कहा, "बस, आ ही पहुंचे—"

प्रकाश मामा ने कहा, "उफ्, मौसी के चंगुल से बच निकला, यही खैर है।"

"क्यों ?"

"क्यों ? ज्यों ही उसने सुना कि तुझे रुपये मिल रहे हैं, बस, उसने मेरी खातिरदारी शुरू कर दी।"

सदानन्द समझ नहीं सका। बोला, "रुपये ? मुझे रुपये कहां से मिल रहे हैं ?"

"मिल रहे हैं। वही कहने के लिए तो तेरे पास आना पड़ा है रे ! जीजाजी अपने पीछे तेरे लिए आठ लाख रुपये छोड़ गए हैं। वे सारे रुपये तो तेरे ही हैं। जीजाजी का तू ही तो इकलौता बेटा है। तू नहीं पाएगा तो यह रुपया और कौन पाएगा ? तू नहीं होता, तो यह रकम तेरी पत्नी को मिलती। लेकिन तेरी पत्नी ने तो फिर से शादी कर ली। यह अच्छा ही हुआ। अब उन सारे रुपयों का अकेले तू ही मालिक है। मैंने बैंक से पूछा, वकील से राय ली। वकील के कहने से ही मैं तेरे पास आया हूं। अब तेरी जैसी मर्जी कर।"

सदानन्द ने कहा, "पिताजी का रुपया मैं नहीं लूंगा।"

प्रकाश ने कहा, "क्यों भला ? माना कि तेरे पिता ने दोष किया है, पर तेरे पिता के रुपयों ने क्या दोष किया ?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं, वह रुपया मैं नहीं लूंगा—"

"क्यों नहीं लेगा, यह तो बताएगा ? वह रुपया तो तेरे हक का रुपया है। तू नहीं लेगा, तो सरकार ले लेगी। खामखा सरकार को रुपया देने से तुझे

क्या लाभ ? सरकार तो चोर है। चोर को खिलाकर तेरी कौन-सी भलाई होगी, बता ? तू अगर खुद नहीं लेना चाहता है, तो मुझको दे दे। मैं निहायत गरीब आदमी हूं। बाल-बच्चे नाबालिग हैं। इस उमर में कुछ रुपये हों तो मैं आराम से खा-पी सकूंगा। जो कुछ दिन जिऊं, आराम से सो सकूं। अभी खा-पीकर, सोकर भी मुझे सुख नहीं है। रुपये मिल जाएं तो बुढ़ापे में चिन्ता न रहे। जानता है, दुनिया में रुपया ही असली चीज है रे, रुपया कलेजे का बल है।

धर्मशाला तक आ पहुंचे थे।

खबर मिलते ही पांडे जी दौड़ता हुआ आया। सदानन्द को देखकर उसने हलचल ही मचा दी। जाने कब गया था सदानन्द, उसे तब से कोई खबर ही नहीं मिली। सबने सदानन्द की खोज की। कितने लोग जो पूछने आए, ठिकाना नहीं।

"आपकी तंदुरुस्ती कैसी हो गई बाबूजी ?"

सदानन्द ने इस बात का जवाब न देकर पूछा, "पांडे जी, आपके पास कुछ रुपये हैं ?"

"रुपये ? रुपये क्या करेंगे ? कितने रुपये ?"

"दो-चार, पांच-दस, जो भी हो, दीजिए न—"

पांडे जी ने पूछा, "फिर शायद किसीने मांगा है ?"

प्रकाश मामा अभी तक सुन रहा था। बोला, "रुपये तो मेरे पास हैं। कितने रुपयों की जरूरत है तुझे, मुझे बता न ?"

सदानन्द ने कहा, "तुम दे सकोगे ? तो दो। वे मंगते किस तरह से मांग रहे थे, मैं दे नहीं सका, तब से जी कैसा तो कर रहा है। तुम्हारे रुपये मैं लौटा दूंगा—"

जो आदमी आठ लाख रुपये का मालिक होने जा रहा है, उसे रुपया देने में प्रकाश मामा को कोई खतरा नहीं। और फिर जरा देर के बाद ही तो उसे सदानन्द के आगे हाथ फैलना होगा। सुतरां सदानन्द को रुपया देने में कोई आपत्ति नहीं। जेब से कई रुपये निकालकर देते ही सदानन्द उन्हें लेकर निकल पड़ा—

पांडे जी ने पुकारकर पूछा, "फिर कहां चले बाबूजी ?"

"अभी आता हूं पांडे जी, तुरन्त—"

सदानन्द चला गया।

पांडे जी ने प्रकाश से पूछा, "आप सदानन्द बाबू के कौन होते हैं ?"

प्रकाश ने कहा, "वह मेरा भांजा है, मैं उसका मामा हूं। मगर वह इस धर्मशाला में कैसे आ गया ?"

पांडे जी ने कहा, "बाबूजी पागल हैं बाबू ! मैं ही बुलाकर उन्हें यहां ले आया हूं। उन्हें तो रहने की कोई जगह नहीं थी। मकान मालिक ने उन्हें घर से निकाल दिया था—"

लेकिन इतने दिनों के बाद आकर वह रुपया लेकर कहां चला गया, पांडे जी समझ नहीं सका।

किस वंश का लड़का है यह? आपने उसे यहां रहने तो दिया, पर कभी उसके बारे में खोज-खबर की?"

पांडे जी ने कहा, "जी नहीं—"

प्रकाश ने कहा, "नहीं मालूम है, तो सुन लीजिए। तुम्हारे ये बाबूजी अभी आठ लाख रुपयों के मालिक हैं, समझे?"

"आठ लाख रुपया!"

"हां, आठ लाख रुपया। वह चाहे, तो तुम्हारे मालिक की इस धर्मशाला को भी खरीद ले सकता है। आपको तनख्वाह देकर नौकर रख सकता है। मगर आपने देखा न, बाबूजी की जेब में अभी फूटी पाई भी नहीं है, मुझसे रुपया मांग ले गया···"

पांडे जी ने पूछा, "मगर वह रुपया लेकर गए कहां?"

"और कहां, सड़क पर। वहां कुछ मंगतों ने उसको घेरा था, उन्हींको भीख देने के लिए गया। मैं तो आपके बाबूजी को घर ले जाने के लिए आया हूं। जिसके इतने रुपये हैं, इतनी जमींदारी है, वह आपकी धर्मशाला में क्यों पड़ा रहेगा। अच्छा, बहरहाल यहां उसका चलता कैसे है? उसे खाना कौन देता है?"

पांडे जी ने कहा, "लड़का पढ़ाने का एक काम ठीक कर दिया था, उसी-से चलता है।"

"उन्हीं रुपयों से चल जाता है?"

पांडे जी ने कहा, "चलेगा कैसे? रास्ते से आते हुए जो भी मांगता है, उसीको दे देते हैं। जाड़ों में एक ऊनी चादर ले दी थी, वह ऊनी चादर भी जाने कहां की किस कालीगंज की बहू को दे दी···"

"कालीगंज की बहू?"

"जी। एक बुढ़िया है। वह गटालों से गोबर बीनकर दीवालों पर गोयठे पाथती फिरती है—उसीको बाबूजी कालीगंज की बहू कहते है।"

आश्चर्य है। प्रकाश मामा सुनकर और भी हैरान हो गया। बोला, "इसीलिए तुम्हारे बाबूजी इतने दुबले हो गए हैं।"

पांडे जी ने कहा, "दुबले तो होंगे ही। वह तो कुछ खाते नहीं है। कई महीने पहले चले गए थे। अभी तो आए है। देख रहा हू, अब और दुबले हो गए है।"

प्रकाश ने पूछा, "इतने दिन कहा गए थे, यह मालूम है?"

"क्या पता कहा गए थे। दो दिन के लिए गांव जा रहा हू, यह कहकर गए थ। आज अभी आपके साथ लौट रहे है।"

उधर बड़ा बाजार के रास्ते के उस देवता के सामने उस समय भी धूप के धुएं के बादल से जोर-शोर से पूजा चल रही थी। दर्शनार्थियों और भक्तों की भीड़ से यह जगह और भी सरगर्म हो गई थी। पतली गली। पैसे के आमद-रफ्त की भीड़ जितनी, उससे ज्यादा भीड़ पैसा मांगने वालों की। जैसे सारी

दुनिया के लोग पैसा मांगने के लिए यहीं आ इकट्ठे हुए हों। इसीलिए आ जुटे हैं कारवारी लोग, आ जुटे हैं वेकार लोग; इसीलिए आ जुटे हैं पुजारी, आ जुटे हैं भिखारी। दुनिया-भर के सारे पैसे जैसे वड़ा वाज़ार में ही औंधे मुंह गिरे हैं।

देवता के सामने लाल कपड़े पर पैसे का पहाड़ लगा था।

वहां जाकर सदानन्द ने एक आदमी से कहा, "मेरा यह दस रुपये का नोट भुना तो दो भाई—"

वह आदमी सदानन्द को पहचानता था। जानता था कि सव इसे राजा वावू कहते हैं। वह वोला, "आप फिर उन्हें पैसा देंगे राजा वावू ? क्यों देते हैं ?"

सदानन्द ने कहा, "हम लोग न दें, तो उन्हें कौन देगा, कहो ? उन वेचारों को भी तो खाने-पहनने की ज़रूरत पड़ती है—"

"नहीं राजा वावू, उन पैसों को वे लोग लगाते हैं। सूदखोर हैं वे। चोरी वटमारी करते हैं, गांजा-शराव पीते हैं···"

सदानन्द ने कहा, "सो पिए। उस समय मांग रहे थे, मैं दे नहीं पाया। अव दे आऊं—"

नोट तुड़ाकर निकलते ही सवने घेर लिया, "एक पैसा राजा वावू, एक पैसा···"

अभी तक ये कहां थे, पता नहीं। उन्हें सुराग लगा कि सदानन्द पर टूट पड़े। चारों ओर से पैसा-पैसा का शोर उठा। सवकी ज़वान पर एक ही वात—पैसा और पैसा। सदानन्द को लगा, वही कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, फटिक नाई और कालीगंज की वहू हज़ारों रूप में उसके सामने हाथ पसारे खड़े हैं—दो, हमारे सव रुपये वापस कर दो ; युग-युग से तुम्हारे पुरखे हमें चूसते जो रहे, तुम आज उसका प्रायश्चित्त करो।

सदानन्द भी शायद उनके मन की वात को समझ सकता था। वह भी कहता, "तुम लोगों को कुछ कहना नहीं पड़ेगा; तुम लोगों पर मेरे वाप-दादा ने जो ज़ुल्म किया है, उन पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए ही मैं रास्ते पर उतरा हूं। जव तक वह प्रायश्चित्त पूरा नहीं होगा, मैं इसी तरह तुम लोगों को पैसा देता रहूंगा। लो, लो—मेरे पास जो भी है, तुम सव ले लो—"

दस रुपये की रेज़गारी कव तक ठहरती। लमहे में ही ख़त्म हो गई। जेव ख़ाली।

पीछे से प्रकाश मामा का गला सुनाई पड़ा, "क्यों रे, यहां क्यों, क्या कर रहा है? कव से इंतज़ार में वैठा हूं—और तू यहां···"

कहते-कहते प्रकाश मामा सिहर-सा उठा, "अरे, तेरा वदन इतना गरम क्यों है ? वुखार तो नहीं आया ? देखूं—"

"हां, वुख़ार ही तो। चल—"

प्रकाश मामा उसे खींचते हुए धर्मशाला की ओर ले चला।

बहुत दिनों के बाद नयनतारा फिर से आफिस आई। निखिलेश को उसे अकेले आने देने का भरोसा नहीं हुआ। नैहाटी से दोनों साथ ही आए। अजीब होता है स्त्रियों का मन और अजीब होती है उस मन की गति। वे कई महीने मानो आंधी से निकल गए। यहां से तो कौन आकर उन दोनों की बहती जीवन-धारा में एक घुमरी-भंवर डालकर फिर चुपचाप चला गया। शुरू-शुरू में तो नयनतारा निखिलेश से बात ही नहीं करती थी। दिन-भर मुंह फुलाए रहती। और फिर उसी कमरे के बिछावन पर जाकर सो रहती, जहां सदानन्द सोया करता था।

निखिलेश कहता, "तुम वहां क्यों सो रही हो? यहां नहीं सोओगी?"

नयनतारा कोई जवाब नहीं देती। निखिलेश फिर भी बार-बार आग्रह करता। कहता, "मेरी भली नयन, ऐसा नहीं करते। जो बात बीत गई, बीत गई। उसे सोचकर तुम इतनी गमगीन क्यों रहती हो? आदमी से क्या अन्याय नहीं होता? मैं तो मान रहा हूं कि मैंने अन्याय किया है। उठो, चलो, उस कमरे में सोना।"

वह नयनतारा का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे खींचता। नयनतारा हाथ छुड़ा लेती। और करवट बदल लेती। निखिलेश की किसी बात का जवाब नहीं देती। लाचार, निखिलेश अपने कमरे में जाकर सो रहता।

रोज यही हाल। रोज इसी तरह निखिलेश उसे बुलाने आता। समय मिलते ही नयनतारा को समझाने की कोशिश करता, "यों रहने से तो आखिर तुम्हारी तबीयत खराब हो जाएगी। और बीमार पड़ जाओगी तो क्या करोगी, कहो तो? फिर तो मुझे भी आफिस जाना बंद करना होगा। फिर यह घर-गिरस्ती कैसे चलेगी? खिरवाला कह रही थी, तुमने खाना-पीना छोड़ दिया है? सदानन्द बाबू चले गए, तो मैं क्या करूं? यदि तुम कहो, तो मैं नवाबगंज जाकर उनको एक बार देख आ सकता हूं।"

नयनतारा निखिलेश को ठेल देती। कहती, "तुम मेरे सामने से हट जाओ। मैं तुम्हारा मुंह नहीं देखना चाहती—"

उस रोज निखिलेश ने कहा, "अच्छा कल मैं आफिस के बजाय नवाबगंज ही जाऊंगा। मैं तुम्हें वचन देता हूं, जाकर देख आऊंगा, वह कैसे हैं! लो, अब तो हो गया न?"

नयनतारा ने कोई जवाब नहीं दिया।

निखिलेश लेकिन सचमुच ही दूसरे दिन सवेरे की ट्रेन से चला गया। जाते-जाते कह गया, "मैं नवाबगंज जा रहा हूं, समझीं? लौटने में मुझे रात हो जाएगी—"

निखिलेश चला गया। दिन-भर नयनतारा छटपट-सी करती रही। रात दस बजे निखिलेश हंसते हुए लौटा।

नयनतारा वहां की खबर के लिए दिन-भर उन्मुख होकर बैठी थी। असल में निखिलेश नवाबगंज नहीं गया, कहीं नहीं गया। दिन-भर कलकत्ता में ही घूमता रहा। आकर नयनतारा से कहा, "सुनती हो, उनसे भेंट हुई—"

इतने दिनों के बाद नयनतारा ने सहज दृष्टि से निखिलेश की ओर देखा।

निखिलेश ने कहा, "मैं देख आया। सदानन्द बाबू बड़े आराम से हैं। देखा, इन्हीं कुछ दिनों में उनकी सेहत बहुत अच्छी हो गई है।"

नयनतारा के मुंह से फिर भी बोली नहीं निकल रही थी।

निखिलेश कहने लगा, "पहले तो मैं उस घर को पहचान ही नहीं सका। घर की शक्ल ही बिलकुल बदल गई है। लगा, घर के अन्दर कुछ हो रहा है, खूब धूमधाम। पूरियां निकाले जाने की गंध आ रही थी। पहले तो वह मुझे पहचान ही नहीं सके—"

नयनतारा अब बोली, "तुम्हें नहीं पहचान सके ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं। आखिर जब मैंने बताया कि मैं नयनतारा का पति हूं, तो फिर बड़ा आदर-जतन किया। कहा कि खा-पीकर जाइएगा। तुम्हारे बारे में पूछा, नयनतारा कैसी है ?"

नयनतारा को नवाबगंज की और भी खबर सुनने की अकुलाहट होती। लगता, निखिलेश कुछ और कहे। अगर कुछ और कहे। लेकिन अपने से पूछने में संकोच होता। दरअसल, सदानन्द के बारे में कुछ पूछना ही तो अन्याय है। अन्याय ही नहीं, पाप। निखिलेश जब आफिस चला जाता, तो समय कटना कठिन हो जाता। घर के कितने ही काम पड़े रहते। गिरिबाला कभी-कभी आकर पूछती, "दीदीजी, खाना नहीं खा लेंगी ? वेला बहुत हो चुकी।"

मगर ऐसा कि न ही खाए तो अच्छा। खाना ही नहीं, कोई भी काम न करे तो वह जी जाए, कुछ ऐसा भाव। पहले घर पर कितनी माया थी उसे। यह खाट, आलमारी, बर्तन—सब कुछ नयनतारा ने पसन्द करके खरीदा था। निखिलेश के साथ वह दिनों कलकत्ता की दूकानों का चक्कर काटती रही। जल्दी उसे कुछ पसन्द ही नहीं आता। उसकी डांवाडोल पसन्द से दुकान वाले भी खीज गए। निखिलेश ने भी कहा, "इतना भी चुना जाता है ? जैसा भी हो, खरीद लो—"

नयनतारा झुंझला उठती, "तुम बोलो मत ! गिरस्ती के मामले में तुम क्यों माथा पच्ची करते हो ? जंचेगी नहीं, तो मैं खरीदूंगी क्यों ? अपने रुपये इतने सस्ते हैं ? दूकानदार तो अपना सामान निकालना ही चाहते हैं, मगर मैं उनकी क्यों मानूं ?"

नयनतारा को उन दिनों की बातें भी याद हैं। घर के प्रति निखिलेश को जितना खिंचाव था, उससे दस गुना ज्यादा खिंचाव था नयनतारा को। सच पूछिए, तो नयनतारा ही निखिलेश को तकाजा करती रहती थी। एक पैसा भी फिजूल खर्च करने से वह निखिलेश पर बकझक करती। उस समय निखिलेश कोई नहीं, नयनतारा ही गिरस्ती की वास्तविक मालकिन थी। अब बात बिलकुल उलट गई। अब हर बात के लिए निखिलेश को ही नयनतारा को तकाजा करना पड़ता है। दफ्तर के बाद जो भी पहली ट्रेन मिलती, निखिलेश उसीसे घर चला आता। आते ही सीधे नयनतारा के पास जाकर पूछता, "क्यों, आज खाया है ?"

नयनतारा कहती, "हां।"

निखिलेश पूछता, "तो अब आफिस कब से जाओगी ?"

नयनतारा इसका कोई जवाब नहीं दे सकती। निखिलेश भी जवाब के लिए कुछ तंग नहीं करता। उनकी घर-गिरस्ती पर यह जो धक्का लगा, तब से वह जरा सम्भलकर ही बात करता। पता नहीं, सनक में आकर नयनतारा क्या कर बैठे !

एक दिन निखिलेश ने आकर कहा, "एक खबर है—"

नयनतारा ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा।

निखिलेश ने कहा, "आज सदानन्द बाबू को देखा।"

नयनतारा उत्सुकता को रोक नहीं सकी। बोली, "कहां ?"

"कलकत्ता में। देखा, चेहरे पर फिर खूब रौनक आ गई है। खूब ठाट-बाट। सेहत बहुत अच्छी हो गई है—"

नयनतारा ने पूछा, "तुमसे उन्होंने कुछ पूछा भी ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं। पूछने का मौका कहां था ? उन्होंने तो मुझे देखा नहीं। मैंने ही उन्हींको एक गाड़ी में देखा।"

"गाड़ी ?"

निखिलेश ने कहा, "हां। मोटर गाड़ी। लगा, उन्होंने नई गाड़ी खरीदी है। सरसराती हुई गाड़ी बगल से निकल गई। बगल में उनके कोई महिला बैठी थी।"

"महिला ?"

"हां। देखने में बड़ी रूपवती लगी। मांग में सिंदूर—"

सुनकर नयनतारा कुछ देर अवाक्-सी निखिलेश को देखती रह गई। कुछ बोलने की ताकत भी जैसे नहीं रह गई हो।

उसके चेहरे का भाव देखकर निखिलेश उसके और भी निकट खिसक गया। बोला, "देखो, सबसे बड़ी बात है रुपया। रुपया मिला और सब बिसर गए, और क्या ! मुंह से बड़े-बड़े आदर्शों की बात तो हम सभी करते हैं। मिसाल के तौर पर मेरी ही बात लो न। कभी सदानन्द बाबू की ही तरह मेरे भी तो कितने ऊंचे आदर्श थे। तुम्हें तो सब मालूम है नयन, मैंने तो तुम्हें सब कुछ बताया है। शराब की दूकान पर धरना देने में पुलिस की कितनी लाठियां खाईं। मगर वही मैं तो हूं, अब नौकरी कर रहा हूं। और नौकरी भी खास कोई महत्त्व की नौकरी नहीं। अब क्या मैं ही अपने उन आदर्शों का पल्ला पकड़े रह सका ? अब क्या मैं पहले की तरह खादी पहनता हूं ? अब सिर्फ सस्ते का सवाल, किसी तरह से टिके रहने का प्रश्न। अथच एक समय था, जब ऐसा सोच भी नहीं सकता था।"

बातें निखिलेश बड़े सहज सुर में ही कह गया। मगर वह जान भी न पाया कि वे बातें नयनतारा के मन पर कैसी गहरी, कैसी अमिट छाप छोड़ गईं।

मौका समझकर निखिलेश फिर कहने लगा, "देखो, सदानन्द बाबू के लिए मुझे दुःख नहीं होता था, ऐसी बात नहीं है। बात तो सही है, भलेमानस को

उतना-उतना रुपया है, उतनी अच्छी तन्दुरुस्ती, अपने कुल का एक ही लड़का। कहीं मैं उन जैसा होता और मुझे तुम्हारी जैसी *पत्नी मिली होती, तो मैं भला* घर-संसार छोड़कर वैरागी होता ? मेरी वला वैरागी हो। पुरखे कौन-सा पाप कर गए हैं, इसके लिए दुनिया में कोई अपना दिमाग खराब करता है ? हकीकत तो यह है कि हम सव अपने-अपने लिए ही परेशान हैं। हमारी पैदाइश के पहले यह धरती थी या नहीं, हम इसपर भी कभी नहीं सोचते। इसी तरह हमारे मरने के वाद यह धरती भाड़ में जाएगी कि जहन्नुम में जाएगी, उसके लिए भी हमें सिरदर्द नहीं है। असली वात है सिर्फ मैं। मैं और मैं। मैं यह सोचता हूं, जिस दिन से इस पृथ्वी से मेरा नाता जुड़ा, इस पृथ्वी का जन्म उसी दिन हुआ। और इस पृथ्वी के चारों ओर जो कुछ भी है, वह मेरी ही सुविधा के लिए, मेरे ही सुख के लिए है। जिस दिन मेरी सुख-सुविधाओं में यह धरती आड़े आएगी, मैं उसी दिन उसके खिलाफ तनकर खड़ा हो जाऊंगा। यही तो नियम है।"

सदानन्द वावू ने भी शायद इतने दिनों के वाद अपनी गलती समझी है। इसीलिए अव उन्होंने सीधी राह की शरण ली—"

निखिलेश रोज ही इसी तरह से एकतरफा भाषण दिया करता।

उस दिन सुबह वह वोला, "चलो नयनतारा, आफिस चलो। अव किसके लिए तुम यों मायूस रहा करोगी ? इस दुनिया में कौन किसका है ? मैं भी तुम्हारा कोई नहीं, तुम भी मेरी कोई नहीं। आज अगर मैं अचानक चल बसूं —मर तो जा ही सकता हूं—तो तुम्हारी क्या दशा होगी ? वैसी हालत में तो यह नौकरी ही तुम्हें वचाएगी ? और, नौकरी ? यानी नकद रुपया। इतने दिनों से तो तुम काम पर नहीं गईं, पर तुम्हारी नौकरी गई क्या ? रिटायर करने के दिन तक यह नौकरी ही सिर्फ तुम्हारी अपनी है, वाकी सव कुछ पराया। तुम्हें अगर कोई वचा सकती है, तो सिर्फ यह नौकरी—सदानन्द वावू भी नहीं, मैं भी नहीं, कोई भी नहीं। नौकरी से कोई नाराज होता है भला। चलो, आज मैं तुम्हें तुम्हारे आफिस पहुंचा दूं। चलो, मेरा कहा मानो।"

आश्चर्य है। जिसने इतने दिनों तक उसकी निहोरा-विनती नहीं सुनी, वही एकाएक उस दिन तैयार हो गई। खूव तड़के जगी। नहा-धो लिया। भोजन किया। धुला साड़ी-ब्लाउज पहना, वाल संवारा, मांग में सिंदूर लगाया। सव कर-कराके पैरों में चप्पल डाली और पहले की तरह निखिलेश के साथ निकल पड़ी। सच ही तो, नौकरी ही तो उसका सव कुछ है। साड़ी ब्लाउज-चप्पल पहनकर यह जो वह आफिस जा रही है, दफ्तर में उसके लिए जो एक निश्चित कुर्सी है, यह तो सिर्फ नौकरी की ही वजह से मुमकिन हुआ है। नौकरी नहीं होती तो उसका क्या होता ! नौकरी नहीं होने से तो उसे दिन-भर चार दीवारों के अन्दर कैद ही रहना पड़ता। निखिलेश की तनखाह पर ही निर्भर रहती, तो उसीकी गुलामी करनी पड़ती। उसे इस वात का भी तो अनुभव नहीं हो पाता कि वह स्वाधीन है, उसकी अपनी भी कोई सत्ता है।

नवावगंज के चौधरी-परिवार की *लाड़ली वहू होकर ही* रहती, तो ही

उसे कौन-सा स्वर्ग मिल जाता। सास-ससुर की तावेदारी में घूंघट काढ़े दिन-भर गिरस्ती की घानी में जुतकर पिसना पड़ता और थककर चूर होकर पति के साथ सोया करती, साल-साल बच्चे जनकर ससुर के वंश को बढ़ाती रहती। सैकड़े निन्यानबे स्त्रियों की यही तो विधि-लिपि है। उससे तो यह बेहतर है। सुबह की ट्रेन से आफिस जाकर गप-शप, दो-चार काम करके फिर शाम को घर। इससे अच्छा और क्या हो सकता है। कौन स्त्री इससे ज्यादा पाती है।

नयनतारा समझ ही नहीं सकी कि सारा दिन कैसे निकल गया। फिर वही माला घोष, वही केतकी हाजरा और सबसे ज्यादा अरुणा पाल तथा डिस्पैच सेक्शन के बड़े बाबू रसिकदास चटर्जी के दुःख के किस्से।

आफिस दिन-भर उनकी मुहब्बत की आलोचना से ही गुलजार रहा।

माला घोष आई। केतकी हाजरा भी आई। माला ने कहा, "यकीन मानो नयन-दी, तुम नहीं थीं, हमारे दिन नहीं कटते थे—"

और, गप-शप भी क्या सिर्फ अरुणा-दी की। इस अरसे में इस तरह के कितने शिगूफे जो जमा हुए थे, कोई ठिकाना था। नयनतारा को एक-एक करके सब सुनना पड़ा। किसने सिफन की नई साड़ी खरीदी, किसने नया हार बनवाया, किसीका साल के बुढ़ापे में बच्चा हुआ—नयनतारा को सारा कुछ सुनना पड़ा। सुनकर उसे अच्छा भी लगा। गप्प-गोष्ठी जब और भी जम गई, तो एकाएक होश-सा आया, अपना-अपना काम छोड़कर सब लोग जाने कब उठ चुके हैं। सबको ट्राम बस पकड़ने की उतावली थी। सबको घर जाने की जल्दी थी। अब जैसे-तैसे अपने कोटर में जा पहुंचने से ही मानो सब एक रात के लिए जी जाएं? कल दिन में फिर सब इकट्ठे होंगे।

निखिलेश नीचे के फाटक पर खड़ा था। सीढ़ी से हड़बड़ाते हुए सब उतर रहे थे। उस भीड़ में बीच-बीच में कोई-कोई स्त्री। निखिलेश उन उतने मुखड़ों में नजर दौड़ाकर एक पहचानी हुई शक्ल को खोजने लगा। पहला दिन था। उसे डर-सा लगने लगा। नयनतारा को यहां पहुंचाकर वह अपने आफिस चला गया था। दिन-भर काम में मन नहीं लगा। हर पल सोचता रहा, कब छुट्टी हो, कब पांच बजें।

दीतेश किसी काम से आया हुआ था। बोला, "क्यों भई, आज घर किस वक्त जाओगे?"

निखिलेश ने कहा, "आज तो भाई जरा जल्दी है।"

दीतेश ने कहा, "आजकल तुम्हें इतनी हड़बड़ी क्यों रहती है, यह तो कहो? पहले तो ऐसी हड़बड़ी नहीं रहती थी।"

निखिलेश क्या कहता। बोला, "घर पर सचमुच ही कुछ काम है—"

"क्यों? श्रीमती जी की तबीयत अभी तक ठीक नहीं हुई है?"

"आज वह पहली बार आफिस आई है—"

दीतेश ने अब समझा। वह क्वांरा है, अकेला। उसपर किसीकी कोई जिम्मेदारी नहीं, जवाबदेही नहीं। लापरवाह, बेझंझट का जीवन। जिन्दगी-भर कमाने और गुलछर्रे उड़ाने के पीछे ही रहा। दुनिया में किसे क्या दुःख है,

किसे सुख है—यह सोचने-समझने की कोई वला ही नहीं। जब तक नौकरी है, आराम कर लो। फिर ? फिर की बात फिर देखी जाएगी जनाब ! पहले तो वर्तमान, भविष्य की बात भविष्य ही सोचेगा।

लेकिन ऐसा लापरवाह होने से निखिलेश का तो नहीं चल सकता। उसे तो दस के ऊपर उठना है और दस से ऊपर उठने के लिए जो करना चाहिए वही करना होगा। उसमें लजाने से नहीं चलने का, सकुचाने से नहीं चलने का। जेब कतरने के सिवाय जो भी करना हो, वह उससे हिचकेगा भी नहीं।

"आ गई। इतनी देर हो गई तुम्हें ?"

नयनतारा सरसराती हुई सीढ़ियों से उतरती आ रही थी। सामने आकर बोली, "किसीको ध्यान ही नहीं रहा कि कब पांच बज गए ?"

"निखिलेश ने पूछा, "क्यों ? इतनी गप्प काहे की हो रही थी ?"

"हम लोगों की अरुणा-दी की याद है तुम्हें ? बजट सेक्शन के बड़े बाबू आर० डी० चटर्जी से उसकी शादी हुई।"

"अच्छा। अन्त-अन्त तक आखिर अरुणा-दी ने शादी की ?"

"उसकी बात में सब मशगूल थीं। आफिस में बड़ी हलचल थी। दिन-भर किसीसे काम ही करते नहीं बना।"

नयनतारा एक-एक करके उसे सब सुनाने लगी। निखिलेश को लगा, एक ही दिन में नयनतारा काफी स्वाभाविक हो गई है। अब तक निखिलेश यही स्वाभाविकता लौटाने की कोशिश कर रहा था। नयनतारा उसके बगल-बगल चल रही थी। फुटपाथ पर, रास्ते पर बेतरह भीड़। आफिस से छूटे हुए लोग कैसे घर पहुंचें, इस उतावली में रास्तों पर टूट पड़े थे—

निखिलेश ने कहा, "चलो, किसी तरह से कोई टैक्सी पकड़ें।"

नयनतारा ने आपत्ति की। बोली, "खामखा टैक्सी किसलिए ? उससे तो पैदल जाना ही अच्छा है। सभी तो पैदल ही जा रहे हैं—"

यह वही पहले की नयनतारा। जिस नयनतारा ने फिजूलखर्ची कम करके जमा-पूंजी बढ़ाई—भविष्य की सुख-समृद्धि के लिए जिसने वर्तमान को टाला।

फुटपाथ पर चलते हुए निखिलेश ने कहा, "सुनो, मैं एक कारबार करने की सोच रहा हूं—"

"कारबार ? कारबार करने में तो रुपये लगेंगे। हमारे पास रुपये कहां हैं ?"

निखिलेश ने कहा, "नौकरी से कभी कुछ नहीं होगा। सारी जिन्दगी बस नौकरी ही करनी पड़ेगी। इसीलिए सोच रहा था, आफिस के बाद समय तो बहुत रहता है, वह समय बरबाद न करके कुछ किया जाए। हमारे आफिस के बहुत-से लोग करते हैं—"

"कौन-सा व्यवसाय करोगे ?"

निखिलेश ने कहा, "कुछ सोचा तो नहीं है, सिर्फ भविष्य की सोचकर ही कह रहा हूं। आखिर कुछ दिनों में तो गिरस्ती बड़ी होगी, फिर तो खर्च भी बढ़ेगा। इसलिए अभी से अगर कुछ सोचा नहीं जाएगा, तो मुश्किल होगी। तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

नयनतारा ने कहा, "मैं क्या बताऊं?"

निखिलेश ने कहा, "इसमें तुम अगर मेरा हाथ नहीं बटाओगी, तो मैं अकेला कितना कर सकूंगा? हम-तुम दोनों मिलकर करें, तो काम ज्यादा आगे बढ़ेगा, चाहे जो काम भी हो।"

नयनतारा ने कहा, "पहले तुम तै करो कि कौन-सा व्यवसाय करोगे, जब तो मैं हाथ बटाऊंगी। कोई ऐसा कारबार करो, जिसमें मेहनत कम और मुनाफा ज्यादा हो।"

"यह तो है ही। आगे चलकर यदि मुनाफा ज्यादा होने लगे, तो न हो तो हम दोनों ही नौकरी छोड़ देंगे। मैंने सोचकर देखा है, नौकरी करते रह जाने से अभाव कभी भी दूर नहीं होगा। इतने दिनों तक नौकरी करके तो देख लिया। हमारे सुपरिटेंडेंट हैं भादुड़ी साहब, तीन हजार तनख्वाह पाने के बावजूद हाथ-तोबा नहीं जाती—अक्सर ही उन्हें को-ऑपरेटिव बैंक से कर्ज लेना पड़ता है।"

फुटपाथ के असंख्य लोगों के चलते स्रोत में ये दो जने रोज अपने अदूर भविष्य के लिए इसी तरह दिमाग लगाया करते। एक दिन, दो दिन नहीं, बहुत दिनों से लगाते आए हैं। आज फिर दिमाग लगा रहे थे। बीच में कई महीने नयनतारा कुछ और किस्म की हो गई थी। उसके बाद फिर स्वस्थ-स्वाभाविक हो गई। वह मानो फिर से समझने लगी कि दुनिया में भावुकता की कोई कीमत नहीं।

"यह सब संस्कार है। और जब तक मन के संस्कार को तरह देते रहोगे, तब तक जिन्दगी में कोई तरक्की नहीं होगी। यह सब तो काफी दौलत होने से ही सोहता है। हम मामूली निम्न मध्यवित्त हैं। हमारा मुख्य काम है पैसा कमाना और पैसा जमा करना। दुनिया में मूल है पैसा, इस समझदारी को यदि जी में एक बार गड़ा ले सको तो तुम्हें व्यर्थ की चिन्ता परेशान नहीं कर सकेगी। दया-माया, ममता-सहानुभूति—यह सब इसी हुई किताबों में पढ़ने में अच्छी लगती है। अपनी ससुराल से तो तुमने देखा है, उन्हें कितने रुपये हैं। चूंकि उतने रुपये थे, इसलिए बाबुओं ने आराम से खाया-पिया और दुनिया का लुत्फ उठाया। लेकिन उनके लड़के को दुनिया-दारी नहीं आती थी, इसलिए सब उस तरह से बरबाद हो गया। बरबाद करने में एक पल लगता है, बनाना ही कठिन है। हम लोग अगर जरा सोच-समझ कर चलें, तो हमें भी किसी दिन वैसा ही आराम मिलेगा, हम भी जीवन का उसी तरह से उपभोग कर सकेंगे। पहले तुम यह सोच लो कि तुम भोग चाहती हो कि त्याग चाहती हो। भोग चाहती हो तो उसके लिए अथक परिश्रम करना पड़ेगा। दोनों हाथों रुपया जमा करना होगा, रुपये के प्रति मोह रखना होगा। दुनिया में मंगतों का तो अन्त नहीं है। उनपर रहम करके तुम अगर अपनी मशक्कत की कमाई के पैसे दान करने लगो, सारी पूंजी एक फूंक में उड़ जाएगी। रुपये को प्यार करना होगा, रुपयों पर विश्वास करना होगा, रुपयों की कद्र करनी होगी, अभी तो रुपया भी तुम्हें प्यार,

विश्वास, आदर करेगा। तुम्हारे ससुर [illegible]
करते थे। दुनिया में जो भी धनी हुए हैं, उनमें से किसीने कभी भी फिजूल-खर्ची नहीं की। फिजूलखर्ची कम करो, देख लेना, हमारे पास भी बहुत रुपये होंगे। इसीलिए तो अंग्रेजी में एक कहावत है, 'डोन्ट ट्रस्ट मनी, बट पुट योर मनी इन ट्रस्ट।' रुपया पास में रहने से ही खर्च करने को जी चाहता है। बैंक में रखो, देख लो, रुपया रहेगा।"

रोज़-रोज़, महीनों निखिलेश नयनतारा के कानों ये बातें सुनाया करता। वह ध्यान से सब सुना करती। समझती, समझने की चेष्टा करती। आफिस से लौटते ही आफिस के कपड़े को तह करके रख देती। दूसरे दिन फिर आलमारी से निकालकर उसे पहनती। यह आदत उसकी बहुत दिनों की है। उसने फिर वैसा करना शुरू किया।

उसके बाद वाले दिन भी फिर ठीक वैसा ही। बीच में सदानन्द के चलते उनके घर में कलह शुरू हुआ था, वह फिर मन से धुल गया। नयनतारा फिर नियमित रूप से आफिस जाने लगी। छुट्टी के बाद फिर से निखिलेश उसे अपने साथ घर ले आने लगा। एक तीसरे आदमी की वजह से उनके मन में जो संघात हुआ था, वह अब उन दोनों में से किसीके भी मन में नहीं रहा।

कभी-कभी नयनतारा एकाएक उसे याद दिलाती, "कहां, तुमने जो व्यवसाय करने की सोची थी, वह कहां किया ?"

निखिलेश ने कहा, "देख रहा हूं, तुमको ठीक याद है—"

नयनतारा कहती, "खूब! याद नहीं रहेगा ? माला बोस का पति तो नौकरी छोड़कर व्यवसाय कर रहा है। माला बोस को जानते हो न ?"

"बेशक। रवीन्द्र संगीत गाती है। क्या व्यवसाय करता है ?"

"होटल का व्यवसाय। किराए पर एक मकान लेकर औरतों का बोर्डिंग हाउस खोला है। जो सब स्त्रियां नौकरी करती हैं, जिन्हें यहां कलकत्ता में रहने की जगह नहीं है, उसमें उनके रहने-खाने का प्रबन्ध है—"

"कितने कमरे हैं ?"

"शुरू शायद चार कमरों से किया था। उतने से काम नहीं चल रहा था। अब शायद एक बहुत बड़ा दुमंज़िला मकान लिया है। सुना, काफी आमदनी हो रही है। इतनी आमदनी हो रही है कि नौकरी और बोर्डिंग-हाउस, दोनों सम्भालना सम्भव नहीं हो रहा है—"

"कैसा लाभ होता है ?"

नयनतारा ने कहा, "माला तो बोली, महीने में हज़ार-दो हज़ार रुपया मिल जाता है। अब अगर देखभाल अपने से करें, तो और भी लाभ होगा। माला भी नौकरी छोड़ने की सोच रही है—"

निखिलेश ने कहा, "तुम एक दिन जाकर वह बोर्डिंग हाउस देख आओ न—"

आखिर एक इतवार को नयनतारा गई। भवानीपुर में भले लोगों के मोहल्ले में वह मकान था। दुमंजिला मकान। आठ कमरे। माला के पति बड़े सज्जन हैं। परिचय कराते ही उन्होंने हंसते हुए नयनतारा का स्वागत किया। कमरे में घुमाकर उसे सब दिखाया। बोले, "देखिए, हम दोनों ही नौकरी करते थे। एक दिन जी में आया, नौकरी करके तो सिर्फ जीवन ही बरबाद कर रहे हैं। तभी से सोचता रहा, कुछ-न-कुछ करना चाहिए। बहुत तरह का काम किया, पर कुछ हुआ-हवाया नहीं, नाहक ही बहुत-से रुपये बरबाद हो गए। आखिर दिमाग में इस स्त्रियों के बोर्डिंग हाउस की बात सूझी—"

माला ने कहा, "आफिस में तो हम गप्प के सिवाय कुछ करते नहीं। सोचती हूं, यहां काम करूं, तो काम जैसा कुछ हो—"

माला के पति ने कहा, "आफिस से लौटकर अब इसे भी यहां काम करने का नशा हो गया है—"

माला ने कहा, "पहले तो मैं नौकरी छोड़ूंगी नहीं नयन-दी! कई महीनों की छुट्टी लूंगी, उसके बाद इस्तीफा दूंगी।"

नयनतारा को अच्छा लगा। निखिलेश बहुत दिनों से किसी व्यवसाय की सोच रहा है। ऐसा व्यवसाय करे, तो बुरा नहीं है। पूछा, "शुरू में कितनी पूंजी लगी थी?"

माला के पति ने कहा, "समझ ही सकती हो—हम दोनों की नौकरी से जमा ही कितना हो सकता है। पांचेक हजार बैंक में था। उसीसे एक दिन श्रीगणेश कर दिया और अब यह स्थिति है—"

घर लौटकर नयनतारा निखिलेश से बोली, "देख आई।"

निखिलेश सुनने को उत्सुक ही था। बोला, "कैसा देखा?"

नयनतारा ने कहा, "बहुत बेहतरीन। कोई झमेला नहीं। मैं भी कर सकती हूं..."

"शुरू में कितनी पूंजी लगी थी?"

"पांच हजार।"

पांच हजार सुनकर निखिलेश का चेहरा कैसा तो गम्भीर हो गया। पांच हजार रुपया उसे कहां से मिलेगा! बैंक का पास बुक निकालकर देखा। बहुत दिन पहले पति-पत्नी के नाम से एक ज्वायंट-एकाउंट खोला था। उसमें कितने रुपये हैं, याद नहीं था। पास बुक में जमा का अंक देखते ही निखिलेश अवाक् हो गया। महज पांच रुपये थे। अथच निखिलेश को याद है, पांच सौ के करीब उस खाते में थे। वे रुपये आखिर किसने निकाले? असल में रुपये-पैसे, बैंक का पास बुक—सब तो नयनतारा के ही पास रहता था।

निखिलेश ने नयनतारा से पूछा, "जमा की रकम इतनी कम कैसे हो गई?"

"नयनतारा ने कहा, "मैंने निकाल लिया—"

निखिलेश का चेहरा और भी गम्भीर हो गया। बोला, "पांच सौ के पांच सौ ही निकाल लिए ? मुझे तो याद है, पांच सौ ही थे—"

नयनतारा ने कहा, "उस समय ज़रूरत थी, इसलिए निकाल लिया।"

"देखो तो सही, नाहक ही तुमने कितने रुपये नष्ट किए। कहां का कौन वह, उसके लिए तुमने सारे रुपये इस तरह से पानी में फेंक दिए ? और, जिसके लिए तुमने इतना कुछ किया, वह उधर मज़े से अपनी बीवी के साथ आराम से है। वे रुपये होते तो आज हमें कितनी सुविधा होती, कहो तो ? कहने से तो तुम मुझपर नाराज़ होगी।"

नयनतारा ने कहा, "रुपये तो तुमने भी कितने बरबाद किए—"

निखिलेश ने प्रतिवाद किया, "मैंने ? मैंने रुपये कब बरबाद किए ?"

नयनतारा ने कहा, "अब अगर मैं उन बातों का ज़िक्र करूं, तो तुम भी नाराज़ होगे। तुमने शराब नहीं पी ? शराब में तुमने कितने रुपये फूंके···"

निखिलेश ने कहा, "यह तो उलटे चोर कोतवाल को डांटे वाली बात हुई। मैंने क्या शौक से पी थी ?"

"और नहीं तो क्या ! शराब तो शौक की ही चीज़ है। तुमने तो शौक से ही शराब पीकर रुपया उड़ाया है।"

"तुम तो यह कहोगी ही। दोष तुमने किया और दोषी हुआ मैं। खूब !"

नयनतारा ने कहा, "तुम क्या नन्हे-नादान थे कि शीतेश बाबू ने गले में उंड़ेल दी और तुम पी गए ? शराब की कीमत क्या कम है ? तुमने इस तरह कितने रुपये उड़ाए, सो तो बताओ ?"

निखिलेश ने कहा, "लेकिन तुम एक बाहरी आदमी को उठाकर घर नहीं ले आती तो क्या मैं शराब पीता ?"

नयनतारा ने कहा, "खैर, मैंने तो एक आदमी को बचाने के लिए रुपये बरबाद किए, पर तुमने ? तुमने वह ज़हर किस तरह से पिया ? यह दोनों क्या एक ही चीज़ हुई ?"

निखिलेश में सहसा ही शायद ज्ञान का उदय हुआ। उसने अपने को सम्भाल लिया। बोला, "छोड़ो-छोड़ो, जो बीत चुका, उसके लिए तर्क करना बेकार है। रुपयों का गच्चा खाना मुकद्दर में लिखा था, खाया। अब समझ आ गई, यही गनीमत है। अब किया क्या जाए, यह सोचें···"

यही सोचते-सोचते बहुत दिन निकल गए। आफिस जाते-आते सिर्फ सलाह-मशविरा और सलाह-मशविरा। रुपयों का सख्ती से हिसाब होने लगा। खर्च कुछ कम करना होगा। खर्च कम होने से ही रुपया जमा होगा।

नयनतारा ने कहा, "मैं जितने कम खर्च से घर चलाती हूं, दूसरी कोई स्त्री नहीं चला सकेगी। मेरे आफिस की स्त्रियां मुझसे दामी-दामी साड़ी पहनती हैं, मालूम है ?"

निखिलेश ने कहा, "और मैं ही क्या कीमती सूट पहनता हूं ?"

नयनतारा बोली, "तो फिर मुझसे खर्च कम करने को क्यों कह रहे हो ? मैंने कभी एक भी पैसा फिजूल खर्च किया है ?"

निखिलेश ने कहा, "आह, तुम गुस्सा क्यों हो रही हो ? मैं क्या यह कह रहा हूं ?"

नयनतारा ने कहा, "तुमने रास्ते में खुद भी तो देखा है, स्त्रियां कितना दामी-दामी साड़ी ब्लाउज-गहना पहनकर जाती हैं। और किसीकी स्त्री इतने कम खर्च में गिरस्ती चला सकती है ? मैं बाजी बद सकती हूं···"

निखिलेश ने कहा, "गुस्सा क्यों हो रही हो ?"

नयनतारा ने कहा, "अब से गिरस्ती खर्च का हिसाब मैं नहीं रखूंगी, तुम्हीं रखना···"

सलाह करते-करते सलाह की नाव इस तरह से झगड़े की दल-दल में फंस जाती फिर सलाह आगे बढ़ नहीं पाती। अथच दोनों एक ही कमरे में, एक ही छत के नीचे रहते, एक ही साथ दफ्तर जाया करते; लेकिन दोनों छटपट करते रहते। दोनों के मन में होता, और ज्यादा रुपया हो, तो अच्छा हो, और ज्यादा रुपया हो तो जिन्दगी और आराम की हो, सुख की हो, स्वच्छंदता की हो।

लेकिन कहीं भी किसी उपाय से और ज्यादा आमद की राह नहीं निकलती।

बीसवीं सदी के बीचों-बीच आकर दुनिया मानो रुपये के खेल में ही पागल हो उठी। पहले रुपयों की चाह थी [illegible] को, नर-नारायण चौधरी को, रुपया चाहता था [illegible] बड़े बाबू [illegible] और कुछ थोड़े-से दूसरे लोग। जैसे, मानदा [illegible]।

रुपये के लिए एक दिन नरनारायण [illegible] के जमींदार हर्षनाथ चक्रवर्ती की विधवा पत्नी की [illegible] हरण कर लिया था, वह स्वाभाविक था। क्योंकि वह युग [illegible] का युग था। उस समय राजा-महाराजा जमींदार [illegible]। [illegible] का गला था। उससे रियाया के सुभाराम-दुख [illegible] थी। ऊपर के लोग ही मुख्य थे, प्रजा गौण। [illegible] करना। ऊपर वालों के जुल्म को सिर झुकाकर [illegible]। [illegible] जुल्म-सितम सहने के पीछे था धर्म का [illegible] — [illegible] धर्म के रास्ते पर रहो, तो परलोक में [illegible]।

कपिल पाथरापोड़ा, मानिक [illegible] चाहा था, पर वह रुपया [illegible] चलाने के अलावा रुपयों के [illegible] रखना भी वे कभी नहीं देखते थे। [illegible] रखने से रुपया सूद से बढ़ता है। [illegible] रुपये का हजार बनाया जा सकता है [illegible] को फिर से अच्छी तरह से [illegible] है [illegible]

ज़मीन की जानकारी थी या जानते थे किसी बंधी-बंधाई नौकरी की बात
वह मिल गई तो सब मिल गया। फिर तो नवाबगंज के बरवारी-थान मे
बैठे रात जगकर कवि-गान सुनो, यात्रा में राम की भूमिका अदा करो य
कि दोस्त-अहबाबों के साथ ताश में शाम बिताकर रात को गहरी नीं
सोओ।

लेकिन लड़ाई के बाद उन्होंने जाना। सन् 1939 की लड़ाई जब खत्म
हुई, तो उन्होंने जाना—कवि-गान, यात्रा, ताश खेलना, यह सब कुछ नहीं है
जाना कि रामायण पढ़ना, परलोक आदि कुछ नहीं है। हम सब लोग जब
उसी सबके नशे में चूर थे तो दूसरे लोगों ने अपना काम बना लिया। किसीने
लड़ाई के दौरान ठेकेदारी की, किसीने चावल में कंकड़ मिलाए, तो किसीने
दवा में मिलावट की। सबने आंखें खोलकर देखा, सारी दुनिया ही रातों
रात बदल गई। सबने कब चुपके से अपना उल्लू सीधा कर लिया, किसीको
पता नहीं चला। पहले एक कपिल पायरापोड़ा था, अब लाखों-लाख कपिल
पायरापोड़ा पैदा हो गए। लाखों-लाख माणिक घोष और फटिक नाइयों ने
तै कर लिया कि अब बाबुओं के अत्याचार के आगे सिर नहीं झुकाएंगे।
उन लोगों ने कहना शुरू कर दिया—हम लोगों को भी जीने का अधिकार
है, हम जीना चाहते हैं, ज़मीन की उपज का हमें हिस्सा चाहिए, जीने के लिए
हमें और भी रुपयों की ज़रूरत है।

और उधर कलकत्ता के आफिस के किरानी निखिलेश और नयनतारा—
उन लोगों ने भी कहना शुरू किया—हम अब गरीब नहीं रहेंगे, हमें और
रुपया चाहिए—

सारी दुनिया के लोग उनके साथ गला मिलाकर कहने लगे—हमें और
रुपये चाहिए। और, सदानन्द को उस समय जैसे कुछ देखने की ज़रूरत
नहीं थी। उसका सब कुछ देखना मानो समाप्त हो चुका था। कब तो एक
दिन उसने नवाबगंज से अपने जीवन की परिक्रमा शुरू की थी। उसने उसी
समय देखा था, कौन तो एक विधवा बुढ़िया आती है और बूढ़े मालिक से
जाकर कहती है, "मेरे रुपये दो, मुझे मेरे रुपये चाहिए—"

प्रकाश मामा के साथ जब वह राणाघाट में राधा के यहां जाता, वहां
भी वह देखा करता, राधा प्रकाश मामा से कहती थी, "रुपया चाहिए—"

फिर पुलिस चौकी में। वहां भी तो वही रुपया। प्रकाश मामा ने रुपया
दिया, जभी उसे छुटकारा मिला।

सारे सुलतानपुर में आग की लहर-सी यह खबर फैल गई कि चौधरी जी
के लड़का आया है।

अश्विनी भट्टाचार्य दौड़ता हुआ कचहरी पर हाज़िर हो गया। खबर
भीम विश्वास को भी मिल गई थी। आशु चक्रवर्ती खेत की तरफ गया
हुआ था। वह वहीं से सीधा चला आया।

प्रकाश राय ने सबको बाहर के कमरे में ही रोका। कहा, "नहीं भाई,
अभी भेंट नहीं होगी। सदा की तबीयत अभी खराब है।"

प्रकाश मामा ने कहा, "अब यहां पर तू अपनी एक सही बना दे—"

सदानन्द ने कागज़ को देखा। कागज़ पर कितने रुपये का तो स्टैंप लगा था। पूछा, "यह किस चीज़ का कागज है ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "अरे, यह कुछ नहीं है। तूने ये रुपये जो मुझे दिए, यह उसीका दान-पत्र है। और क्या ! यह कुछ हाथी-घोड़े का मामला नहीं, मैं मिनट-भर में सब ठीक कर लूंगा। मेरे वकील ने मजमून बना दिया है, तू कुछ सोच मत, सिर्फ दस्तखत कर दे—"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन मैं क्यों दस्तखत करूं ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "क्यों, दस्तखत करने में क्या एतराज़ है ? रुपये तो सब तू मुझीको दे देगा। तुझे तो रुपयों की जरूरत नहीं है—"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। रुपयों की ज़रूरत है मुझे।"

"ऐं ! तुझे रुपयों की क्या ज़रूरत है ?"

सदानन्द ने कहा, "हां है। रुपयों की ज़रूरत है मुझे।"

प्रकाश मामा की आंखों से आंसू टपक पड़ने को आया। वह सदानन्द के चेहरे की तरफ हा करके ताकने लगा। पूछा, "तुझे सचमुच रुपयों की जरूरत है ? तू तो शादी भी नहीं करेगा, घर भी नहीं बसाएगा, फिर तुझे इतने रुपयों की क्या ज़रूरत है ?"

तब तक पास बुक, चेक बुक, और-और कागज-पत्तर तैयार हो चुके थे।

सदानन्द ने सब कुछ को अपनी जेब के हवाले किया। बोला, "घर नहीं ही बसाया तो क्या, मुझे सचमुच ही बहुत रुपयों की ज़रूरत है प्रकाश मामा—"

"आखिर कितने रुपयों की ज़रूरत है ?"

सदानन्द ने कहा, "मुझे सारे ही रुपयों की जरूरत है।"

बैंक से निकलकर सदानन्द रास्ते पर चलने लगा। प्रकाश मामा की हालत पागल जैसी हो गई। वह भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। बोला, "अरे मैंने तेरे लिए इतना कुछ किया, तू मेरी ज़रा भी सोचेगा नहीं ? मैं खबर नहीं देता, तो रुपयों का तुझे पता भी नहीं होता—"

लेकिन सदानन्द ने कुछ सुना नहीं। वह जैसे चल रहा था, चलता रहा।

शीतेश बोस ने उस दिन और ही राय दी।

कई दिनों से निखिलेश व्यवसाय की बात कह रहा था। थोड़ी पूंजी से कोई व्यवसाय नहीं करने से किरानीगिरी करते ही जिन्दगी बीत जाएगी।

निखिलेश ने शीतेश से कहा, "औरतों के लिए एक बोर्डिंग हाउस खोलने की सोच रहा हूं, उसमें खूब लाभ है—"

शीतेश ने सब सुना। बोला, "ऊंहूं, उसमें ज्यादा लाभ नहीं है। एक व्यवसाय में खूब लाभ है, बशर्ते कि कर सको।"

"कौन-सा व्यवसाय ?"

शीतेश ने कहा, "औरतों का व्यवसाय।"

निखिलेश चौंक उठा। बोला, "सो क्या ? यह कैसा व्यवसाय होता है ?"

शीतेश ने कहा, "तुमने आज के कलकत्ता को तो पहचाना नहीं, कितने लोग कितने धंधे से चारों ओर घूम रहे हैं। पैसा तो यहां उड़ता फिर रहा है, पकड़ लेने की अक्ल चाहिए—"

निखिलेश ने कहा, "औरतों का बोर्डिंग हाउस तो बहुतों ने किया है। दूसरा और कौन-सा व्यवसाय है ?"

शीतेश ने कहा, "ठीक है। इतवार को फुरसत है ? मेरे यहां आ सकते हो ?"

"बखूबी !"

"तो आ जाओ। तुम्हें सर-जमीन वह व्यवसाय दिखा दूंगा।"

दूसरे ही दिन इतवार था। तीसरे पहर निखिलेश निकल पड़ा।

नयनतारा ने पूछा, "कब तक लौटोगे ?"

निखिलेश ने कहा, "कोशिश करूंगा कि जल्दी लौट आऊं।"

वह चला गया। शीतेश तैयार ही था। उसके साथ कालीघाट की बस पर सवार हो गया। कालीघाट के दो टिकट ले लिए।

निखिलेश ने पूछा, "कालीघाट कहां चले ? मंदिर ?"

शीतेश ने कहा, "चलो तो सही। व्यवसाय करने चले हो, इतना डरने से काम चलेगा ? व्यवसाय के लिए आज लोग जहन्नुम तक जाने को तैयार हैं, पता है ?"

एक जगह उतरकर शीतेश भीड़ में तेजी से चलने लगा। निखिलेश भी उसके पीछे-पीछे। भीड़ से जगह वह सरगर्म हो रही थी। निखिलेश इस तरफ पहले कभी नहीं आया था।

एक बस्ती में पहुंचकर शीतेश एक घर के सामने खड़ा हो गया। कई स्त्रियां वहां बन-ठनकर खड़ी थीं। उधर बिना ताके ही शीतेश पुकारने लगा, "मानदा मौसी हो, ओ मानदा मौसी···"

निखिलेश बगल में खड़ा था। चारों ओर का वातावरण देख उसे सकपकाहट-सी हो रही थी। यह भी तो एक प्रकार का व्यवसाय है। उसने शीतेश से कहा, "चलो शीतेश लौटें···"

शीतेश ने कहा, "न-न, यों मत जाओ। देखकर ही चलेंगे। व्यवसाय आखिर व्यवसाय है। दुनिया में रोजगार से कमाने के कितने रास्ते हैं, यह देखना अच्छा है···"

असल में मानदा मौसी का नसीब अच्छा है कि निखिलेश का, कौन कह सकता है ! कौन कह सकता है, किस एक योगसूत्र से जुड़कर किसीका अच्छा होता है और किसीका बुरा ! निखिलेश एक निरा साधारण महत्वाकांक्षी आदमी—

युद्धोत्तर युग के असहिष्णु समाज का एक प्रतिनिधि। सिर्फ मोटा अन्न और मोटे वस्त्र से उसका नहीं चलेगा। स्वस्थ, स्वाभाविक और सहज जीवन की शान्ति से उसे संतोष नहीं। थोड़ा पाने के कष्ट को दूर करने के लिए वह ज्यादा पाने के झमेले झेलने को भी तैयार है। त्याग का उपदेश उसके लिए मृत्यु है, भोग ही उसके लिए चरम सत्य है। भोग के उपकरण जुटाने में वह जीवन की वलि देने को भी तैयार है। उसका ख्याल है, यदि भोग ही नहीं कर पाया, तो जी ही क्यों रहा हूं? और भोग करना हो तो चाहिए रुपया। वह रुपया अगर पनाले में ही पड़ा हो, तो उठा लेने में हिचक क्यों होगी? वास्तव में पुण्य और पाप के पैसे में कोई अन्तर तो नहीं है। रुपया पर लिखा भी नहीं होता कि यह रुपया काहे का है। अतः रुपया चाहिए।

शीतेश शायद इस टोले में नियमित आने वालों में से है। कम-से-कम उसके हावभाव से निखिलेश को ऐसा ही लगा। वहां की सव उसे जानती थीं। इसका भी सवूत मिला कि मानदा मौसी से उसकी खूब घनिष्ठता है।

निखिलेश को दिखाती हुई मानदा मौसी ने पुछा, "यह कौन हैं?"

शीतेश ने कहा, "मेरे मित्र हैं। हम एक ही आफिस में काम करते हैं..."

मानदा मौसी ने पूछा, "सो तो समझा। लेकिन आपके साथ क्यों? अकेले आने में डर लगता है, क्यों?"

शीतेश ने कहा, "अरे नहीं-नहीं, सवका कैरेक्टर क्या मेरी ही तरह है? कलकत्ता में क्या अच्छे आदमी नहीं हैं?"

मानदा मौसी ने कहा, "मुझे अव भले आदमी की न कहिए। मैंने सव देख लिया। साफ-सफेद कपड़े वालों को भी देखा और कुली-कवाड़ियों को भी देखा। मेरे लिए सव लक्ष्मी हैं। ग्राहक मात्र लक्ष्मी हैं। जव रोजगार के लिए उतरी तो वैसे विचार से तो मेरा काम नहीं चलता। मैं सवसे पहले यह देखती हूं कि तुम्हारी टेंट में रुपये हैं या नहीं। रुपये हैं तो तुम अच्छे हो, रुपये नहीं हैं तो वुरे हो। मेरे पास साफ-साफ वात, हां।"

शीतेश ने कहा, "तुम कह रही थी न कि रुपयों की तुम्हें तंगी है?"

"तंगी तो है ही। वेहद तंगी है। एक वह दिन था कि ग्राहकों की भीड़ के मारे यहां चील-कौओं के वैठने की गुंजाइश नहीं थी, और आज है कि सियार-कुत्ते भी इधर नहीं झांकते। यह नौवत है। लड़कियों को भरपेट खाना मयस्सर नहीं होता है, इससे और दुःख की क्या कहूं—"

शीतेश ने पूछा, "मगर ऐसा हुआ क्यों मौसी? रातों-रात कलकत्ता के सारे लोगों के चरित्र अच्छे हो गए? या कि पुलिस की परेशानी है?"

मानदा मौसी ने कहा, "पुलिस तो मेरी मुट्ठी में है। तुम्हें तो मालूम ही है, पुलिस का वड़ा वावू तो अपने हाथ में है। वह परेशानी होती, तो मैं एक वात से सवको ठंडा कर देती। दरअसल मुझे रुपयों की कमी पड़ गई है। इस कार-वार में और रुपये लगाकर अगर मैं साहव टोले में एक मकान ले पाती तो रुपयों का क्या पूछना था। लेकिन वही तो नहीं हो रहा है—"

निखिलेश को दिखाते हुए शीतेश ने कहा, "इसीलिए तो अपने इस मित्र

को तुम्हारे पास ले आया हूं। यह किसी भी कारबार में रुपया लगाना चाहता है—"

अब मानो मानदा मौसी को होश हुआ। उसने निखिलेश की तरफ अच्छी तरह से देखा। बोली, "किस कारबार में रुपये लगाएंगे?"

और उसे मानो अचानक ख्याल आया। बोली, "चाय-वाय कुछ चलेगी?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं-नहीं, उसके लिए परेशान न हों। तुम यह बताओ कि तुम्हारा व्यवसाय ठीक चल क्यों नहीं रहा है? ऐसे लाभ के व्यवसाय में नुकसान?"

मानदा मौसी बोली, "दुःख की क्या बताऊं भैया, सच पूछिए तो इस व्यवसाय में नुकसान होता ही नहीं। मगर फिर भी मुझे नुकसान हो रहा है और हो रहा है रुपयों की कमी से। अगर कुछ रुपये मिल जाते तो मैं दिखा देती, व्यवसाय किसको कहते है। दसेक हजार रुपये इसमें लगा पाती, तो आज चैन से बैठी रहती—"

निखिलेश ने पूछा, "दस हजार रुपये मिले, तो क्या करोगी?"

"क्या करूंगी? तो सुनिए, सबसे पहले तो साहबों के मुहल्ले में पांच सौ रुपये का एक मकान किराए पर लूंगी। अभी दो कमरे और दो लड़कियों से ही मेरा काम चल जाएगा। लड़कियों की तो खैर कोई चिंता नहीं, मैं खुद जुटा लूंगी। आजकल भले और भद्र परिवार की लड़कियां इस लाइन में उतरना चाहती हैं, लेकिन मेरी ऐसी बस्ती देखकर पीछे हट जाती हैं। साहब टोले में व्यवसाय चलाने से मैं फी घंटे की दर तै कर दूंगी।"

निखिलेश ने कहा, "और इस कारबार में टैक्स तो नहीं देना पड़ता है–"

"टैक्स? काहे का टैक्स?"

निखिलेश ने कहा, "मैं इनकम टैक्स की कह रहा हूं—"

मानदा मौसी ने कहा, "नहीं भैया इतने दिनों से यह कारबार कर रही हूं, टैक्स-फैक्स कभी नहीं दिया है। टैक्स किसे दूं? जिन्हें टैक्स देना है, वही लोग तो अपने ग्राहक हैं। उस दिन एक आदमी आया था, मेरा बड़ा पुराना ग्राहक है। वह बोला, 'वह अपने जीजाजी का आठ लाख रुपया पाने वाला है।' सोचा, खातिरदारी करके उसे कुछ पूंजी लगाने के लिए कहूंगी, मगर कुछ कहने से पहले ही वह भाग गया?"

"भाग गया? क्यों?"

मानदा मौसी बोली, "भाग गया, यानी डर से भाग गया। सोचा होगा मैं शायद उसके रुपये छीन लूं। आश्चर्य है! मैं तो दंग रह गई। व्यवसाय के लिए रुपया लेना नहीं पड़ता है? तुम्हारे रुपये से मैं अगर कारबार को बढ़ा सकूं तो तुम्हें क्या नुकसान है? सूद भी दे सकती हूं, नहीं तो आधा-आधा हिस्सा। आधा बखरा भी दूं, फिर भी तो फेंक-फेंकाकर भी मोटा मुनाफा रहेगा। ध्यान से देखने पर, ढंग से हिसाब रखने पर इस कारबार में हानि है ही नहीं। लाभ ही लाभ है।"

फिर उसने निखिलेश से पूछा, "आप इसमें कितना लगा सकते हैं? ठीक-

ठीक कहिए तो ?"

शीतेश ने बात बदल दी, "तुम्हारा वह बड़ा बाबू कहां गया ? वही, पुलिस का बड़ा बाबू ?"

मौसी ने होंठ बिदकाया। बोली, "उसकी तो बोलो ही मत भैया ! रुपये के लिए मैंने उसके यहां भी धरना दिया था। रुपये के लिए मैंने उसकी कौन-सी खुशामद नहीं की। उसकी रखैल के पैर तक दबाए—"

"फिर भी तुम्हें रुपया नहीं दिया ?"

"नहीं। जभी तो मैं दुःखी होकर वहां से चली आई। नसीब की बात भैया, सब अपना नसीब। अथच मैं क्या रुपया लेकर भाग जाती ? मैं वैसे बाप की पैदा की हुई बेटी नहीं हूं। मैं ब्राह्मण-वंश की हूं। ग्रह-दशा के फेर से मुझे यह कारबार करना पड़ा। मगर तुम तो जानते हो, मैंने तुम लोगों को कभी ठगा है ? कोई भी कह सकता है कि मैंने माल के साथ कभी बूंद-भर पानी मिलाया है ?"

वह फिर निखिलेश की ओर देखकर बोली, "मगर तुमने बताया तो नहीं कि तुम कितनी पूंजी लगाओगे ?"

लेकिन इसका जवाब निखिलेश को नहीं देना पड़ा। जवाब दिया शीतेश ने। बोला, "रुपया तो इसके पास बहुत है। इसके पिता रुपये छोड़ गए हैं। पर आट-घाट बांधकर ही तो व्यापार में उतरना होगा। पहले यह तो देख लेना होगा कि किसी तरह से नुकसान न हो।"

मौसी ने कहा, "मैंने तो पहले ही कहा, इस व्यापार में नुकसान नाम की कोई चीज ही नहीं है। कलकत्ता से अंग्रेज चले गए। अब देशी साहबों के पास बहुत पैसे हो गए हैं। उनके लड़कों ने अब उड़ना सीखा है। वैसे किसी अच्छे टोले में कोई मकान लेने से उनकी बदौलत कारबार फूलकर ढोल हो जाएगा। वह सब मेरे जिम्मे छोड़ दो—इतने दिनों से यह काम कर रही हूं, मैं क्या जानती नहीं हूं कि कितने चावल में कितनी खुद्दी होती है।"

शीतेश उठ खड़ा हुआ, "खैर, फिर कभी आऊंगा मौसी, अभी चलता हूं—"

मौसी ने कहा, "अरे, बैठोगे नहीं ?"

शीतेश ने कहा, "नहीं, अब इस दोपहर में नहीं। कभी बल्कि सांझ को आऊंगा। कुछ हाल-चाल का पता तो चला, अब यह जरा सोच देखें—"

मौसी दरवाजे तक आई। बोली, "इसमें सोच देखने का कुछ नहीं है। आजकल बड़े-बड़े लोग इस कारबार में उतर रहे हैं। देख नहीं रहे हो, चारों ओर मुहल्ले-मुहल्ले में 'मैसेज क्लिनिक' खुल रहे हैं—"

"मैसेज क्लिनिक ?"

मौसी ने हंसकर कहा, "हां। ऐसा ही अंग्रेजी नाम दिया हैं। मगर अंग्रेजी नाम देने से क्या होगा, असल में जो व्यवसाय अपना है, वही वह भी है। अंग्रेजी नाम देने से क्या बदन की बू जाएगी ?"

तब तक वे दोनों रास्ते पर पहुंच गए थे। बाहर पहुंचकर शीतेश ने पूछा,

"कैसा लगा बिरादर ?"

निखिलेश हंसा। बोला, "सोचता हूं, अन्त तक इस कारबार में उतरूं।"

शीतेश ने कहा, "क्यों, उतरने में हर्ज क्या है? मुझे अगर बीवी-बच्चे होते, तो मैं स्वयं ही इस व्यवसाय में उतरता। सच तो, चारों तरफ इतना 'मैसेज क्लिनिक' खुले हैं, उन्हें तो कोई बुरा नहीं कहता। रुपया हो जाने पर तुम्हारे बदन पर यह लिखा थोड़े ही रहेगा कि यह मैसेज क्लिनिक का रुपया है कि लोहा-लक्कड़ का रुपया है?"

निखिलेश ने कहा, "सो नहीं। सोचता हूं, मेरी देवीजी सुनकर क्या कहेंगी?"

शीतेश ने कहा, "खबरदार! उसे यह सब हरगिज मत कहना। ये बातें औरतों से कहनी ही नहीं चाहिए। मैंने ब्याह नहीं किया है, पर यह बता सकता हूं कि कौन-सी बात पत्नी से कहनी चाहिए, कौन-सी नहीं।"

"लेकिन बात को कभी तो वह जान ही जाएगी।"

"तुम खुद से नहीं बताओगे तो कैसे जानेगी? औरतों को तो रुपया मिलना चाहिए, वे उसीमें खुश हैं। वे यह नहीं जानना चाहेंगी कि रुपये आ कहां से रहे हैं।"

निखिलेश ने कहा, "मेरी पत्नी मगर वैसी नहीं है भाई! बेहद सेंटिमेंटल है। कभी-कभी मुझसे ऐसी झड़प होती है कि क्या बताऊं! अथच उसे कलकत्ता में मकान बनाने का बेहद शौक है।"

शीतेश ने कहा, "यह तो सबको है।"

निखिलेश ने कहा, "लेकिन कलकत्ता में घर बनाना हो तो खर्च तो कम करना ही होगा। यह उससे नहीं होता। नहीं तो आज तक मेरे बहुत रुपये जमा हो जाते। अभी तो बैंक-बैलेंस के नाम पर कुछ भी नहीं है।"

शीतेश ने कहा, "फिर तो अभी से जमा करने की कोशिश करो। तुम लोग तो नशा-वशा भी नहीं करते, आखिर दोनों की कमाई के रुपये जाते कहां हैं?"

"कुछ न पूछो, एक की बीमारी में सब पूंजी चुक गई।"

"बीमारी? किसकी बीमारी में? तुम लोगों का है कौन?"

निखिलेश ने कहा, "अपना कोई नहीं।"

"अपना कोई नहीं था तो उसकी बीमारी में तुम लोगों ने खर्च क्यों किया?"

"नसीब का फेरा। ब्याह के समय पत्नी को सोने का एक हार बनवा दिया था, वह हार तक बंधक रखा गया। अभी तक छुड़ा नहीं पाया। खर्च जो कैसे और किस कारण हो जाता है, समझ नहीं पाता। अथच यह बात भी नहीं कि रोज कलिया-पुलाव ही खाता हूं। अब मैं पत्नी को दोष देता हूं और वह मुझे दोष देती है। अभी तो सोचा है, इस नौकरी से कुछ होने-हवाने का नहीं।"

इस बीच दोनों सियालदह स्टेशन पहुंच गए थे। शीतेश ने कहा, "आज

चलेगी थोड़ी-सी ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं भई, अब वह सब नहीं छूने का—"

"क्यों, क्या हो गया ?"

निखिलेश ने कहा, "ठाकुर के नाम पर बीबी ने मुझसे शपथ करा ली है कि जीवन में कभी शराब नहीं छूऊंगा।"

शीतेश ने कहा, "इसीलिए तो मैंने शादी नहीं की भाई ! शादी करता तो मैं भी बीवी का भड़ुआ बन जाता—"

शीतेश इसके बाद रुका नहीं। जहां जाना था, चला गया।

घर में नयनतारा उसकी बाट जोह रही थी। देखते ही पूछा, "कुछ ठीक किया ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं···"

"तो इतनी देर तक कहां रहे ? क्या किया ?"

"गया तो बहुत जगह। पर असल तो है रुपया। पांच हज़ार रुपये के बिना तो किसी भी व्यवसाय में हाथ नहीं डाला जा सकता। रुपये कहां से आएंगे ?"

यह बात दोनों ही जानते थे। वगैर रुपये के कुछ नहीं हो सकता, यह कोई ऐसी नई बात तो नहीं। फिर भी निखिलेश को एक क्षीण आशा थी कि शीतेश शायद ऐसा कोई रास्ता बताए, जिसमें रुपया कम लगे। शीतेश कलकत्ता में ही रहता है, यहीं पैदा हुआ, बहुतों को पहचानता है। इसके भाई वगैरह बड़े आदमी हैं। केवल वही अलग रहता है और जो कमाता है, दोनों हाथों उड़ाता है। आप वह धनी नहीं हो सका, धनी होने की उसे इच्छा भी नहीं।

नयनतारा ने कहा, "रुपये तो लेकिन कर्ज भी मिल सकते हैं—"

निखिलेश ने कहा, "मैंने वह भी सोचा है। लेकिन कहीं व्यवसाय में नुकसान हुआ तो ? फिर तो लेने के देने पड़ेंगे। उससे अच्छा है कि खूब सोच-समझकर ही हाथ डाला जाए।"

"तो, क्या व्यवसाय करोगे ?"

निखिलेश ने कहा, "वह फिर सोच-समझकर ठीक किया जाएगा। पहले यह सोच रहा हूं कि रुपया कहां से आएगा—"

"मैं अगर अपने गहने बेच दूं तो कितने रुपये मिल सकते हैं ?"

"गहने बेच दोगी। जो गहना सुनार के यहां गिरवी है, अभी तक तो वही छुड़ाया नहीं जा सका है।"

नयनतारा ने कहा, "रुपया होने पर गहने फिर हो जाएंगे, अभी तो ये काम आ जाएं। हमारे आफिस की माला बोस ने भी तो पहले गहना ही बेचा था। अब उसने नये गहने खरीद लिए।"

मगर गहना कहने को नयनतारा को है भी क्या ! दोनों हाथों में चार-चार चूड़ियां और एक पतला-सा चेन-हार। कुल मिलाकर बहुत होगा तो तेरह-चौदह तोला। सौ-डेढ़ सौ रुपया तोला भाव है सोने का। बेचने से शायद

डेढ़ हजार भी नहीं मिलेगा। अथच कितना सोना था उसे। ससुर ने हीरे का सीताहार देकर उसका मुंह देखा था। सास ने भी जड़ाऊ बाला दिया था—हीरा-पन्ना जड़ा। और भी जो कितने गहने थे, ठिकाना नहीं। उस समय नयनतारा को थोड़े ही पता था कि वह फिर से व्याह करेगी। उसकी फिर से गिरस्ती बसेगी। उसे क्या पता था कि उसे कभी नौकरी करनी पड़ेगी? या कि यही जानती थी कि पांच हजार रुपये के लिए उसे कभी गहने गिरवी रखने की नौबत आएगी।

सुबह निखिलेश के जगते ही नयनतारा ने कहा, "अच्छा, तुम जो उस दिन नवाबगंज गए, तो तुमने मेरे गहने क्यों नहीं मांग लिए?"

निखिलेश को याद नहीं था। वह बोला, "मैं नवाबगंज गया था? कब?"

"खूब! तुम्हें याद नहीं है? तुमने ही तो कहा था कि तुम नवाबगंज गए थे। उसने तुमसे मेरे बारे में पूछा—"

निखिलेश को अब याद आया। उसे उस झूठ कहने की याद नहीं थी। बोला, "हां, पूछा तो था। पूछा था कि नयनतारा कैसी है!"

"तो तुमने क्या कहा?"

"और क्या कहता! कहा कि तुम अच्छी हो।"

"फिर?"

"फिर क्या! लगा, घर के अन्दर पूरियां छन रही हैं।"

नयनतारा ने कहा, "तो तुमने उसी समय मेरे गहने का जिक्र क्यों नहीं किया? कहा क्यों नहीं कि नयनतारा के गहने दे दीजिए—"

निखिलेश क्या जवाब दे, समझ नहीं सका। जरा सोचकर तुरन्त बोला, "कहने की मैंने सोची थी। फिर ख्याल आया, कहीं कुछ अपमान कर बैठे। आखिर गाल बढ़ाकर चपत खाने जाता!"

नयनतारा ने कहा, "क्या कहते हैं। अजी, वे सब तो मेरे ही हैं। व्याह के समय मुझीको मिले थे, लिहाजा वह सब तो मुझे ही मिलना चाहिए।"

निखिलेश ने कहा, "गहने मांगने में एक बार मुझे काफी सबक मिल चुका है, फिर किस हिम्मत से मुंह खोलता? इसीलिए कुछ नहीं कहा गया, और बैरंग वापस आ गया।"

नयनतारा बोली, "मेरे गहने मांगने में तुम्हें अगर इतनी शरम आती है तो मैं ही जाऊंगी। मैं स्वयं जाकर अपने गहने मांग लाऊंगी।"

"तुम जाओगी?"

निखिलेश भीतर से डर गया। नयनतारा कहीं सचमुच ही नवाबगंज जाने की जिद पकड़े, तो?

निखिलेश ने कहा, "छिः, तुम क्यों जाओगी? तुम वहां जाओगी, तो लोग क्या कहेंगे, कहो तो?"

नयनतारा ने कहा, "लोग जो जी चाहे कहें, उससे मेरा क्या आता-जाता है?"

निखिलेश ने कहा, "फिर भी। आखिर कभी तुम उस घर की बहू थी,

चलेगी थोड़ी-सी ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं भई, अब वह सब नहीं छूने का—"

"क्यों, क्या हो गया ?"

निखिलेश ने कहा, "ठाकुर के नाम पर बीवी ने मुझसे शपथ करा ली है कि जीवन में कभी शराब नहीं छूऊंगा।"

शीतेश ने कहा, "इसीलिए तो मैंने शादी नहीं की भाई ! शादी करता तो मैं भी बीवी का भड़ुआ बन जाता—"

शीतेश इसके बाद रुका नहीं। जहां जाना था, चला गया।

घर में नयनतारा उसकी बाट जोह रही थी। देखते ही पूछा, "कुछ ठीक किया ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं···"

"तो इतनी देर तक कहां रहे ? क्या किया ?"

"गया तो बहुत जगह। पर असल तो है रुपया। पांच हजार रुपये के बिना तो किसी भी व्यवसाय में हाथ नहीं डाला जा सकता। रुपये कहां से आएंगे ?"

यह बात दोनों ही जानते थे। बगैर रुपये के कुछ नहीं हो सकता, यह कोई ऐसी नई बात तो नहीं। फिर भी निखिलेश को एक क्षीण आशा थी कि शीतेश शायद ऐसा कोई रास्ता बताए, जिसमें रुपया कम लगे। शीतेश कलकत्ता में ही रहता है, यहीं पैदा हुआ, बहुतों को पहचानता है। इसके भाई वगैरह बड़े आदमी हैं। केवल वही अलग रहता है और जो कमाता है, दोनों हाथों उड़ाता है। आप वह धनी नहीं हो सका, धनी होने की उसे इच्छा भी नहीं।

नयनतारा ने कहा, "रुपये तो लेकिन कर्ज भी मिल सकते हैं—"

निखिलेश ने कहा, "मैंने वह भी सोचा है। लेकिन कहीं व्यवसाय में नुकसान हुआ तो ? फिर तो लेने के देने पड़ेंगे। उससे अच्छा है कि खूब सोच-समझकर ही हाथ डाला जाए।"

"तो, क्या व्यवसाय करोगे ?"

निखिलेश ने कहा, "वह फिर सोच-समझकर ठीक किया जाएगा। पहले यह सोच रहा हूं कि रुपया कहां से आएगा—"

"मैं अगर अपने गहने बेच दूं तो कितने रुपये मिल सकते हैं ?"

"गहने बेच दोगी। जो गहना सुनार के यहां गिरवी है, अभी तक तो वही छुड़ाया नहीं जा सका है।"

नयनतारा ने कहा, "रुपया होने पर गहने फिर हो जाएंगे, अभी तो ये काम आ जाएं। हमारे आफिस की माला बोस ने भी तो पहले गहना ही बेचा था। अब उसने नये गहने खरीद लिए।"

मगर गहना कहने को नयनतारा को है भी क्या ! दोनों हाथों में चार-चार चूड़ियां और एक पतला-सा चेन-हार। कुल मिलाकर बहुत होगा तो तेरह-चौदह तोला। सौ-डेढ़ सौ रुपया तोला भाव है सोने का। बेचने से शायद

डेढ़ हज़ार भी नहीं मिलेगा। अथच कितना सोना था उसे। ससुर ने हीरे का सीताहार देकर उसका मुंह देखा था। सास ने भी जड़ाऊ बाला दिया था—हीरा-पन्ना जड़ा। और भी जो कितने गहने थे, ठिकाना नहीं। उस समय नयनतारा को थोड़े ही पता था कि वह फिर से ब्याह करेगी। उसकी फिर से गिरस्ती बसेगी। उसे क्या पता था कि उसे कभी नौकरी करनी पड़ेगी? या कि यही जानती थी कि पांच हज़ार रुपये के लिए उसे कभी गहने गिरवी रखने की नौबत आएगी।

सुबह निखिलेश के जगते ही नयनतारा ने कहा, "अच्छा, तुम जो उस दिन नवाबगंज गए, तो तुमने मेरे गहने क्यों नहीं मांग लिए?"

निखिलेश को याद नहीं था। वह बोला, "मैं नवाबगंज गया था? कब?"

"खूब! तुम्हें याद नहीं है? तुमने ही तो कहा था कि तुम नवाबगंज गए थे। उसने तुमसे मेरे बारे में पूछा—"

निखिलेश को अब याद आया। उसे उस झूठ कहने की याद नहीं थी। बोला, "हां, पूछा तो था। पूछा था कि नयनतारा कैसी है!"

"तो तुमने क्या कहा?"

"और क्या कहता! कहा कि तुम अच्छी हो।"

"फिर?"

"फिर क्या! लगा, घर के अन्दर पूरियां छन रही हैं।"

नयनतारा ने कहा, "तो तुमने उसी समय मेरे गहने का ज़िक्र क्यों नहीं किया? कहा क्यों नहीं कि नयनतारा के गहने दे दीजिए—"

निखिलेश क्या जवाब दे, समझ नहीं सका। ज़रा सोचकर तुरन्त बोला, "कहने की मैंने सोची थी। फिर ख्याल आया, कहीं कुछ अपमान कर बैठें। आखिर गाल बढ़ाकर चपत खाने जाता!"

नयनतारा ने कहा, "क्या कहते हैं। अजी, वे सब तो मेरे ही हैं। ब्याह के समय मुझीको मिले थे, लिहाजा वह सब तो मुझे ही मिलना चाहिए।"

निखिलेश ने कहा, "गहने मांगने में एक बार मुझे काफी सबक मिल चुका है, फिर किस हिम्मत से मुंह खोलता? इसीलिए कुछ नहीं कहा गया, और बैरंग वापस आ गया।"

नयनतारा बोली, "मेरे गहने मांगने में तुम्हें अगर इतनी शरम आती है तो मैं ही जाऊंगी। मैं स्वयं जाकर अपने गहने मांग लाऊंगी।"

"तुम जाओगी?"

निखिलेश भीतर से डर गया। नयनतारा कहीं सचमुच ही नवाबगंज जाने की ज़िद पकड़े, तो?

निखिलेश ने कहा, "छिः, तुम क्यों जाओगी? तुम वहां जाओगी, तो लोग क्या कहेंगे, कहो तो?"

नयनतारा ने कहा, "लोग जो जी चाहे कहें, उससे मेरा क्या आता-जाता है?"

निखिलेश ने कहा, "फिर भी। आखिर कभी तुम उस घर की बहू थी,

तुमने दुबारा शादी की। यह सब देखकर-सुनकर लोग क्या कहेंगे, यही सोचो ! वह कुछ कलकत्ता तो है नहीं, नैहाटी भी नहीं है, बिलकुल गंवई है। वे लोग जब पूछेंगे कि अब तक कहां थीं, तो क्या कहोगी ? एक दिन ही तो सास-ससुर को खरी-खोटी सुनाकर चली आई थीं, सबके सामने मांग सिंदूर पोंछ डाला था, कलाई की चूड़ियां फोड़ डाली थीं। अब फिर उन आगे सिर नवाकर हाथ फैलाने में तुम्हें शरम नहीं आएगी ?"

नयनतारा ने कहा, "हाथ फैलाने की बात क्यों कह रहे हो ? मैं दया की भीख थोड़े ही मांगने जा रही हूं ? अपनी चीज मांगने में शरम कैसी

"न:, वे लोग फिर भी यह सोचेंगे कि रुपयों की कमी से तुम उनके सिर झुका रही हो। सोच ही सकते हैं। उनके सोचने को तो तुम नहीं सकती—"

नयनतारा ने कहा, "वे जो चाहें, सोचें। फिर सच तो यह है कि र की जरूरत भी तो है हमें। यह रोज नैहाटी से कलकत्ता जाना-आ कलकत्ता में अपना एक मकान होता, तो कितनी सुविधा होती। मेरे उन ग को बेचने से कुछ नहीं तो पचास हजार रुपये तो जरूर ही होंगे। उनसे छो मोटा कोई मकान खरीदकर जो रुपये बच रहेंगे, उनसे कोई व्यवसाय भी कर सकते हैं हम। वे लोग बड़े आदमी हैं। उन्हें पचास हजार रहे तो और न रहे तो क्या ?"

निखिलेश ने कहा, "सदानन्द बाबू जब यहां थे, तुम उनसे गहनों का कर सकती थीं। वैसे में तुम्हें वह सब मांगने के लिए जाना नहीं पड़ता—

"मुझे उस समय याद नहीं था। तुमने याद क्यों नहीं दिलाई ?"

निखिलेश ने कहा, "तुम्हारे गहनों की मैं याद दिलाता। फिर तो हो था। उस समय तुम्हारा मिजाज ही ऐसा था कि तुम्हारी शक्ल देखने में डर लगता था।"

"क्या जो कहते हो तुम ! एक बीमार आदमी की सेवा भी नहीं कर एक मरते हुए को जिला दिया, यही मेरा दोष हो गया ?"

निखिलेश बोला, "छोड़ो भी, वह सब गड़ा मुर्दा उखाड़ने की ज़ नहीं। बीत गई, सो बात गई। बला ही टली। अब उसके लिए कड़वाहट क्या काम…"

नयनतारा ने कहा, "नहीं, कड़वाहट की बात नहीं। मैं मगर नवा जाऊंगी। कल छुट्टी है। कल सबेरे की ट्रेन से ही निकल जाऊंगी। दो की ट्रेन से लौट आऊंगी। खाना-पीना यहीं आकर होगा। वे लोग खाने को कहें भी तो देखना, तुम तैयार मत हो जाना। घृणा से जिस घर छोड़ आई हूं, वहां पानी पीना भी पाप है।"

गिरिबाला को बुलाकर उसने कहा, "सुनो, हम कल सबेरे ही ब जाएंगे। तुम्हें सुबह-सुबह चूल्हा नहीं सुलगाना पड़ेगा। चाय हम लोग बाह पी लेंगे। तुम इतमीनान से अपनी चाय बना लेना। हम दोपहर के बाद अ ——ंगे।"

निखिलेश ने आपत्ति के लहजे से कहा, "कल ही नहीं गई तो क्या, आगे कभी जाया जाएगा—इतनी जल्दी क्या है ?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं, कल ही चलेंगे। तुम्हें मैं जल्दी जगा दूंगी।"

निखिलेश बड़ी मुश्किल में पड़ा। ऐसी ज़िद्दी है यह कि जब एक बार नवाबगंज जाने की कह चुकी, तो जाकर ही रहेगी। उसे रोका नहीं जा सकता। उस दिन खामखा ही मैंने क्यों झूठ कह दिया कि मैं नवाबगंज गया था ! पता होता कि निखिलेश की बात पर विश्वास करके नयनतारा कभी खुद ही वहां जाना चाहेगी, तो क्या वह झूठ बोलकर उसके मन को यों फिराना चाहता ? ठीक से भोर भी नहीं हुई थी। चारों तरफ खासा अंधेरा ही था। नयनतारा निखिलेश को ठेलने लगी, "अजी ओ, उठो-उठो, देर हो जाएगी—"

निखिलेश पड़ा नहीं रह सका। उठ बैठा। लेकिन उसे बड़ा डर लगने लगा। नवाबगंज जाकर जाने क्या देखना पड़े ! यदि सदानन्द बाबू वहां नहीं हों ! यदि वहां कोई भी न हो, तो ?

तब तक ट्रेन आने का समय होता जा रहा था। नयनतारा के साथ निखिलेश ने भी अंधेरे रास्ते पर चलना शुरू कर दिया।

देश वही सन् '47 में ही स्वाधीन हो चुका था। स्वाधीनता के साथ-ही-साथ देश का इतिहास-भूगोल, सब धीरे-धीरे बदल गया था। और सबसे ज्यादा बदल गया था कलकत्ता शहर। दो सौ साल का कूड़ा-कड़कट क्या इतनी आसानी से साफ हो सकता है। फिर भी जितना साफ हो सकता था, उतना शायद हुआ था। लेकिन नवाबगंज में ज़रा भी कुछ नहीं हुआ था। उस समय भी रेल-बाज़ार में कोई ट्रेन आ लगती, तो सामने कई रिक्शे सवारी की उम्मीद में खड़े रहते। रिक्शे पर जाने वाले लोग खास नहीं मिलते। मिलते भी तो आस ही पास जाने वाले।

नवाबगंज जाने वाले लोग विशेष नहीं मिलते। मिलते भी तो कभी-कभार। नवाबगंज में रिक्शा चढ़ने वाले लोग ज्यादा नहीं हैं। नवाबगंज अब तक भी मुगलों के ही अमल में ठहरा हुआ था। पहले की तरह बस अभी भी चलती थी। लेकिन वह नवाबगंज तक नहीं जाती। नवाबगंज के पास से सीधे बाजितपुर की ओर चली जाती। कोई बीमार पड़े, तो उसे रेल-बाज़ार ही जाना पड़ेगा। बच्चों को लिखने-पढ़ने के लिए भी रेल-बाज़ार के ही स्कूल कालेज में जाना पड़ेगा। स्वाधीनता के इतने दिनों के बाद भी नवाबगंज पांडव-वर्जित प्रदेश ही रह गया था।

बरवारी-थान में निताई हालदार की दूकान के चौतरे पर अभी भी ताश का अड्डा जमा करता। बिहारी पाल के मोदीखाने में लोग आज भी तेल-हल्दी-मसाला खरीदा करते।

तुमने दुबारा शादी की। यह सब देखकर-सुनकर लोग क्या कहेंगे, यही सोचो! वह कुछ कलकत्ता तो है नहीं, नैहाटी भी नहीं है, बिलकुल गंवई है। वे लोग जब पूछेंगे कि अब तक कहां थीं, तो क्या कहोगी? एक दिन ही तो सास-ससुर को खरी-खोटी सुनाकर चली आई थीं, सबके सामने मांग सिंदूर पोंछ डाला था, कलाई की चूड़ियां फोड़ डाली थीं। अब फिर उ आगे सिर नवाकर हाथ फैलाने में तुम्हें शरम नहीं आएगी?"

नयनतारा ने कहा, "हाथ फैलाने की बात क्यों कह रहे हो? मैं दया की भीख थोड़े ही मांगने जा रही हूं? अपनी चीज़ मांगने में शरम कैसी

"न:, वे लोग फिर भी यह सोचेंगे कि रुपयों की कमी से तुम उनके सिर झुका रही हो। सोच ही सकते हैं। उनके सोचने को तो तुम नहीं सकती—"

नयनतारा ने कहा, "वे जो चाहें, सोचें। फिर सच तो यह है कि की ज़रूरत भी तो है हमें। यह रोज़ नैहाटी से कलकत्ता जाना-आ कलकत्ता में अपना एक मकान होता, तो कितनी सुविधा होती। मेरे उन ग को बेचने से कुछ नहीं तो पचास हज़ार रुपये तो ज़रूर ही होंगे। उनसे छ मोटा कोई मकान खरीदकर जो रुपये बच रहेंगे, उनसे कोई व्यवसाय भी कर सकते हैं हम। वे लोग बड़े आदमी हैं। उन्हें पचास हज़ार रहे तो और न रहे तो क्या?"

निखिलेश ने कहा, "सदानन्द बाबू जब यहां थे, तुम उनसे गहनों का कर सकती थीं। वैसे में तुम्हें वह सब मांगने के लिए जाना नहीं पड़ता—

"मुझे उस समय याद नहीं था। तुमने याद क्यों नहीं दिलाई?"

निखिलेश ने कहा, "तुम्हारे गहनों की मैं याद दिलाता। फिर तो हो था। उस समय तुम्हारा मिजाज ही ऐसा था कि तुम्हारी शक्ल देखने में डर लगता था।"

"क्या जो कहते हो तुम! एक बीमार आदमी की सेवा भी नहीं कर एक मरते हुए को जिला दिया, यही मेरा दोष हो गया?"

निखिलेश बोला, "छोड़ो भी, वह सब गड़ा मुर्दा उखाड़ने की ज़ नहीं। बीत गई, सो बात गई। बला ही टली। अब उसके लिए कड़वाहट क्या काम···"

नयनतारा ने कहा, "नहीं, कड़वाहट की बात नहीं। मैं मगर नवा जाऊंगी। कल छुट्टी है। कल सवेरे की ट्रेन से ही निकल जाऊंगी। दो की ट्रेन से लौट आऊंगी। खाना-पीना यहीं आकर होगा। वे लोग खाने को कहें भी तो देखना, तुम तैयार मत हो जाना। घृणा से जिस घर छोड़ आई हूं, वहां पानी पीना भी पाप है।"

गिरिबाला को बुलाकर उसने कहा, "सुनो, हम कल सवेरे ही ब जाएंगे। तुम्हें सुबह-सुबह चूल्हा नहीं सुलगाना पड़ेगा। चाय हम लोग बाह पी लेंगे। तुम इतमीनान से अपनी चाय बना लेना। हम दोपहर के बाद आ जाएंगे—"

निखिलेश ने आपत्ति के लहजे से कहा, "कल ही नहीं गई तो क्या, आगे कभी जाया जाएगा—इतनी जल्दी क्या है ?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं, कल ही चलेंगे। तुम्हें मैं जल्दी जगा दूंगी।"

निखिलेश बड़ी मुश्किल में पड़ा। ऐसी जिद्दी है यह कि जब एक बार नवाबगंज जाने की कह चुकी, तो जाकर ही रहेगी। उसे रोका नहीं जा सकता। उस दिन खामखा ही मैंने क्यों झूठ कह दिया कि मैं नवाबगंज गया था! पता होता कि निखिलेश की बात पर विश्वास करके नयनतारा कभी खुद ही वहां जाना चाहेगी, तो क्या वह झूठ बोलकर उसके मन को यों फिराना चाहता? ठीक से भोर भी नहीं हुई थी। चारों तरफ खासा अंधेरा ही था। नयनतारा निखिलेश को ठेलने लगी, "अजी ओ, उठो-उठो, देर हो जाएगी—"

निखिलेश पड़ा नहीं रह सका। उठ बैठा। लेकिन उसे बड़ा डर लगने लगा। नवाबगंज जाकर जाने क्या देखना पड़े! यदि सदानन्द बाबू वहां नहीं हो! यदि वहां कोई भी न हो, तो ?

तब तक ट्रेन आने का समय होता जा रहा था। नयनतारा के साथ निखिलेश ने भी अंधेरे रास्ते पर चलना शुरू कर दिया।

देश वहीं सन् '47 में ही स्वाधीन हो चुका था। स्वाधीनता के साथ-ही-साथ देश का इतिहास-भूगोल, सब धीरे-धीरे बदल गया था। और सबसे ज्यादा बदल गया था कलकत्ता शहर। दो सौ साल का कूड़ा-कड़कट क्या इतनी आसानी से साफ हो सकता है। फिर भी जितना साफ हो सकता था, उतना शायद हुआ था। लेकिन नवाबगंज में जरा भी कुछ नहीं हुआ था। उस समय भी रेल-बाजार में कोई ट्रेन आ लगती, तो सामने कई रिक्शे सवारी की उम्मीद में खड़े रहते। रिक्शे पर जाने वाले लोग खास नहीं मिलते। मिलते भी तो यास ही पास जाने वाले।

नवाबगंज जाने वाले लोग विशेष नहीं मिलते। मिलते भी तो कभी-कभार। नवाबगंज में रिक्शा चढ़ने वाले लोग ज्यादा नहीं हैं। नवाबगंज अब तक भी मुगलों के ही अमल में ठहरा हुआ था। पहले की तरह बस अभी भी चलती थी। लेकिन वह नवाबगंज तक नहीं जाती। नवाबगंज के पास से सीधे बाजितपुर की ओर चली जाती। कोई बीमार पड़े, तो उसे रेल-बाजार ही जाना पड़ेगा। बच्चों को लिखने-पढ़ने के लिए भी रेल-बाजार के ही स्कूल कालेज में जाना पड़ेगा। स्वाधीनता के इतने दिनों के बाद भी नवाबगंज पांडव-वर्जित प्रदेश ही रह गया था।

बरवारी-थान में निताई हालदार की दूकान के चौंतरे पर अभी भी ताश का अड्डा जमा करता। बिहारी पाल के मोदीखाने में लोग आज भी तेल-हल्दी-मसाला खरीदा करते।

अचानक परमेश मौलिक की नज़र पड़ी। रिक्शे पर कौन जा रहे हैं!

उसने रिक्शावाले से ही पूछा, "कहां के यात्री हैं जी?"

रिक्शे वाले ने कहा, "नवाबगंज के, चौधरी जी के यहां।"

चौधरी परिवार का नाम सुनते ही सब अवाक् रह गए। चौधरियों का घर तो भूतों का अड्डा हो गया है। छोटे चौधरी घर बेचकर कबके सुलतानपुर चल दिए, यह क्या इन लोगों को मालूम नहीं है? और, चौधरी जी भी तो कबके गुज़र गए। एक दिन साला बाबू ने आकर यह भी बताया था। तो? इतने दिनों के बाद ये लोग किनकी तलाश में आए हैं?

निताई हालदार, गोपाल पाट, केदार—अब ये सब भी उत्सुक हो उठे। रिक्शा के सामने परदा पड़ा था। अन्दर से किसी औरत की शक्ल की झलक-सी मिल रही थी।

गोपाल पाट ने कहा, "रिक्शे में कौन हैं?"

रिक्शे के भीतर निखिलेश ने कहा, "देख रही हो रबैया। इनको हर कुछ जानना ही चाहिए। बिना जाने ये पिंड नहीं छोड़ने के—"

परदा खिसकाकर निखिलेश ने मुंह निकालकर पूछा, "चौधरियों के यहां कोई नहीं है?"

परमेश मौलिक ने जवाब देने के बजाय सवाल ही किया, "आप लोग कहां से आ रहे हैं?"

"हम लोग नैहाटी से आ रहे हैं। सदानन्द बाबू यहां हैं?"

निताई हालदार, गोपाल पाट और भी हैरान रह गए। अभी-अभी कुछ ही दिन पहले तो साला बाबू सदा की खोज में आया था। अब ये उसकी तलाश में क्यों आए? इन्हें भी क्या रुपयों का ही लालच है?

नयनतारा ने कहा, "तुमने तो कहा था कि वह नवाबगंज में ही रहता है, तुमने यहां उससे भेंट की है?"

नयनतारा को सब कुछ कैसा गोल-माल-सा लगा।

निखिलेश को कोई जवाब नहीं सूझा। बोला, "लगता है, सदानन्द बाबू कहीं चले गए। मैं जिस दिन आया था, उस दिन तो थे—"

परमेश मौलिक ने कहा, "वह तो कई साल से ही बिलकुल लापता है साहब! आप लोग क्या नये-नये आए हैं?"

निखिलेश ने इसका जवाब नहीं दिया। रिक्शावाले से कहा, "ऐ रिक्शा वाले, चलो-चलो—"

लेकिन नयनतारा बोली, "नहीं। नहीं जाएगा। रुको—"

और नयनतारा हठात् रिक्शा से नीचे उतर पड़ी। उतरकर बिलकुल निताई हालदार की दूकान के सामने जाकर खड़ी हो गई। पूछा, "सदानन्द बाबू क्या यहां नहीं रहते हैं?"

निताई हालदार ने तो मानो अपने सामने भूत देखा। यह सदानन्द की बहू है न। परमेश मौलिक ने भी पहचान लिया। अचरज और कौतूहल से सबकी आंखें अपलक हो गईं। उन्होंने सपने में भी यह नहीं सोचा था कि उस समय

की बहूरानी को ये कभी इस अवस्था में देख सकेंगे । किसीके भी मुंह से कोई बात नहीं निकल रही थी ।

उधर से बिहारी पाल ने भी देखकर शक्ल पहचानी । वह दौड़ा-दौड़ा घर के अन्दर गया ।

अपनी पत्नी से कहा, "सुनती हो ? कहां गई ? जरा देख आओ, कौन आए हैं—"

पूरे बरवारी-थान में बिजली-सी खेल गई । यों नवाबगंज शान्त-सी जगह है । चौंकाने जैसा हादसा शायद ही कभी-कभार होता है । लोगों के जीवन में कहीं कोई वैचित्र्य नहीं । सूरज को सवेरे उगना ही पड़ता है, इसलिए वह उगता है और चूंकि सांझ होती है, इसलिए ही वह डूबता है । यह सोचा भी नहीं जा सकता था कि सदा की बहू को इस तरह से बरवारी-थान में कभी देखा जा सकेगा । उनके तो ताश के साहब-बीबी-गुलाम—सब हवा हो गए ।

सामने ही जीती-जागती बीबी खड़ी थी ।

"क्यों, चौधरियों के यहां कोई नहीं है ?"

चौधरियों का मकान बरवारी-थान में ही दिखाई पड़ रहा था । सामने ही जंगल-झाड़ियां, दीवाल में पीपल का पौधा बढ़कर [illegible] हुआ है । [illegible] मकान-सा हो गया है ।

निताई हालदार ने कहा, "जी, वे लोग तो [illegible] । [illegible] की पत्नी भी गुजर गईं और छोटे चौधरी भी [illegible] । और उनका लड़का सदानन्द—वह तो लापता ही है—"

नयनतारा अवाक् हो गई, "लापता है । [illegible] वह अब यहीं रहते हैं ?"

"आपने गलत सुना है । किसीने [illegible] । [illegible] एक जमाने से गायब हैं । सिर्फ एक बार [illegible] इस मकान को रेल-बाजार के प्राणकृष्ण [illegible] मकान उनको लहा नहीं । खरीदने के दो दिन [illegible] तो यह मकान लावारिस ही पड़ा है—"

सुनकर नयनतारा एकाएक निस्तब्ध [illegible] तो कहा था, मकान की शक्ल एकदम नई [illegible]

निखिलेश कुड़कुड़ाने लगा । शायद [illegible] देता, लेकिन बिहारी पाल की पत्नी ने [illegible]

सुनते ही बिहारी पाल की पत्नी [illegible] "बहू" कहती हुई वह सीधे आगे बढ़ती आ [illegible] बढ़ी । बिहारी पाल की पत्नी ने [illegible]

"अरे बाप रे, कितने दिनों के बाद [illegible]

नयनतारा ने कहा [illegible]

नानी [illegible]

[illegible]

अन्दर ले जाकर नानीजी बहुत-बहुत बातें कहने लगीं। बोलते-बोलते उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। बिहारी पाल को लड़का-बाला नहीं है। नयनतारा जब यहां बहू बनकर आई थी, तो पाल की पत्नी ने उसे अपनी बेटी जैसा ही मान लिया था। वह आज इतने दिनों के बाद लौटकर आई है, यह खुशी रख सकने लायक जगह नहीं थी उसे।

नयनतारा ने पूछा, "इन लोगों के यहां कोई है क्यों नहीं नानीजी ?"

नानीजी ने कहा, "कौन रहेगा यहू ? आखिर है कौन ? तुम गई और इस घर का नाश शुरू हुई। तब से यह घर भूतों का बसेरा है—"

जवाब में नयनतारा क्या कहती ! वह खुलकर यह बात बोल नहीं सकी कि वह सदानन्द से अपने गहने मांगने के लिए आई थी।

नयनतारा ने कहा, "तो मैं चलूं नानीजी—"

नानीजी ने कहा, "अरे वाह, इतने दिनों के बाद आई और ऐसी ही इतनी जल्दी लौट जाओगी ?"

"मेरे साथ आदमी है। रिक्शे पर है। लौटने में देर हो जाएगी। नैहाटी जाना होगा। महरी से रसोई बनाकर रखने के लिए कह आई हूं।"

"नैहाटी ? नैहाटी किसलिए ? वहां तुम्हारा कौन है ?"

नयनतारा ने कहा, "अब तो मैं नैहाटी में ही रहती हूं। ब्याह करने के बाद से मैं वहीं हूं। हम दोनों कलकत्ता में नौकरी करते हैं—रोज नैहाटी से ही आया-जाया करते हैं।"

सुनकर नानीजी मानो आसमान से गिर पड़ीं। उसने और भी तीखी नजर से नयनतारा की ओर निहारा। सच तो, नयनतारा की मांग में सिंदूर है। हाथ में अहिवात का चिन्ह—लोहे की चूड़ी है। मगर…

नयनतारा बैठी नहीं। बाहर निकल आई। निखिलेश चुपचाप रिक्शे पर बैठा था। नयनतारा रिक्शे पर बैठी और निखिलेश से बोली, "तुमने मुझसे सब कुछ झूठ कहा था ? बोलो, झूठ क्यों कहा था ? यहां तो कोई भी नहीं रहता है। वह भी तो यहां नहीं है। फिर तुमने ऐसा क्यों कहा था कि घर की नये सिरे से मरम्मत कराई है, घर में खूब धूमधाम हो रही थी, अन्दर से पूरी छनने की गंध आ रही थी, घी की। मुझे फुसलाने के लिए ? बोलो ? बोल क्यों नहीं रहे हो, जवाब दो—"

रिक्शा फिर बरवारी-थान होकर रेल-बाजार की ओर चल पड़ा था।

नयनतारा बार-बार पूछने लगी, "बोलो, तुमने मुझे उस तरह से ठगा क्यों था ? वह अच्छा रहेगा तो मैं खुश रहूंगी, इसीलिए या वह कहकर तुमने मुझे भुलाना चाहा था ? क्या बात थी ?"

रिक्शा वाला धूल-कादो में रिक्शे को खींचता चला जा रहा था।

नयनतारा फिर कहने लगी, "बोलो ? यानी आज तक तुम मुझसे जो भी कहते आए, सब झूठ ? सरासर झूठ ? मगर मैंने तो सरल मन से तुम्हारी सारी झूठी बातों पर विश्वास जो किया। तुम इतने झूठे हो ?"

नयनतारा ने फिर पूछा, "कहां, जवाब नहीं दे रहे हो ?"

निखिलेश ने कहा, "देखो, मैंने तुमसे झूठ नहीं कहा। मैंने जो सुना था, वही, तुमसे कहा था। न कुछ बढ़ाकर कहा, न कुछ घटाकर कहा—"

नयनतारा ने कहा, "तुम फिर झूठ बोल रहे हो? अपनी गलती कबूल करने में इतनी शरम? आखिर तुम सोचते क्या हो? चालाक एक तुम्हीं हो, बाकी सब बुद्धू हैं? तुमने सोचा था, ये बातें कहने से मैं सदानन्द बाबू पर बहुत बिगड़ जाऊंगी, है न? सोचा था, मेरा मन अब उधर नहीं ढलेगा, क्यों? लेकिन तुमने तो यह सोचा ही नहीं कि यह सम्भव नहीं। आश्चर्य है—वह और तुम? उससे अपनी तुलना करते हो? जानते हो, वह आदमी नहीं, देवता है। वह तुम्हारे जैसा जानवर और पशु नहीं है—"

नैहाटी लौटने के बाद भी नयनतारा का गुस्सा नहीं उतरा। जब तक ट्रेन में थी, रास्ते-भर वह एक बात भी नहीं बोली। धीरे-धीरे नयनतारा के मन को स्वाभाविक करने की कोशिश करते-करते अब कहीं उसे थोड़ी-सी कामयाबी मिली थी। बहुत-बहुत झूठी बातें, खुशामद की कह-कहकर वह नयनतारा को कुछ शान्त कर पाया था—वह सारा किया कराया भी एक ही दिन में बिगड़ गया।

शीतेश ने उस दिन कहा, "क्यों जी, फिर मायूस क्यों? क्या हुआ फिर?"

निखिलेश ने कहा, "कुछ अच्छा नहीं लगता है भाई—"

शीतेश सदा का बेपरवाह आदमी है। बोला, "अरे भई, मन को तरह न दो, उसे जहां तरह दी कि वह कम्बख्त हावी हो जाएगा। इसीलिए तो मैं शराब पीता हूं। पीते ही कम्बख्त मन काबू हो जाता है।"

जरा देर में फिर बोला, "जानते हो, उस दिन मानदा मौसी तुम्हारे बारे में पूछ रही थी। और एक दिन वहां लिवा जाने को कह रही थी—"

निखिलेश ने कहा, "मैं जाकर क्या करूंगा? रुपये का बंदोबस्त किए बिना वहां जाने से क्या फायदा?"

शीतेश ने कहा, "लोन लो, कर्ज करो।"

निखिलेश ने कहा, "वह कर्ज चुकाऊंगा कैसे? कर्ज लेने में मुझे डर लगता है। अंत तक कर्ज के चलते यह-वह दोनों ही कुल जाएंगे।"

"कैसी बात करते हो? कारबार करने में बिना कर्ज के चलता है? कौन कर्ज नहीं लेता? टाटा कर्ज नहीं लेता? बिड़ला नहीं लेता? इधर धनी बनने की इच्छा और कर्ज लेने में भी डर। इसीको मिडिल क्लास मेंटेलिटी कहते हैं। कहो तो कम सूद पर रुपये कर्ज दिला सकता हूं—"

निखिलेश ने कहा, "नहीं भैया उसका लोभ मत दिखाओ—"

सच तो, निखिलेश मध्यवित्त परिवार का लड़का है। रुपया कर्ज लेकर आखिर राह पर बैठेगा। कभी देश सेवा की कामना से उसने अपना जीवन

शुरू किया था, फिर जाने कैसे, किस चक्कर से वह कामना किरानीगिरी पर उतर आई। उस समय के वे बड़े-बड़े सपने कहां चले गए ? अब वह आदर्शवाद नहीं है, वह उदारता भी नहीं है। पहले कहां-कहां चंदा देकर अपने रुपये उड़ाए। मनुष्य की भलाई करने की वह झूठी विलासिता भी जाने कब मन से गायब हो गई। अब लगता है, सब सिर्फ स्वार्थी हैं। और जब सभी स्वार्थी हैं तो वही क्यों नहीं होगा ?

आफिस से निकलने के बाद भी घर लौटने की उसे वैसी जल्दी नहीं। पहले दौड़ते हुए नयनतारा के आफिस में जाना पड़ता था। निखिलेश जब तक नहीं पहुंचता, नयनतारा आफिस के सामने चुपचाप खड़ी रहती। अब नयन-तारा ने फिर से आफिस आना छोड़ दिया है। कहा है, "अब वह नौकरी नहीं करेगी।"

उसने कहा है, "मुझे नौकरी की भी जरूरत नहीं और रुपयों की भी जरूरत नहीं। तुमने जब मुझसे शादी की है, तो मेरे खाने-पहनने की सारी जिम्मेदारी तुम्हारी है।"

निखिलेश ने कहा, "मैं तो कह चुका हूं कि तुम मुझे क्षमा करो—"

नयनतारा ने कहा, "तुमने मेरा जो नुकसान किया है, उसके बाद भी तुम्हें क्षमा मांगने में शरम नहीं आती ? तुमने क्या सोच रखा है कि तुम एक के बाद दूसरा दोष करते जाओ और मैं तुम्हें क्षमा करती रहूं। दोष करने की भी तो कोई सीमा होती है। तुमने उस सीमा का ख्याल भी रखा है कि मैं तुम्हें क्षमा करूं ? और क्षमा करने की बात ही क्यों आती है ? मुझसे नाता रखने की ही तुम्हें क्या पड़ी है ? मुझे छोड़ दो न—"

"छोड़ दूं ? मतलब ?"

"हां, छोड़ दो। आजक़ल तो यह कानून भी पास हो गया है। और अगर तुमसे न बने तो न हो तो मैं ही छोड़कर चली जाऊं।"

"कहां ? कहां जाओगी तुम ?"

"जी चाहे, जहां चली जाऊंगी—तुम्हें क्यों बताऊं ? मुझे बड़ा अरमान था कि मैं घर बसाऊंगी। मगर जब ईश्वर की ऐसी इच्छा नहीं है तो नाहक ही उसकी कोशिश क्यों ? आजकल तो बहुतेरी स्त्रियां अनब्याही रह रही हैं, न होगा तो मैं भी उसी तरह से अकेली ही जिन्दगी गुज़ार दूंगी। सोच लूंगी कि मेरा कोई नहीं है।"

निखिलेश ने कहा, "नहीं, नहीं, यह सब खुराफात न करो, लोग खिल्ली उड़ाएंगे।"

"तुम चुप भी तो रहो। लोगों का खिल्ली उड़ाना बड़ा है कि आदमी का मन बड़ा है। लोग-बाग क्या कहते, नहीं कहते, मेरी बला से। किसीके सहने की भी सीमा होती है।"

निखिलेश ने निकट जाकर नेह जताया। कहा, "सुनो, अब इन बातों पर इतना मत सोचो। जितना ही सोचोगी, दिमाग गरम होगा—"

नयनतारा ने झटके से उसका हाथ हटा दिया। कहा, "हट जाओ तुम।

तुम्हारा मुंह देखने में भी मुझे नफरत होती है—"

फिर उसने दिन-भर निखिलेश से बात नहीं की। आफिस जाने के समय निखिलेश रोज गिरिवाला से कह जाता, "तुम जरा नजर रखना गिरिवाला, दीदीजी कहीं बाहर न चली जाएं।"

वह जरूर जाता, मगर आफिस में भी निखिलेश के मन में शान्ति नहीं रहती। काम करते-करते घर की ही याद आती। नयनतारा कहीं सचमुच ही चली जाए।

एक ही घर में, एक ही छत के नीचे रहना, मगर आपस में बातचीत, बोल-चाल नहीं। ऐसा आखिर कब तक सहा जाए। निखिलेश का दम घुट आता।

कभी-कभी नयनतारा के सामने जाकर कहता, "क्या हुआ, बोलोगी नहीं?"

उस दिन आधी रात को कहीं कोई आवाज हुई कि निखिलेश को संदेह हुआ। लगा, बगल के कमरे की कुंडी खोलकर नयनतारा बाहर चली जा रही है। वह फौरन उठा। उस कमरे के पास गया। देखा, कमरा अन्दर से बंद है। बाहर से कान लगाकर उसने सुना—नः, वह अन्दर ही है। सो रही है। खामखा ही डर गया था वह। वह फिर अपने कमरे में आया। फिर बिस्तर पर लुढ़क पड़ा। मगर सारी रात उसे नींद नहीं आई। कितने दिनों तक इस तरह से चलाया जाए? घर में बिना बोले आदमी कितने दिनों तक जी सकता है! कभी दोनों के कितने सपने थे! सपना था कि नौकरी छोड़कर दोनों व्यवसाय करेंगे। व्यवसाय से रुपये कमाकर धनी बनेंगे। उन रुपयों से कलकत्ता में अपना मकान बनाएंगे, मोटर खरीदेंगे, समाज में दस जने से ऊंचे होंगे। दस जनों के ऊपर सिर उठाएंगे। लेकिन वह सब सपना उस दिन से चकनाचूर हो गया। अथच क्यों चकनाचूर हो गया, यह किसीने नहीं समझा, समझना चाहा भी नहीं। सिर्फ एक-दूसरे को दोष देकर दोनों निःसंग जीवन बिताने लगे।

मध्यवित्त समाज के लोगों का सपना शायद ऐसे ही मामूली कारण से टूट जाता है। मामूली ही कारण से जैसे एक दिन वह उम्मीद और खुशी से उत्ताल हो उठता है, वैसे ही मामूली कारण से ही एक दिन निराशा के अतल अंधकार में डूब जाता है।

तुमने कभी सुख नहीं पाया, स्वच्छंदता और खुशहाली नहीं पाई। किन्तु सुख, स्वच्छंदता और खुशहाली का सपना देखने से तो कोई तुम्हें मना नहीं कर सकता। इसीलिए साध तुम्हें अगाध होती है। लेकिन तुम्हारा सपना अगर पूरा न हो तो हताश होना ही तो तुम्हारे लिए स्वाभाविक है। दुनिया में सभी तो ईसामसीह होकर नहीं पैदा हुए, तथागत बुद्ध होने के लिए भी जन्म नहीं लिया। उसी तरह से संसार में कोई सदानन्द होकर भी नहीं पैदा होता।

शुरू किया था, फिर जाने कैसे, किस चक्कर से वह कामना किरानीगिरी पर उतर आई। उस समय के वे बड़े-बड़े सपने कहां चले गए ? अब वह आदर्शवाद नहीं है, वह उदारता भी नहीं है। पहले कहां-कहां चंदा देकर अपने रुपये उड़ाए। मनुष्य की भलाई करने की वह झूठी विलासिता भी जाने कब मन से गायब हो गई। अब लगता है, सब सिर्फ स्वार्थी हैं। और जब सभी स्वार्थी हैं तो वही क्यों नहीं होगा ?

आफिस से निकलने के बाद भी घर लौटने की उसे वैसी जल्दी नहीं। पहले दौड़ते हुए नयनतारा के आफिस में जाना पड़ता था। निखिलेश जब तक नहीं पहुंचता, नयनतारा आफिस के सामने चुपचाप खड़ी रहती। अब नयनतारा ने फिर से आफिस आना छोड़ दिया है। कहा है, "अब वह नौकरी नहीं करेगी।"

उसने कहा है, "मुझे नौकरी की भी जरूरत नहीं और रुपयों की भी जरूरत नहीं। तुमने जब मुझसे शादी की है, तो मेरे खाने-पहनने की सारी जिम्मेदारी तुम्हारी है।"

निखिलेश ने कहा, "मैं तो कह चुका हूं कि तुम मुझे क्षमा करो—"

नयनतारा ने कहा, "तुमने मेरा जो नुकसान किया है, उसके बाद भी तुम्हें क्षमा मांगने में शरम नहीं आती ? तुमने क्या सोच रखा है कि तुम एक के बाद दूसरा दोष करते जाओ और मैं तुम्हें क्षमा करती रहूं। दोष करने की भी तो कोई सीमा होती है। तुमने उस सीमा का ख्याल भी रखा है कि मैं तुम्हें क्षमा करूं ? और क्षमा करने की बात ही क्यों आती है ? मुझसे नाता रखने की ही तुम्हें क्या पड़ी है ? मुझे छोड़ दो न—"

"छोड़ दूं ? मतलब ?"

"हां, छोड़ दो। आजकल तो यह कानून भी पास हो गया है। और अगर तुमसे न बने तो न हो तो मैं ही छोड़कर चली जाऊं।"

"कहां ? कहां जाओगी तुम ?"

"जी चाहे, जहां चली जाऊंगी—तुम्हें क्यों बताऊं ? मुझे बड़ा अरमान था कि मैं घर बसाऊंगी। मगर जब ईश्वर की ऐसी इच्छा नहीं है तो नाहक ही उसकी कोशिश क्यों ? आजकल तो बहुतेरी स्त्रियां अनब्याही रह रही हैं, न होगा तो मैं भी उसी तरह से अकेली ही जिन्दगी गुज़ार दूंगी। सोच लूंगी कि मेरा कोई नहीं है।"

निखिलेश ने कहा, "नहीं, नहीं, यह सब खुराफात न करो, लोग खिल्ली उड़ाएंगे।"

"तुम चुप भी तो रहो। लोगों का खिल्ली उड़ाना बड़ा है कि आदमी का मन बड़ा है। लोग-बाग क्या कहते, नहीं कहते, मेरी बला से। किसीके सहने की भी सीमा होती है।"

निखिलेश ने निकट जाकर नेह जताया। कहा, "सुनो, अब इन बातों पर इतना मत सोचो। जितना ही सोचोगी, दिमाग गरम होगा—"

नयनतारा ने झटके से उसका हाथ हटा दिया। कहा, "हट जाओ तुम।

तुम्हारा मुंह देखने में भी मुझे नफरत होती है—"

फिर उसने दिन-भर निखिलेश से बात नहीं की। आफिस जाने के समय निखिलेश रोज गिरिबाला से कह जाता, "तुम जरा नजर रखना गिरिबाला, दीदीजी कहीं बाहर न चली जाएं।"

कह जरूर आता, मगर आफिस में भी निखिलेश के मन में शान्ति नहीं रहती। काम करते-करते घर की ही याद आती। नयनतारा कहीं सचमुच ही चली जाए।

एक ही घर में, एक ही छत के नीचे रहना, मगर आपस में बातचीत, बोल-चाल नहीं। ऐसा आखिर कब तक सहा जाए। निखिलेश का दम घुट आता।

कभी-कभी नयनतारा के सामने जाकर कहता, "क्या हुआ, बोलोगी नहीं?"

उस दिन आधी रात को कहीं कोई आवाज हुई कि निखिलेश को संदेह हुआ। लगा, बगल के कमरे की कुंडी खोलकर नयनतारा बाहर चली जा रही है। वह फौरन उठा। उस कमरे के पास गया। देखा, कमरा अन्दर से बंद है। बाहर से कान लगाकर उसने सुना—नः, वह अन्दर ही है। सो रही है। खामखा ही डर गया था वह। वह फिर अपने कमरे में आया। फिर बिस्तर पर लुढ़क पड़ा। मगर सारी रात उसे नींद नहीं आई। कितने दिनों तक इस तरह से चलाया जाए? घर में बिना बोले आदमी कितने दिनों तक जी सकता है! कभी दोनों के कितने सपने थे! सपना था कि नौकरी छोड़कर दोनों व्यवसाय करेंगे। व्यवसाय से रुपये कमाकर धनी बनेंगे। उन रुपयों से कलकत्ता में अपना मकान बनाएंगे, मोटर खरीदेंगे, समाज में दस जने से ऊंचे होंगे। दस जनों के ऊपर सिर उठाएंगे। लेकिन वह सब सपना उस दिन से चकनाचूर हो गया। अथच क्यों चकनाचूर हो गया, यह किसीने नहीं समझा, समझना चाहा भी नहीं। सिर्फ एक-दूसरे को दोष देकर दोनों निःसंग जीवन बिताने लगे।

मध्यवित्त समाज के लोगों का सपना शायद ऐसे ही मामूली कारण से टूट जाता है। मामूली ही कारण से जैसे एक दिन वह उम्मीद और खुशी से उत्ताल हो उठता है, वैसे ही मामूली कारण से ही एक दिन निराशा के अतल अंधकार में डूब जाता है।

तुमने कभी सुख नहीं पाया, स्वच्छंदता और खुशहाली नहीं पाई। किन्तु सुख, स्वच्छंदता और खुशहाली का सपना देखने से तो कोई तुम्हें मना नहीं कर सकता। इसीलिए साध तुम्हें अगाध होती है। लेकिन तुम्हारा सपना अगर पूरा न हो तो हताश होना ही तो तुम्हारे लिए स्वाभाविक है। दुनिया में सभी तो ईसामसीह होकर नहीं पैदा हुए, तथागत बुद्ध होने के लिए भी जन्म नहीं लिया। उसी तरह से संसार में कोई सदानन्द होकर भी नहीं पैदा होता।

वहू बाज़ार के उस मकान के पास पहुंचते ही प्रकाश मामा ने कहा, "बाप रे, उस घर में मैं नहीं जाऊंगा—"

"क्यों ?"

"नहीं। वहां मानदा मौसी है। उसे रुपये की बू लग चुकी है। मुझको पा लेगी तो छोड़ेगी नहीं, निगल जाएगी।"

लेकिन सदानन्द का तो वहां गए बिना चलेगा नहीं। प्रकाश मामा मोड़ तक जाकर ठिठक गया। बोला, "ऐ सदा, तू भी मत जा, तेरे सब रुपये ले लेगी—"

दरवाज़े का कड़ा खटखटाते ही महेश बाहर निकला। सदानन्द को देखकर वह अवाक् हो गया। इन्हीं कई महीनों में भैया जी का चेहरा कैसा निखर आया है। कितने सुन्दर लग रहे हैं।

"चाची जी कहां हैं महेश ?"

महेश की आंखें छलछला आईं।

सदानन्द ने पूछा, "क्या बात है ? चाची जी अच्छी तो हैं ?"

महेश ने कहा, "बस, किसी तरह जी रही हैं—"

सदानन्द ने कहा, "मुझे उनसे एक काम है। एक दिन इस घर में चाचा जी और चाची जी का मैंने बड़ा प्यार पाया था, तुम्हें तो मालूम है। उस समय मैं जो इस घर से चला गया था, उसका जिम्मेदार मैं नहीं हूं महेश···"

महेश समझ नहीं सका। बोला, "हां, बाबू ने तो आपको रहने के लिए उतना कहा···"

सदानन्द ने कहा, "हां। फिर भी मैं रह नहीं सका। चाचा जी की दी हुई सम्पत्ति मैंने नहीं ली। क्यों नहीं ली, मालूम है ?"

"नहीं।"

"तुम्हारी भाभी जी की सोचकर। मैंने उनके भविष्य को बिगाड़ना नहीं चाहा। खैर, आज मैं बहुत रुपयों का मालिक हूं महेश, बहुत रुपयों का। इतने रुपये मेरे किसी काम नहीं आएंगे। मैं उन रुपयों में से कुछ उनके नाम पर चाची जी को दे जाना चाहता हूं—"

"भाभी जी के नाम पर ?"

सदानन्द ने कहा, "हां। वह तो किसीके सामने निकलती नहीं। चाची जी को देने से उन्हें ज़रूर मिल जाएगा।"

महेश ने कहा, "मगर भाभी जी तो अब नहीं हैं—"

"नहीं हैं, यानी ?"

कहते हुए महेश का गला मानो रुंध गया। भर्राई आवाज़ में बोला, "वह तो मर गई।"

"मर गई ? कब ?"

"दो महीने हुए। ब्याह होने के बाद से उन्हें एक दिन भी शान्ति नहीं रहा। एक दिन उन्होंने अपने ही हाथों अपनी जान ले ली। हम लोग कोई भी नहीं जान सके, एक दिन देखा, उन्होंने दुःख से छुटकारे के लिए फांसी

लगा ली है—"

सुनकर सदानन्द ज़रा देर चुप रहा। उस बेचारी को बचने का कितना अरमान था। अपने भविष्य के लिए कितना सचेतन थी। सदानन्द को उस चिट्ठी की भी याद आई थी। काफी रात गए दरवाज़े के नीचे की फांक से अन्दर डाल दिया था। सोचा था, सदानन्द चौधरी इस घर से विदा हो जाए, तो उनका भविष्य निष्कंटक हो जाएगा।

"तभी से मां जी ने भी खाट पकड़ी है। बाबू थे तो कोई एक बात करने वाला भी था। आप तो जानते हैं, बड़े भैया जी मां जी के अपने लड़के नहीं हैं। बचपन में ही दत्तक लिया था। सोचा था, अपना लड़का नहीं है, यह दत्तक ही अपने बेटे जैसा मां-बाप को देखेगा। इसीलिए बचपन में ही उस लड़की से उनकी शादी भी कर दी थी—"

सदानन्द को सब मालूम था। उसे सब याद आने लगा। मुट्ठी में रुपये उसे कांटे-से गड़ रहे थे। कुछ हज़ार रुपये देकर वह जिसके भविष्य को निश्चित करने के लिए आया था, वह आप ही चली गई।

"बड़े भैया जी एक राक्षसी को घर ले आए हैं। सारे अनर्थों की जड़ तो वही है। मगर मैं तो कुछ कह नहीं सकता। मैं पराया हूं। मेरे बोलने से ही लंका कांड होगा। बस, जब तक मां जी हैं, मैं हूं। उनके बाद मैं भी यह घर छोड़कर चला जाऊंगा। अब मुझे यहां रहना अच्छा नहीं लगता।"

"क्यों रे, इतनी देर तक किससे बातें कर रहा था?"

एकाएक सदानन्द आपे में आया। प्रकाश मामा को देखकर याद हो आया, वह कब तो रास्ते के मोड़ पर आ पहुंचा है। महेश से उसकी बातचीत कब खत्म हुई, ख्याल ही नहीं।

"मौसी को देखा? देखा वहां मौसी को?"

सदानन्द अनमना था। महेश की बातों से मन में उथल-पुथल थी। बोला, "मौसी कौन?"

प्रकाश मामा ने कहा, "मौसी को नहीं पहचानता? कालीघाट वाली वह मानदा मौसी, जिसने घर-पकड़कर तेरी चरण-पूजा की थी? वही तो बड़े बाबू से रुपया दुहने के लिए उस घर में है। इसी डर से तो मैं तेरे साथ नहीं गया। तो? मौसी ने तुझसे रुपया नहीं मांगा?"

"कैसा रुपया?"

प्रकाश मामा बिगड़ गया। बोला, "तू इतना सोच क्या रहा है, यह तो बता? इतना आकाश-पाताल क्या सोच रहा है? मुझे खोलकर बता तो कि अब तू कहां जाएगा? मुझसे तो अब चला नहीं जाता। सुलतानपुर से वहीं जो निकला हूं—भला इतना भी चक्कर काटा जा सकता है? अब यहां से कहां जाएगा, मुझे ठीक-ठीक बता—"

सदानन्द ने कहा, "तुम्हें अब मेरे पीछे-पीछे नहीं चलना है। तुम आए ही क्यों?"

"वाह, तुमने तो गजब की कही। मैं तेरे पीछे क्यों चल रहा हूं? तू मेरे

"नहीं देगा तो इतना रुपया लेकर तू करेगा क्या ? तेरे तो चावल-चूल्हा, बीवी-बच्चा कुछ भी नहीं है, इतने रुपये का तुम क्या करोगे ?"

सदानन्द ने कहा, "इसका जवाब मुझे तुम्हें नहीं देना। मैं नवाबगंज जाऊंगा।"

"नवाबगंज ? वहां किसलिए ? वहां अब कौन है ? वहां का मकान तो जीजाजी ने प्राणकृष्ण साह को बेच दिया है—"

"बेचें। मेरी खुशी, मैं नवाबगंज जाऊंगा, तुम्हारा क्या ?"

और सियालदह से ट्रेन पकड़कर सदानन्द कलकत्ता से सीधे नवाबगंज आया था, प्रकाश मामा भी साथ ही आया।

नवाबगंज में खान-पान की बहार देखकर प्रकाश मामा ने सदानन्द के कानों में कहा, "यह क्या कर रहा है तू ? हुंह, आखिर सारे रुपये तो तू यों ही उड़ा देगा। यह भूत-भोजन क्या कर रहा है ?"

प्रकाश मामा को जिस बात का डर था, सदानन्द ने वही किया। तारिणी चक्रवर्ती, बिहारी पाल तो थे ही, गांव के और भी जो जाने-माने लोग थे, सदानन्द ने सबको बरबारी-थान में बुलाकर जो प्रस्ताव किया, प्रकाश मामा तो उससे और भी अवाक् हो गया।

बाजाब्ता एक नाटक ही। सदानन्द नवाबगंज में अस्पताल खोल देगा, स्कूल खोल देगा। सारी लागत वही देगा।

सदानन्द ने कहा, "ये रुपये मेरे नहीं हैं चाचाजी, ये रुपये आप सबके ही हैं। आप लोगों को शायद याद हो, मेरे दादाजी के अत्याचार से कपिल पायरापोड़ा ने इसी बरगद में फांसी लगाकर जान दी थी। आप लोगों को पता है कि कालीगंज के हर्षनाथ चक्रवर्ती की विधवा को ठगकर मेरे दादाजी ने यह जमींदारी की थी। आप लोगों को पता हो न हो, मुझे सब मालूम है। मैंने आज आप लोगों को जो रुपये दिए, वे वही रुपये हैं। आप लोगों के ही रुपये मैंने आप लोगों को दिए। ये रुपये लेने का मुझे कोई हक नहीं—"

प्रकाश मामा पास ही था। उसका बस पागल हो जाना ही बाकी रह गया था। बोला, "तूने सारे रुपये इन्हें दे दिए ?"

तारिणी चक्रवर्ती ने कहा, "मैं यह उसी समय जानता था बेटे कि तुम्हारे जैसा लड़का मिलना मुश्किल है। मैं आशीर्वाद करता हूं, तुम दीर्घजीवी होओ—"

सदानन्द ने कहा, "आप मुझे ऐसा आशीर्वाद न दें चाचाजी, ज्यादा दिन जीने के बजाय मैं जिसमें ज्यादा अच्छा काम कर सकूं, यह आशीर्वाद दें तो मैं सिर-आंखों पर लूं। मैं बचपन से ही देखता आया हूं, यहां के लड़के स्कूल-कालेज में पढ़ने के लिए दो कोस दूर रेल-बाजार जाते हैं। यहां कोई अस्पताल नहीं है कि लोगों का इलाज हो। मेरे दादा—आप चाहते, तो कर सकते थे। लेकिन उन्होंने नहीं किया। अथच ये रुपये तो आप ही लोगों के हैं। आप लोगों को

ठग करके ही तो सन्दूक में इतने रुपये जमा हुए थे। इन रुपयों के लिए उन लोगों ने किसीको धोखा दिया, किसीको जमीन से बेदखल किया और किसी-किसीको वंशी ढाली से खून भी कराया। रुपयों के बल पर उन लोगों ने आप लोगों को चूं तक नहीं करने दिया और रुपयों से पुलिस का भी मुंह बंद कर दिया।"

बोलते-बोलते सदानन्द आवेग से उद्वेलित हो उठा। वह कहता गया, "मैं जब ब्याह के दिन घर से भाग गया था, तो आप सबों ने मुझे पागल कहा था। सबने जो किया, उसके खिलाफ करना ही शायद पागलपन है? सुहागरात को मैं अपनी पत्नी के कमरे में नहीं सोया, वह भी क्या पागलपन ही है? लेकिन उस दिन तो आप लोगों ने मुझे पागल ही कहा था। प्रकाश मामा तो मेरी बगल में ही बैठा है, पूछ देखिए, इन लोगों ने मुझे पागल कहा था नहीं? मगर यह प्रश्न क्या कभी आप लोगों के मन में उठा कि मैंने अपनी पत्नी को पत्नी रूप में क्यों नहीं स्वीकार किया? यह प्रश्न कभी नहीं उठा, क्योंकि आप लोगों ने मुझे पागल समझ लिया था। जो काम सब करते हैं, वह नहीं करना ही आप लोगों की निगाह में पागलपन है। दरअसल मैंने यह नहीं चाहा कि मेरा वंश बढ़े, मैंने नहीं चाहा कि अत्याचारियों की संख्या बढ़े। मैंने यह चाहा था कि कालीगंज की बहू का शाप फले—कालीगंज के जमींदार हर्षनाथ चक्रवर्ती की विधवा बूढ़े चौधरी को निर्वंश होने का शाप दे गई थी—वह शाप पूरा हो। और, आप अपनी आंखों से ही देख रहे है कि वह शाप पूरा हुआ। आप शायद यह न जानते हों कि मेरी पत्नी ने दूसरी शादी की है। मैं अब इस जीवन में विवाह कभी कर भी नहीं पाऊंगा। क्योंकि ब्याह करने से कालीगंज की बहू का शाप झूठा हो जाएगा। वह शाप जिसमें झूठ न हो, मैं इसीलिए ब्याह नहीं करूंगा। उत्तराधिकार में इतने रुपये पाने के बावजूद भी नहीं—"

बिहारी पाल से रहा नहीं गया। बोला, "तुम धन्य हो बेटा, तुम धन्य हो—"

सदानन्द ने कहा, "नहीं नानाजी, मेरी इतनी प्रशंसा नहीं कीजिए। इस काम का भार आप लोगो पर ही दिया। आप लोग भी देख-भाल करेंगे। मैं कलकत्ता जाकर सरकारी आफिस में जो करना होगा, करूंगा। चार लाख की राशि है—दो लाख अस्पताल के लिए दूंगा, दो लाख स्कूल-कालेज के लिए। इसकी जो कमेटी बनेगी, उसमें आप ही लोग रहेंगे, आप ही लोग सब करेंगे, ऊपर से सरकार रहेगी। मैं चाहता हूं, नवाबगंज के लोग आज तक जो कष्ट पाते रहे, वह दूर हो जाए, मैं चाहता हूं, यहा की लड़के-लड़कियां स्कूल-कालेज में पढ़कर योग्य बनें। बीमारी में उन्हें अस्पताल के डाक्टरों की सेवा, दवा-दारू मिले—"

बरवारी-थान में तब तक और भी भीड़ जम गई। जो लोग खेत-खलिहान में काम कर रहे थे, वे लोग भी आ पहुचे।

एक ने पूछा, "यहां क्या हुआ है जी?"

बगल से किसीने कहा, "यहां स्कूल-कालेज बनेंगे, अस्पताल खुलेगा—

ौधरी जी के लड़के चार लाख रुपये से यहां सब कुछ बनवा देंगे ।"

चारों ओर राजसूय यज्ञ जैसी धूमधाम शुरू हो गई । कोई कल्पना ही हीं कर पा रहा था कि नवाबगंज के नसीब में इतना सुख होगा । एक ओर दार बैठा था, निताई हालदार, गोपाल पाट सभी बैठे थे । वे सब भी सुन हे थे । उन लोगों के लिए भी यह अप्रत्याशित घटना थी । एक दिन इसी दानन्द की पत्नी ने ही चौधरियों के बाहरी दालान में जो हरकत की थी, से देखने के लिए उस दिन भी ऐसी ही भीड़ लगी थी । लेकिन उस रोज आज ी तरह खुशी नहीं हुई थी । लड़का बहादुर है । लाखों रुपये का लोभ इस रह से छोड़ दिया ।

बिहारी पाल झट घर के अन्दर चला गया । बोला, "अजी ओ, सुनती ो—"

घरनी घर के धंधों में लगी थी । भागती हुई आई । बोली, "क्या हुआ, ाया ?"

बिहारी पाल ने कहा, "नहीं, नहीं आया—"

"कहा क्यों नहीं कि नानीजी ज़रा बुला रही हैं ?"

"कहा था । बोला, 'समय नहीं है । यहां से और भी कई जगह जाना होगा ।' "

"लेकिन सदा ने कहा क्या ?"

बिहारी पाल ने कहा, "अरे, वह तो बिलकुल दैत्यकुल में प्रह्लाद हो गया है—"

"सो क्या ?"

"अहा, सुनने से भी गर्व होता है । बाप-दादा का बहुत रुपया मिला है न उसे । वह रुपया वह गांव की भलाई के लिए दान कर गया । बोला, 'ये सब रुपये आप ही लोगों के हैं, आप ही लोगों की भलाई के लिए खर्च करूंगा ।' कहा, 'यहां एक स्कूल, एक कालेज और एक अस्पताल बनवा दूंगा । गांव के लड़कों को लिखने-पढ़ने की तकलीफ है, बीमार-बीमार पड़ने पर कोई देखन-हार नहीं—' "

बिहारी पाल की बहू की आंखों से आंसू बहने लगे । बोली, "तुम उसे ज़रा अपने साथ यहां ले नहीं आ सके ? मैं एक नज़र उसको देखती । उसे नयनतारा के बारे में मालूम है ? कुछ बोला ?"

बिहारी पाल ने कहा, "उसे सब मालूम है । नयनतारा ने दूसरी शादी कर ली है, वह यह भी जानता है । सबके सामने ही तो उसने अपनी पत्नी के बारे में कहा ।"

"यह क्यों नहीं कह दिया कि नयनतारा उसे खोजने के लिए आई थी ।"

बिहारी पाल ने कहा, "उसे क्या अकेले में पाया कि कहने का मौका मिलता ? चौधरी जी का वही साला, साला बाबू, उसे हर समय अगोरे हुए था । उसे अपने यहां ले आऊं, एकांत में दो बातें करूं, इसका भी तो कोई उपाय नहीं था । वह तो बहुत बिगड़ रहा था—"

"क्यों ? बिगड़ क्यों रहा था ?"

बिहारी पाल ने कहा, "बिगड़ेगा नहीं ? वह तो रुपये हथियाने के फेर में था। हाथ नहीं लग सका, इसलिए गुर्रा रहा है। सदा ने जो चार लाख रुपये गांव की भलाई के लिए दिए, वह तो उसे सुहाया नहीं।"

काश, सदानन्द जानता, रुपये दान करना और उसका सदुपयोग करना एक चीज नहीं है। दुनिया में जो लोग सदानन्द होकर पैदा होते हैं, वे शायद यह जान भी नहीं सकते। सदानन्द जैसे लोग जब दान करते हैं, तो उसका भला-बुरा विचारे बिना ही दान करते हैं। सोच-विचार कर देखते कौन हैं ? जो लोग राजनीति करते हैं। लेकिन ये सदानन्द तो सिर्फ विद्रोह करना ही जानते हैं, राजनीति करने के लिए तो दुनिया में प्रकाश मामा जैसे लोग ही हैं।

प्रकाश मामा तब भी सदानन्द के साथ ही चल रहा था। उसका पीछा नहीं छोड़ा। नवाबगंज से पैदल जाकर दोनों बस पर सवार हुए। उस समय भी प्रकाश एक ही बात कह रहा था, "ऐ रे सदा, रुपयों को तू इस तरह फूंक देगा ? जीजाजी किस मशक्कत से रुपये कमा गए थे और उन रुपयों से तू भूत-भोजन कराएगा ?"

सदानन्द ने कहा, "तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो मामा ? मैंने तो कहा कि मैं तुमको रुपया नहीं दूंगा।"

प्रकाश मामा ने कहा, "क्यों नहीं देगा ? नवाबगंज के उन नीच लोगों को इतने रुपए दिए और मैं तेरा मामा होता हूं, मुझको नहीं देगा ? मैं क्या तेरा कोई नहीं हूं ? बचपन से मैंने तुझे कितना दुलारा है, कहां-कहां घुमाने ले गया, ये सारी ही बातें तू डकार गया ?"

सदानन्द ने कहा, "मैं तुम्हें रुपया नहीं दूंगा, राधा को दूंगा।"

"राधा को ?"

"हां, जिसे तुम उसके घर से फुसलाकर ले आए थे और राणाघाट के चकले में बिठा दिया था।"

"ये सब बातें तुझे कैसे मालूम हुईं ?"

सदानन्द ने कहा, "मैं एक दिन राधा के यहां गया था। उसने मुझे उसी समय सारा किस्सा सुनाया था। मैं उसे कुछ रुपये दे आऊंगा।"

प्रकाश मामा हो-हो-करके हंस उठा। बोला, "मगर तू अब उसे खोजकर कहां पाएगा ?"

"क्यों, राणाघाट में ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "अरे, वह तो मर गई। कब की। मरकर कब की भूत बन चुकी। बल्कि उसके हिस्से का रुपया मुझे ही दे दे। मुझे देने से ही उसको देना हो जाएगा।"

बोलकर वह इतने जोर से हंसा कि लगा, प्रकाश मामा मानो मृत्यु का भी

व्यंग कर रहा है। प्रकाश मामा के लिए जन्म-मृत्यु सब कुछ सदा से व्यंग की ही चीज़ है। प्रकाश मामा के लिए यह जीवन ही एक प्रहसन है। उसके लिए बस एक ही चीज़ सत्य है, वह है रुपया। प्रकाश मामा ने सारी ज़िन्दगी रुपये की ही चाह की है और वही रुपया उसे नहीं मिला। चूंकि नहीं मिला, इसलिए आजीवन रुपये की ही माला भजता चला जा रहा है।

कई दिनों से बड़ी परेशानी चल रही थी। कहां कचहरी, कहां बैंक, और कहां वकील-मुहर्रिर, मजिस्ट्रेट, कलकत्ता, नवाबगंज! कब कहां क्या खाया, कब कहां सोया, किसी भी चीज़ का कोई ठीक-ठिकाना नहीं था। और वह कब कहां जाएगा, इसका भी कुछ ठीक नहीं। मगर उसे उतना-उतना रुपया मिला है, उसे अकेला छोड़ देना भी ठीक नहीं। जो भी सामने मिलेगा, शायद उसीको रुपया दे देगा। लेकिन हाय रे जला नसीब, उसके बगल में ही ऐसा एक अभावग्रस्त आदमी है, और सदानन्द उसकी तरफ उलटकर ताकता भी नहीं।

सोचते-सोचते प्रकाश मामा कब सो पड़ा था, ख्याल नहीं। अचानक नींद खुली कि वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। सदानन्द कहां गया? कहां गया सदानन्द?

उसे इतना याद था कि सदानन्द के साथ वह रेल-बाज़ार स्टेशन में ट्रेन में सवार हुआ था। ट्रेन के चलने की झकझोर में कब वह बेखबर सो पड़ा था, उसे याद नहीं। ट्रेन चल रही थी। उसने अगल-बगल के लोगों की ओर देखा। सभी लोग थे, सिर्फ सदानन्द ही नहीं था।

एक से उसने पूछा, "अच्छा साहब, मेरे पास गोरे लम्बे-से एक सज्जन बैठे थे, कह सकते हैं, वह कहां गए?"

कोई नहीं बता सका। सब अपने आप में ही मशगूल थे, औरों की खबर कौन तो रखे! बोला, "जी नहीं, मैंने तो नहीं देखा—"

लेकिन एक सज्जन ने देखा था। बोला, "वह जो आपके पास बैठे थे? लम्बे, गोरे-से आदमी? हां-हां, वह तो एक स्टेशन पर उतर गए···"

"किस स्टेशन पर उतर गए? किस स्टेशन पर, कहिए तो?"

भले आदमी ने कहा, "सो तो याद नहीं है—"

प्रकाश मामा को लगा, वह अगले ही स्टेशन पर उतर जाए। लेकिन वहां उतरकर भी क्या होगा? कहां ढूंढ़ेगा उसे? उससे कलकत्ता चल देना ही बेहतर है। कलकत्ता में बल्कि उस धर्मशाला में उसकी तलाश करेगा। वह चाहे जहां भी जाए, आखिर उसे उस धर्मशाला में तो जाना ही पड़ेगा।

सियालदह स्टेशन में उतरकर प्रकाश मामा कहीं नहीं रुका। ट्राम में बैठकर सीधे बड़ा बाज़ार गया। वहां ट्राम से उतरा और सीधे पत्थर पट्टी की धर्मशाला—

"पांडे जी, पांडे जी!"

पुकारते हुए वह धर्मशाला के अन्दर पहुंच गया।

पांडे जी ने निकलकर पूछा, "बाबूजी आए हैं?"

प्रकाश मामा ने कहा, "मैं पहले आ पहुंचा। बाबूजी इसके बाद आएंगे।"

"क्यों ? बाबूजी कहां गए ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "उसने मुझे पहले भेज दिया। बोला, 'मैं बाद में आऊंगा।' इसलिए मैं आपके यहां कई दिन रहूंगा पांडे जी ! मुझे आप पहचान तो रहे हैं न ? मैं आपके बाबूजी का मामा हूं—मेरा नाम प्रकाश राय है। क्या करूं, कहिए ? भांजे को छोड़कर जा तो नहीं सकता।"

पांडे जी ने कहा, "रहिए न। कमरा तो खाली पड़ा है। खोल देता हूं—"

प्रकाश मामा ने कहा, "सिर्फ रहने देने से ही तो काम नहीं चलेगा पांडे जी, मुझे खाना भी देना होगा। आखिर मैं खाऊंगा कहां ? आपके ही पास दो मुट्ठी खाऊंगा—"

"ठीक है…"

पांडे जी चला गया। लेकिन प्रकाश मामा को मन-ही-मन कैसा तो संदेह होने लगा। आखिर सदा यहां आएगा तो ? अगर न आए ? यदि वह उतना रुपया किसीको दे दे ? हुंह, वह मरने के लिए ट्रेन में सो क्यों गया था ! ऐन उसी वक्त सो जाना था ! और एक घंटा जगे रहने से तो यह सत्यानाश उसका नहीं होता !

प्रकाश मामा फिर मन-ही-मन काली मैया को पुकारने लगा, "मैया, जरा मुझपर दया की नजर रखना। मैं बड़ा दुखी हूं, बड़ा ही बदनसीब। बीवी-बच्चों की गिरस्ती है। मैंने तुमको जो सेवा दिया है, वह तुम्हें जरूर ही याद होगा मां ! एक लाख का मैं मकान बनवाऊंगा। बाकी रहे तीन लाख। वह तीन लाख बैंक में फिक्स्ड डिपॉजिट कर दूंगा। उससे हर महीने तीनेक हजार रुपये सूद के आएंगे, वही सूद खाऊंगा। हां, एक बात। अब देसी नहीं पिऊंगा मां ! सिर्फ ह्विस्की पिऊंगा। देसी पीते-पीते जीभ में जंग लग गई है—एकबारगी जंग लग गई है।"

नैहाटी में नयनतारा ने बिलकुल निर्णय कर लिया था। वह निर्णय अब बदलने का नहीं। जिस आदमी ने उसे धोखे में रखा, जिस आदमी ने उसे कदम-कदम पर ठगा, उसके साथ अब वह हरगिज घर नहीं बसाएगी।

निखिलेश रोज की तरह सवेरे आफिस चला गया था। बहुत दिनों से दोनों में बोलचाल नहीं है। न हो, उससे नयनतारा का कुछ जाता आता नहीं। लेकिन अब वह यहां नहीं रहेगी। यहां रहने का मतलब ही अपने को बेच देना है। उस-से अच्छा है कि यहां से जाकर वह माला के बोर्डिंग हाउस में ठहरे। शायद हो कि वहां जगह नहीं हो। किन्तु माला उसकी मित्र है। वह उसके लिए जगह की व्यवस्था कर ही देगी।

अखबार में उसने कुछ कपड़े लपेट लिए। ज्यादा कुछ साथ लेने कि जरूरत नहीं। आफिस से वेतन लेने के बाद जरूरत की बाकी चीजें समय पर खरीद लेगी। ऐसे आदमी के साथ किसलिए यहां रहना।

उसने गिरिवाला को बुलाकर कहा, "सुनो गिरिवाला, तुम अपनी बेटी के पास एक बार जाना चाह रही थीं न! तुम आज जा सकती हो। आज मुझे कोई काम नहीं है। सांझ तक आ जाना..."

गिरिवाला बड़ी खुश हुई। उसकी लड़की किसी दूसरे के यहां काम करती है। वहां से काफी कुछ दूर पर। बड़े दिनों से उसने अपनी बेटी को नहीं देखा। वह झटपट तैयार होकर चली गई। नयनतारा ने किवाड़ बंद कर लिया। साड़ी भी बदल ली। कुछ ही देर में यहां से निकल पड़ेगी। स्टेशन से दो बजे की ट्रेन पकड़ेगी। वहां से सीधे कलकत्ता।

दरवाजा लेकिन खुला रह जाएगा। हो सकता है, चोर-डाकू आएं! आएं तो आएं। जब उसे इस घर में रहना ही नहीं है, तो यहां चोरी ही हो तो क्या, और डकैती ही हो तो क्या! उसकी बला से! कभी निखिलेश के लिए उसने बहुत किया है! जब उस किए का कोई प्रतिदान नहीं मिला, तो उसके लिए माया कैसी!

गिरिवाला के गए देर हो चुकी। कपड़े के बंडल को नयनतारा ने एक बैग में डाल लिया। बैग लेकर आंगन में आकर खड़ी हुई। सिर के ऊपर झां-झां करती हुई धूप। उसके मन में भी उस झांझ की छूत-सी लगी और उत्ताल हो उठी। सब भाड़ में जाए, जहन्नुम में चला जाए, अब उसे कहीं कोई बंधन नहीं रहा। लौटकर गिरिवाला शायद अवाक् रह जाएगी। निखिलेश लौटेगा तो सुनकर और भी अवाक् हो जाएगा।

एक चिट्ठी लिखकर रख जाती तो ठीक था। लेकिन नहीं, क्यों लिखे, किसे लिखे? निखिलेश को? निखिलेश उसका है कौन? कोई नहीं—

इतने में बाहर दरवाजे का कड़ा बज उठा। ऐसे असमय में कौन आया? गिरिवाला? हो सकता है, कोई चीज ले जाना भूल गई हो। वही लेने आई हो।

"कौन? गिरिवाला?"

नयनतारा ने दरवाजा खोला और अवाक् रह गई। सामने सदानन्द खड़ा था।

उसे यों एकाएक देखकर नयनतारा को काठ मार गया। उसके मुंह से सहसा कोई बात नहीं फूटी।

लेकिन सदानन्द स्वयं ही पहले बोल उठा, 'मैं बड़े असमय में आ पहुंचा—"

नयनतारा का बनाव-सिंगार देखकर बोल उठा, "तुम कहीं जा रही थीं क्या?"

नयनतारा के मुंह में फिर भी बोली नहीं। वह हाथ के बैग को छिपाने में व्यस्त हो उठी।

सदानन्द ने फिर कहा, "मैं सुबह की ट्रेन से ही आना चाह रहा था, लेकिन रेल-बाजार से वह ट्रेन नहीं पकड़ सका। लेकिन तुम आज आफिस नहीं गई?"

नयनतारा पीछे मुड़कर अपने कमरे की तरफ जाती हुई बोली, "आओ, अन्दर आओ।"

सदानन्द ने पूछा, "निखिलेश बाबू ? निखिलेश बाबू कहां हैं ?"

"उनके आने में अभी कुछ देर है।"

नयनतारा तब तक अपने कमरे में पहुंच गई। सदानन्द को भी उसके पीछे-पीछे जाना पड़ा। सदानन्द को एक कुर्सी पर बैठने को कहकर नयनतारा जरा दूर हटकर अलमारी से सटकर खड़ी हुई। बोली, "तुम बहुत थके से दीख रहे हो ? तबीयत कैसी है तुम्हारी ?"

सदानन्द ने कहा, "अच्छी···"

नयनतारा बोली, "अरे, बैठ नहीं रहे हो ? बैठो, इस कुर्सी पर बैठो—"

सदानन्द ने कहा, "मैं बैठने के लिए नहीं आया हूं। कुछ बात कहनी है, कहकर चला जाऊंगा।"

नयनतारा ने कहा, "इतनी दूर से आ रहे हो, जरा देर बैठोगे नहीं ?"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन तुम जो खड़ी हो।"

नयनतारा ने कहा, "मैं न बैठूं, तो तुम्हें नहीं बैठना चाहिए, क्यों ? खैर, मैं बैठती हूं। हो गया न। अब तुम बैठो।"

सदानन्द अब बैठ गया। बोला, "विश्वास करो, मैं तुम्हारे यहां बैठने की सोचकर नहीं आया हूं। और फिर···"

नयनतारा ने कहा, "और फिर क्या ? कहते-कहते रुक क्यों गए ?"

सदानन्द ने कहा, "और फिर अब यहां बैठने का मुझे अधिकार भी तो नहीं—"

नयनतारा ने मान लिया, "वह बेशक नहीं है, पर कभी तो था।"

सदानन्द ने कहा, "सो शायद था—"

"फिर 'शायद' क्यों कह रहे हो ? कभी सात फेरे में बांधकर तुमने मुझपर अपना अधिकार कायम किया था।"

सदानन्द ने कहा, "उन पुरानी बातों का जिक्र अब क्यों कर रही हो ?"

नयनतारा ने कहा, "ठीक ही कहा तुमने। लेकिन तुमने चूंकि अधिकार की बात कही, इसीलिए मुझे इतना कहना पड़ा।"

सदानन्द ने कहा, "देखता हूं, इतने दिनों के बाद भी तुम कुछ भूली नहीं हो—"

नयनतारा बोली, "पुरुष होती, तो जरूर भूल जाती। लेकिन स्त्री होकर जन्म लिया है, भूल कैसे जाऊं, कहो ?"

सदानन्द ने कहा, "मैं भी लेकिन भूला नहीं हूं, पुरुष होते हुए मैं कुछ भी भूल नहीं सका हूं—"

नयनतारा बोली, "तुम महानुभाव हो, महापुरुष हो, तुमसे तुलना ही किसकी !"

सदानन्द बोला, "आखिरकार तुमने भी मेरा मजाक बनाना शुरू किया, मुझे गलत समझा ?

नयनतारा ने कहा, "छिः, इतना कांड हो जाने के बाद भी मेरे प्रति

तुम्हारा यह ख्याल है ?"

सदानन्द ने इसका जवाब न देकर दूसरी बात पूछी, "निखिलेश बाबू कहां हैं ?"

नयनतारा ने कहा, "मैं यह देख रही हूं, तुम मेरी बात को टाल जाना चाहते हो।"

"टाल नहीं रहा हूं, सिर्फ पूछ रहा हूं, निखिलेश बाबू कहां हैं ?"

"कह तो चुकी कि वह आफिस गया है, लौटने में देर होगी, फिर भी बार-बार वही बात क्यों पूछ रहे हो ? जो लोग आफिस जाते हैं, वे क्या दोपहर को घर में रहते हैं ? तुम क्या उन्हींसे मिलने के लिए आए हो ?"

सदानन्द ने कहा, "हां। उनसे भी जरूरत थी और तुमसे भी जरूरत थी।"

नयनतारा ने कहा, "अगर उनसे ही काम था, तो सुबह ही आते।"

"आ तो सकता था। मगर बताया न, जहां गया था, वहां जरा देर हो गई, इसलिए पहली ट्रेन नहीं पकड़ सका। सोचा, तुम दोनों में से किसी-से भेंट नहीं होगी। क्यों मुझे मालूम था, तुम भी आफिस जाती हो..."

"तो फिर ऐसे समय क्यों आए ?"

"सोचा, स्टेशन के प्लेटफार्म पर कब तक समय काटूंगा, उससे अच्छा कि तुम्हारे यहां आकर तुम्हारी नौकरानी को एक चिट्ठी देकर चला जाऊंगा।"

"चिट्ठी ?"

"हां, चिट्ठी में ही सारी बातें लिखकर चले जाने की इच्छा थी। पर संयोग से तुमसे भेंट हो गई।"

नयनतारा बोली, "भेंट हो गई, सो बड़ा बुरा हुआ, न ?"

सदानन्द ने कहा, "क्यों, बुरा क्यों होने लगा ?"

नयनतारा बोली, "भेंट नहीं होती तो मेरी शक्ल देखने के दाय से बच जाते—"

सदानन्द ने कहा, "इस तरह से क्यों बोल रही हो ? तुम्हारा चेहरा देखना क्या मुझे अच्छा नहीं लगता ?"

"अच्छा लगता है ? सच कह रहे हो, अच्छा लगता है ?"

सदानन्द ने कहा, "छोड़ो भी, ये बातें रहने दो।"

नयनतारा ने कहा, "नहीं, ये बातें रहें क्यों ? तुम बताओ कि मेरा मुंह देखना तुम्हें अच्छा लगता है या नहीं ? बोलो—"

सदानन्द ने कहा, "यह बात बार-बार न पूछो।"

"क्यों, पूछने में दोष क्या है ?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। पूछना नहीं चाहिए।"

नयनतारा बोली, "क्यों नहीं पूछना चाहिए ? इसलिए कि मेरा फिर से ब्याह हुआ है ?"

सदानन्द ने कहा, "यह सब बोलना मुझे अच्छा नहीं लगता है। तुम तो

जानती ही हो कि मेरा जीवन ही अभिशप्त है।"

नयनतारा ने कहा, "उसके जिम्मेदार तो तुम खुद हो।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। तुम गलत कह रही हो। सब जानते हुए भी तुम मुझीको जिम्मेदार ठहरा रही हो? मैंने क्या स्वाभाविक नहीं होना चाहा? मैंने क्या और दस आदमी की तरह ब्याह करके सुख से घर नहीं बसाना चाहा? मैंने क्या नहीं चाहा कि और लोग जैसे सुख-दुख में दुनिया में जीते हैं, पाप-पुण्य, भला-बुरा लेकर घर-गिरस्ती करते हैं, मैं भी वैसा ही करूं? मैंने तो यही चाहा था।"

नयनतारा ने कहा, "वही करना तो अच्छा था। फिर तो मेरी जिन्दगी इस तरह से बरबाद नहीं होती—"

सदानन्द अवाक् हो गया, "बरबाद? तुम्हारी जिन्दगी बरबाद हो गई?"

"नहीं हुई बरबाद?"

"क्यों, मेरे हाथों से छूटकर तुम जी तो गई। तुमने मुझसे अच्छा पति पाया, उन्होंने तुम्हें पढ़ा-लिखाकर अच्छी नौकरी दिला दी। सासे सुख से ही तो हो तुम। तुम्हारी जिन्दगी बरबाद कैसे हुई? बल्कि मेरी पत्नी रही होती, तो उन्हीं सास-ससुर की तावेदारी में दिन-भर घूंघट में मुंह छिपाकर काटना पड़ता, सूरज तक का मुंह नहीं देख पातीं। यों आजाद होकर राह-बाट में, ट्रेन में, जब जी चाहे, जहां घूम नहीं पातीं। ब्याह करके तो तुम बड़े मजे में ही हो—"

नयनतारा की दोनों आंखें छलछला उठीं। बोली, "बाहर से सभी यही सोचते हैं—"

सदानन्द ने कहा, "तुम ठीक ही कहती हो नयनतारा, हम बाहर से जो देखते हैं, वह बिलकुल ही सही देखना नहीं है। लेकिन दुनिया में हम सब एक दूसरे को बाहर से देखकर ही तो विचार करते हैं। इसीलिए तो मैं सबकी निगाहों में पागल हूं। तुम्हारी जैसी पत्नी को पाकर भी मैं तुम्हारे साथ संसार-धर्म का पालन नहीं कर सका, बाहर के लोगों के लिए यह भी एक पागलपन ही है।"

नयनतारा जवाब में कुछ नहीं बोली। चुप ही रही।

सदानन्द ने कहा, "खैर, बाहर के लोग जो चाहे कहें, आज मैं तुमसे ही पूछता हूं, तुम भी क्या मुझे वही कहोगी? मेरे इन कामों को तुम पागलपन कहोगी?"

फिर भी नयनतारा ने कोई जवाब नहीं दिया।

सदानन्द कहने लगा, "बोलो, जवाब दो। यों चुप न रहो, कुछ-न-कुछ कहो तुम।"

नयनतारा ने कहा, "मैं क्या कहूं?"

सदानन्द ने कहा, "क्यों, कह नहीं सकती हो कि कपिल पायरापोडा फांसी लगाकर क्यों मरा? माणिक घोष, फटिक नाई चौधरियों के अत्याचार

से क्यों पागल हो गए ? हमारी सुहागरात के पहले दिन कालीगंज की
का खून क्यों हुआ ? उन लोगों ने कौन-सा कसूर किया था ? वे कि
सुख-शान्ति की राह के रोड़ा बने थे ? उनकी तबाही के कौन जिम्मेदार
उसका अंजाम कौन लेगा ? कौन उसका प्रायश्चित करेगा ?"

अब नयनतारा बोली। पूछा, "इतने लोगों के होते हुए दूसरों के पाप
भागी तुम क्यों बनोगे ?"

सदानन्द बोला, "वह दाय अगर मैं न लूं, तो कौन लेगा ?"

"क्यों, और कोई नहीं है ? माथे के ऊपर भगवान तो हैं। वह तो
कुछ देख रहे हैं, वही इसका विचार करेंगे।"

"आखिर तुम क्या कहना चाहती हो, भगवान पर सारा भार छो
हम निश्चिन्त रहें ? फिर तुम्हारे भगवान ने हमें बुद्धि क्यों दी है ? वि
की शक्ति क्यों दी है ?"

नयनतारा अचानक बोल उठी, "जा:, देखा, बातों में बिलकुल भूल
गई। तुम बैठो, मैं तुम्हारे लिए कुछ खाने को ले आऊं—"

सदानन्द ने कहा, "रहने दो, उसकी ज़रूरत नहीं। एक बार यहां अ
मैं तुम लोगों पर बहुत अत्याचार कर गया हूं, उसीका प्रायश्चित करने
लिए मैं निखिलेश बाबू से भेंट करने आया था। वे जब हैं नहीं, तो
करूं ! फिर कभी आऊंगा, आज बल्कि जाता हूं—"

यह कहकर सदानन्द उठना चाह रहा था। नयनतारा ने लेकिन
नहीं दिया। जबरदस्ती बिठा दिया। बोली, "नहीं, तुम बैठो। तुमसे ब
सी बातें करनी हैं—"

"बातें ? मुझसे ?"

नयनतारा ने कहा, "हां-हां। तुमसे बात करने का ऐसा अच्छा म
शायद और कभी न मिले। और तुम भी ठीक ऐसे ही दिन आए हो f
आफिस नहीं गई, घर पर ही हूं—"

सदानन्द ने कहा, "सच तो। अपने आफिस तुम गई ही क्यों नहीं ?'

नयनतारा ने कहा, "वही बताने के लिए तो मैं तुमको बैठने की
रही हूं। जानते हो, मैं अब कभी आफिस जाऊंगी भी नहीं।"

"अरे, तुम आफिस क्यों नहीं जाओगी ?"

नयनतारा ने कहा, "यह भी है कि तुम कहीं और जरा ही देर
आते, तो मुझसे भेंट ही नहीं होती—मैं यह घर छोड़कर अभी जा ही
थी। यह देखो, अपने ये कई साड़ी-ब्लाउज़ बैग में भरकर मैं अभी ही
घर से चली जा रही थी। आंगन में उतरकर दरवाज़ा खोलने को ह
कि तुमने खटखटाया। यहां तक कि जाने के लिए ही मैंने नौकरानी तक
बाहर भेज दिया है, पता है—"

सदानन्द ने कहा, "क्यों कहां जा रही थीं ?"

नयनतारा ने कहा, "कह नहीं सकती, कहां जा रही थी। इस
मेरी यह मनोदशा है कि मुझे नरक में जाने में भी कोई आपत्ति नहीं—

लिए नरक भी इससे कहीं बेहतर है—"

सदानन्द को जैसे काठ मार गया। बोला, "एकाएक तुम्हारे मन की यह हालत ही क्यों हुई?"

नयनतारा ने कहा, "तुम्हारे लिए।"

"मेरे लिए?"

"हां। सब तुम्हारे लिए।"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन मैंने क्या दोष किया? तुम पति-पत्नी में अड़ंगा खड़ा हो, ऐसा कुछ करने की तो मैंने कभी कल्पना भी नहीं की। मैं जब ट्रेन में बीमार हो पड़ा था, तो तुम खुद ही तो मुझे उठाकर अपने घर ले आई थीं। मुझे होश रहा होता, तो मैं हरगिज नहीं आता। बल्कि रास्ते में मरा पड़ा होता, फिर भी तुम्हारे यहां नहीं आता—"

नयनतारा ने कहा, "यह मैं जानती हूं। यह भी मेरा अजाना नहीं कि तुम सदा से मुझसे घृणा करते हो···"

सदानन्द ने कहा, "नहीं, इसीलिए नहीं। मैं चाहता था कि तुम सुखी हो। मुझसे ब्याह करने के नाते तुम्हें जो-जो भोगना पड़ा था, वह सब मैंने नवाबगंज की नानी से सुना था—"

"तो क्या तुम्हें पहले से यह पता था कि मेरा फिर से ब्याह हुआ है?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। वह तो मैंने तुम्हारे यहां बिस्तर पर लेटे-लेटे जाना। बगल के कमरे में तुम लोग जो बातें करते थे। वह मेरे कानों में पहुंचती थीं। उन्हीं बातों से मैं जान गया था कि निखिलेश बाबू से तुम्हारी शादी हो चुकी है। उन्होंने तुम्हारी नौकरी लगा दी है, अपना हार बंधक देकर तुम मेरे इलाज का खर्च चला रही हो—"

"मेरे ब्याह की सुनकर तुम्हें क्या खूब तकलीफ हुई थी?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं, बल्कि खुशी ही हुई थी।"

"खुशी हुई थी?"

"हां। खुशी नहीं होगी? मैंने तुम्हें पत्नी की प्राप्य मर्यादा नहीं दी, पर किसी दूसरे ने वह मर्यादा दी, तो खुशी नहीं होगी सुनकर?"

यह सुनकर नयनतारा कैसी तो गम्भीर-सी हो गई। उसने सिर झुका लिया। बोली, "न., तुम्हारा ख्याल गलत है।"

"गलत?"

"हां। तुम चूंकि जानते नहीं, इसीलिए ऐसा कह रहे हो। जानते होते तो नहीं कहते। पत्नी की मर्यादा पाना मेरे भाग्य में लिखा नहीं है।"

सदानन्द अवाक् हो गया। पूछा, "क्यों? निखिलेश बाबू तो बड़े अच्छे आदमी हैं। उन्होंने खुद से तुमको लिखाया-पढ़ाया, पास कराया, पास कराके नौकरी दिलाई। उन्होंने तुम्हारे लिए जो किया, वह कितना पति करता है? उस लिहाज से तो वह मुझसे तुम्हारे कहीं अच्छे पति हैं—"

नयनतारा ने कहा, "नहीं। तुम्हें पता नहीं है, उसने जो कुछ भी किया है, सब अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए किया है। मुझे पढ़ाया-लिखाया,

इम्तहान पास कराके नौकरी दिलवाई, मुझसे शादी की—सब कुछ ज़रूर, पर अब समझ रही हूं, सब कुछ अपने स्वार्थ के लिए किया—"
सदानन्द ने कहा, "क्यों, इसमें निखिलेश बाबू का कौन-सा स्वार्थ ?
"स्वार्थ ? रुपया ।"
"रुपया !"
नयनतारा ने कहा, "हां । मैं पहले जानती न थी । पहले समझ सकी । यह सब समझा तुम्हें अपने यहां ले आने के बाद । तुम्हें देखते ही मन में पहले ही रुपया खर्च होने की बात आई । उसने पहले ही कहा, ई को अस्पताल क्यों नहीं भेज दिया ? अच्छा, तुम्हीं कहो, आदमी की जान कि रुपया बड़ा है ? तुम्हें अस्पताल भेजने की बात वह कह कैसे सका ? अ भेजने से क्या तुम बचते ? वहां वेतनभोगी नर्स से सच्ची सेवा मिलती ?"
ज़रा देर रुककर फिर बोली, "फिर जब तुम्हारी देखभाल के लि आफिस जाना बंद करना पड़ा, तो उसके गुस्से की न पूछो ! गुस्सा कि समझा न ?"
"नहीं !"
"गुस्सा इस बात का कि मेरी तनखाह कट रही है । असल में उसे मे पर ही सारा लोभ है, मुझपर वैसा लोभ नहीं । मैं जितना ही यह देखं मुझे उतना ही खराब लगने लगा । लगा, मैं इतने दिनों तक जो सोचत थी, सब गलत था । लगा, मैं एक ऐसे आदमी के पल्ले पड़ गई, जो मुझे पैदा करने की मशीन के रूप में व्यवहार करना चाहता है । तुम्हारी में कुछ रुपये खर्च हुए थे, इसलिए कुछ दिन तक तो उसने मुझसे बात की, इतना रंज हो गया था । आखिर एक दिन उसने नवाबगंज ज कहीं—"
"नवाबगंज ? किसलिए ?"
"तुमसे मेरे गहने मांग लाने के लिए ।"
"तुम्हारे गहने ?"
नयनतारा ने कहा, "हां । लेकिन दरअसल सब झूठ था । यों बोलकर उसने मुझे भुलाना चाहा था । सच तो यह कि उसे रुपये पर ह है । उसे यह पता था कि मुझे व्याह में कितना गहना मिला था । इ मुझको पाकर उसका लोभ नहीं गया, उन गहनों के पाने से उसे चैन मैंने अब समझा कि मेरे गहनों पर ही उसकी आंखें गड़ी हैं…"
सदानन्द चुप रहा । नयनतारा बोली, "तुम कुछ बोल नहीं रहे हो
सदानन्द ने कहा, "मैं इस विषय में क्या कहूं ?"
"मगर तुम्हीं तो अभी कह रहे थे कि मैं खूब सुख से हूं । मेरे सु नमूना सुन लिया न ? जान तो गए कि मैं यहां कितने सुख में हूं ? अब भी कि मैं सुख में हूं ? उसके बाद नवाबगंज से आकर क्या बोला, मालूम है
"निखिलेश बाबू क्या सचमुच ही नवाबगंज गए थे ?"
नयनतारा ने कहा, "नहीं । गया कहां था । जाने कहां से घूम-

था करके मुझसे बोला कि नवाबगंज गया था। आकर बताया, 'तुमने शायद ब्याह कर लिया है।' और मेरा जला नसीबा, मैंने भी उसकी बात पर विश्वास कर लिया।"

"विश्वास किया ?"

"विश्वास नहीं करती, तो क्या करती ? मैं भी तो उस समय संदेह के झूले पर झूल रही थी। तुम बिना कहे एकाएक यहां से चल दिए। काश, तुम जानते कि मेरे मन की क्या दशा हो गई थी। तुम्हारी खबर के लिए, उफ, कैसी जो छटपट कर रही थी मैं। तुम अस्वस्थ ही चल दिए और मुझे चिन्ता न होती ? मुझे बिना बताए तुम चले क्यों गए, यह तो कहो ? मुझे कहकर ही जाते तो तुम्हारा क्या ऐसा नुकसान हो जाता ? मैं क्या तुम्हें जबरदस्ती पकड़ रखती ? या कि तुम्हें जबरदस्ती रोकने का मुझे अधिकार ही है ? मैं तुम्हारी हूं कौन कि तुम मेरी बात मानोगे ?"

सदानन्द ने अचानक बीच ही में कहा, "क्या बजे ? कहां, निखिलेश बाबू तो अभी भी नहीं आए ?"

नयनतारा ने कहा, "बला से न आएं। न ही आए तो अच्छा। उसके आने में जितनी ही देर हो, उतना ही अच्छा। बिलकुल ही न आएं तो और अच्छा। जानते हो, आजकल उसका चेहरा देखने में भी मुझे घृणा होती है। अथच पहले मैं इतना समझ नहीं सकी। समझा तब जब नवाबगंज गई।"

"तुम भी नवाबगंज गई थी ? किसलिए ?"

"सच कहूं, तो मानोगे ? तुम्हें देखने के लिए। सोचा, देख तो आऊं सही, तुमने कैसा ब्याह किया, तुम्हारी पत्नी देखने में कैसी है ! वहां जाकर जब जाना कि सारी बातें उसकी झूठ थीं, मनगढ़ंत थीं, तब से फिर उससे बोली ही नहीं। बात भी नहीं करती, दफ्तर भी नहीं जाती। नौकरी आखिर क्यों करूं ? किसके लिए करूं ? और नौकरी अगर करनी ही होगी, तो मेस में रहकर करूंगी—औरतों के बोर्डिंग में रहकर नौकरी करूंगी। मेरी कमाई के पैसों से वह शराब पिएगा, मैं यह हरगिज बरदाश्त नहीं कर सकती। इसीलिए तो मैं अभी घर छोड़कर चली जा रही थी। तुम आ नहीं पड़ते तो अब तक तो शायद मैं कलकत्ता पहुंच गई होती···"

इसके बाद सदानन्द की ओर झुककर बोली, "अब जब तुम आ ही गए हो, तो तुम्हीं से पूछूं, तुम मेरी एक बात रखोगे ?"

"कौन-सी बात, कहो ?"

"लेकिन तुमसे कहते मुझे बड़ा डर लगता है।"

"कौन-सी बात, कहो तो सही।"

"तुम मेरे साथ चलोगे ?"

सदानन्द समझ नहीं सका। बोला, "कहां ?"

"तुम जहां जाओगे, मैं वहीं जाऊंगी। तुम्हारे साथ कहीं भी चली जाऊं तो मैं जी जाऊं। मुझे अब कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। यह घर अब मेरे लिए जहर हो गया है। इस घर की एक-एक ईंट मेरे लिए बरदाश्त न

बाहर हो रही है। यहां अब एक भी दिन रहने से मैं पागल हो जाऊंगी, सच ! मुझे अपने साथ ले चलोगे ?"

सदानन्द ने कोई जवाब नहीं दिया। चुप रहा।

नयनतारा अब और झुक गई। बोली, "क्यों, तुम कुछ बोल नहीं रहे हो ? मैं साथ रहूंगी तो क्या तुम्हें बड़ा बुरा लगेगा ? मैं सच कह रही हूं, मैं तुम्हारा बोझ बनकर नहीं रहूंगी, तुम जो कहोगे, मैं वही करूंगी। जरूरत समझो तो तुम अलग कमरे में सोना, मैं अलग कमरे में सोऊंगी। न होगा तो रात में कोई किसीकी शक्ल ही नहीं देखेंगे, कहो, राज़ी हो ? हो राज़ी ?"

सदानन्द ने फिर भी कुछ नहीं कहा।

नयनतारा ने कहा, "देखो, मैं यहां से चली जाऊंगी, इसलिए मैंने नौकरानी तक को दूसरी जगह भेज दिया है। मुझे अपने साथ लेने को भी कुछ नहीं है। इस घर की कोई भी चीज़ मैं अपने साथ नहीं ले जाना चाहती। अथच यहां की बहुत सारी चीजें मेरी खरीदी हुई हैं, अपने पैसे से। कभी इन चीज़ों पर बड़ी ममता थी मुझे। कभी यह साध थी कि कलकत्ता में अपना एक मकान बनवाऊंगी, अपनी पसन्द का अच्छा-सा मकान। लेकिन वे सारे ही शौक अब जाते रहे। अब लगता है, अब तक जो कुछ भी किया, सब मेरी भूल थी। खैर, पुरानी बातें न सोचना ही अच्छा। अब न होगा तो नये सिरे से जीवन आरंभ करूंगी। तुम अगर कहो, तो मैं अपनी नौकरी भी छोड़ दे सकती हूं—"

उसे अचानक मानो ख्याल-सा हो आया। बोली, "कहां, तुम कुछ बोल ही नहीं रहे हो, मैं ही बक-बक करके मरी जा रही हूं ? तुम क्या मुझे साथ नहीं ले जाओगे ?"

सदानन्द ने कहा, "मैं बल्कि अब चलूं, निखिलेश बाबू तो अभी तक नहीं आए।"

नयनतारा बोली, "तुम शायद चाहते हो कि वह अभी ही आ पड़े।"

सदानन्द ने कहा, "हां।"

नयनतारा ने कहा, "लेकिन क्यों ? तुम क्यों चाहते हो कि वह आए। और अगर यही चाहते हो, तो तुम्हीं बल्कि रहो, मैं ही जाती हूं। मुझे देर हो रही है..."

सदानन्द ने कहा, "लेकिन तुम नहीं ही गई तो क्या ?"

नयनतारा ने कहा, "तम कह क्या रहे हो ? तुम क्या चाहते हो कि मैं इस मिथ्यावादी के साथ गिरस्ती करूं ? मेरी जैसी हालत तुम्हारी होती, तो तुम्हीं क्या यहां रह सकते थे ? कोई भी ऐसा कर सकता है ? यह तो मैं ही हूं कि इतने दिनों तक निबाह गई। दूसरी कोई भी स्त्री होती, तो नहीं निबाह सकती, यह मैं बाज़ी बद कर तुमसे कह सकती हूं..."

इतना कहकर नयनतारा ने कपड़ों वाले बैग को फिर से उठा लिया। बोली, "तो तुम नहीं चलोगे न ? सचमुच नहीं चलोगे ?"

सदानन्द कोई उत्तर दिए बिना चुप बैठा रहा।

"तो, तुम रहो। मैं चलती हूं। इसी वक्त कलकत्ता की एक गाड़ी है।"

नयनतारा ने जाने का उपक्रम किया।

सदानन्द उठ खड़ा हुआ। बोला, "तब तो मुझे भी उठना ही पड़ेगा। तुम चली जाओगी, तो मैं इस घर में अकेला कैसे बैठा रहूं।"

नयनतारा ने कहा, "तुम्हें अकेला बैठे रहने को कह ही कौन रहा है? मैं तो कह रही हूं, तुम चलो। मैं तो कह रही हूं कि तुम जहां भी जाओगे, मैं वहीं जाने को तैयार हूं। नवाबगंज चलने को कहो, तो मैं नवाबगंज ही चलूं'''तुम कहो, तो मैं अपनी नौकरी तक छोड़ सकती हूं, हां। चलना हो तो चलो। देर करने से कोई आ जा सकता है—"

हठात् बाहरी दरवाज़े का कड़ा बज उठा। भय से नयनतारा का चेहरा कैसा सूख-सा गया। वह मानो मन-ही-मन बोल उठी, इस समय कौन आ पहुंचा?

सदानन्द को लगा कि अब उसे छुटकारा मिला। बोला, "लगता है, निखिलेश बाबू आ गए—"

यह सुनकर तो नयनतारा का मन और भी मरा-सा हो गया। कहीं सचमुच ही निखिलेश हो। गिरिबाला भी घर में नहीं है। दरवाज़ा जाकर उसी को खोलना पड़ेगा। वह आंगन से जाकर बाहर के दरवाज़े को खोलने में भी जैसे धुकधुकाने लगी। पूछा, "कौन?"

"मैं हूं दीदीजी, मैं।"

गला गिरिबाला का था। नयनतारा ने दरवाज़ा खोल दिया।

"क्यों, इतनी जल्दी लौट आई?"

गिरिबाला ने अन्दर आकर कहा, "देखा कि बिटिया अच्छी है, इसीलिए जल्दी ही लौट आई। सोचा, दीदीजी घर में अकेली ही हैं—"

नयनतारा ने कहा, "बेटी के पास और कुछ देर रही क्यों नहीं? मैंने तो कह दिया था कि मुझे आज वैसी कोई खास जल्दी नहीं है। तुम देर से ही लौट सकती थी—"

सदानन्द कमरे में बैठा सब सुन रहा था। एकाएक नयनतारा की यह बात उसके कानों में पहुंची, "खैर, जब आ ही गई, तो मेरा एक काम तो कर दो। जल्दी से चूल्हे को सुलगाकर दो आदमी के लिए चाय बना दो—"

सदानन्द को अब अकेले बैठना अच्छा नहीं लग रहा था। उसे बार-बार यही लग रहा था कि निखिलेश बाबू आ जाएं तो अच्छा हो। पति-पत्नी के इस मनमुटाव में वह क्यों पड़े? अपनी घर-गिरस्ती नहीं है, इसलिए दूसरे की घर-गिरस्ती में दरार क्यों डाले? दूसरों की बुराई का कारण क्यों बने?

लेकिन तब क्या सदानन्द यह जानता था कि जिनकी भलाई के लिए वह इतनी कोशिश कर रहा है, जिनके उपकार का व्रत लेकर उसने आज तक जीवन-प्रदक्षिणा की है, एक दिन वही लोग उसके सारे स्वार्थ त्याग की हंसी उड़ाएंगे? उसके इतने दिनों की यह कठोर साधना, सबकी मिली-जुली चेष्टा से असफल हो रहेगी? कितने बुद्ध, कितने चैतन्य महाप्रभु कितने ईसामसीह,

कितने मुहम्मद, कितने नानक—और भी जो कितने महापुरुषों ने आकर कितने ही सत्यों की तो प्रतिष्ठा की, लेकिन पल की आंखें झुलसाने वाली चौंध में वह सदा का सत्य कब जो ढक गया, किसीको उसका पता भी चला ?

शायद हो कि सदानन्द को इस पाठ की भी आवश्यकता थी। आवश्यकता थी इस मोह-भंग की। नहीं तो जिस आदमी ने सब कुछ को त्याग सकने की शक्ति हासिल की, वह नैहाटी के एक मामूली से घर में फिर से क्यों आया ? किस लोभ से ? किस खिंचाव से ?

और, सदानन्द यदि ऐसे अप्रत्याशित रूप से नैहाटी नहीं आता, तो वह मुजरिम ही कैसे बनता ? और, चूंकि वह मुजरिम बना, इसीलिए तो यह उपन्यास हुआ।

लेकिन खैर, वह बात अभी रहने दीजिए।

समाज के मध्यवित्त और निम्नवित्त लोगों का मन उस समय एक ऐसी स्थिति में आ पहुंचा था, जहां से किसीकी भी नज़र ज्यादा दूर तक नहीं जा सकती थी। उस समय अपने सामने की वस्तु के पीछे ही वे पागल हो रहे थे। उनकी निगाहों में बड़ा ही छोटा और छोटा ही बड़ा हो उठा था। समसामयिक को ही लोगों ने चिरकालिक कहकर ज़ोरों से घोषणा करना शुरू कर दिया था—चिरकालिक की बात उस समय किसीके दिमाग में ही नहीं आ रही थी। देश में नया संविधान लागू ज़रूर हो गया था, लेकिन उसमें सिर्फ पावना की पाई-पाई का हिसाब ही विस्तार से लिखा था; आदमी के फर्ज़ नाम की भी एक चीज़ है, इसका उसमें कोई ज़िक्र ही नहीं। उसमें लिखा है, "आज से सबके अन्न-वस्त्र की ज़िम्मेदारी हमने ली। हम किसीको बेकार नहीं रहने देंगे, सबको शिक्षित बनाएंगे, सिर छिपाने लायक एक आश्रय सबको देने का उत्तरदायित्व हमारा रहा। भारतवर्ष को सुख और समृद्ध बनाने के संकल्प को भी हमने पक्की बही में सोने के अक्षरों में लिख रक्खा। कोई किसीका शोषण नहीं कर पाएगा। हम गणतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, स्वाधीनता और सार्वभौमत्व की जय-घोषणा करते हैं। हमारी आज की यह घोषणा ही हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए रक्षा-कवच हो।"

लेकिन एक बात वे लोग उसमें लिखना भूल गए कि इसके बदले लोगों को भी कुछ कर्तव्यों का पालन करना होगा। लिखना भूल गए कि देशवासियों की भी कुछ ज़िम्मेदारियां हैं। और, चूंकि यह लिखा नहीं है, इसलिए लोगों ने यह तो जाना कि सरकार को क्या करना चाहिए, पर कोई यह नहीं जान सका कि लोगों को क्या करना चाहिए ! यह नहीं जान सके कि लोगों को भी सत् होना पड़ेगा, आदमी को भी इन्सान होना पड़ेगा। और यह नहीं जाना, इसीलिए चौधरी जी की छोड़ी हुई सम्पत्ति के हिस्से के लिए प्रकाश मामा को इतना लोभ हुआ, इसीलिए साहबों के मुहल्ले में 'मैसेज क्लिनिक' खोलने के लिए

मानदा मौसी को बताशी की इतनी खुशामद करनी पड़ी। इसीलिए नौकरी छोड़कर किसी व्यवसाय से धनी होने के लिए निखिलेश में इतनी अकुलाहट आई।

रोज की तरह उस दिन भी निखिलेश आफिस से निकला। लेकिन चारों तरफ ऊंची-ऊंची इमारतें देखकर उसका मन जहरीला हो गया। उसका मन रोज ही ऐसा बेचैन हो जाता। उसे लगता, सबके सब कुछ हुआ, एक मैं हूं कि कुछ भी नहीं हुआ। मैं बस किरानी का किरानी ही रह गया। रास्ते से झकझकाती कोई मोटर जाती तो वह उसीको एकटक देखता रह जाता। उसे लगता, हम हैं कि पैदल चलते-चलते मर रहे हैं और ये लोग कैसे आराम से गाड़ी पर चल रहे हैं।

उस दिन एक और कांड हुआ। बगल से एक गाड़ी जा रही थी। देखा, बगल से चलते हुए एक आदमी ने पच् से उसपर पान की पीक थूक दी। गाड़ी के मालिक को पता भी न चला। गाड़ी जैसे जा रही थी, आगे जाती रही। वह जब तक आंखों से ओझल नहीं हो गई, निखिलेश पीक के उस दाग को एकटक देखता रहा। क्रीम रंग की गाड़ी, उसपर पान की पीक का लाल दाग। घर जाकर धोना पड़ेगा। खूब हुआ।

जिस आदमी ने थूका था, निखिलेश ने उसकी ओर भी देखा। उसे इसका कोई गम-गिला नहीं। उसके अंग-मुंह से ऐसी एक उमंग, जैसे गाड़ी पर थूककर उसने कोई बड़े कमाल का काम किया है।

निखिलेश को देखकर उसने खुद ही कहा, "अजी साहब, यही लोग कैपिटलिस्ट हैं, देश के असली दुश्मन यही हैं—"

निखिलेश ने कोई जवाब नहीं दिया। वह आदमी वैसे ही चलते हुए भीड़ में मिल गया। लेकिन निखिलेश के मन से यह घटना उतनी आसानी से नहीं धुल सकी।

उसे लगा, सच ही तो। यही लोग तो पूंजीवादी हैं। ये लोग, गाड़ियों के ये मालिक। निखिलेश ने खुद कितनी लाठियां खाईं, कितनी बार जेल काटी, कितनी बार शराब की दुकानों पर धरना दिया, खादी पहनी, कम्बख्त अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए कितना क्या किया, और, वे अंग्रेज जब सचमुच ही देश छोड़कर चले गए तो मजा लूटने लगे और लोग। देश के आजाद होने के पहले भी जो लोग मजा लूटते थे, देश के आजाद होने के बाद भी फिर वही मजा लूटने लगे। यह कैसा न्याय है! इसीको आजाद होना कहते हैं?

नैहाटी स्टेशन पर वह ट्रेन से उतरा। घर के सामने पहुंचकर जब वह दरवाजे का कड़ा खटखटाने जा रहा था, तो लगा, अन्दर किन्हीं के गले की आवाज आ रही है। ऐसे समय घर में कौन आया! मर्द के गले की आवाज-सी लगी।

उसने जल्दी-जल्दी कड़ा खटखटाया। कड़ा खटखटाना था कि भीतर का बोलना बंद हो गया।

निखिलेश ने बाहर से जोर से पुकारा, "गिरिबाला, ऐ गिरिबाला—"

निखिलेश समझ गया, उसने जैसे ही दरवाजे का कड़ा खटखटाया, घर के भीतर जो बातचीत हो रही थी, अचानक बंद हो गई। तो क्या, नयनतारा रोज ही ऐसा किया करती है! वह क्या इसीलिए आफिस नहीं जाती है!

अन्दर से गिरिबाला का गला सुनाई पड़ा, "कौन?"

"मैं हूं, दरवाजा खोलो।"

गिरिबाला ने दरवाजा खोल दिया। अन्दर आकर रोज की नाईं निखिलेश चुपचाप सीधे अपने कमरे की ओर चला जा रहा था। इधर कुछ दिनों से रोज ही वह आफिस से लौटने पर चुपचाप अपने कमरे में ही सीधे चला जाता है। नयनतारा ने खाया या नहीं या निखिलेश ने ही खाया नहीं—इसके लिए दो में से किसीको कोई सिरदर्द नहीं। जैसे एक घर में रहना है, निहायत इसीलिए रहना; एक गिरस्ती में खाना पड़ता है, इसीलिए खाना। इससे ज्यादा और कुछ नहीं।

लेकिन आज इस नियम का व्यतिक्रम हुआ। आंगन पार करके बरामदे पर पहुंचते ही निखिलेश को उस आदमी के आमने-सामने खड़ा होना पड़ा।

"नमस्कार!"

आश्चर्य है। उसकी अनुपस्थिति में इतनी देर उसकी पत्नी से बात करके अब कमरे से निकलकर उसीको नमस्कार करता है। ऐसा बेशरम आदमी तो निखिलेश ने अपने जीवन में नहीं देखा। बोला, "आप? आप कब आए?"

सदानन्द ने कहा, "मैं, बहुत देर हो गई, आया हूं। दोपहर में। अब तक आपकी ही राह देख रहा था।"

निखिलेश ने कहा, "लेकिन आपको तो मालूम था कि मैं दोपहर में नहीं रहता, दोपहर में हम दोनों ही आफिस में रहते हैं—"

सदानन्द ने कहा, "मालूम था। फिर भी आ गया, इसलिए कि उससे पहले वाली ट्रेन नहीं पकड़ सका। आप अगर और देर से भी आते, तो भी मैं आपसे मिले बिना नहीं जाता।"

निखिलेश ने कहा, "दरअसल जिससे आप मिलने आए थे, जब उससे भेंट हो गई तो मेरे लिए इंतजार क्यों करते रहे? मैं तो आपका कोई नहीं हूं—"

सदानन्द ने टोका, "आप ऐसा न कहें। मुझे आपकी पत्नी और आप—दोनों से ही जरूरत थी।"

निखिलेश ने कहा, "कहिए, मुझसे आपको क्या जरूरत है?"

नयनतारा ने कहा, "तुम हाथ-मुंह धो लो, फिर आकर बैठो। तुरन्त आफिस से आए, इतनी हड़बड़ी क्या है?"

सदानन्द ने कहा, "हां। आप इतनी दूर से आए। जरा सुस्ता लीजिए। मैं बल्कि इंतजार करता हूं—"

निखिलेश ने कहा, "नहीं, मुझे सुस्ताना नहीं है। आपको क्या कहना है, कहिए। आपको ऐसी क्या जरूरत है कि आप जान-सुनकर उसी समय आए, जब मैं घर में नहीं रहता हूं?"

सदानन्द ने कहा, "आप नाहक ही मुझपर नाराज हो रहे हैं।"

निखिलेश ने कहा, "मेरा नाराज होना बेजा क्या है? आप ऐसे असमय में मेरे घर क्यों आए? आप तो इतवार को आ सकते थे, जिस दिन छुट्टी रहती है। आज क्यों आए? नयनतारा से आपका ऐसा क्या नाता है कि आप अभी भी इससे मिलने के लिए आते हैं?"

सदानन्द ने कहा, "मेरा यह आज का आना ही अन्तिम आना है निखिलेश बाबू, अब से मैं फिर कभी नहीं आऊंगा—"

निखिलेश ने कहा, "अच्छा, मेरी अनुपस्थिति में एक पराई स्त्री के पास आपका आना क्या उचित हुआ है?"

नयनतारा अब बोली। बोली, "तुम चुप रहो। यह आए हैं, अच्छा ही किया है, जरूरत होगी तो फिर आएंगे—"

निखिलेश ने आवाज ऊंची कर दी। कहा, "नहीं, मैं कहता हूं, ये नहीं आ सकते। मैं इन्हें नहीं आने दूंगा—"

नयनतारा बोल उठी, "नहीं आने देने वाले तुम कौन होते हो? यह घर मेरा भी है। तुम नहीं आने दोगे, तो मैं आने दूंगी। देखती हूं, तुम क्या कर लेते हो।"

"मतलब? तुम यों बढ़-चढ़कर बोलोगी? इतनी हिम्मत?"

नयनतारा बोल उठी, "तुम्हें ही ऐसी क्या हिम्मत हो गई, तुम मुझपर आंखें नीली-पीली कर रहे हो? तुम क्या सोचते हो कि मैंने तुमसे शादी की है, इसलिए मैं तुम्हारी नौकरानी हूं?"

"खबरदार, यों चिल्लाकर मुझसे झगड़ने न आओ—"

नयनतारा ने कहा, "चिल्लाकर तुमसे झगड़े मेरी बला! आदमी आदमी से झगड़ता है। तुम क्या कोई आदमी हो?"

निखिलेश ने इस बात का जवाब नहीं दिया। वह सदानन्द की ओर मुखातिब होकर बोला, "आइए सदानन्द बाबू, आपको मुझसे जो बात करनी है, आकर मेरे कमरे में कीजिए। यहां बातचीत नहीं होगी।"

और, हाथ पकड़कर उसने सदानन्द को अपने कमरे में ले जाना चाहा।

नयनतारा राह रोककर खड़ी हो गई। बोली, "यह तुम्हारे कमरे में क्यों जाएगा? जो कहना है, वह यहीं खड़ा रहकर कहेगा, यहां खड़े रहकर तुमको सुनना होगा—"

सदानन्द ने नयनतारा की ओर देखा। बोला, "निखिलेश बाबू के ही कमरे में जाऊं, जाने में हर्ज क्या है? अब तक तो तुम्हारे कमरे ही में बैठा था, तुम्हीसे बात करता रहा था। जो बातें मैंने तुमसे कही, वही बातें उन्हें उनके कमरे में बैठकर कहूं, तो क्या—"

निखिलेश ने कहा, "चलिए, चलिए। हर बात में उसकी बात माननी ही होगी, इसका भी कोई मतलब है।"

नयनतारा ने कहा, "तो मैं भी वहां रहूंगी। अपने पीछे मैं अपने खिलाफ कोई बात नहीं कहने दे सकती···"

शायद मालूम न हो, मैं आपकी तरह बड़े आदमी का लड़का
के आरम्भिक दिनों में देश का काम किया। सोचा था, देश-
ी जिन्दगी विताऊंगा। लेकिन दिन-काल वदल गया। जेल में हम
थे, उनमें से कितने ही वहुत वड़े हो गए। किसीको नमक का
केसीको अच्छी खासी नौकरी मिली। किसीको जेल जाने के
प फॉरेन सर्विस मिल गई। सवने कलकत्ता में वड़ी-बड़ी कोठी
वड़ी गाड़ियों पर चलते हैं। देखने पर अव मुझे पहचानते भी
एक मैं ही गरीव का गरीव रह गया। मेरा कुछ न हो सका।
ायनतारा से व्याह करना पड़ा। सोचा, हम दोनों नौकरी करेंगे।
ह वचाकर कलकत्ता में छोटा-मोटा एक मकान वनवाएंगे और
हेंगे, जैसा कि पहले के मेरे दूसरे दोस्त रह रहे हैं।"
वीच ही में वोल उठी, "यही सव कहने के लिए तुम इन्हें अपने
ए?"
ने कहा, "मुझे सव कह तो लेने दो…"
ने कहा, "मैं यह सव जानता हूं निखिलेश वावू, आप मुझे खामखा
ं सुना रहे हैं?"
ने कहा, "आपको इसलिए सुना रहा हूं कि मेरी सारी अशान्ति
ही हैं…"
अवाक् हो गया, "मैं?"
लोगों की सारी अशान्ति के ज़िम्मेदार आप हैं।"
मैं तो समझ नहीं पा रहा हूं कि आप लोगों की अशान्ति का
कैसे हुआ?"
ने कहा, "जिस दिन से आप मेरे घर आए, हम पति-पत्नी के
सी दिन से दरार पड़ी। हम लोगों ने जो थोड़े-से रुपये जमा किए
र हो गए। नयनतारा को मैंने सोने का एक हार वनवा दिया
ीमारी में उससे भी हाथ धोना पड़ा। अव हमारे पास पूंजी नाम
नहीं है।"
ादानन्द ज़रा देर चुप रहा। फिर वोला, "मैं माने लेता हूं कि
न पड़ा है। ज्ञात रूप में नहीं, अज्ञात रूप में मैं इन सव कुछ का
।"
स की वात पूरी होने से पहले ही निखिलेश ने कहा, "आप अगर
ने को अपराधी मानते हैं, तो अव उस अपराध का प्रतिकार भी
—"
ने कहा, "कहिए, क्या करूं कि उसका प्रतिकार हो?"
ा के जो गहने आपके यहां रह गए, थे, कम-से-कम आप वह सव
जिए…कम-से-कम…"

नयनतारा एकाएक बोल उठी, "नहीं, मेरे गहने नहीं चाहिए। तुम वे गहने इसे हरगिज मत दो। पता है, उन गहनों के लोभ में ही इसने मुझसे ब्याह किया है ? उन गहनों पर ही इसके दांत गड़े हैं—"

"क्या कहा ? तुम्हारे गहनों का मुझे लोभ है ?"

नयनतारा बोल उठी, "और क्या ! तुम क्या सोचते हो, सच बोलने में मैं डर जाऊंगी ? तुम गहनों के लिए नवाबगंज नहीं गए थे ?"

"गया था, लेकिन क्या अपने लिए ? गहने बेचकर जो रुपये होते उन रुपयों को क्या मैं अपने नाम से बैंक में रखता ?"

दोनों में बीच-बचाव करने की गर्ज से सदानन्द ने कहा, "सुनिए निखिलेश बाबू, ये तो बहुत पहले की घटनाएं हैं। मैंने कुछ देखा नहीं, और देखा भी हो, तो मुझे याद नहीं है। आप अगर उन गहनों का दाम बता सकते हों, तो मैं वह दाम अभी आपको दे दे सकता हूं···"

नयनतारा ने टोका, "नहीं। दाम नहीं देना होगा। वे गहने, वे रुपये—मैं कुछ भी नहीं लेने की—"

निखिलेश ने कहा, "क्यों नहीं लोगी ? तुम्हारे गहने हैं, उन गहनों पर तो तुम्हारा अधिकार है, लोगी क्यों नहीं ?"

"मैं न लू, तो तुम्हारा क्या ? मेरे गहनों पर तुमको इतना लोभ क्यों है ?"

निखिलेश ने कहा, "बार-बार लोभ का क्यों कह रही हो ?"

"कहूंगी नहीं ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं। क्यों कहोगी, क्यों ? तुम्हारे गहने क्या मेरे नहीं हैं ? मैं और तुम क्या अलग हैं ?"

नयनतारा बोल उठी, "बेशक अलग हैं। अलग नहीं होते तो जब मैंने अपना हार बंधक रखवा था, तो तुमने मुझसे झगड़ा क्यों किया था ?"

निखिलेश बिगड़ उठा, "तुम वह सब बात फिर से क्यों उठा रही हो ?"

नयनतारा बोली, "जरूर उठाऊंगी। मुझसे ब्याह किया है तो तुमने समझ लिया कि मेरा सिर खरीद लिया ? मैं तुम्हारी कुछ वेतनभोगी नौकरानी हूं कि तुम जो भी कहोगे, वही बरदाश्त करूंगी ?"

"रुको भी। चुप रहो।"

नयनतारा ने भी आवाज ऊंची कर दी। बोली, "चुप क्यों रहूं ? तुम्हारे डर से ? तुम मुझे डर दिखाना चाहते हो ? क्या सोचते हो, तुम्हारी लाल-पीली आंखों से मैं डर जाऊंगी ?"

निखिलेश ने सदानन्द की ओर देखा। बोला, "आप यहां आए क्यों सदानन्द बाबू, यह तो कहिए ? हम लोगों के बीच आकर आपने हमारी दुनिया को ऐसा विषाक्त क्यों बना दिया ? आप अपनी ही आंखों सब देख रहे हैं न। आप जिस दिन हमारे यहां आए थे, उसी दिन से इसकी शुरुआत हुई। उससे पहले हम कितने सुखी थे ! मैं आपसे अनुरोध करता हूं, कृपा करके अब आप यहां नहीं आइएगा। दया करके आप चले जाइए, हमें जीने दीजिए—"

सदानन्द कुछ कहने जा रहा था, पर उससे पहले ही नयनतारा बोल

उठी, "तुम इन्हें भगा क्यों दे रहे हो ? मैं कह रही हूं, ये नहीं जाएंगे । ये चले जाएंगे, तो मैं भी यहां नहीं रहूंगी।"

निखिलेश ने नयनतारा की बात का कोई जवाब नहीं दिया । उसने सदानन्द की ओर देखा । कहा, "आप उठिए सदानन्द बाबू ! दुहाई आपकी, आप उठिए—"

नयनतारा ने कहा, "नहीं, ये नहीं उठेंगे ।"

"जरूर उठेंगे । आप उठिए सदानन्द बाबू—"

नयनतारा बोली, "हरगिज़ नहीं उठेंगे । मैं इन्हें उठने नहीं दूंगी—"

निखिलेश ने कहा, "तुम्हारी ज़बरदस्ती चलेगी ?"

यह कहकर निखिलेश ने सदानन्द बाबू का हाथ पकड़ा । बोला, "दुहाई आपकी, चलिए यहां से···"

सदानन्द लेकिन आप ही उठ खड़ा हुआ । बोला, "लेकिन मैं अपनी बात तो कुछ कह नहीं पाया···"

"वह कहने की ज़रूरत नहीं । आप अभी जाइए···"

सदानन्द कमरे से बाहर निकल आया । निखिलेश बोला, "देर क्यों कर रहे हैं आप ? जाइए···"

नयनतारा ने कहा, "तो मैं भी अब इस घर में नहीं रहूंगी, चली जाऊंगी—"

निखिलेश ने तब तक सदानन्द को ढकेलते हुए सदर दरवाज़े के बाहर कर दिया । कहा, "देख रहे हैं आप, मैं किस हालत में जी रहा हूं । इसके बावजूद आप यहां आएंगे ?"

पीछे से दौड़ती हुई नयनतारा आई । बोली, "रास्ता छोड़ो, रास्ता छोड़ दो—मैं भी जाऊंगी···"

लेकिन उससे पहले ही निखिलेश ने धड़ाम से दरवाज़ा बंद कर दिया । उसके बाद राह रोककर खड़ा हो गया ।

नयनतारा बोली, "हटो, मैं बाहर जाऊंगी, हट जाओ···"

निखिलेश ने गरजकर कहा, "नहीं···"

"मैं अब हरगिज़ इस घर में नहीं रहूंगी । मैं भी चली जाऊंगी । हट जाओ···"

निखिलेश उसी तरह से राह रोके खड़ा रहा । बोला, "नहीं । मैं हरगिज़ नहीं हटूंगा, देखता हूं कि तुम कैसे जाती हो—"

बड़ा बाज़ार अब और भी गुलजार हो उठा था । देश की हालत अच्छी हो या बुरी, बड़ा बाज़ार की तरक्की का कुछ आता-जाता नहीं । बड़ा बाज़ार के लोग जैसे किसी भी तरह से दबने के नहीं । उत्सव में, व्यसन में, राजद्वार में, मरघट में—बड़ा बाज़ार सबका सदा का अंतरंग बंधु है । प्रकाश मामा किसी एक

जगह ज्यादा देर बैठने वाला शख्स नहीं। शाम करके बड़ा बाजार की चहल-पहल में धर्मशाला के अंधेरे कमरे के एक कोने में वह भला ज्यादा देर कैद रह सकता है। प्रकाश मामा पहले भी कलकत्ता के इस बड़ा बाजार में आया है। लेकिन यह आया था रुपया फूंकने के लिए। उस समय प्रकाश मामा के लिए नवाबगंज ही बड़ा बाजार था। नवाबगंज के बड़ा बाजार में रुपया जुटाता था और खर्च करने के लिए कलकत्ता के बड़ा बाजार में आया करता था। सच पूछिए तो प्रकाश मामा के लिए सारा कलकत्ता शहर ही बड़ा बाजार था। रात उसकी कालीघाट में मानदा मौसी की बस्ती में कटा करती और दिन बीता करता इस बड़ा बाजार में। यहां किस दूकान में भंग का सबसे अच्छा शरबत मिलता है, किस गली में किसके किस कोटर में चुलाई शराब मिलती है, यह सब प्रकाश मामा को मुखस्थ था।

अहा, प्रकाश मामा के कितने अरमानों का कलकत्ता। जीजाजी के मरने के बाद से वह कितना सपना देखता आया। सदा मन-ही-मन चार लाख रुपये का सपना देखता रहा। कलकत्ता में एक अपने मकान का सपना देखा। और देखा, विलायती व्हिस्की का सपना। विलायती व्हिस्की पीने की उसे बड़ी साध थी। जब तक दीदी जिन्दा रहीं, भर-भर पेट विलायती व्हिस्की पी। दीदी के मरने के बाद से व्हिस्की के पैसे नहीं नसीब हुए। एक बार देसी व्हिस्की पीकर देखी थी, वह बिलकुल देसी ठर्रे जैसी। उससे नशा नहीं होता, बल्कि नशा टूट जाता है।

पांडे जी ने देख लिया। पूछा, "कहां चले मामा जी ?"

प्रकाश मामा को समझ नहीं आया कि बात वह कैसे कहे। बोला, "मेरा भांजा तो आया नहीं पांडे जी ! कहां गया, कहिए तो ? अभी तक नहीं आया ?"

पांडे जी को क्या मालूम कि बाबूजी क्यों नहीं आए।

प्रकाश मामा ने कहा, "मगर जानते हैं, हम दोनों एक ही साथ रेल-बाजार स्टेशन से ट्रेन में सवार हुए। बीच में मेरी जरा आंख लग गई और उसी मौके से वह जाने किस स्टेशन पर उतर पड़ा।"

जरा रुककर फिर बोला, "मगर गया कहां, कहिए तो ? कहां जा सकता है ?"

पांडे जी ने कहा, "यह मैं कैसे बताऊं हुजूर !"

प्रकाश मामा ने कहा, "ठीक ही तो, आप कैसे कह सकते हैं ! दरअसल गलती मेरी ही है। इन जली आंखों में क्या ऐन उसी समय नींद आनी थी ? साली नींद के भी कोई समय-असमय नहीं ? जानते हैं, मुझे अपने आप पर ऐसा गुस्सा आ रहा है कि लगता है, अपने ही गाल पर थप्पड़ लगाऊं—"

"आप इतना सोच क्यों रहे हैं ? वह आ ही जाएंगे। दो दिन सब्र तो कीजिए।"

प्रकाश मामा उतावला हो पड़ा। बोला, "आप समझते नहीं हैं पांडे जी ! आप समझ भी नहीं सकेंगे। मेरी जैसी हालत होती तो आप समझते। एक-दो

नहीं, चार-चार लाख रुपये मेरे भांजे ने ठीकरे की तरह उड़ा दिए--"

"चार लाख रुपये ? बाबूजी ने उड़ा दिए ?"

"हां, पांडे जी ! फिर आपसे कह क्या रहा हूं, अजी साहब, बिलकुल ठीकरे की तरह उड़ा दिया। मगर मुझे एक पैसा भी नहीं दिया।"

पांडे जी ने यह सब कुछ नहीं समझा। पूछा, "बाबूजी को इतने रुपये कहां मिले ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "आप नहीं समझेंगे। आपको कहने से कोई लाभ नहीं। अजी, आपके बाबूजी को आठ लाख रुपये मिले थे। वे रुपये भला गांव के देहातियों को देने चाहिए थे ?"

"क्यों दे दिए ?"

"देखिए पांडे जी, आप चूंकि विचक्षण आदमी हैं, इसलिए ऐसा कहा। दुनिया का हर विचक्षण आदमी यही कहेगा। मैंने भी आपके बाबूजी से यही कहा, इन लोगों को क्यों दे रहा है ? ये गंवई लोग, रुपये का मर्म क्या जानें ? पर उसने एक नहीं सुनी। बोला, 'उनके रुपये मैं उन्हींको दे रहा हूं।' जरा उसकी बात सुन लीजिए। तूने कानूनन बाप के रुपये पाए, वे रुपये तेरे हक के हैं। लेकिन ये रुपये इन लोगों के किस काम आएंगे ? ये लोग व्हिस्की पीना भी नहीं जानते और औरत भी नहीं रखते। इतने-इतने रुपये ये लोग जो सो में उड़ा देंगे। मगर मेरी मानी नहीं, चार लाख रुपये उन लोगों को दे दिए। कहा, गांव वालों के लिए अस्पताल होगा, स्कूल होगा, कालेज होगा—"

"चार लाख रुपया ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "कह क्या रहा हूं आपसे। अथच देखिए, मैं गरीब हूं, बीवी-बच्चे हैं। ऊपर से क्या बताऊं आपको, नशा-भांग की लत भी है। सो तू आखिर मुझको भी तो कुछ देगा ? मैं तेरा गरीब मामा, तू मेरी बात कतई भूल गया ? इतना बड़ा नमकहराम है तू ? आप ही कहिए पांडे जी, यह नमकहरामी है या नहीं ? आप तो विचक्षण आदमी हैं, आप ही कहिए—"

पांडे जी क्या कहे, समझ नहीं सका।

प्रकाश मामा ने कहा, "मुझे डर किस बात का हो रहा है, जानते हैं पांडे जी ? डर हो रहा है कि बाकी जो चार लाख हैं, वह वह भी किसीको न दे दे—"

पांडे जी ने कहा, "सो बाबूजी दे दे सकते हैं। बाबूजी के पास रुपया रहने से वह जिसको भी सामने पाएंगे, उसीको दे देंगे।"

प्रकाश मामा और भी खौफ खा गया। बोला, "अच्छा। तब तो सर्वनाश हो जाएगा।"

"जी। मैंने उन्हें एक ऊनी चादर ले दी थी। वह उन्होंने एक बुढ़िया को दे दी—"

"किस बुढ़िया को ?"

हाथ में चार-चार लाख रुपये हैं···"

"नकद चार लाख ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "नकद नहीं, रुपये बैंक में हैं। मगर चेक काट दिया कि हो गया। चेक बुक तो उसके पास ही है।"

प्रकाश मामा से और सोचते न बना। जितना ही सोचता था, दिमाग उसका उतना ही गरम हो रहा था। इतने दिनों तक उसे सिखाया-पढ़ाया और अन्त में वह ऐसा निकम्मा निकला। बचपन से उसे वह कितनी औरतों के यहां साथ ले गया, सोचा था, कभी न कभी आदमी बनेगा।

निकलने लगा तो बोला, "मैं आता हूं पांडे जी, आकर गाऊंगा—"

"मगर अभी जा कहां रहे हैं ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "ज्यादा देर नहीं होगी। गया और आया। एक जरूरी काम से निकल रहा हूं—अभी आ जाऊंगा। आकर गाऊंगा···"

"अगर इस बीच बाबूजी आ जाएं तो मैं क्या कहूंगा ?"

"कहिएगा, आपके मामा जी आए हैं। आपकी राह देख रहे हैं। मैं जब तक लौट न आऊं, आप उन्हें छोड़िएगा नहीं। समझ गए ? मैं फौरन आता हूं···"

प्रकाश मामा ने जूते पहने और तेजी से निकल पड़ा। बड़ा बाजार का तंग रास्ता। जिस पर लोगों की किल-बिल भीड़। चलने में लोगों से टकराना पड़ता है। लगता है, सारी दुनिया के लोग यहां आ गए हैं। रास्ते के एक किनारे खड़े होकर जेब से मनीबैग को निकालकर देखा। कई रुपये फिर भी बच रहे थे। उन्हींसे अभी काम चल जाएगा। फिर तो सदा से मांग लेने से ही होगा।

"अजी ओ भाई साहब !"

एक बिगड़े-बहके-से आदमी को देखकर प्रकाश मामा ने उसीको आवाज दी। लगा, वह पीता-वीता है।

अकचकाकर वह आदमी खड़ा हो गया। बोला, "क्या ?"

प्रकाश मामा ने पूछा, "अच्छा, आप यह बता सकते हैं कि यहां पर कलाली कहां है ?"

"कलाली ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "हां, कलाली।"

उस आदमी के चेहरे पर आश्चर्य का भाव देखकर प्रकाश मामा ने और भी विस्तार से समझाकर कहा, "मतलब शराब की दूकान, देशी शराब की दूकान। मैं पहले बहुत बार आ चुका हूं, लेकिन दिन का समय है न, ठीक याद नहीं आ रहा है, पहले रात को आया था न—"

वह आदमी जरा देर प्रकाश मामा की ओर कटमटाकर ताकते हुए बोला, "मुझे नहीं मालूम—"

कहकर ही वह अपनी राह चलने लगा।

प्रकाश मामा कुछ देर तक उसकी तरफ हाथ किए ताकता रहा। अजीब

है तो। शराब के नाम से ही इतनी नफरत। क्यों, शराब क्या पीने की चीज़ नहीं है। मैंने शराब का नाम लेकर ऐसा कौन-सा गुनाह किया!

प्रकाश मामा के जी को बड़ी चोट लगी। नः, ऐसी बेअदबी बरदाश्त नहीं की जा सकती। सो वह उस आदमी की ओर लपका, "अजी ओ जनाब—सुनिए, सुनिए—"

करीब पहुंचते ही उस आदमी ने सुना। वह पीछे मुड़कर खड़ा हो गया।

प्रकाश मामा ने कहा, "आपने उस तरह से कटमटाकर जो मेरी तरफ देखा, मैंने आपका ऐसा क्या किया?"

वह आदमी तो और भी हक्का-बक्का हो गया।

मगर प्रकाश मामा छोड़ने वाला आदमी नहीं। बोला, "आप बताइए कि मैंने आपका क्या बिगाड़ा? मैंने तो सिर्फ इतना ही पूछा आपसे कि कलाली कहां है! इससे आपके बदन पर कौन-सा फफोला पड़ गया? शराब क्या इतनी ही घृणा की चीज है कि आपने कटमटाकर मेरी ओर देखा?"

वह आदमी बोला, "मैं क्या शराबी हूं कि तुम मुझसे शराबखाने का पता पूछते हो?"

प्रकाश मामा उखड़ गया। बोला, "खबरदार, तुम-ताम न करो, अच्छा न होगा।"

वह आदमी बोला, "शराबी को तुम-ताम नहीं तो क्या जी-हुजूर करूंगा?"

"मतलब? मैं शराबी हूं? मैंने शराब पी है?"

वह बोला, "शराबी नहीं हो तो कलाली की क्यों पूछ रहे हो, देवता की पूजा के लिए?"

प्रकाश मामा डपट उठा, "खबरदार, मुझे शराबी मत कहो…"

"शराबी कहा है, ठीक ही किया है। शराबी को शराबी नहीं तो क्या कहूंगा? ससुर कहूं? यही अच्छा होगा?"

प्रकाश मामा तो आग-बबूला हो गया। वह उस आदमी पर एकबारगी कूद पड़ने को था। लेकिन अगल-बगल के कुछ लोग हां-हां करके दौड़े आए और प्रकाश मामा का हाथ पकड़ लिया, "हुआ क्या साहब, हो क्या गया? मुंह के होते हाथ उठाने की नौबत क्यों?"

प्रकाश मामा को बल-सा मिला। बोला, "देखिए, इस आदमी ने मुझे सामता ही शराबी कहा—"

"क्यों? शराबी क्यों कहा? आपने क्या शराब पी है?"

प्रकाश मामा ने कहा, "राम कहिए, शराब मैं किस दुःख से पिऊं साहब? मैं आप लोगों के सामने हा करता हूं, लीजिए—"

प्रकाश मामा ने मुंह बा दिया। बोला, "मिली शराब की गंध? मिली?"

किसीने भी हां-ना कुछ नहीं कहा। प्रकाश मामा ने कहा, "गलती में से इतनी गलती मुझसे हुई कि मैंने इनसे कलाली कहां है, यह पूछा। मेरा यह पूछना ही अन्याय हो गया?"

एक ने कहा, "तो आप कलाली का पता ही क्यों पूछ रहे थे ? पीते हैं ?"

प्रकाश मामा बोला, "देखता हूं, आप लोग भी तो पैसे ही आदमी हैं ! जनाब, कलाली के बारे पूछा कि शराब पीना हो गया ? मेरे किसी अपने आदमी की दूकान नहीं हो सकती है शराब की ? हम तो जात के कलाल हैं, अपनी जाति का व्यवसाय करें, तो भी गुनाह ? हमारे सात पुश्त शराब का कारबार करते है। शराब की दूकान करके ही मेरे दादा जी उस जमाने में रायबहादुर हुए थे, यह मालूम है ? शराब की दूकान की बदौलत ही मेरे चाचा ने देशबन्धु चितरंजन दास को दो लाख रुपये दिए थे—उन्हीं रुपयों से मुल्क आज आजाद हुआ है। शराब की कमाई मुल्क की खिदमत में लगाना गुनाह नहीं है और शराब पीना गुनाह है ?"

लाजवाब दलीलें। सबकी जबान बंद हो गई। प्रकाश मामा और खड़ा नहीं रहा, सबके मुंह पर जूता मारकर दूसरी ओर चला गया। देश स्वाधीन हुआ है कि ठगा हुआ है। जब अपने पैसे से शराब पीने की भी स्वाधीनता नहीं, तो देश के स्वाधीन होने से लाभ क्या हुआ ?

लेकिन कोशिश करने से बड़ा बाजार में क्या नहीं मिलता ! खोजते-खोजते आखिर वह दूकान मिल गई। चिलचिलाती धूप। लेकिन उस तीखी धूप में भी दूकान में ग्राहकों की कमी नहीं। भीड़ को ठेलकर हाथ से रुपया बढ़ाते हुए उसने कहा, "दो नम्बर का एक पाट देना—"

बोतल लेकर बगल की एक बेंच पर प्रकाश मामा आराम से बैठ गया। धोती के छोर से छानकर माल को गिलास में ढालने लगा। फिर कच्चा प्याज और गीले चने चबाता हुआ उसने गिलास से चुस्की ली। आः प्रकाश मामा को लगा, सारा शरीर ही जुड़ा गया। देशी हुई तो क्या, है खांटी !

एक पाट से मानो हुआ नहीं। इतने झमेले, इतनी झंझट के बाद एक पाट से होना भी क्या ! महज जीभ भिगाने में ही खत्म हो गई। अबकी उसने एक छोटी बोतल ली। अब शरीर थोड़ा गरम हुआ। जेब में अभी भी और कई रुपये बच रहे थे। प्रकाश मामा ने फिर हाथ बढ़ा दिया, "एक और छोटी बोतल भैया…"

फिर कच्चा प्याज और चना। पीते-पीते जब मौज में आ गया, तो वह बेंच पर से उठा।

शराबी देखकर सभी शराबियों ने राह बना दी। शराबी ही शराबी को पहचानते हैं। प्रकाश मामा रंग में आ गया था। उस समय उसे कुछ भी बुरा नहीं लग रहा था, कोई भी बुरा नहीं लग रहा था। सभी अच्छे, सभी गुड। सिर के ऊपर का जलता सूरज भी उसे चांद-सा लगा। बड़ा ही स्निग्ध सुशील।

"ऐ रिक्शावाला ! रिक्शावाला !"

रिक्शा लिए रिक्शावाला दौड़ता हुआ आया। पूछा, "कहां चलेंगे बाबूजी ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "कहीं जाना नहीं है भैया, सिर्फ तुम्हारे रिक्शे पर

नहीं है। [illegible]

प्रकाश मामा के जी को वड़ी चोट लगी। नः, ऐसी वेअदवी वरदाश्त नहीं की जा सकती। सो वह उस आदमी की ओर लपका, "अजी ओ जनाव—सुनिए, सुनिए—"

करीव पहुंचते ही उस आदमी ने सुना। वह पीछे मुड़कर खड़ा हो गया।

प्रकाश मामा ने कहा, "आपने उस तरह से कटमटाकर जो मेरी तरफ देखा, मैंने आपका ऐसा क्या किया ?"

वह आदमी तो और भी हक्का-वक्का हो गया।

मगर प्रकाश मामा छोड़ने वाला आदमी नहीं। वोला, "आप वताइए कि मैंने आपका क्या विगाड़ा ? मैंने तो सिर्फ इतना ही पूछा आपसे कि कलाली कहां है! इससे आपके वदन पर कौन-सा फफोला पड़ गया ? शराव क्या इतनी ही घृणा की चीज़ है कि आपने कटमटाकर मेरी ओर देखा ?"

वह आदमी वोला, "मैं क्या शरावी हूं कि तुम मुझसे शरावखाने का पता पूछते हो ?"

प्रकाश मामा उखड़ गया। वोला, "खवरदार, तुम-ताम न करो, अच्छा न होगा।"

वह आदमी वोला, "शरावी को तुम-ताम नहीं तो क्या जी-हुजूर करूंगा ?"

"मतलव ? मैं शरावी हूं ? मैंने शराव पी है ?"

वह वोला, "शरावी नहीं हो तो कलाली की क्यों पूछ रहे हो, देवता की पूजा के लिए ?"

प्रकाश मामा डपट उठा, "खवरदार, मुझे शरावी मत कहो…"

"शरावी कहा है, ठीक ही किया है। शरावी को शरावी नहीं तो क्या कहूंगा ? ससुर कहूं ? यही अच्छा होगा ?"

प्रकाश मामा तो आग-वबूला हो गया। वह उस आदमी पर एकवारगी कूद पड़ने को था। लेकिन अगल-वगल के कुछ लोग हां-हां करके दौड़े आए और प्रकाश मामा का हाथ पकड़ लिया, "हुआ क्या साहव, हो क्या गया ? मुंह के होते हाथ उठाने की नौवत क्यों ?"

प्रकाश मामा को वल-सा मिला। वोला, "देखिए, इस आदमी ने मुझे खामखा ही शरावी कहा—"

"क्यों ? शरावी क्यों कहा ? आपने क्या शराव पी है ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "राम कहिए, शराव मैं किस दुःख से पिऊं साहव ? मैं आप लोगों के सामने हा करता हूं, लीजिए—"

प्रकाश मामा ने मुंह वा दिया। वोला, "मिली शराव की गंध ? मिली ?"

किसीने भी हां-ना कुछ नहीं कहा। प्रकाश मामा ने कहा, "गलती में से इतनी गलती मुझसे हुई कि मैंने इनसे कलाली कहां है, यह पूछा। मेरा यह पूछना ही अन्याय हो गया ?"

भीड़ की तो कमी नहीं। वहां सभी काम के लोग हैं और सभी बेकार हैं।

दौड़ते-दौड़ते एक चौड़े रास्ते पर पहुंचते ही अचानक हां-हां-हां की चीख उठी और साथ-ही-साथ एक लदी हुई विशाल ट्रक में जोर से ब्रेक मारने की कर्कश आवाज हुई।

"क्या हुआ साहब, क्या बात है?"

जो लोग अपने काम में व्यस्त आस-पास घूम-घाम रहे थे, सबका चेहरा डर से उड़ गया था। इस अचानक हुई दुर्घटना से सब हक्के-बक्के हो गए थे। कहीं कोई बात नहीं, मगर एकाएक यह आदमी गली से इस तरह दौड़ता क्यों आया? बड़ी सड़क पर निकलने में पहले चारों ओर सावधानी से देखकर निकलना चाहिए न।

जो लोग उसे पीछे से खदेड़ते आ रहे थे, वे और आगे नहीं बढ़े। अब पुलिस का सिपाही आ पहुंचेगा। गवाह बनने को कहेगा, उनकी गवाही ली जाएगी। कौन इस झंझट में पड़े। उससे चुपचाप निकल पड़ना ही ठीक।

"तकदीर साहब। इसीको नियति कहते हैं।"

ट्रक के नीचे पड़ा प्रकाश मामा उस समय चुपचाप किसके पास अर्जी पेश कर रहा था, कौन जाने! काली मैया या मंगल चंडी, किसमे व्हिस्की पीने की प्रार्थना में अपना अन्तिम अरमान निवेदन कर रहा है, यही कौन जाने! इहकाल और परकाल, कोई भी काल जैसा कुछ कहीं हो तो प्रकाश मामा का अरमान क्या कोई मिटा सकेगा? प्रकाश मामा जैसों की साध, कभी कोई मिटा सका है? प्रकाश मामा की दीदी नहीं मिटा सकी, उसके जीजाजी नहीं मिटा सके, आखिर उसका भांजा भी नहीं मिटा सका।

वह जगह ताजे लहू से टकटक लाल हो गई थी। भीड़ के पैरों की फांक से दिखाई दे रहा था—कोलतार की फीकी सड़क पर जैसे रक्त गंगा बह रही हो।

नैहाटी वाले मकान में उस समय दूसरा ही एक दृश्य था। दृश्य नहीं, दृश्यांतर। जरा ही देर पहले जो इस घर से होकर एक आंधी निकल गई है, उसका जरा भी कोई चिह्न कहीं नहीं था। घर में सन्नाटा था। नयनतारा ने भोजन किया या नहीं, यह देखने-सुनने की जरूरत निखिलेश को नहीं थी। उसके आंख-मुंह का रंग-ढंग देखकर उससे बात करने में भी निखिलेश को डर लग आता। यही गनीमत कि इतने बड़े एक दुर्योग को अन्त तक निखिलेश ने सम्भाल लिया।

यह सब रवैया देख-सुनकर गिरिबाला भी कैसी तो भौंचक्की हो गई थी।

निखिलेश अपनी खाट पर चित लेटा हुआ था। आशा की कहीं भी कोई किरण नहीं। उसका अब कोई नहीं। इस इतनी बड़ी दुनिया में वह अकेला

बैठूंगा—तुम रिक्शा उतारकर रखो।"

रिक्शावाले ने रिक्शे को उतारा। प्रकाश मामा उसपर बैठ गया। रिक्शा-वाला रिक्शा खींचना चाह रहा था। प्रकाश मामा ने रोक दिया, "अरे, खींच क्यों रहे हो? बस, इसी तरह से खड़े रहो—"

अपनी जिन्दगी में रिक्शावालों ने ऐसी सवारी नहीं देखी। वह रिक्शा लिए खड़ा रहे और वह आदमी उसपर चुपचाप बैठा रहे, ऐसा भी कहीं होता है?

यह तमाशा देखकर कुछ लोग जमा हो गए। बड़ा बाजार में कारण या अकारण ही लोग जुट जाते हैं।

सबने पूछा, "जनाब को जाना कहां है?"

प्रकाश मामा ने कहा, "कहीं नहीं जाऊंगा—"

"कहीं जाएंगे नहीं तो क्या रिक्शे पर यों ही बैठे रहेंगे?"

"हां, बैठा ही रहूंगा। बैठे-बैठे सोऊंगा।"

एक को तब तक गंध मिल गई। बोल उठा, "अरे, शराबी है, शराबी!"

"क्या कहा? मैं शराबी हूं?"

"नहीं तो आप यों बैठे क्यों रहेंगे? या तो कहीं जाइए, या रिक्शा से उतर पड़िए। सोना हो तो अपने घर जाकर सोइए—"

प्रकाश मामा ने कहा, "नहीं। मेरी ख्वाहिश है, मैं चांद की इस चांदनी में सोऊंगा।"

इसपर लोग बिगड़ उठे। सबने हाथ पकड़कर उसे खींचा, "साले··· उतर···"

"नहीं, मैं नहीं उतरूंगा···"

"अबे नशेबाज···"

सबने धर-पकड़कर प्रकाश मामा को उतार दिया। प्रकाश मामा को अब मानो कुछ चेत हुआ। चारों तरफ इतनी भीड़ देखकर हैरान हो गया। बोला, "कौन? कौन हो तुम लोग?"

एक ने उसके सिर पर एक चांटा लगा दिया।

"अरे! मार क्यों रहे हो?"

मौका पाकर एक दूसरा आदमी पीछे से उसका कुरता खींचने लगा। सामने, पीछे, जिसे जिधर से बन रहा था, उसे ठेलने लगा। प्रकाश मामा इधर देखता तो उधर से, उधर देखता तो इधर से उसे ठेल देता।

न:, इन सालों ने नशा जमने नहीं दिया। प्रकाश मामा ने दूसरी ओर भाग जाने की चेष्टा की। लेकिन सभी तरफ लोग गिज-गिज कर रहे थे।

अन्त में एक ओर थोड़ी-सी फांक देखकर उसने उसी होकर भागकर बचने की जी-जान से कोशिश की। लेकिन सब उसके पीछे दौड़े। लाचार प्रकाश मामा ने दौड़ना शुरू किया···"

पीछे से सभी शोर कर उठे, "चोर-चोर—"

चोर-चोर का हल्ला सुनकर और भी कुछ लोग आ पड़े। बड़ा बाजार में

भीड़ की तो कमी नहीं। वहां सभी काम के लोग हैं और सभी व्यस्त हैं।

दौड़ते-दौड़ते एक चौड़े रास्ते पर पहुंचते ही अचानक हा-हा-हा की चीख उठी और साथ-ही-साथ एक लदी हुई विशाल ट्रक में जोर से ब्रेक मारने की कर्कश आवाज़ हुई।

"क्या हुआ साहब, क्या बात है?"

जो लोग अपने काम में व्यस्त आस-पास घूम-घाम रहे थे, सबका चेहरा डर से उड़ गया था। इस अचानक हुई दुर्घटना से सब हक्के-बक्के हो गए थे। कहीं कोई बात नहीं, मगर एकाएक यह आदमी गली से इस तरह दौड़ता क्यों आया? बड़ी सड़क पर निकलने में पहले चारों ओर सावधानी से देखकर निकलना चाहिए न।

जो लोग उसे पीछे से खदेड़ते आ रहे थे, वे और आगे नहीं बढ़े। अब पुलिस का सिपाही आ पहुंचेगा। गवाह बनने को कहेगा, उनकी गवाही ली जाएगी। कौन इस झंझट में पड़े। उससे चुपचाप निकल पड़ना ही ठीक।

"तकदीर साहब। इसीको नियति कहते हैं।"

ट्रक के नीचे पड़ा प्रकाश मामा उस समय चुपचाप किसके पास अर्जी पेश कर रहा था, कौन जाने! काली मैया या मंगल चंडी, किससे व्हिस्की पीने की प्रार्थना में अपना अन्तिम अरमान निवेदन कर रहा है, यही कौन जाने! इहकाल और परकाल, कोई भी काल जैसा कुछ कहीं हो तो प्रकाश मामा का अरमान क्या कोई मिटा सकेगा? प्रकाश मामा जैसों की साईं, कभी कोई मिटा सका है? प्रकाश मामा की दीदी नहीं मिटा सकी, उसके जीजाजी नहीं मिटा सके, आखिर उसका भांजा भी नहीं मिटा सका।

वह जगह ताज़े लहू से टकटक लाल हो गई थी। भीड़ के पैरों की फांक से दिखाई दे रहा था—कोलतार की फीकी सड़क पर जैसे रक्त गंगा बह रही हो।

नैहाटी वाले मकान में उस समय दूसरा ही एक दृश्य था। दृश्य नहीं, दृश्यांतर। ज़रा ही देर पहले जो इस घर से होकर एक आंधी निकल गई है, उसका ज़रा भी कोई चिह्न कहीं नहीं था। घर में सन्नाटा था। नयनतारा ने भोजन किया या नहीं, यह देखने-सुनने की ज़रूरत निखिलेश को नहीं थी। उसके आंख-मुंह का रंग-ढंग देखकर उससे बात करने में भी निखिलेश को डर लग जाता। यही गनीमत कि इतने बड़े एक दुर्योग को अन्त तक निखिलेश ने सम्हाल लिया।

यह सब सर्वदा देख-सुनकर गिरिबाला भी कैसी तो भौंचक्की हो रही थी।

निखिलेश अपनी खाट पर चित लेटा हुआ था। आशा की कहीं कोई किरण नहीं। उसका अब कोई नहीं। इस इतनी बड़ी दुनिया में वह अकेला

है। इस शरीर की तरह अकेले ही उसे इस गिरस्ती को भी ढोते चलना पड़ेगा। हर रोज उसे आफिस जाना होगा, हर माह तनखाह के गिने-गुथे रुपये लाने होंगे। दूसरा कोई उसे कोई मदद नहीं करेगा। नयनतारा अब नौकरी नहीं करेगी। अपने वेतन के रुपये लाकर वह गिरस्ती को सहजता से चलाने में मदद नहीं करेगी।

तो? तो क्या करेगा वह? जैसे आज तक चलाता आया है, अन्त तक वैसे ही चलाना होगा? फिर जब नौकरी से रिटायर करेगा, तो पेंशन मिलेगी। जो हालत अभी चल रही है, उस समय हालत और भी खराब हो जाएगी। फिर जीवन के अन्तिम दिन उसके किस तरह से गुज़रेंगे?

निखिलेश यह बात बहुत दिनों से ही सोच रहा था। लेकिन आज जो घटना घट गई, उससे उसकी यह फिक्र और भी पेचीदी हो गई। नयनतारा अगर सचमुच ही सदानन्द बाबू के पास चली जाती, तो क्या होता? खैर, आज तो उसने नयनतारा को किसी तरह से घर में रोक भी लिया, लेकिन कल? कल जब वह अपने आफिस चला जाएगा, उस मौके से अगर सदानन्द बाबू आएं? और तब अगर नयनतारा उनके साथ चली जाए, तो उसे कौन रोकेगा? कौन उसे ज़बरदस्ती पकड़कर रखेगा? रोज़ ही आफिस छोड़कर कोई बीवी को पहरा तो नहीं दे सकता। हां, एक तरकीब है ज़रूर। बाहर से नयनतारा के दरवाज़े पर ताला लगा दे सकता है। लेकिन यही क्या संभव है? नयनतारा ही क्या वैसी औरत है कि इसे चुपचाप बरदाश्त कर लेगी?

निखिलेश को लगा, आज रात उसे नींद नहीं आएगी।

एकाएक उसे ख्याल आया, कमरे की बत्ती जल रही है। आवेग और उद्वेग से वह बत्ती बुझाना भूल गया था। निखिलेश बिस्तर से उठा। बत्ती का स्विच बंद करके फिर आकर लेट रहेगा। सोने की एक बार जी-तोड़ कोशिश करेगा।

लेकिन मेज पर जो नज़र गई, देखा, वहां एक बैग पड़ा है। प्लास्टिक का लम्बा-चौड़ा बैग।

निखिलेश ने बैग को हाथ में उठा लिया। किसका है यह बैग? अचानक याद आ गया। इस बैग को तो उसने सदानन्द बाबू के हाथ में देखा था। वही छोड़ गए क्या? शायद भूल से छोड़ गए। इतना कुछ हुआ-हवाया, उसीमें इसे ले जाना भूल गए।

उसने बैग को खोला। अन्दर खास कुछ नहीं था? निखिलेश ने सोचा था, शायद रुपया-पैसा हो। लेकिन बैग के अन्दर हाथ डालते हुए उसे मुड़ा हुआ। कागज-सा मिला। मुड़े कागज को खोला। एक चिट्ठी थी। चिट्ठी के साथ एक चेक। क्रास्ड चेक।

निखिलेश के सिर से पैर तक की सारी शिराओं में मानो बिजली दौड़ गई। कैसी चिट्ठी? किसकी चिट्ठी?

चिट्ठी पर निखिलेश और नयनतारा का नाम देखकर तो वह और भी अवाक् हो गया। साफ हरुफों में उन दोनों का नाम लिखा था।

नीचे लिखा था—

"निखिलेश बाबू, आज मैं जो बात कहने आया था, उसे मुंह से कह नहीं पाऊंगा, इसलिए उसे इस चिट्ठी में लिख भाया हूं। आपने एक दिन मुझसे पूछा था, मैंने नयनतारा को अपनी पत्नी की मर्यादा क्यों नहीं दी? क्यों नहीं दी, यह मैं जबानी आप लोगों को बता चुका हूं। लेकिन मुक्ति ही तो जिन्दगी में बड़ी बात नहीं। मुक्ति के ऊपर भी और एक बात है, जो मुक्ति-तर्क से परे है। आपके परिवार के अभावों को मैंने अपनी आंखों देखा है। उन अभावों को मैं दूर कर सकूंगा, ऐसा घमंड मुझे नहीं है। फिर भी उन्हें दूर करने की अपनी मामूली-सी चेष्टा मैंने इस खत के साथ लगा दी है। मुझे मालूम है, आपकी जरूरतें पूरी करना मेरी सामर्थ्य से बाहर है, फिर भी मेरा यह साधारण-सा दान कबूल करें, तो मैं कृतार्थ होऊंगा। मुझे ढूंढकर कृतज्ञता जताने की चेष्टा मत कीजिएगा, क्योंकि मैंने तै कर लिया है कि यहां से मैं जान-पहचान के सबकी निगाहों से कहीं दूर चला जाऊंगा। मेरा स्नेह, मेरी शुभकामनाएं।"

खत पढ़कर निखिलेश ने फिर चेक की ओर देखा। चार लाख रुपये। निखिलेश को लगा, वह गिर पड़ेगा। उसके हाथ-पांव बेबस होते जा रहे थे। खत को लेकर वह बिस्तर पर जा बैठा। चिट्ठी को फिर से पढ़ने लगा। फिर से चेक की राशि को देखा। एक बार संदेह-सा हुआ, वह गलत तो नहीं देख रहा है। ठीक जग तो रहा है वह। एक-एक बार करके उसने कई बार चिट्ठी और चेक को पढ़ा। तब उसे लगा कि उसने सचमुच ही सदानन्द बाबू पर अन्याय किया है। जो आदमी इतना अच्छा है, इतना उदार है, उसके साथ उसने वास्तव में बुरा बर्ताव किया है।

वह झट उठा। बगल के कमरे के दरवाजे पर धक्का देने लगा, "नयनतारा नयनतारा उठो—"

अन्दर से कोई जवाब नहीं। निखिलेश ने फिर पुकारा, "नयनतारा, दरवाजा खोलो, देखो, सदानन्द बाबू कैसी चिट्ठी दे गए हैं…"

यों शायद नयनतारा दरवाजा नहीं खोलती। लेकिन सदानन्द बाबू की चिट्ठी की सुनकर उसने दरवाजा खोल दिया। बोली, "क्या कह रहे हो तुम?"

निखिलेश ने चेक के साथ चिट्ठी नयनतारा की ओर बढ़ा दी। बोला, "देखो, तुम्हारे और मेरे नाम सदानन्द बाबू क्या लिखकर रख गए हैं—"

नयनतारा ने चिट्ठी ली। मन-ही-मन पढ़ने लगी। गौर से कुछ देर तक चेक को भी देखा। पढ़ते-पढ़ते कुछ देर के लिए वह तन्मय हो गई थी मानो। उसके बाद सिर उठाकर उसने निखिलेश की ओर देखा। उसकी दोनों आंखें छलछला रही थीं।

निखिलेश ने कहा, "यह बैग में रखी हुई थी। पहले मैंने देखा नहीं था। बत्ती बुझाने गया था, तो देखा, टेबल पर बैग पड़ा है। उसीमें यह थी…"

नयनतारा के मुंह से कोई बात नहीं फूटी। निखिलेश भी इस घटना से जैसे विमूढ़ हो गया था। उन दोनों के ही लिए पल में मानो जीवन का सारा

है। इस शरीर की तरह अकेले ही उसे इस गिरस्ती को भी ढोते चलना पड़ेगा। हर रोज़ उसे आफिस जाना होगा, हर माह तनखाह के गिने-गुथे रुपये लाने होंगे। दूसरा कोई उसे कोई मदद नहीं करेगा। नयनतारा अब नौकरी नहीं करेगी। अपने वेतन के रुपये लाकर वह गिरश्ती की सहजता से चलाने में मदद नहीं करेगी।

तो? तो क्या करेगा वह? जैसे आज तक चलाता आया है, अन्त तक वैसे ही चलाना होगा? फिर जब नौकरी से रिटायर करेगा, तो पेंशन मिलेगी। जो हालत अभी चल रही है, उस समय हालत और भी खराब हो जाएगी। फिर जीवन के अन्तिम दिन उसके किस तरह से गुजरेंगे?

निखिलेश यह बात बहुत दिनों से ही सोच रहा था। लेकिन आज जो घटना घट गई, उससे उसकी यह फिक्र और भी पेचीदी हो गई। नयनतारा अगर सचमुच ही सदानन्द बाबू के पास चली जाती, तो क्या होता? खैर, आज तो उसने नयनतारा को किसी तरह से घर में रोक भी लिया, लेकिन कल? कल जब वह अपने आफिस चला जाएगा, उस मौके से अगर सदानन्द बाबू आएं? और तब अगर नयनतारा उनके साथ चली जाए, तो उसे कौन रोकेगा? कौन उसे ज़बरदस्ती पकड़कर रक्खेगा? रोज़ ही आफिस छोड़कर कोई बीवी को पहरा तो नहीं दे सकता। हां, एक तरकीब है ज़रूर। बाहर से नयनतारा के दरवाज़े पर ताला लगा दे सकता है। लेकिन यही क्या संभव है? नयनतारा ही क्या वैसी औरत है कि इसे चुपचाप बरदाश्त कर लेगी?

निखिलेश को लगा, आज रात उसे नींद नहीं आएगी।

एकाएक उसे ख्याल आया, कमरे की बत्ती जल रही है। आवेग और उद्वेग से वह बत्ती बुझाना भूल गया था। निखिलेश बिस्तर से उठा। बत्ती का स्विच बंद करके फिर आकर लेट रहेगा। सोने की एक बार जी-तोड़ कोशिश करेगा।

लेकिन मेज पर जो नज़र गई, देखा, वहां एक बैग पड़ा है। प्लास्टिक का लम्बा-चौड़ा बैग।

निखिलेश ने बैग को हाथ में उठा लिया। किसका है यह बैग? अचानक याद आ गया। इस बैग को तो उसने सदानन्द बाबू के हाथ में देखा था। वही छोड़ गए क्या? शायद भूल से छोड़ गए। इतना कुछ हुआ-हवाया, उसीमें इसे ले जाना भूल गए।

उसने बैग को खोला। अन्दर खास कुछ नहीं था? निखिलेश ने सोचा था, शायद रुपया-पैसा हो। लेकिन बैग के अन्दर हाथ डालते हुए उसे मुड़ा हुआ। कागज-सा मिला। मुड़े कागज को खोला। एक चिट्ठी थी। चिट्ठी के साथ एक चेक। क्रासड चेक।

निखिलेश के सिर से पैर तक की सारी शिराओं में मानो बिजली दौड़ गई। कैसी चिट्ठी? किसकी चिट्ठी?

चिट्ठी पर निखिलेश और नयनतारा का नाम देखकर तो वह और भी अवाक् हो गया। साफ हरुफों में उन दोनों का नाम लिखा था।

हानि-लाभ से बाहर, सभी देना-पावना की सरहद पार करके सुदूर निर्वासन में जा रहा हूं। अपने लिए आज मुझे कोई भी चाहना नहीं। मैं सिर्फ एक ही कामना करता हूं—मनुष्य सत् हों, मनुष्य सुखी हों, उनका कल्याण हो, उनका भला हो। बस, मैं और कुछ नहीं चाहता।"

इधर निखिलेश नैहाटी स्टेशन के प्लेटफार्म पर सभी लोगों के चेहरों पर नजर गड़ा-गड़ाकर उस खास चेहरे वाले की खोज कर रहा था। कहां चला गया वह! उसके लिए उस महत् मनुष्य की खोज निकालना मानो उस समय नितान्त अनिवार्य हो गया था।

और, बोस टोले के उस मकान के दरवाजे पर खड़ी नयनतारा भी रास्ते की ओर टक लगाए सवारी की प्रतीक्षा कर रही थी।

लेकिन जिस आदमी का निखिलेश और नयनतारा को बेसब्र इंतजार था, वह आदमी उस समय दूर, और, और भी दूर चला जा रहा था। उसके मन में अब कोई भी क्षोभ नहीं था, कोई भी खेद नहीं। उसने अब प्रायश्चित्त कर लिया, अब किसीको कोई दुःख नहीं रहेगा। नवाबगंज से निरक्षरता दूर हो जाएगी, नवाबगंज के लोग अब रोगों से छुटकारा पाएंगे, नयनतारा की गिरस्ती के सारे अभाव, सारी आर्थिक कठिनाइयां जाती रहेंगी। सभी सुखी होंगे, सबका कल्याण होगा, सबका शुभ होगा…शुभाय भवतु…

यह रहा सदानन्द चौधरी का अतीत। अपने इसी अतीत-जीवन पर उसने उस दिन कहानी लिखना शुरू की थी। उसे मालूम था कि उसका यह जीवन निरा तुच्छ है। जिन्दगी में उसने अपने लिए कभी कुछ नहीं चाहा। उसने तो बस, इतना ही चाहा था कि सबका भला हो, सब लोग सत् हों। सबकी सत्यता, सुख और मंगल में ही उसने अपने जीवन की चरितार्थता को ढूंढ़ना चाहा था। कहां सुलतानपुर, और कहां नैहाटी, कहां कलकत्ता और कहां यह चौबेडिया। चौबेडिया के इस सबई गांव में ही अज्ञातवास करके उसने अपने आपको खो दिया था। सोचा था अपने-आपको अस्वीकार करके, अपने-आपको खोकर ही उसे अपने-आपमें परित्राण मिलेगा। दुनिया के सारे पाप-पुण्य के दायित्व से उसे निष्कृति मिलेगी।

फिर भी कभी-कभी उसे सब कुछ याद हो आता। याद आ जाती बूढ़े मालिक की, गोरी बुआ की। याद आ जाता प्रकाश मामा—वह दिग्गी पाल, कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, फटिक नाई और कैलाश गुमाश्ता। इस अज्ञातवास में आने के बाद भी कभी-कभी उसका मन धर्मशाला के चौबे जी के पास जा रहता और कभी-कभी वह बाजार की उस सिरी अकेली बहू के पास। निखिलेश और नयनतारा के पास। जो भी हो, सब लोग सुखी रहें, सबका भला हो। सबके अभाव-दुःख दूर हों। नवाबगंज के लोग अब पढ़-लिखकर आदमी बनें, रोगों से उन्हें मुक्ति मिले, उनके दोष-पाप

हिसाव वेहिसाव हो गया। जिस अंक से दुनियादार लोग की सारी चीजों की कीमत आंकते हैं, इनके उसी शुरू के अंक में ही मानो सहसा वेमेल हो गया। घंटा-भर पहले जिस विपर्यय के शिखर पर खड़े होकर वे सर्वनाश की प्रतीक्षा कर रहे थे, रुपये का प्रलेप लगाकर सदानन्द ने मानो विपर्यय के उस जख्म को आराम कर दिया।

निखिलेश ने कहा, "लेकिन देखो, अब सोचने में भी शरम आती है, मैंने सदानन्द बाबू के साथ कितना बुरा व्यवहार किया—"

उसके बाद अचानक उसे जाने क्या ख्याल आया। बोला, "ठहरो, दौड़-कर जाने से शायद अभी भी उन्हें स्टेशन पर पकड़ सकूं..."

नयनतारा ने पूछा, "तुम अभी स्टेशन जाओगे क्या ?"

निखिलेश ने तब तक बदन पर कुरता डाल लिया था। जल्दी से बाहर जाते-जाते बोला, "सच, मैं सोच भी नहीं सका था, आदमी इतना भला भी हो सकता है। देखूं, अगर उन्हें ले आ सकूं—"

पीछे से नयनतारा ने सिर्फ कहा, "मैं तुम्हारे साथ चलूं ?"

निखिलेश ने कहा, "नहीं। इतनी रात को खामखा क्यों कष्ट करोगी ?"

नयनतारा ने कहा, "तो तुम उससे कहना, मैंने आने को कहा है। कहना, नहीं आएंगे, तो मैं नाराज हूंगी।"

निलिखेश को उस समय किसी और का ख्याल नहीं था। वह रास्ते पर जाकर तेजी से स्टेशन की ओर जाने लगा। लेकिन ज्यादा दूर जाना नहीं पड़ा। राणाघाट लोकल हड़हड़ाती हुई स्टेशन पर आ लगी और आधे ही मिनट में प्लेटफार्म के सभी मुसाफिरों को लेकर कलकत्ता की ओर रवाना हो गई।

निखिलेश फिर भी प्लेटफार्म की ओर चलने लगा। आया है, तो आखिर एक बार खोजकर देख ही लेगा, सदानन्द बाबू हैं या नहीं।

पर निखिलेश को यह नहीं मालूम था कि जो आदमी अपना सब कुछ दूसरे को देकर स्वयं निःस्व हो सकता है, उस आदमी को लौटा लाने की क्षमता दुनिया में किसीको नहीं। यहां तक कि निखिलेश या नयनतारा, किसीके भी विधाता पुरुष में भी यह सामर्थ्य नहीं कि उसे फिर से इनकी इस गिरस्ती में लाकर प्रतिष्ठा दे सके।

और, उधर राणाघाट लोकल के एक डिब्बे के कोने में बैठा सदानन्द खिड़की से बाहर के दुर्भेद्य अंधेरे की तरफ एकटक देख रहा था। देख रहा था और मन-ही-मन एक अनिर्देश्य अवागमन-सा गोचर विश्वनियंता से सिर्फ एक ही प्रार्थना करता चला जा रहा था। कह रहा था—"मैंने जाना है कि तुम हो, इस विश्व-सृष्टि के अनादि-अनन्त स्वरूप होकर तुम हम सबके अन्तर् में ही विराज रहे हो। इसीलिए आज मैं तुम्हें ही अपनी अन्तिम प्रार्थना बताकर जा रहा हूं, तुम्हें बताकर ही मैं अपने स्वर्गीय पूर्वजों के सारे पापों का प्रायश्चित्त करके जा रहा हूं। लोग यह समझें कि मैं पागल हूं, लोग यह कहें कि मैं नासमझ हूं। उससे मुझे कोई हानि नहीं। आज मैं सारे

नहीं है । उनकी अतिथिशाला में कितने ही लोग आते-जाते रहते । सदानन्द को भी उन्होंने वही आदर के साथ रखा था । लेकिन सदानन्द के नसीब में शायद वह आदर पाना लिखा नहीं था । खाने-पहनने की कोई विलासिता उसे छू नहीं गई थी । स्कूल नहीं रहा, फिर भी रसिक पाल ने सदानन्द को छोड़ना नहीं चाहा । अपने लड़के फकीर से उन्होंने यह कह दिया था कि मास्टर साहब जब तक रहना चाहें, उन्हें यहां रहने देना, समझ गए ?

सच ही तो, सदानन्द जाएगा भी कहां ! जाने की कोई जगह ही तो नहीं थी उसे । सुबह नदी से नहाकर आता तो औरों के साथ उसके लिए भी नाश्ते का इंतजाम रहता । सदानन्द कभी तो खाता, कभी नहीं खाता । चौबेड़िया में रहकर यह भी नहीं जाना जा सकता था कि दुनिया में कहां क्या हो रहा है । सिर्फ सूरज पूरब में उगा करता और पच्छिम में डूबा करता । ऐसे ही में एक दिन सदानन्द ने हरि मुहर्रिर से कहा, "आप मुझे एक कापी और दावात-कलम दे सकते हैं, मुहर्रिर जी ?"

"कापी, दावात-कलम से क्या करेंगे आप ?"

सदानन्द ने कहा, "बेकार ही बैठा रहता हूं, यों ही कुछ लिखा करता और क्या !"

मास्टर साहब के लिए उसी दिन कापी और दावात-कलम का इंतजाम हो गया । उसी दिन से सदानन्द ने बैठे-बैठे लिखना आरम्भ कर दिया । शुरुआत उसने इस तरह से की, "मैं केवल साधारण आदमी हूं । ऐसे साधारण आदमी की बात आज के क्षमता लोभी लोग सुनेंगे भी या नहीं, नहीं जानता । क्षमता पाने के लोभ से आज जब आदमी कोई भी छोटा काम करने को तैयार है, तो ऐसे में मुझ जैसे साधारण आदमी की बात सुनने वाले नहीं मिलेंगे, यह जानकर भी मैं अपनी जीवनी लिखने बैठा हूं । अविश्वास के इस युग में भी मैं यह विश्वास रखता हूं कि दुनिया में कहीं-न-कहीं कोई आदमी जरूर है जिसके हृदय में विश्वास है । वह आदमी आज भी सत्यता और सत्यवादिता का विश्वास करता है । विश्वास करता है धर्म का, विश्वास करता है प्यार और ईश्वर का । जो आदमी इन तीन शक्ति पर विश्वास नहीं करता, यह कहानी उसके लिए नहीं है । ऐसे लोग मेरी यह कहानी न भी पढ़ें तो मुझे दुख नहीं होगा । एक ईसामसीह के लिए ईश्वर अगर हजारों-हजार वर्ष तक प्रतीक्षा कर सकते हैं, तो मेरे जैसा तुच्छ आदमी एक सत् पाठक के लिए सहज ही लाखों-लाख साल तक प्रतीक्षा कर सकेगा ।"

इस तरह से लिखते हुए वह काफी दूर तक बढ़ चुका था कि तब त
यह हजारी बेलीफ आ हाजिर हुआ । कैसा अजीब आदमी ! कोर्ट-कचह
के आदमी शायद ऐसे ही हुआ करते हैं । प्रकाश मामा ने भी एक दि
उसका साथ नहीं छोड़ना चाहा था । गोंद की तरह पीछे चिपक गया था
अथच प्रकाश मामा तो इसके जैसा कोर्ट का बेलीफ नहीं था ।

सदानन्द ने पूछा, "आप कितने दिनों से यह नौकरी कर रहे हैं ?"

ारा-हज़ार लोगों का घर उजाड़ा, जाने कितने हज़ार मर गए
ाह हो गए। जभी तो हज़ारी वेलीफ को देखकर सब कांप

: ने पूछा, "क्यों ?"
नहीं भला ? कचहरी का वेलीफ तो कभी किसीका भला नहीं
ः मां-बाप ने तो इसीलिए जान-सुनकर ही मेरा नाम रखा था
लन अपनी वात ही लीजिए, आप तो चौवेड़िया में वैठे मज़े
रहे थे। एकाएक सनीचर की तरह यह हजारी वेलीफ आपके
चा। इस हजारी वेलीफ ने एक वार जिसको छू दिया, उसका
नेस्तार नहीं—"
ः ने कहा, "गर्ज़ कि मेरा भी निस्तार नहीं ?"
वेलीफ ने कहा, "निस्तार कैसे हो सकता है ? जानते नहीं हैं,
ल हवा में हिलती है ? आप छिपे-छिपे कुकर्म करेंगे और फिर
ोफ के हाथों से छुटकारा पाएंगे ? तो फिर जज-वैरिस्टर, वकील-
ार्ट-कचहरी आखिर किसलिए है ? उन सवका पेट कैसे चलेगा ?
ं आप जितने वड़े लोगों को देख रहे हैं, सभी वकील-वैरिस्टर हैं।
ी से लेकर सी० आर० दास०, सुभाष वोस——सभी वकील हैं। वकील-
वगैर मुल्क चलाया जा सकता है ? देश में जितने भी लोग हैं, सव
ा-किसी दिन कचहरी आना ही है, उनके शिकंजे से भागकर आप
कते हैं ?"
वाद वात की कड़ी तोड़कर हठात् वोल उठा, "क्यों जनाव, और
? और कितनी दूर ले जाएंगे मुझे ? अव तो नहीं चला जाता।"
न्द ने लेकिन इस वात का जवाव नहीं दिया। वह हज़ारी की वातों
ाता रहा। तो क्या हर किसीको कोर्ट में जाना पड़ेगा ? कोर्ट में जा-
पाप-पुण्य की सफाई देनी पड़ेगी ? अव तक तो वह मज़े में था।
की गहराई में अपने किए कामों की प्रशान्ति में आत्मतृप्ति का
लिए अज्ञातवास कर रहा था। सोचता था, इन पंद्रह वर्षों में
के लोग गांव के स्कूल-कालेज में पढ़कर इन्सान वन रहे हैं, उसके
ाए अस्पताल में नवावगंज के लोग वीमारी में दवा और सेवा पा
नतारा की गिरस्ती में ...न्ति और सहजता आई है, वे सुखी हैं।
ुने को उसे जो कुछ भ... ...ब देकर उसने सवको सुखी वनाया।
काम और क्या हो सक... ...र भी उसे न्यायालय में जाना

...र कितनी दू... ...ल नहीं रहे हैं ?"
... तो सवको ... ...यायाधीश के सामने जाकर
... दिन ... ...श के सामने खड़े होकर

बताना ही पड़ता है कि मानव-जन्म पाकर मैंने क्या-क्या किया ! लेकिन वहां के लिए भी तो सदानन्द को कहने को है। वहां जाकर सदानन्द कहेगा, "अपनी सारी सम्पत्ति मैंने लोगों को दान कर दी, अपने किसी लोभ, अपनी किसी चाहना को मैंने कभी प्रश्रय नहीं दिया, मैंने ऐसा कोई भी काम नहीं किया, जिसे खुलकर कहने में मुझे शरम हो। मैं निष्पाप हूं, मैं निष्कलुष हूं।"

हजारी बेलीफ ने फिर कहा, "मैं अब चल नहीं पा रहा हूं साहब ! बस, मैं बैठ पड़ा, लीजिए…"

जीवन की प्रदक्षिणा क्या इतना आसान है ! उसकी जो यात्रा एक दिन अनादि काल से शुरू हुई थी, फिर से शुरू से वही जीवन परिक्रमा आज इतनी सहज है क्या ! फिर से उसी एक यंत्रणा में दग्ध होना !

हजारी वास्तव में वहीं बैठ पड़ा। नाव से उतरकर उन दोनों ने वही जो चलना शुरू किया था, उस चलने का जैसा अन्त ही नहीं था। रास्ते में बहुत से गांव मिले, बहुतेरी हाटें। बहुत-से गंज पार करने के बाद तब कहीं बस का पड़ाव मिलेगा। वहां से बस पर सवार होकर कलकत्ता जाना होगा। कलकत्ता से भागलपुर। भागलपुर से फिर कलकत्ता। उसके बाद कलकत्ता से ट्रेन पर पर चढ़कर नवाबगंज।

सदानन्द ने कहा, "चलिए, चलिए, देर हो रही है। पहले सुलतानपुर चलेंगे, वहां से नवाबगंज…"

हजारी ने कहा, "अजी साहब, इन जगहों की खाक छानकर अब क्या होगा। नाहक तकलीफ ही होगी। पुलिस क्या आपके बारे में झूठ रिपोर्ट देने गई है ? झूठ कहने से उसे क्या लाभ ?"

"लेकिन आप तो कह रहे हैं कि मैंने अपने पिता जी का खून किया है…"

हजारी ने कहा, "जी ! आपने खुद अपने बाप का खून किया है, और तो भी कह रहे हैं, खून किया है या नहीं, यह नहीं जानते ? नहीं किया तो आप पर दफा तीन सौ दो क्यों चलाया गया ? पुलिस ने क्या झूठ कहा है ?"

तब तक हजारी एकाएक बोल उठा, "उससे तो एक काम कीजिए न साहब, मुझे पांचेक रुपए दे दीजिए न—"

"क्यों, आपको पांच रुपये देने से क्या होगा ?"

"मैं लौटकर कोर्ट में रिपोर्ट दे दूंगा कि मुजरिम नहीं मिला।"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन आपने तो मुझे खोज लिया है…"

हजारी ने कहा, "खोज लेने के बावजूद मैं जाकर कह दूंगा, नहीं मिला। ऐसा तो हम लोग अक्सर किया करते हैं ? ऐसा न किया करें तो हमारा गुजारा चल सकता है ? आप कह क्या रहे हैं। तनख्वाह से तो महज तीस रुपये मिलते हैं, इन ऊपर आमदनियों से ही तो हमारा घर चलता है। नहीं तो महंगी के इस बाजार में लड़की की शादी, लोक-लौकिकता आदि चला कैसे रहे हैं ? रिश्वत पर ही तो प्यादा-पेशकारों की दुनिया चलती है। पांच रुपये मिल जाएं तो आप भी बच जाएं और मैं भी बच जाऊं—"

हज़ारी काम से ज्यादा बात ही करता। आसामी की खोज में वह नवाबगंज गया, वहां से सुलतानपुर, सुलतानपुर से नैहाटी। नैहाटी से कलकत्ता—उस धर्मशाला में। जहां-जहां सदानन्द के मिलने की संभावना थी, सब जगह गया। कोर्ट का प्यादा—यही उसका काम है—सम्मन तामील करना। सच पूछिए तो उसके पास कुछ भी नहीं रहता। सिर्फ एक पोटली रहती है। पोटली में रहती है एक धोती और एक गमछा। और, दाढ़ी बनाने का सामान। सामान यानी एक उस्तरा और उस्तरा पिजाने का एक पत्थर। और कुछ नहीं। ठहरने को या तो पेड़ तले या किसी हाट की छपरी के नीचे। और खाना? कोर्ट के प्यादे को दामाद जी खातिर से खिलाता ही कौन है? वह क्या किसीको कोई अच्छी खबर देता है? कोर्ट का प्यादा—यानी झमेला।

चलते-चलते सदानन्द भी सोच रहा था। उसने ऐसा किया भी क्या है—वह तो सदा सबका सुख, सबकी समृद्धि, सबका भला ही चाहता आया है। और, अन्तिम दिन, जिस दिन वह नैहाटी से चला, उस दिन तो उसके पास कौड़ी कफन को न थी। नयनतारा से व्याह करके उसने उसे स्त्री की मर्यादा नहीं दी, रुपया देकर वह उस दिन इस अन्याय का भी तो प्रायश्चित्त कर आया। उस दिन उसने सिर्फ एक ही कामना की थी, नयनतारा सुखी रहे। इसीलिए तो उसने शुरू में ही लिखा था—अविश्वास के युग में भी मैं विश्वास रखता हूं कि दुनिया में कहीं-न-कहीं कोई आदमी जरूर है, जिसके हृदय में विश्वास है। वह आदमी आज भी सत्यता और सत्यवादिता का विश्वास करता है। विश्वास करता है धर्म का, विश्वास करता है प्यार और ईश्वर का।

नयनतारा के यहां से आने के बाद रेलगाड़ी पर बैठकर अपने इष्ट देवता के प्रति उसने बार-बार इस श्लोक की आवृत्ति की—

सर्वेऽत्र सुखिनः संतु। सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंति। मा कश्चित् दुखं माप्नुयात्॥

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त हों, सबको शान्ति मिले, सबका दुःख दूर हो। जीवन-भर वह यही एक कामना तो करता आया है। इसी कामना की खातिर तो उसने अपने बाप-दादा की इच्छा के विरुद्ध काम किया, इसी कामना के चलते तो उसने अपनी मां का जी दुखाया, इसी कामना के लिए तो उसने समरजित बाबू के मन में ठेस पहुंचाई। इसी कामना के लिए ही तो वह दुनिया के सभी विलास-वैभव से दूर रहता आया। वरना वास्तव जगत में उसे कमी किस बात की थी! यदि वह चाहता तो भोग के शिखर पर बैठकर विलास के सभी उपकरणों की सहायता से षोड़शोपचार से अपनी बाहरी इंद्रियों को परितृप्त कर सकता था। लेकिन वैसा न करके उसने नवाबगंज को सोने का गांव बना दिया। वहां बहुत बड़ा कालेज खुल गया। आदमी के जीवन में जो आशीर्वाद सबसे बड़ा है, ज्ञान के उसी आशीर्वाद को पाने की उसने राह दिखा दी। नवाबगंज अब स्वर्ग बन गया। जो काम उसके बाप-दादे को करना चाहिए था, वह काम सदानन्द ने ही कर दिया। वहां अब अस्पताल हो गया। उस अस्पताल में आज सिर्फ नवाबगंज के ही आस-पास के सभी गांवों के लोगों की

निश्चिन्त हो रहा है। अब नवाबगंज के किसी भी व्यक्ति चावरापोड़ा को दुःख-अभाव में फांसी लगाकर नहीं मरना पड़ेगा। पैसों की कमी से माणिक घोष और फटिक नाई को भी पागल होकर दर-दर की ठोकर नहीं खानी पड़ेगी। यह सारा कुछ तो सदानन्द ने ही किया।

और नयनतारा ? उसीका ऐसा सत्यनाश उसने क्या किया ?

हजारी एक पेड़ तले बैठकर अपनी हजामत बना रहा था। उस्तरा उसका खूब तेज है। एक छोटे-से आईने में अपने चेहरे की परछाई को एकटक देखता हुआ वह दाढ़ी बनाता जा रहा था।

सदानन्द ने पूछा, "अच्छा हजारी बाबू, नयनतारा का मैंने कौन-सा सत्यानाश किया है ?"

हजारी ने कहा, "सो मैं क्या जानूं साहब ! मेरा काम सम्मन तामील करना है। मैंने आपको सम्मन थमा दिया, बस छुट्टी। नयनतारा का आपने क्या सत्यनाश किया है, यह आप ही जानें। पुलिस ने जब लिखा है, तो क्या बिना जाने-सुने ही लिखा है ? नयनतारा तो आपकी पत्नी का नाम है…"

सदानन्द ने कहा, "हां…"

उस्तरा चलाना जरा बंद करके हजारी ने कहा, "तो आपकी पत्नी कहां रहीं और आप यहां चौबेड़िया में पराए टुकड़ों पर क्यों पल रहे हैं। पत्नी से आपका बना ही क्यों नहीं ? आपकी पत्नी ने क्या किया था ?"

सदानन्द ने कहा, "उसकी बहुत बात है। इतने थोड़े समय में सारा कुछ कहना क्या सम्भव है ?"

हजारी ने कहा, "खैर, मुझसे न कहिए, जिरह के समय हाकिम के सामने तो सब कहना ही पड़ेगा। अगर हाकिम पूछें कि आपने अपनी पत्नी को छोड़ क्यों दिया, तो आप क्या जवाब देंगे ? आपकी पत्नी क्या काली-कलूटी है ?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं।"

"तो ? बदचलन है ?"

"नहीं, वह भी नहीं। देखने में बहुत सुन्दर है। स्वभाव चरित्र भी उसका अच्छा है।"

"देखने में भी सुन्दर है और स्वभाव-चरित्र भी अच्छा है। फिर उसे आपने छोड़ क्यों दिया जनाब ? दोष सब तो आप ही का है। तो फिर यह हो सकता है कि उसे खाने-पीने की तकलीफ है, इसीलिए उसने परवरिश के लिए हाकिम के पास अर्जी दी है। आपने जब अग्नि को साक्षी रखकर उससे ब्याह किया है, तो उसे खिलाने-पहनाने की जिम्मेदारी तो आप ही की है।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं, सो बात नहीं। मेरी पत्नी ने एक दूसरे से ब्याह कर लिया है।"

"दूसरे से ब्याह कर लिया है ? क्यों ?"

"इसलिए कि मैंने उसके साथ घर नहीं बसाया।"

हजारी अवाक् हो गया। बोला, "यह बात। ब्याह किया और घर नहीं

साया, वह स्त्री तो फिर से व्याह करेगी ही। हां, तो फिर ?" कहकर हज़ारी फर अपनी दाढ़ी बनाने लगा। ज़रा देर में फिर पूछा, "उसके बाद क्या था ?"

सदानन्द ने कहा, "उसके बाद उन दोनों के गुज़र-बसर में बड़ा कष्ट होने गा।"

हज़ारी ने पूछा, "क्यों ? उसका वह पति क्या करता है ?"

सदानन्द ने कहा, "मामूली-सी नौकरी करता है। पत्नी भी एक आफिस में नौकरी करती है..."

"नौकरी में कुछ ऊपरी पावना भी है ? मतलब घूस-वूस ?"

सदानन्द ने कहा, "सो नहीं जानता।"

हज़ारी ने कहा, "घूस न सही, ओवर-टाइम ?"

"वह भी नहीं मालूम। शायद नहीं है।"

हज़ारी ने कहा, "घूस या ओवर-टाइम न हो तो छोटी-सी नौकरी से कोई गिरस्ती कैसे चला सकता है ?"

सदानन्द अवाक् रह गया। बोला, "दो जने की नौकरी से भी गिरस्ती नहीं चलेगी ?"

हज़ारी ने कहा, "अजी आप हैं कहां जनाब ? चावल-दाल का भाव क्या , मालूम है ? रहते तो हैं दूसरे के यहां, आपको तो चीज़-वस्त के दाम का हिसाब नहीं रखना पड़ता।"

हज़ारी उठ खड़ा हुआ। कोर्ट की प्यादागिरी करते-करते हज़ारी कैसे अटपट स्वभाव का हो गया है। कहीं चुपचाप बैठे रहते उससे नहीं बनता और कहीं अगर ज़रा-सी जगह मिल जाए, तो सो भी जा सकता है। नींद से हड़बड़ा-कर जग जाता है। कहता है, "क्यों साहब, भाग तो नहीं गए आप ? मैं ज़रा सो गया था—"

सदानन्द ने कहा, "भागकर कहां जाऊंगा हज़ारी बाबू—"

हज़ारी ने कहा, "भागने की जगह की कमी पड़ी है साहब, मेरे कितने आसामी भाग गए हैं। मगर आप भाग ही क्यों नहीं जाते हैं, कहिए तो ? मुझे पांच रुपया देने से ही तो आप भाग सकते हैं। मैं जाकर हाकिम से कह दूंगा, आप ढूंढ़े नहीं मिले। पन्द्रह साल तो मैंने ऐसे ही निकाले, न होगा, तो और भी कुछ साल चलाऊंगा। उसके बदले बीच-बीच में मुझे कुछ रुपये दे आया कीजिएगा। उससे मुझे भी कुछ आफियत होगी। —बस।"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन तब तो दुनिया में पापी को सज़ा नहीं मिलेगी, और यह दुनिया पाप से बिलकुल भर जो जाएगी—"

हज़ारी बेलीफ ने कहा, "अजी साहब, पाप-पुण्य की छोड़िए, वह सब स्कूल की किताबों में लिखा होता है। सभी पापी अगर पकड़ ही लिए जाएं, तो ये वकील-मुहर्रिर-पेशकार खाएंगे क्या ? आखिर उनका भी तो गुजर-बसर होना चाहिए। अरे साहब, इसीलिए तो हमारे कार्ट में अस्सी हज़ार मामले अभी भी यों ही झूल रहे हैं।"

"अग्गी हजार?"

हजारी ने कहा, "जी हां, अग्गी हजार। आसामी लोग हमें कुछ-कुछ दे देते हैं और हम सम्मन तामील नहीं करते। मामले इस तरह से जितने ही पड़े रहेंगे, वकील-मुहर्रिरों का उतना ही पेट भरेगा। फैसला हो जाने से ही तो हमें नुकसान है। अभी तो आपसे कह रहा हूं, आप भाग जाइए—"

सदानन्द ने कहा, "नहीं हजारी बाबू, मैं भागूंगा नहीं। मैं अगर समझूंगा कि मैंने सचमुच ही पाप किया है, तो हाकिम मुझे जो भी सजा देंगे, मैं उसे सिर झुकाकर कबूल कर लूंगा।"

हजारी हैरान रह गया। बोला, "कहते क्या हैं आप? आप खून को मान लेंगे? आप हलफ उठाकर यह कहेंगे कि मैंने अपने बाप का खून किया है?"

"अगर सचमुच ही खून किया होगा, तो कहूंगा।"

"और, आप यह भी कहेंगे कि आपने अपनी पत्नी को अन्न-वस्त्र नहीं दिया, उसे घर से निकाल दिया?"

"सच होगा, तो यह भी कहूंगा।"

"आप यह भी कहेंगे कि आपने गांव के लोगों को उजाड़ दिया है?"

सदानन्द ने कहा, "हां, कहूंगा। मैं अगर समझूंगा कि मैंने दुनिया में किसी एक आदमी का भी नुकसान किया है, तो उसके लिए फांसी की सजा स्वीकार करने को भी मैं तैयार हूं।"

यह सुनकर हजारी की आंखें गोल हो गईं। बोला, "देखता हूं, आप जनाब असली शैतान हैं। अरे बाबा, अगर ऐसा समझें तो दुनिया में पापी कौन नहीं है, कहिए? हम सभी तो पापी हैं, सभी आसामी हैं। आप, मैं, हमारे कोर्ट के वकील-मुहर्रिर-पेशकार-हाकिम—कौन आसामी नहीं है?"

सदानन्द समझ नहीं सका। हजारी फिर कहने लगा, "दुनिया में सभी आसामी हैं साहब, हम सभी। मेरी ही सोचिए, मैं तो कोर्ट का प्यादा हूं, मैं ही क्या अपना फर्ज अदा करता हूं? मैं तो घूस लेता हूं। और, मेरी छोड़िए, हमारे कोर्ट के वकील-मुख्तार, मुहर्रिर-पेशकार, यहां तक कि हमारे हाकिम लोग तक अपनी ड्यूटी नहीं करते। और, अपनी ही बात लीजिए न, आपने भी तो किसी एक से शादी की थी, आपने ही क्या कभी पति की ड्यूटी की थी? दुनिया में अपनी ड्यूटी कोई भी नहीं करता है साहब! आजकल बाप बाप की ड्यूटी नहीं करता, मां मां की ड्यूटी नहीं करती, लड़का लड़के की ड्यूटी नहीं करता। ड्यूटी ही करे तो कोई आसामी क्यों हो? ड्यूटी नहीं करते हैं, इसीलिए तो हम सभी आसामी हैं। सब लोग अगर ड्यूटी करते होते तो यह धरती स्वर्ग हो जाती। फिर तो कोर्ट के वकील-मुहर्रिर, पेशकार-हाकिम की छुट्टी हो गई थी।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं-नहीं, हजारी बाबू, दूसरा कोई अपना कर्तव्य करता है या नहीं, मैं नहीं जानता। मैं यह जानना भी नहीं चाहता। लेकिन मैं सारी जिन्दगी, अपना जो भी कर्तव्य है, करता आया हूं—"

सदानन्द ने कहा, "नहीं, सो क्यों कहने लगा। मैं मनुष्य हूं, मनुष्य होकर पैदा हुआ, तो मनुष्य का जो कर्तव्य है, सो किया। मैंने अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाई है, न्याय का समर्थन किया है, जहां विरोध का कोई नतीजा नहीं निकला, वहां विद्रोह किया। इसीलिए लोग मुझे जीवन-भर पागल कहते रहे।"

हज़ारी ने कहा, "यह हो सकता है। आप पागल ही हैं। मैं तो तीस वर्षों से कोर्ट की प्यादागिरी कर रहा हूं, आप जैसा मुजरिम मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा।"

इतने में सदानन्द बोल उठा, "अब उतरिए, भागलपुर आ गया—"

गाड़ी रुकी और सदानन्द उतरा। हज़ारी भी पीछे-पीछे उतरा। वहां से सुलतानपुर जाना था। वही सुलतानपुर। अपनी जीवन के अन्तिम दिन छोटे चौधरी ने यहीं गुज़ारे थे। इतने दिनों के बाद यहां आना हुआ। यह जैसे आना नहीं, आविर्भाव हुआ—सदानन्द चौधरी का पुनराविर्भाव !

सदानन्द ने कहा, "सुनिए हज़ारी बाबू, यहां यह बात किसीसे मत कहिएगा कि मेरा नाम सदानन्द चौधरी है, यह मत कहिएगा कि मैं ही हरनारायण चौधरी का वंशधर हूं—"

हज़ारी ने कहा, "ठीक है—"

बहुत दिन पहले सदानन्द को प्रकाश मामा ही अन्तिम बार यहां ले आया था। सदानन्द ने उसी समय लोगों को पहचाना था। सुलतानपुर का सभी जैसे एक-एक प्रकाश मामा था। सभी रुपये के लिए पागल। किसीकी लड़की की शादी, किसीको छप्पर, किसीको बैल की ज़रूरत। अभाव होते हुए भी उन्हें अभाव था, अभाव न होते हुए भी अभाव था। रुपये की गंध मिली नहीं कि लोग पीछे पड़ गए। चौधरी जी चल बसे तो लोगों ने प्रकाश मामा को घेरा। सोचा, अपने फूफा की जायदाद का वही वारिस है। लोग रोज़ सवेरे से उसकी मुसाहिबी करते। लेकिन जब उन्हें पता चला कि सम्पत्ति का हकदार वास्तव में चौधरी जी का लड़का है, तो उन्होंने सदानन्द को रुपये के लिए पकड़ा।

नये चेहरे देखकर सुलतानपुर के लोगों को कौतूहल हुआ, "आप लोग कहां जाएंगे ?"

सदानन्द ने कहा, "यहां प्रकाश राय नाम के एक सज्जन थे, वह हैं ?"

"प्रकाश राय ? जी नहीं, वह तो नहीं हैं।"

"नहीं हैं ? वह अब यहां नहीं रहते हैं ?"

उस आदमी ने कहा, "पहले रहते थे, बहुत दिन पहले। कोई पन्द्रह साल पहले। लेकिन वह तो मर गए ?"

"मर गए ? कैसे मर गए ?"

देखते-ही-देखते और भी बहुतेरे बेकार लोग चारों तरफ से जुट गए। वे लोग भी यह सब सुन रहे थे। उनमें से एक बोल उठा, "वह बड़ी लम्बी दास्तां है साहब, प्रकाश राय का एक भांजा था, वह भांजा ही सारे अनर्थों का जड़

था। पकड़े सिरे का शैतान—"

सदानन्द ने पूछा, "उनका भांजा ? क्या नाम था उसका ?"

उस आदमी ने कहा, "उसका नाम था सदानन्द चौधरी। बिलकुल बिगड़ा हुआ लड़का, सिर फिरा। उसने अपने बाप तक का खून किया, तो प्रकाश राय की बात तो दूर रही—"

सदानन्द ने पूछा, "तो वह अभी कहाँ है ?"

सबने कहा, "रहेगा कहाँ, खून करके छिप-छिपा गया। यह तो आज पन्द्रह साल पहले की बात है। पुलिस ने उसे पकड़ने की बहुत कोशिश की थी, मगर वह जो छिपा सो छिपा, ढूँढ़कर कोई उसे निकाल नहीं सका।"

"बेटा होकर बाप का खून करेगा, यह भी होता है कहीं ?"

कई बूढ़े-बूढ़े से लोग भी आ खड़े हुए थे। ये सभी शायद चश्मदीद गवाह थे। सबने बात का समर्थन किया। कहा, "अजी साहब, रुपये की बात ठहरी, रुपये की। रुपया चीज ही ऐसी है। बाप के बहुत रुपया था न? बाप के रहते तो वे रुपये लड़के को मिल नहीं सकते। आठ लाख रुपये का लोभ छोड़ना क्या आसान बात है ? कलजुग है जनाब, घोर कलजुग। राय बाबू ने सबसे वायदा किया था कि उन्हें रुपया मिलेगा, तो वह सुलतानपुर के लोगों को कुछ-कुछ देंगे। लेकिन सदानन्द ने आकर इसपर पानी फेर दिया।"

सुनते हुए सदानन्द को लगा, वह मानो कोई रूप-कथा सुन रहा है। बोला, "यानी आप यह कहना चाहते हैं, प्रकाश राय अच्छे आदमी थे ?"

सबकी एक ही बात, "राय बाबू जैसा आदमी मिलना मुश्किल है। देवता-स्वरूप। और, अपने भांजे के लिए राय बाबू ने क्या नहीं किया था। खुद से लड़की पसन्द करके उसकी शादी कराई। अपने बाल-बच्चों की तरफ कभी नहीं ताका, सिर्फ यही कोशिश करता रहा कि यह भांजा आदमी कैसे बने ! मगर यह भांजा भी तो निरा गया-बीता था। उसके अत्याचार से तंग आकर उसकी पत्नी भी अपने मैके चली गई। अन्त में जब उसने सुना कि उसके नाना की सम्पत्ति भी उसके बाप को मिल गई, तो उससे रहा नहीं गया। एक रात, जब उसका बाप सो रहा था, उसने बाप का खून कर दिया। लेकिन राय बाबू ने उसे पकड़ लिया—"

"फिर ?"

लोग उसके बाद की घटना भी बता गए और इस ढंग से बताया, जैसे उन्होंने सब खुद अपनी आँखों से देखा हो। पूरा और सही-सही ब्योरा। किस तरह से चौधरी जी का खून हुआ, राय बाबू ने किस तरह से थाने पर पुलिस को खबर दी—वे लोग सब बताने लगे—

"जो असली खूनी होते हैं, वे इसी तरह से गुम हो जाते हैं। बाप के सारे रुपये बैंक में थे, सब-कचहरी में धूम-धाम देकर वे सारे रुपये भी निकाल लिए और कलकत्ता भाग गया। इधर पुलिस भी उसे खोजती रही, उधर राय बाबू भी उसकी तलाश में लगे। अन्त में वह कलकत्ता की एक धर्मशाला में मिला।

"जैसे ही सदानन्द मिला कि प्रकाश राय ने उसे धर दबाया। बोला, 'तूने

जीजाजी का खून किया है।

" सदानन्द ने कहा, 'हां—' ·

" प्रकाश ने कहा, 'तूने खून क्यों किया ? जीजाजी ने कौन-सा कसूर किया था ?'

" सदानन्द ने कहा, 'खून किया है, अच्छा ही किया है। वैसे बाप को पहले ही मार डालना चाहिए था।'

" प्रकाश ने कहा, 'हजार हो, जीजाजी आखिर तुम्हारे बाप थे। अपने बाप का खून करने में तेरा हाथ जरा भी नहीं कांपा ? तू सोच क्या रहा है, तुझे नरक में भी जगह मिलेगी ? तुझे तो महापातक होगा—'

" सदानन्द ने कहा, 'मैं स्वर्ग-नरक नहीं मानता।'

" स्वर्ग-नरक न सही, भगवान को तो मानता है।'

" सदानन्द ने कहा, 'नहीं, मैं भगवान को भी नहीं मानता। भगवान नाम का कोई भी नहीं है, कुछ भी नहीं है। वह सब तुम लोगों की गढ़ी-गढ़ाई बातें हैं, अजीबोगरीब—'

" मगर तूने जीजाजी को मारा क्यों, सो बता—'

" सदानन्द ने कहा, 'रुपये के लिए—'

" 'तेरे लिए रुपया ही बड़ी चीज है ? इतना रुपया तू क्या करेगा ?'

" सदानन्द ने कहा, 'रुपया मिलने से आदमी जो करता है, मैं भी वही करूंगा। रुपयों से मैं शराब पिऊंगा, ऐयाशी करूंगा, मौज-मज़े करूंगा।'

" प्रकाश ने कहा, 'लेकिन मैंने तो गांव वालों से कहा है कि उन रुपयों से मैं गांव के लोगों का दुःख कष्ट दूर करूंगा ?"

" सदानन्द ने कहा, 'गांव के लोग रुपये का मर्म क्या जाने, वे तो गए-बीते हैं। उन्होंने जिन्दगी में इतना रुपया कभी आंखों से भी देखा है कि तुम उन लोगों को रुपया दोगे ?'

" इसपर प्रकाश मामा ने कहा, 'खैर, मैं तेरा मामा हूं। मैं तो तुझे रिहाई देता हूं, पर पुलिस वाले ? पुलिस तेरे पीछे पड़ी है, तेरा नाम-हुलिया निकाला गया है, उनके चंगुल से तू कैसे छूटेगा ?'

" सदानन्द ने कहा, 'पुलिस को मैं पहचानता हूं। घूस से उनका मुंह बंद हो जाएगा।'

" प्रकाश ने कहा, 'लेकिन मेरा ? मेरा मुंह तू कैसे बंद करेगा ?'

" सदानन्द ने कहा, 'तुम अगर रुपया मांगो, तो मैं तुम्हें भी रुपया दे सकता हूं। कितना रुपया चाहिए, कहो ?'

" प्रकाश ने कहा, 'तू मुझे इतना नीच समझता है ? रुपया देकर तू मेरा मुंह बंद करना चाहता है ?'

" सदानन्द ने कहा, 'रुपयों से किसका मुंह बंद नहीं किया जा सकता है ? तुम किस खेत की मूली हो मामा ?'

" मगर प्रकाश राय वैसा शख्स नहीं था कि रुपयों के बदले सच को झूठ कहे। राय बाबू अगर चाहता तो जिन्दगी में उसे रुपयों की कमी नहीं रहती।

अपने बाल-बच्चों का ख्याल न करके जिस वह अपनी जान से भी ज्यादा चाहता था, उसका वह भांजा ही जब उसे रुपया का लोभ देने लगा, तो उसके जी को बड़ी चोट लगी। हाय रे रुपया! दुनिया में रुपया ऐसी ही चीज है। जिसे अपने बाप को मार डालने में भी हिचक नहीं हुई, उसके रुपये से प्रकाश राय को घृणा हो गई। उसने सोच लिया, ऐसे भांजे की वह शक्ल ही नहीं देखेगा। सो वह धर्मशाला से निकल पड़ा। पीछे-पीछे सदानन्द भी निकला।

" रास्ते पर आकर बोला, 'कहां जा रहे हो?'

" राय बाबू ने कहा, 'कहीं जा रहा हूं, इससे तुम्हें क्या मतलब?'

" सदानन्द ने कहा, 'मैं जानता हूं, तुम पुलिस में खबर देने जा रहे हो।'

" राय बाबू ने कहा, 'अब तो तुम्हें फांसी हो, जभी मुझे चैन आए। तूने रुपये के लिए अपने बाप का खून किया है, तेरा मुंह देखना भी पाप है—'

" सदानन्द ने कहा, 'समझ गया, तुम थाने पर जा रहे हो—'

" राय बाबू ने कहा, 'तू अपनी निबेड़, मैं तुझसे उसपर तर्क नहीं करना चाहता।'

" यह कहकर वह जैसे ही आगे बढ़ा कि सदानन्द ने राय बाबू को एक धक्का दिया। धक्का खाकर राय बाबू रास्ते पर ही गिर पड़ा। उठना चाह रहा था कि ट्रक उसपर आ रही। दबाकर उसे चिपटा कर दिया। लोग-बाग जमा हो गए। मगर तब तक राय बाबू के शरीर से प्राण-पखेरू उड़ गए थे। लहू से वह जगह रंग गई।"

सारा किस्सा सुनकर सदानन्द को तो काठ मार गया। इस तरह से भी घटना बनाई जा सकती है। हजारी बगल में खड़ा सब सुन रहा था। अब उसके होठों पर हंसी फूटी। सदानन्द ने जीवन में चोटें बहुत खाई हैं। वैसी चोटें जितनी बाहर से आईं, उससे कहीं ज्यादा उसके अपने ही अन्दर से आईं। और, भीतर के उन्हीं चोटों से उसने बाहर के सब कुछ से अपने को विच्छिन्न कर लिया था। अपने को चारों ओर से ढककर उसने सोच लिया था कि आत्मरक्षा का एक सहज उपाय उसने निकाल लिया है। लेकिन उस ढंकाव के किस अदेखे छेद से वह कब जो बिलकुल निरावरण हो गया है, इसका पता नहीं चला। तो? यही क्या उसका असली स्वरूप है। आज के सुलतानपुर के लोगों के लिए यही क्या उसका असली परिचय है।

हजारी ने कहा, "चलिए साहब, चले आइए—"

सदानन्द ने लेकिन यह नहीं सुना। उसने पूछा, "यह सब बात आप लोगों ने कहां सुनीं? यह सब क्या सही है?"

उस आदमी ने कहा, "अरे साहब, यह खबर तो अखबार में ही छपी है। आप लोगों ने पढ़ी नहीं? अखबार में क्या झूठी खबर छपती है? सबसे बड़ी बात तो साहब रुपया है। रुपये के आगे बेटा-बाप, मामा-भांजा कुछ भी नहीं, यह तो जानते ही हैं—"

रास्ते में चलते हुए सदानन्द के जी में हुआ—कहां, सुल
किसी भी आदमी ने नहीं कहा कि चौधरी जी के लड़के का स

था, चौधरी जी के लड़के की साधना त्याग की थी, चौधरी जी के ल
कलेजा उदार था। किसीने भी तो नहीं कहा कि रुपया उसने पर
अपना बनाने के लिए लिया। वारिस होने के नाते उसे जो रुपये मिले,
एक कौड़ी भी उसने अपनी जरूरत के लिए नहीं ली—यह बात तो
भी नहीं कही। मगर प्रकाश मामा किस कदर इन लोगों के लिए
बन बैठा। उसके अज्ञातवास के इन पन्द्रह वर्षों के अरसे में झूठ ही क्य
की जुबान पर इस तरह से सत्य में बदल गया है कि विरोध करने
अखबार की दुहाई देते हैं।

कहां वह चौबेड़िया और कहां यह सुलतानपुर! सुलतानपुर
नवाबगंज। सदानन्द को फिर से मानो अपने कर्मों का पुनर्विचार क
रहा है। तो क्या, आज तक वह जो विश्वास करता आया है, सब भू
उसका सारा किया-कराया गोबर में घी ढालना हुआ!

रेल-बाज़ार से फिर छह कोस का फासला। सुलतानपुर से कब
चौबीस घंटा रास्ते में बिताकर कब रेल पर सवार होकर रेल-बाज़ार
पर उतरा—इन बातों का सदानन्द को ख्याल नहीं था। इस बीच ह
सियालदह स्टेशन में दाढ़ी बना ली थी। स्नान कर लिया था। वहां से
सवार हुआ, फिर रेल-बाज़ार में उतरा।

"और कितनी दूर है साहब, मुझसे तो अब चला नहीं जाता—"

सदानन्द ने कहा, "अब जरा नवाबगंज जाऊंगा—"

"बस, नवाबगंज ही आखिरी है न?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। नवाबगंज से एक बार नैहाटी।"

"नैहाटी किसलिए?"

"नैहाटी में मेरी पत्नी है।"

हज़ारी ने कहा, "आपके पत्नी कहां से आई? उसे तो आपने छो
है—"

सदानन्द ने कहा, "हां छोड़ तो दिया है, पर आपने तो कहा,
ने मेरे खिलाफ नालिश की है। मैं सिर्फ वहां यह जानने के लिए जा
उसने मेरे खिलाफ नालिश क्यों की, मेरे विरुद्ध उसे क्या शिकायत
उसका क्या बिगाड़ा है—"

हज़ारी ने कहा, "आपने कोई-न-कोई अन्याय किया जरूर है,
कोई यों ही क्या किसीपर झूठा दोष लगा सकता है? सुलतानपुर
ने क्या कहा, तो आपने देखा। सबने तो यही बात कही, आपने
बाप का खून किया है।"

सदानन्द ने कहा, "सो तो देखा—"

"फिर? फिर लोग आपपर झूठा इलजाम क्यों लगाएंगे?
कहता तो सोचने की बात भी थी, सबके सब लोग आपके खिलाफ क
रहे हैं? आप क्या समझते हैं, सबके सब बुरे हैं, एक आप ही
आप ही सिर्फ धर्मपुत्र युधिष्ठिर हैं? आप क्या मुझे ऐसा बेवकूफ स

है कि आप जो कहेंगे मैं वही मान लूंगा !"

सदानन्द ने कहा, "नहीं हजारी बाबू, फिर भी मैं एक बार अपनी आंखों से सब देख लेना चाहता हूं—मुझे थोड़ा और समय दीजिए। अन्तिम फैसले के पहले मैं एक बार देख जाना चाहता हूं कि मैंने जो कुछ भी किया है, वह गलत किया है या ठीक किया है—"

मुबारकपुर के पास पहुंचते ही सदानन्द देखा, नवाबगंज की ओर से झुंड के झुंड लोग भागे आ रहे हैं।

सदानन्द को देखकर उन लोगों ने पूछा, "आप लोग कहां जा रहे हैं ?"

सदानन्द ने कहा, "नवाबगंज—"

लोगों ने कहा, "अजी साहब, वहां मत जाइए, मत जाइए, गोली चल रही है—"

"गोली ? गोली क्यों चल रही है ? आप लोग कौन हैं ?"

लोगों ने बताया, "हम सब भेंडर हैं। नवाबगंज की हाट गए थे, सौदा-पाती के लिए। अब जान लिए भाग रहे हैं। वह देखिए, आग जल रही है—धुंआ देख रहे हैं ?"

सदानन्द ने सुदूर क्षितिज की ओर देखा, "धुंआ ही धुंआ क्यों ? आग क्यों लगी ?"

"सी० आर० पी० गोली चलाकर सबको भूने डाल रही है।"

"क्यों, बात क्या है ?"

"लड़कों के स्कूल में बम फटा है। लड़कों ने हड़ताल की है। वे नहीं पढ़ेंगे—"

सदानन्द चौंका। उसीके रुपयों से स्कूल बना। उसी स्कूल में हड़ताल हुई है क्या ? काहे की हड़ताल ?

लोगों को और वक्त नहीं था कि सब बातों का जवाब दें। झांका लिए पीछे से लोगों का और एक दल आ रहा था। ये भी भाग रहे थे। इन लोगों ने बताया, "अस्पताल, स्कूल, कालेज—सब जल रहे हैं साहब, सब जल रहे हैं—"

"अस्पताल भी जल रहा है ? तो फिर रोगी लोग ? डाक्टर ?"

"अजी साहब, रोगियों को अस्पताल में दवा थोड़े ही मिलती है कि वे अस्पताल में रहेंगे ? डाक्टर लोग तो सारी दवाएं बेच डालते हैं। नवाबगंज का कोई भी अस्पताल में नहीं जाता। लड़के-लड़कियां पढ़ते नहीं हैं—"

सदानन्द का चेहरा गम्भीर हो गया। पूछा, "मगर ऐसा हुआ क्यों, बता सकते हैं ?"

लोगों ने कहा, "जी, इन सारे अनर्थों की जड़ नवाबगंज के चौधरी जी का लड़का है। नवाबगंज का यह सर्वनाश तो वही कर गया है। पहले हम मजे में थे। यहां हमें कोई झमेला नहीं था। जब से यहां स्कूल, कालेज और अस्पताल हुआ, तभी से ये खुराफातें शुरू हुईं। चौधरी

उनकी बातें खत्म होने के पहले ही दूर से एक बम फटने की आवाज सुनाई पड़ी। वे लोग और कुछ अगर बोलते भी, तो अब नहीं बोले। वे सीधे रेल-बाजार की ओर जाने लगे। हाट का दिन था। लोग सौदा-पाती के लिए आए थे। जिसकी जिधर सींग समाई, भाग निकले। लेकिन यह बम क्यों? सदानन्द अवाक् खड़ा उस धुएं की ओर देखता रहा। सच तो, यह बम क्यों?

हज़ारी ने कहा, "मैं अब उधर नहीं जाने का। आखिर गोली खाकर जान दूं क्या?"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन मुझे तो जाकर ज़रा देखने का जी हो रहा है। जाकर ज़रा देखता कि स्कूल, कालेज और अस्पताल खोलकर मैंने यहां के लोगों का क्या नुकसान किया है?"

"आप लोगों का उपकार करने को गए ही क्यों? आपको क्या सिरदर्द था?"

सदानन्द ने कहा, "उपकार न करूं? उपकार करना तो आदमी का धर्म है।"

हज़ारी ने कहा, "इस्, आपको तो साहब फांसी होनी चाहिए। आपने किया क्या है?"

"क्यों, फांसी क्यों होनी चाहिए?"

"फांसी नहीं होगी? आपको लोगों की भलाई की क्या पड़ी थी? देखिए न, लोग-बाग मज़े में थे, आपने उनकी यह क्या दुर्दशा कर दी। उन लोगों ने आपका क्या बिगाड़ा था कि आपने स्कूल, कालेज, अस्पताल बनवा दिया?"

कि फिर बंदूक की आवाज। हज़ारी उछलकर दस हाथ पीछे हट आया। बोला, "नः, मैं तो और आगे नहीं जाऊंगा। आप लौट चलिए—"

सदानन्द भी आगे नहीं बढ़ा। लौटा। लेकिन ऐसा क्यों हुआ? स्कूल, कालेज, अस्पताल बनवाकर नबाबगंज वालों का उसने क्या बुरा किया? यह देखने की बड़ी इच्छा हो रही थी।

लेकिन हज़ारी ने कहा, "नहीं साहब, आपको अगर देखने की निहायत ही इच्छा हो रही हो, तो आप मुझे पांच रुपये देकर जी चाहे जहां भी चले जाइए, मैं आपके साथ नहीं जाने का—"

सदानन्द क्या करता! वह भी फिर रेल-बाज़ार की ओर ही लौट पड़ा।

नैहाटी बाज़ार का सुनार मनोहर दत्त अपनी दुकान में बैठा सोने के गहने बेच-खरीद रहा था। एकाएक शो-केस के पीछे से किसी एक बूढ़े

आदमी ने उससे पूछा, "आपसे एक बात पूछूं ?"

मनोहर दत्त ने गौर से उसकी ओर देखा। एक बूढ़ा, पूरे चेहरे में कच्ची-पक्की दाढ़ी-मूंछ। उसके बगल में और एक बूढ़ा आदमी। मगर उसकी दाढ़ी मूंछ घुटी हुई।

"पूछिए, क्या पूछना है ?"

"आप बता सकेंगे, यहां बोस टोला में जो निखिलेश बनर्जी थे, वह कहां गए ?"

"निखिलेश बनर्जी ? कलकत्ता में नौकरी करते थे ?"

सदानन्द ने कहा, "हां। हम उन्हींके यहां से आ रहे हैं। देखा, उस मकान में अब कोई नहीं है। उनकी पत्नी नयनतारा बनर्जी, वह भी कलकत्ता के किसी आफिस में काम करती थीं, वह भी घर में नहीं थी। दूसरे किरायेदार भी कुछ बता नहीं सके कि कहां गए—"

मनोहर दत्त ने कहा, "वे लोग तो बहुत दिन हुए, नैहाटी से चले गए। यह तो कोई पन्द्रह साल पहले की बात है। वे अब कलकत्ता में रहते हैं। थिएटर रोड में विशाल मकान है, वहीं हैं। आप लोग कहां से आ रहे हैं ?"

सदानन्द ने कहा, "नवाबगंज एक गांव है, वहां से—"

मनोहर दत्त ने कहा, "अब तो उन लोगों की हालत बहुत अच्छी हो गई है साहब ! जाने एक दिन एकाएक कहां की लाटरी से चार-पांच लाख रुपये मिल गए और रातोंरात उनकी दुनिया बदल गई—"

"लाटरी में रुपये मिले थे ?"

मनोहर दत्त ने कहा, "नसीब कहिए साहब, नसीब ! सुना, यहां का मकान छोड़कर वे लोग कलकत्ता चले गए। वहां थिएटर रोड में मकान बनवाया है..."

सदानन्द ने कहा, "थिएटर रोड में ? मकान नम्बर कितना है ?"

मनोहर दत्त ने कहा, "सो तो नहीं मालूम है साहब, वहां लोगों से पूछने से ही पता चल जाएगा। बड़े आदमियों का पता लगाने में कठिनाई नहीं होती..."

बजा है। सदानन्द वहां रुका नहीं। धीरे-धीरे जिधर से आया था, उधर को ही लौट पड़ा। फिर स्टेशन की ओर। पन्द्रह साल पहले इसी नैहाटी में वह कितनी बार आया था। और पन्द्रह साल पहले एक दिन वह [illegible] में सम्मत हो गया था। अपनी सारी दौलत, अपनी सारी शुभकामनाएं—[illegible] कर सारा कुछ यहां उंडेल दिया था। यहीं—बोस टोले के उस मकान [illegible] आदमियों के हाथ—उनकी सुख-समृद्धि की कामना करके, उन [illegible] अटूट प्रीति और सौहार्द बना रहे, इसकी प्रार्थना करते हुए वह [illegible] चला गया था। उस समय सदानन्द ने यह कल्पना भी नहीं की [illegible] कभी नैहाटी आना पड़ेगा। नैहाटी ही क्यों, सुलतानपुर, नवाबगंज [illegible] लौटने की योजना नहीं थी उसकी। यह हजारी नहीं आया [illegible] ही

यहां कभी आता भी नहीं।

"क्यों साहब, फिर कहां चले ?"

हज़ारी पीछे-पीछे हांफता हुआ आ रहा था। उससे अब चला नहीं जा रहा था। बोला, "यह आपके साथ चलकर तो अजीब आफत में पड़ गया।"

सदानन्द ने कहा, "अब ज्यादा दूर नहीं हज़ारी बाबू, अब बस एक जगह देख लेने से ही मेरा सब देखना हो जाएगा। मैं जानना चाहता हूं कि मैं दोषी हूं या निर्दोष—"

हज़ारी ने कहा, "आप तो अजीब अहमक आदमी हैं। इन तीस वर्षों में मैंने बहुत सम्मन तामील किए, पर आप जैसा आसामी तो मैंने अपने बाप के जन्म में भी नहीं देखा। उससे तो आप मुझे पांच रुपये दे दीजिए न साहब, मैं छुट्टी पा जाऊं। यह इतनी खींचातानी मुझे अब अच्छी नहीं लगती—"

लेकिन सदानन्द के कानों मानो बात पहुंची ही नहीं। थिएटर रोड में मकान बनाया है। नयनतारा ने अच्छा ही किया। किराए के मकान में यहां रहने के बजाय कलकत्ता में अपना मकान बनवाकर उन्होंने अच्छा ही किया। शायद हो कि निखिलेश बाबू को अब नौकरी नहीं करनी पड़ती हो। रुपये के लिए अब शायद नयनतारा को भी नौकरी नहीं करनी पड़ती होगी। हो सकता है, मन-ही-मन वे सदानन्द के प्रति कृतज्ञ हों। रुपया तो उसने अपने हाथों से तो जाकर नहीं दिया। एक बैग में चिट्ठी के साथ चेक रखकर चला आया था। चेक पाकर निखिलेश बाबू क्या चौंक उठे थे! रुपया मिलने की खुशी हुई थी मन में! एक साथ उतना रुपया एकाएक मिल जाने से मध्यवित्त आदमी को तो खुशी ही होनी चाहिए। और फिर उनके घर में जो अशान्ति थी, उसका मूल कारण तो रुपया ही था। सिर्फ उन्हींके क्यों, दुनिया के सभी घर की अशान्ति का मूल ही रुपया है। रुपये की कमी थी, जभी तो वे नयनतारा के व्याह के गहने वापस लेने के लिए नवाबगंज तक गए थे। शायद हो कि संसार के सभी लोग उनकी तरह रुपया चाहते हैं। नयनतारा का क्या दोष है और निखिलेश बाबू का ही क्या दोष! वह जो बूढ़े मालिक थे, उन्होंने क्या रुपया नहीं चाहा था? जिन्हें ज्यादा है, वे भी रुपया चाहते हैं और जिन्हें कुछ नहीं है, वे भी रुपया चाहते हैं।

हज़ारी ने कहा, "फिर इधर कहां चले ?"

सदानन्द ने कहा, "वही, थिएटर रोड।"

हज़ारी ने कहा, "आपसे तो मैं तंग आ गया। ऐसा अजीब आसामी तो मैंने देखा ही नहीं। चौबेड़िया से चलकर कहां-कहां का चक्कर काटा, कहिए तो।"

सदानन्द ने कहा, "अब यही आखिरी है हज़ारी बाबू! इसके बाद आपको और परेशान नहीं करूंगा।"

हज़ारी से चला नहीं जा रहा था। बोला, "मुझको खामखा और क्यों कष्ट दे रहे हैं ? दोष तो सारा आपका ही है साहब, आपने ही तो सारी गड़बड़ मचाई है—"

"क्यों ?"

हज़ारी ने कहा, "आप तो किसीके साथ ताल मिलाकर चल नहीं सके। संसार के सब लोग तो मज़े में ताल मिलाकर चले हैं, आप भी उनसे ताल मिलाकर चल सकते थे। फिर आपके नाम सम्मन काहे को जारी होता ?"

कलकत्ता के रास्तों पर उस समय भीड़ की बाढ़ चल रही थी। सदानन्द भीड़ से बचकर बगल से चल रहा था। इतने दिनों के बाद कलकत्ता आया। पन्द्रह वर्ष तक छोड़ा हुआ शहर। सदानन्द की नज़रों में शहर का यह चेहरा नया लगा। सदा के उस उदार आकाश के नीचे इस शहर के लोग जैसे और भी रक्तहीन, और भी बदरंग हुए घूम रहे हैं। मगर आसमान ही ऐसा धुमैला कैसा हुआ ? पहले तो ऐसा नहीं था। चारों ओर बेहया गरीबी जैसे छा किए हुए है। कई पूरे परिवार रास्ते के राहगीरों की दया के भरोसे घर-गिरस्ती बसाए बैठे हैं। कौन हैं ये ? कहां से आए ?"

सदानन्द ने पूछा, "आपके पास एक रुपया होगा हज़ारी बाबू ?"

हज़ारी चौंककर उछल पड़ा, "रुपया ?"

"हां। मेरे पास अब रुपया नहीं है। इन लोगों को कुछ देना। देख नहीं रहे हैं, बेचारों को कितना अभाव है।"

हज़ारी बेलिफ ने कहा, "आप रहने भी दीजिए, आपके नाम कोर्ट का सम्मन है और आप इन्हें भीख देंगे। आपको कौन भीख दे, इसीका ठिकाना नहीं। इसीलिए तो आपकी ऐसी दुर्दशा हुई।"

सदानन्द ने कहा, "मगर इन्हें देखकर बड़ी माया जो हो रही है—"

"माया ? आपको माया हो रही है ? यही दया-माया ही तो पाप है। इसी पाप से तो आप गए।"

सदानन्द ने कहा, "दया-माया पाप है ? कह क्या रहे हैं आप ? दया-माया, स्नेह-ममता, प्रेम—यह सब पाप है, आपसे यह किसने कहा ?"

हज़ारी ने कहा, "चलिए-चलिए, यहां मत रुकिए। रुकने से ही लोग पैसा मांगेंगे। आजकल पैसे के लिए सभी भिखारी हो गए हैं—"

सदानन्द ने चारों ओर देखा। सौ जोड़े हाथों ने उन्हें घेर लिया था। सबके आंख-मुंह में कंकाल की छाप। हज़ारी हाथ पकड़कर सदानन्द को खींचने लगा। खींचकर बाहर ले जाना चाहा। लेकिन जिधर जाता, उधर ही भिखमंगों की भीड़।

हज़ारी जल्दी का तकाज़ा करने लगा। बोला, "चले आइए, जल्दी चले आइए—"

सदानन्द ने पूछा, "ये कौन लोग हैं हज़ारी बाबू ? ये लोग तो पहले यहां नहीं थे। पहले सिर्फ बड़ा बाज़ार में ही रहते थे। भीख के लिए सब मुझे 'राजा बाबू' कहते थे···"

हज़ारी ने कहा, "ये सब आदमी हैं जनाब, आदमी···"

सदानन्द ने कहा, "आप मुझसे मज़ाक कर रहे हैं। ये सब आदमी हैं, मैं क्या यह नहीं जानता हूं ? लेकिन जिन्हें दो हाथ और

क्या आदमी हैं ?"

हज़ारी बोल उठा, "अरे साहब, आजकल यही लोग कलकत्ता में भरे पड़े हैं। इनके मारे रास्ता चलना मुश्किल है। जहां भी जाएंगे, ये वहीं हैं। इनकी ओर ताकिए ही नहीं, ताका कि ये सिर पर सवार हो जाएंगे। जल्दी चले चलिए।"

सदानन्द ने भी देखा, बात सही है। पन्द्रह वर्षों में आखिर शहर की यह हालत है। लोगों की भी यह दशा। अथच पहले तो ऐसा नहीं था। ये सभी रास्ते में किलबिला क्यों रहे है ?

"लेकिन इन सबके घर क्यों नहीं है ?"

"घर कहां से होगा ? साल-साल अगर आदमी के बच्चा पैदा हो तो उस हिसाब से घर तो नहीं बढ़ाया जा सकता। बच्चा पैदा करने में तो किसीको पैसा नहीं लगता है, मगर घर बनाने में तो पैसा लगता है साहब ! आप चलिए, यह सब सोचेंगे तो आपकी तबीयत खराब हो जाएगी।"

सदानन्द ने कहा, "तो ? इन सबका क्या होगा ?"

"रुकिए भी। इतनी फिजूल की बातों का जवाब मैं नहीं दे सकता। आपको चलना हो तो चलिए, नहीं तो मैं चला..."

लेकिन 'चला' कहने से ही क्या हज़ारी बेलीफ चला जा सकता है ? सदानन्द जिस दिन धरती पर पैदा हुआ, उसने तो उसी दिन से उसका साथ पकड़ा है। उसी दिन से वह बार-बार सदानन्द को बताता आया है, कौन-सा न्याय है और कौन-सा अन्याय। न्याय का ज्ञान देने वाले जो विधाता हैं, वही तो सभी मनुष्य के सृष्टिकर्ता हैं। कभी जब बूढ़े चौधरी पैदा हुए थे, तो उस दिन भी उनके पीछे हज़ारी बेलीफ को भेज दिया था। हज़ारी बेलीफ के हाथ उनके खिलाफ भी सम्मन भेजा था। लेकिन हज़ारी बेलीफ को दो-चार रुपये दे-देकर उन्होंने उस सम्मन को रोक रखा था।

सिर्फ बूढ़े चौधरी ही क्यों ? छोटे चौधरी, सुलतानपुर के मुखर्जी बाबू, ये सबके सब तो आसामी ही थे। मगर आसामी होते हुए भी उन्हें कभी कठघरे में खड़ा नहीं होना पड़ा। हज़ारी बेलीफ को घूस दे-देकर वे लोग हाकिम को सदा टालते गए। कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, फटिक नाई, कालीगंज की बहू—उनके जहरीले निश्वास से ये सब जर्जर हो गए, मगर इन्हें कभी कठघरे में खड़े होकर इसकी सफाई नहीं देनी पड़ी। और चूंकि सफाई नहीं देनी पड़ी, इसलिए हज़ारों-हज़ार, लाखों-लाख, करोड़ों-करोड़ कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, फटिक नाई और कालीगंज की बहुओं ने फिर से यहां जन्म लिया। पन्द्रह वर्षों के बाद उनके वंश के लोग आज रास्तों पर किलबिलाते फिर रहे हैं। आज के बड़े हुज़ूर और आज के छोटे चौधरी के खिलाफ खड़े होने के लिए फिर से सदानन्द पैदा होगा।

कलकत्ता में अचानक एक हलचल सी मच गई, "आ गया, आ गया। तुम लोग सब सावधान हो जाओ, होशियार हो जाओ। आसामी आ गया। पन्द्रह साल पहले जिसने एक दिन हम लोगों से बदला चुकाना चाहा था, वह

फिर आ गया। तुम लोग पापों को ढक लो, घावों को छिपा रक्खो। वह देख लेगा तो फिर अनर्थ खड़ा होगा। वह सुहागरात में फिर अपने कमरे से भाग जाएगा, फिर नयनतारा जैसी स्त्रियों से चरम बदला चुकाएगा, फिर कांच की दावातदानी से टकाटक अपने सिर को पीटेगा, फिर लहू-लुहान हो जाएगा चेहरा, नयनतारा फिर लहू देखकर बेहोश हो जाएगी।"

आज के बूढ़े चौधरी फिर चीख उठे, "दीनू—दीनू—"

दीनू के सामने आते ही बूढ़े मालिक ने कहा, "वंशी ढाली कहां है? वंशी ढाली को जरा बुला तो लाओ—"

वंशी ने आकर मालिक को सलाम बजाया। बोला, "हुक्म करें सरकार, क्या करना है? अपनी जान देकर आपका हुक्म बजा लाऊंगा···"

बूढ़े मालिक ने कहा, "लेकिन बड़ी होशियारी के साथ करना होगा वंशी, किसीको जिसमें भनक भी न मिले···"

वंशी ने कहा, "कभी वैसी असावधानी हुई कि आप ऐसा कह रहे हैं?"

बूढ़े मालिक ने कहा, "अरे सो नहीं कह रहा हूं। फिर एक झमेला उठ खड़ा हुआ है। उस झमेले को तुझे मिटाना है···"

वंशी ने कहा, "आप फरमाएं तो सही, किसका काम तमाम करूं?"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "अभी-अभी खबर मिली। याद है न, उस बार मुन्ने की शादी के दूसरे दिन कालीगंज की बहू आई थी?"

वंशी ने कहा, "खूब याद है मालिक, मैंने उसे खत्म कर दिया था। कानों-कान भी किसीको खबर हुई थी?"

"नहीं, नहीं हुई थी। इसीलिए तो तुझे फिर से बुलाया है।"

"कहिए न मालिक, अबकी किसको खत्म करना है? इस बार कौन आया है?"

यह वंशी ढाली बड़ा ही विश्वासी है। बूढ़े चौधरी के अमल से बहुत पहले भी ये थे, और आज इतने दिनों के बाद भी है। जमींदारी उठ गई। मिस्र, अफ्रीका, एशिया के सभी देशों से बूढ़े हुजूर जैसे सब लोग चले गए, सब देश फिर आजाद हो गए, लेकिन आय वसूली रह गई और रह गया हुजूरों का रौब-दाब। और उसके साथ-साथ रह गए ये वंशी ढाली वगैरह। ये वंशी ढाली वगैरह सचमुच ही बड़े विश्वासी कर्मचारी है। सुख-शान्ति के दिनों में उन्हें दाने नसीब हो रहे हैं या नहीं, यह देखने की कोई बला उन हुजूरों को नहीं थी। लेकिन विपदा की घड़ी में आज भी वही लोग भरोसा हैं। वही लोग अपनी छाती अड़ाकर हुजूरों को बचाते हैं। इस बार भी इसीलिए दरबार में वंशी ढालियों की बुलाहट हुई।

"हुक्म करें हुजूर, अबकी किसको खत्म करना है। कौन आया है?"

लेकिन जवाब देने से पहले ही मेज के टेलीफोन की घंटी बज उठी। मालिक ने रिसीवर उठाकर कहा, "कौन?"

"मुख्यमन्त्री बोल रहे हैं?"

मालिक ने कहा, "हां। क्या हुआ? मिसेज बनर्जी हैं?"

उधर से श्रीमती वनर्जी के महीन गले की कृतज्ञ सम्मति की हंसी सु
पड़ीं।

"आज मेरे यहां आपके आने की वात है। मैं रिमाइंड किए दे रही
प्रथम का जन्म दिन है—याद है न मिस्टर सेन ?"

मालिक ने कहा, "स्योर। प्रथम का जन्म दिन—मुझे विलकुल याद
नहीं था। अच्छा ही किया, याद दिला दिया। खूब, कितना अच्छा नाम
है लड़का का। प्रथम।"

मिसेज वनर्जी ने कहा, "प्रथम नाम सचमुच ही पसन्द आया आपको

"सचमुच, वड़ा वेहतरीन नाम है। ऐसा ऑरिजिनल नाम किसने
मिसेज वनर्जी ?"

मिसेज वनर्जी ने कहा, "उसने..."

"मिस्टर वनर्जी ने ? अच्छा। वड़ी अच्छी सूझ है तो उन्हें।"

"आपका समय अव वरवाद नहीं करूंगी मिस्टर सेन ! लेकिन मिसेज़
जरूर लाइएगा। सवको कहा है, मिस्टर नोवीकोव भी आ रहे हैं..."

"और मिस्टर हैंडरसन ?"

"जी, उनसे भी कहा है। इसमें कोई भूल कर सकती हूं भला !"

"ओके।"

मुख्यमंत्री ही नहीं, एक एक करके सभी के टेलीफोन आने लगे।
तरह से वूढ़े हुजूर को नहीं छोड़ा जा सकता उसी तरह से प्राणकृष्ण सा
भी वाद नहीं दिया जा सकता। तारिणि चक्रवर्ती, विहारी पाल—ये सव
नवावगंज के जाने माने लोग हैं। नवावगंज की प्रजा के यहां व्याह या
प्राशन हो, तो गांव के जो चुने-माने लोग हैं, उनको वुलाना ही पड़ेगा।
तो खुशामद की सीढ़ी से इज्जत की चोटी पर नहीं पहुंचा जा सकता।
इज्जत की चोटी पर चढ़ने का मुख्य उपाय दावत देना है। इज्जत ही
मिली, तो वैंक के रुपयों को क्या धो-धोकर पिएंगे ? और गाड़ी-व
वावर्ची-खानसामा होने ही से तो पेट नहीं भरता। पद्मश्री आजकल वहुत
मामूली हो गई है। पद्म विभूषण न हो तो कम-से-कम पद्म भूषण की उ
तो लेनी ही होगी। फिर अभी तो खैर प्रथम छोटा है। वारहवें सा
पहुंचा है। लेकिन यह सदा वच्चा ही तो नहीं रहेगा। दूसरे दस अ
इंडियनों के साथ एक ही स्कूल में पढ़ने से भी उन्हीं लोगों जैसा
जाएगा। उसके भविष्य के वारे में अभी से ही सोचना पड़ेगा। उसे य
रूस या अमरीका भेजना होगा। लिहाजा ऐंवेसी को हाथ में रखना ज
है।

मिस्टर नोवीकोव ने रिसीवर उठाया, "हैलो—"

उधर से महीन हंसी जैसी आवाज़ आई मीठे गले की, "मिसेज़ व
स्पीकिंग। गुड मानिंग मिस्टर नोवीकोव, आज की सांझ की याद है न !
प्रथम का जन्म दिन है—वर्थ डे। मैं फिर से याद दिला रही हूं—"

"ओ, स्योर, स्योर !"

मिसेज बनर्जी ने कहा, "आना ही है और मिसेज को भी साथ लाइएगा... भूलिएगा नहीं—"

"प्रथम का माने क्या है मिसेज बनर्जी ? आपने बताया था, मैं भूल गया—"

मिसेज बनर्जी ने कहा, "प्रथम का माने फर्स्ट।"

"वेरी गुड नेम।" कहकर मिस्टर नोवीकोव डिप्लोमैटिक हंसी हंसने लगे। इसके बाद मिस्टर हैंडरसन। कलकत्ता में पोस्टिंग होने के पहले हैंडरसन वेस्ट एशिया में थे। यों कहिए तो थर्ड-वर्ल्ड के विषय में वह विशेषज्ञ हैं। प्रेसिडेंट के साथ प्रियपात्र। कलकत्ता पोस्टिंग होने से पहले अच्छी तरह से पाठ पढ़कर आए हैं। वह वहीं से यह जानकर आए हैं कि ये बंगाली बड़े श्रूड हैं, मगर इमोशनल। तुम अगर उन्हें एक बार काकटेल पार्टी में बुलाओ तो धन्य हो जाएंगे। फ्लैटरी के राजा हैं वे। लेकिन बाहर से कुछ ऐसे बने रहते हैं, जैसे कितने बड़े इंटेलेक्चुएल हैं। असल में सभी फुलिश हैं। उन्हें अगर एक बार अमरीका घुमा देने का लोभ दिखा दो तो उनको मानो मुट्ठी में चांद मिल जाएगा। वे तुम्हें सिर पर उठाकर नाचेंगे।

हैंडरसन ने पूछा था, "वे अगर अपने यहां दावत में बुलाएं तो जाऊंगा ?"

"स्योर। सफेद चमड़ा, खासकर अमरीकियों के प्रति उन्हें एक वीकनेस है।"

मिस्टर हैंडरसन ने कहा था, "मगर मैंने सुना था, वे शायद कुछ रूस-प्रभावित हैं ?"

"रबिश ! सच पूछो तो वे रुपया-प्रभावित हैं। असल में हर बंगाली कवि है, कवि क्या राजनीति समझते हैं ? समझते हैं बस झोंक। अपने कैरियर के लिए वे हर कुछ कर सकते हैं।"

आते समय हैंडरसन को वाशिंगटन से सब कुछ सिखा-पढ़ाकर भेजा गया था। यही क्यों, मास्को से मिस्टर नोवीकोव को भी तोते की तरह सब कुछ रटाकर भेजा गया था।

इसीलिए यहां आने पर दोनों बंगाली समाज से मिलने-जुलने लगे थे। उसी सिलसिले में मिसेज बनर्जी से परिचय हुआ।

दरअसल थोड़ी-सी इच्छा चाहिए। इच्छा और रुपया, यह दो मूलधन हों तो तुम इच्छा की सीढ़ी से सम्मान के शिखर पर चढ़ सकते हो।

इसके बाद पुलिस कमिश्नर।

"हेलो।"

"मिस्टर सामन्त, मैं मिसेज बनर्जी बोल रही हूं। आज आ रहे हैं न ?"

मिस्टर सामन्त ने कहा, "बेशक। प्रथम की वर्थ ऐनीवर्सरी है और मैं नहीं आऊंगा ? कह क्या रही हैं आप ?"

"तो आपसे एक अनुरोध करूं। मेरे लोकल थाने के ओ० सी० को कृपा करके कह दें, घर के सामने कुछ कांस्टेबुल भेज दें।"

"ओके, मैं अभी इंतजाम किए देता हूं।"

इस तरह से नवावगंज के सभी वी० आई० पी० को वुलाया गया था।
दिन सवको फिर से याद दिलाई गई। वूढ़े मालिक के यहां के आयोजन
वको आना ही पड़ेगा। उसमें जो आएंगे, उनकी भी इज्जत वढ़ेगी और
के यहां आएंगे, उनकी भी इज्जत वढ़ेगी।

लेकिन कालीगंज की वहू वगैर न्योते के क्यों आई?

वूढ़े मालिक ने कैलास गुमाश्ता से पूछा, "कैलास, तुमने कालीगंज की
को न्योता भेजा था क्या?"

कैलास ने कहा, "जी नहीं तो···"

"तो विन न्योते के वह क्यों आई? किस साहस से?"

कैलास ने कहा, "जी, वह नई वहू को देखने आई है।"

"उसे आज ही आना था? खैर, जव आ गई है, तो उसे भगाने की कोई
रत नहीं। मगर देखना, ज्यादा देर न रहे—"

कैलास गुमाश्ता के चले जाने के वाद भी वूढ़े मालिक शान्त नहीं रह
। उन्हें लगा, सरिश्ते के पास जो चोर-कोठरी है, वहां से मानो अस्फुट-सी
ाज़ हुई। वंशी ढाली से कहीं ज़रा भी चूक हुई तो सव गुड़ गोवर
जाएगा। सव वंटाढार हो जाएगा। अथच आज के उत्सव में इतने-इतने
। आए हैं, ये अगर जान जाएं। चीफ मिनिस्टर सेन आए हैं, अमरीका के
सेडर मिस्टर हेंडरसन आए हैं, रूस के ऐंवेसेडर मिस्टर नोवीकोव आए हैं,
कत्ता के पुलिस कमिश्नर मिस्टर सामन्त आए हैं। कोई वाकी नहीं हैं
कत्ता के। रास्ते पर गाड़ियों की कतार लग गई है। आज मिस्टर वनर्जी
लड़के का जन्म दिन है। मिसेज वनर्जी की पहली संतान। आज उसने
रवें साल में प्रवेश किया। आज सवका लक्ष्य प्रथम ही है। सवके दिए
हारों का टेवल पर पहाड़ लग गया। सव वहां अंट नहीं पा रहे हैं। उसके
ढ़ पड़ रहे हैं। फिर भी जैसे उपहारों का अन्त नहीं है।

एकाएक जाने कौन तो करीव आया। मिस्टर वनर्जी अपने काम में व्यस्त
। काम कुछ खास नहीं। काम करने वालों की उन्हें कमी नहीं थी। होटल
सारी जिम्मेदारी दे दी गई थी। खाने का सव इंतजाम होटल वाले ही कर
थे। कैटरिंग एक्सपर्ट हैं वे।

"वनर्जी साहव कहां हैं?"

दुतल्ले के एक हाल में काकटेल की व्यवस्था थी। ट्रे लिए वाय और
र लोग आ-जा रहे थे। वहुतों के पास सिगरेटों से भरे ट्रे। वे सामने से
रें और आप चाहें, तो सिगरेट ले सकते हैं। मिस्टर सेन को वहुत काम
। वह सीधे राइटर्स विल्डिंग्स से चले आए थे। भीड़ सारी उन्हींके चारों
र थी। सवके हाथ में गिलास। एक गिलास खाली होते-न-होते दूसरा
। गिलास लिए वैरा आ पहुंचता। किसीको वे खाली गिलास नहीं रखने
।

वह आदमी उस समय नीचे तमाम घूम रहा था। पूछा, "वनर्जी साहव
ां है रे?"

एक बैरा तेजी से किधर तो जा रहा था। वह बोला, "बनर्जी साहब कहां हैं, यह मुझे क्या मालूम, ऊपर जाकर देखो न—"

आज बेकार की बात करने का किसीको समय था भला! आज जो लोग यहां आए हैं, उनकी खातिरदारी में जरा भी चूक हुई, तो गजब हो जाएगा। फाटक के बाहर पहरा। आज के सभी अतिथि-अभ्यागत वी० आई० पी० हैं। ये लोग इसके पहले भी यहां आए हैं, और आज भी आए हैं।

बूढ़े मालिक ने बेटे को बुलवा पठाया।

बेटे के आते ही पूछा, "मुन्ना कहां है?"

चौधरी जी ने कहा, "नीचे ही है…"

बूढ़े मालिक ने कहा, "उसपर जरा निगाह रखना, फिर कहीं भाग न जाए। उबटन के दिन जैसी हरकत की थी, फिर न करे। देखना—"

चौधरी जी ने कहा, "जी उसपर नजर है। प्रकाश उसके पीछे-पीछे है—"

"मुन्ने को खिला-पिलाकर सीधे बहूरानी के कमरे में भेज देना। देख लेना, जब वह अन्दर से छिटकिनी लगा ले, तो मुझे आकर कह जाना—"

आज यहां भी वही हालत थी। मालिक ने सवेरे से ही हुक्म दे रखा था, "ठीक से ख्याल रखना। चीफ मिनिस्टर आएंगे, फारेन ऐंबेसेडर लोग आएंगे, पुलिस कमिश्नर आएंगे। कोई गफलत न हो, उनके आदर स्वागत में कोई त्रुटि न रहे। मिस्टर बनर्जी सवेरे से ही व्यस्त थे। सिर्फ रुपया खर्च करने से ही तो नहीं होता, चारों तरफ निगाह रखनी चाहिए।"

दुनल्ले के हाल में मिस्टर सेन ने कहा, "न-न, अब मत दीजिए, अब मत दीजिए मुझे…"

मिसेज सेन ने कहा, "मैं भी अब ज्यादा नहीं लूंगी मिसेज बनर्जी…"

"न-न, जरा-सा स्नैक्स…"

मिसेज बनर्जी दोनों को और एक-एक पेग दे रही थीं। पर चीफ मिनिस्टर ने हाथ पीछे खींच लिया। बोले, "नहीं-नहीं, मुझे अभी फिर राइटर्स बिल्डिंग जाना होगा…"

मिसेज बनर्जी ने कहा, "क्यों, फिर वहां क्यों जाएंगे?"

मिस्टर सेन ने कहा, "पूछिए मत, यहां आने से जरा ही देर पहले फोन आया कि नदिया जिले में बड़ी गड़बड़ी मची हुई है—"

"नदिया में? नदिया में कहां? कैसी गड़बड़ी?"

"वहां के लड़कों ने स्कूल-कालेज की बिल्डिंग में आग लगा दी है। वहां एक अस्पताल था। सुना, उसमें भी आग लगा दी है…"

"क्यों, हुआ क्या था?"

मिस्टर सेन ने कहा, "वही, जो आजकल सब जगह होता है। अपनी ड्यूटी तो कोई करता नहीं है न। एक सज्जन ने लाखों रुपया खर्च करके पन्द्रह साल पहले वहां स्कूल, कालेज और अस्पताल खोल दिया था। लड़के उन्हीं-को जला दे रहे हैं। गांव के लोग भाग रहे हैं। मैंने सी० आर० पी० को भेज

दिया है। अभी जाकर टेलीफोन से फिर वहां [illegible]

"वह कौन-सी जगह है? नाम क्या है जगह का?"

"नवावगंज।"

और इधर, पूरे नवावगंज को ही किसीने मानो और वड़े आकार में इस कलकत्ता में लाकर रख दिया है। यहां भी वाहर उस परमेश मौलिक की तरह कचहरी में हिसाव वही लिए मानदा मौसी वैठी रहती है। सवेरे मानदा मौसी के पास कोई काम नहीं रहता। पार्क स्ट्रीट मुहल्ले का यह मकान और भी दूसरे मकानों जैसा एक वड़ा मकान है। दूसरे मकानों से इस मकान के रंग-ढंग में कोई फर्क नहीं। इस इलाके के सारे ही मकान वड़े हैं। मानदा मौसी की उम्र और भी पन्द्रह साल ज्यादा हो गई है। साथ ही और पन्द्रह साल का अनुभव वढ़ गया है। इस उम्र में मौसी ने सचमुच ही वहुत कुछ देखा। कालीघाट के मन्दिर के रास्ते में जो भिखमंगिन छोटी कभी भीख के लिए तीर्थ यात्रियों के पीछे-पीछे दौड़ती थी, उम्र वढ़ने के साथ ही उसके वदन पर गहने भी आए थे और एक दिन उस लड़की ने कालीघाट के एक खपरैल में व्यवसाय भी शुरू कर दिया था।

लेकिन पार्क स्ट्रीट का यह मकान इस वात का सवूत है कि उच्चकांक्षा रहने पर आदमी कभी कितना ऊपर उठ सकता है। इसीके लिए मानदा मौसी ने एक दिन कितनों की खुशामद की थी। अपने भविष्य की सोचकर मानदा मौसी ने पाई-पाई संजोई थी। भविष्य के अभाव की सोचकर नहीं, दरअसल भविष्य के प्राचुर्य को सोचकर। उस कच्चे खपरैल मकान में लेटी-लेटी वह सपना देखा करती थी कि यह कच्चा घर पक्का कव वन जाएगा। लड़कियां वन-संवरकर सोफासेट पर वैठा करेंगी। और, मकान के सामने वड़ी-वड़ी गाड़ियां आकर खड़ी होंगी। उन गाड़ियों से वड़े-वड़े लोगों के लड़के उतरेंगे और उनके वदन से विलायती इत्र की खुशवू निकलती रहेगी।

इसके लिए मानदा मौसी ने वतासी की कितनी खुशामद की। उसके पैर तक दवाने में उसने संकोच नहीं किया। सोचा था, वड़े वावू से पैरवी करके वतासी रुपये का कुछ जुगाड़ करा देगी। हजार हो, पुलिस का वड़ा वावू ही तो है।

मगर नसीव। कहां चले नेपाल, तो संग चला कपाल। उसी वतासी का अन्त तक क्या नहीं हुआ। इसीको कहते हैं कपाल। वही वड़ा वावू नौकरी में और भी ऊंचे ओहदे पर पहुंच गया। वड़े वावू का वाप मर गया। कितने नौकर-चाकर। और, उसी वतासी का आखिर क्या मिजाज। ढालकर एक गिलास पानी नहीं पीना पड़ता। वड़े वावू को जव और पैसा हुआ, तो वह हवा गाड़ी से हवाखोरी में मैदान की ओर जाती। और तो और, उसके सौत थी, वह भी एक दिन फांसी लगाकर मर गई।

इसीको कहते हैं किस्मत। कहां किस वस्ती में पड़ी सड़ रही थी। और, किसके चलते रातोंरात राजरानी वन गई।

और मानदा मौसी।

मानदा मौसी जैसी की तैसी ही रह गई। उस समय भी उसकी पहले जैसी ही दुर्दशा। उस समय भी उसे उसी बस्ती में देसी औरत और देसी शराब के कारबार से अपना पेट पालना पड़ता था।

ऐन ऐसे ही समय एक दिन एक दफ्तर का किरानी अपने एक दोस्त को लेकर आया। आज अब उसका नाम भी ठीक से याद नहीं। सौतीश या क्या तो नाम था।

सौतीश ने कहा, "मैं अपने एक दोस्त को ले आया हूं मौसी !"

"दोस्त? खैर, दोस्त को ले आए हो तो अच्छा ही किया है। किसके घर में बैठोगे?"

सौतीश ने कहा, "आज बैठने के लिए नहीं आया हूं मौसी ! मेरा यह दोस्त व्यवसाय करना चाहता है। मैंने इसे तुम्हारे बारे में कहा कि मौसी की व्यवसाय-बुद्धि खूब तेज है। यह जानना चाहता है, तुम्हारे इस व्यवसाय में कैसा लाभ-नुकसान है। इसे तुम जरा समझा दो—"

मौसी ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है भैया !"

वह जवान शर्मीला था। बोला, "निखिलेश, निखिलेश बनर्जी।"

खासा नाम। नाम मौसी को याद था। लेकिन कुछ पूछताछ के बाद मौसी ने जाना, उसके पास खास पूंजी नहीं है। कर्ज-वर्ज करके बहुत तो पांच हजार तक जुटा सकता है। सो वह ठोंक-पीटकर जानना चाह रहा था कि किस कारबार में कितना लाभ है ! औरतों के बोर्डिंग हाउस में क्या मुनाफा है और इस व्यवसाय में क्या है ! मौसी ने लेखा-जोखा लगाकर उस दिन यह दिखा दिया था कि यह व्यवसाय साहबों के मुहल्ले में किया जाए, तो दसगुना लाभ है। यानी एक रुपये का दस रुपया।

सुनकर दोनों लौट गए थे। मौसी ने सोचा था, अब वे दोनों नहीं आएंगे, पास ही नहीं फटकेंगे।

लेकिन गजब ! गजब का गजब !

तीन महीने के बाद ही उसे बस्ती के सामने सदर रास्ते पर एक बहुत बड़ी गाड़ी आकर खड़ी हुई। सच पूछिए तो उस बस्ती में गाड़ी से कोई नहीं आता था। कालीघाट के ग्राहक सब छोटे लोग थे।

लेकिन मौसी को इसकी कल्पना भी नहीं थी। गाड़ी का ड्राइवर आया। पूछा, "यहां कोई मानदा मौसी है?"

मानदा मौसी ने कहा, "हां। मेरा ही नाम मानदा मौसी है।"

ड्राइवर ने कहा, "साहब आपको बुला रहे हैं..."

"साहब? कौन साहब? कहां हैं तुम्हारे साहब?"

"गाड़ी पर हैं।" ड्राइवर ने रास्ते पर खड़ी गाड़ी की ओर दिखाया।

मानदा मौसी फिर भी समझ नहीं सकी। उसके पास गाड़ी में कौन आ सकता है। चारों तरफ अंधेरा था। गली पार करके वह बड़े रास्ते पर गई। गाड़ी के पास जाकर भी लेकिन पहचान नहीं सकी।

"मुझे पहचानती हो मौसी?"

मानदा मौसी ने वार-वार गौर से देखा। फिर भी पहचान नहीं सकी।

"नहीं पहचाना? शीतेश की याद है? वह लम्बा और दुबला-सा आदमी?"

"हां हां। तो, वह कहां है?"

"वह मर गया। दिल के दौरे से मर गया। मैं एक दिन उसके साथ तुम्हारे यहां आया था। मेरा नाम निखिलेश है। निखिलेश वनर्जी। याद आया?"

वड़ी-वड़ी मुश्किल से आखिर याद आया। लेकिन वह यह नहीं समझ सकी कि जो आदमी एक दिन दफतर में काम करता था, उसके पास ऐसी गाड़ी कैसे हो गई?

"तुम ज़रा मेरे साथ चल सकती हो मौसी?"

मानदा मौसी ने कहा, "कहां?"

"जहां कहीं भी। यहां वैठकर वातें नहीं हो सकती। कहीं एकांत में वैठकर तुमसे दो वातें करना चाहता हूं। जिस व्यवसाय के वारे में कभी चर्चा की थी, उसी व्यवसाय के वारे में परामर्श करना चाहता हूं—मेरे साथ चलो न ज़रा—"

यहीं सूत्रपात हुआ। जिस आदमी के पास कभी पांच हज़ार रुपये भी नहीं थे, उसीने एक वात पर पचास हज़ार रुपये निकाल दिए। उसके वाद ही पार्क स्ट्रीट में यह ग्रीन पार्क खड़ा हो गया। दिन में ग्रीन पार्क में किसी तरह का व्यतिक्रम समझने का कोई उपाय नहीं था। अगल-वगल के अन्य दस आफिस मकान जैसा ही चेहरा। लेकिन शाम के वाद से ही इस मकान पर मानो सरूर चढ़ आता। नशे से जैसे लड़खड़ाता रहता है। उस समय रंग-विरंग की गाड़ियां आकर सामने की सड़क पर खड़ी होती हैं। गण्य-मान्य व्यक्ति लिफ्ट से ऊपर आते हैं। दरवाज़े पर दरवान खड़ा रहता है। लोगों को पहले मैनेजर के पास जाना पड़ता है। मैनेजर जैसा हुक्म देता, वैसा ही होता। किसीको काली चाहिए, किसीको गोरी। किसीको वर्मी तो किसीको नेपाली। कोई काश्मीरी चाहता तो कोई चाहता मेम। अंग्रेज, जर्मन, फ्रेंच मेम साहव। ग्रीन पार्क में सव जात की स्त्रियां मिलतीं।

लेकिन इन सवके पीछे होती मानदा मौसी। सच पूछिए तो ग्रीन पार्क की कुंजी मानदा मौसी ही है। वास्तव में वस्ती और ग्रीन पार्क के इस व्यवसाय में खास कोई फर्क नहीं है। कालीघाट की उन्हीं लड़कियों को अच्छी साज-पोशाक में विजली की तेज़ रोशनी में खड़ी कर देने से ही उनका चेहरा और ही किस्म का हो जाता पहले जिनका भाव महज़ एक रुपया था, वही यहां एक घंटे के लिए सौ रुपया मांग वैठती है। वही लड़कियां, कोई चीनी वन जाती हैं, कोई काश्मीरी, कोई मेम।

इससे जुदा भी कुछ चाहिए तो वह भी हाज़िर। नाटी, लम्बी, दुवली—एक-एक भले आदमी की अपनी-अपनी पसन्द। लड़की के पार्टीशन का कमरा। आवरू का अच्छा इंतजाम। किसीसे किसीको भेंट हो जाने का कोई खतरा नहीं। पैसा फेंको, तमाशा देखो। सवकी वंधी मीयाद। समय पूरा हो जाते ही

आपको कमरा खाली कर देना पड़ेगा।

मैनेजर हर घंटे नक़द रुपये ले जाकर मानदा मौसी के पास जमा करता। किसी दिन तीन हज़ार होता, किसी-किसी दिन चार हज़ार। कभी-कभी पांच हज़ार तक भी पहुंच जाता। पर्व-त्यौहार पर आमदनी बढ़ जाती। जैसे, दशहरा, दशहरा और बड़ा दिन ही ग्रीन पार्क का सीज़न है। उस समय कलकत्ता के बाहर के लोग भी आते हैं। दिल्ली और बम्बई से लोग आकाश-पथ से उड़कर कलकत्ता में आकर उतरते हैं। उस समय मानदा मौसी को नहाने-खाने का भी समय नहीं रहता। इतने-इतने रुपये का हिसाब क्या आसान बात है।

मगर रुपया बड़ी वाहियात चीज़ है। खास करके नक़द रुपया। नक़द रुपये का हिसाब अगर जब का तभी न कर लिया जाए तो सब चौपट हो जाता है। इसीलिए साहब को कहा हुआ है। रोज़ शाम को मानदा मौसी अपनी गाड़ी से जाकर रुपये सीधे बनर्जी साहब को दे आती है।

उस रुपये के लिए बनर्जी साहब काफ़ी रात तक बैठे रहते हैं। हिसाब वाली बही को भी साथ ले जाना पड़ता है। कारबार के आधे हिस्से की पाई-पाई का हिसाब साहब को समझा देना पड़ता है। यहां तक कि शराब के बिल का भी।

उस दिन एकाएक फोन आया, "कहां है, मौसी कहां है ?"

गले की आवाज़ से ही मैनेजर समझ गया। उसने ठीक जगह पर फोन का कनेक्शन कर दिया।

मौसी ने कहा, "हेलो—"

उधर से साहब का गला सुनाई पड़ा, "कुछ रुपयों की ज़रूरत थी, पांचेक हज़ार—"

"अभी तुरन्त ?"

साहब ने कहा, "हां। यहां पार्टी चल रही है। अभी तक कितना वसूल हो चुका है ?"

"तीन हज़ार के करीब।"

"ठीक है। बहरहाल तीन हज़ार से ही चलेगा। मैं इंतज़ार में रहा···"

फ़ौरन मैनेजर बनर्जी बाबू को रुपया पहुंचा आया। उस समय एक कौन आदमी तो बनर्जी साहब के सामने बैठा था। बड़ा सभ्रांत-सा चेहरा। मैनेजर के जाते ही बनर्जी ने रुपये उन सज्जन को दे दिए।

भले आदमी रुपयों को जेब के हवाले कर रहे थे, पर बनर्जी साहब ने कहा, "नहीं मिस्टर सामन्त, गिन लीजिए—प्लीज़।"

मिस्टर सामन्त ने कहा, "छिः, जब आप दे रहे हैं···"

मिस्टर बनर्जी ने कहा, "सो हो, आप मेरे मित्र हो सकते हैं, पर बिज़नेस इज़ बिज़नेस···"

लाचार सामन्त ने सारे रुपये गिन लिए, फिर उठे। बोले, "ठीक है। ओके।" यह कहकर उन्होंने एक सिगरेट सुलगाई। उसके बाद कमरे से निकल

कर सीधे पोर्टिको में। उनकी गाड़ी के स्टार्ट होने की आवाज़ सुनाई पड़ी। दरवान ने फाटक खोल दिया। धुआं छोड़ती हुई गाड़ी बाहर चली गई।

नयनतारा जाग ही रही थी। निखिलेश के कमरे में आते ही पूछा, "क्या हुआ ? चला गया।"

निखिलेश ने कहा, "हां, बला टली। तीन हज़ार से कम में नहीं छोड़ा। बोला, आजकल ज़रा अभाव चल रहा है। मैंने भी देखा, पुलिस वालों को नाराज़ करने से लाभ नहीं···"

नयनतारा ने कहा, "जाने दो, सो रहो। कल फिर पार्टी है—"

कमरे की बत्ती गुल हो गई। सारा नवाबगंज सो गया। लेकिन अंधेरे कमरे में भी बूढ़े हुज़ूर की आंखों में नींद नहीं। हर्षनाथ चक्रवर्ती की विधवा से छुटकारा मिला। बंशी ढाली ने चुपचाप उसका काम तमाम कर दिया। अब कोई चिन्ता नहीं। कल प्रथम की पार्टी में मुख्य मन्त्री को आमन्त्रित किया गया है, मिस्टर सेन को। यू० एस० ए० के मिस्टर हैंडरसन को निमन्त्रण दिया गया है। मास्को के मिस्टर नोवीकोव को भी न्योता दिया गया है। सभी अपनी-अपनी मिसेज़ के साथ आएंगे। नवाबगंज में अब किसीको न्योतना बाकी नहीं रहा। जितने भी वी० आई० पी० हैं, सबको। यहां तक कि ज़रा ही देर पहले जो आदमी तीन हज़ार रुपया ले गया, वह मिस्टर सामन्त भी अपनी श्रीमती के साथ आएगा।

कि चौधरी जी आए।

बूढ़े मालिक ने पूछा, "कौन ?"

चौधरी जी ने कहा, "मैं—"

बूढ़े चौधरी ने पूछा, "क्या खबर है, मुन्ना भाग तो नहीं गया ?"

"जी नहीं, खाने-पीने के बाद उसे बहूरानी के कमरे में पहुंचाकर हम चले आए।"

बूढ़े हुज़ूर इससे भी निश्चिन्त नहीं हुए। पूछा, "लेकिन यह बताओ न कि कमरे में जाकर उसने अन्दर से छिटकिनी लगाई या नहीं ?"

"लगाई।"

खैर। अब बूढ़े मालिक ने राहत की सांस ली। अब कोई खतरा नहीं। कभी निखिलेश शराब की दूकान पर पिकेटिंग करके जेल गया था। पुलिस की लाठी खाई थी। दिनों तक उसे काफी दुःख था। देश के स्वाधीन हो जाने के बाद बहुतों को बहुत कुछ मिला, एक उसीको कुछ नहीं मिला। अब वह अफसोस जाता रहा। अब उसे कोई दुःख नहीं। अब बूढ़े चौधरी के पोते ने सुहागरात में अपने कमरे को अन्दर से बंद कर लिया है। अब नई बहू के रूप को देखकर वह भूल जाएगा। अब नरनारायण चौधरी अपने बेटा-पोता आदि के क्रम से वंश-परम्परा में अमर रहेंगे, अनंतकाल तक अपनी रक्तधारा में अखंड परमायु लाभ करेंगे। अक्षय, अव्यय, अम्लान होकर विराजते रहेंगे वह।

लेकिन उस समय उन्हें यह पता नहीं था कि उनका वंशधर अपने सोने के कमरे को खोलकर सबकी नजर बचाकर विशाल विश्व-ब्रह्माण्ड के उन्मुक्त आकाश के नीचे किसी दिन फिर उनके लिए कांटों की सेज बिछाएगा। उन्हें नहीं मालूम था कि बहुत दिनों के बाद एक दिन उनका पोता थिएटर रोड के एक नये मकान में जाकर नये सिरे से फिर अपनी सुहागरात मनाएगा। हां, सुहागरात ही तो। नयनतारा के थिएटर रोड वाले मकान में उस दिन फूलों की सेज की ही तो तैयारी हुई थी। शराब और खाने का जितना प्रबंध था, फूलों का प्रबंध उससे कुछ कम नहीं था।

कलकत्ता के एक छोर से उस समय नरनारायण चौधरी का वंशधर ठीक वैसे ही पैदल चला आ रहा था। साथ में था हजारी बेलीफ। सियालदह स्टेशन में उतरते ही हजारी ने पोटली से उस्तरा निकालकर अपनी दाढ़ी बना ली थी।

वे लोग जितना ही दक्खिन की ओर बढ़ने लगे, उतने ही अच्छे-अच्छे रास्ते, उतने ही बड़े-बड़े मकान। इधर भिखमंगों का वैसा उत्पात नहीं था। इधर बड़ा बाजार और सियालदह की तरह शोरगुल नहीं।

सदानन्द ने कहा, "इधर तो खासा एकांत है हजारी बाबू, भिखमंगों का तो उत्पात इधर नहीं है।"

हजारी ने कहा, "आप कह क्या रहे हैं, इधर भिखमंगे नहीं हैं? पता है आपको, इस टोले में जितने भिखमंगे हैं, उतने दुनिया में कहीं नहीं हैं?"

"ऐसा?"

"अरे साहब, ये जो हैं, ये और किस्म के भिखमंगे हैं।"

सदानन्द ने कहा, "मतलब?"

"मैं कोर्ट का प्यादा हूं, मैं इन सबको पहचानता जो हूं। इन सबके ही नाम सम्मन है।"

"अच्छा। तो आप इनपर सम्मन तामील क्यों नहीं करते?"

हजारी ने कहा, "क्यों तामील करूं? फिर मेरा पेट कैसे चलेगा? ये हमें पांच-दस रुपये घूस जो दे दिया करते हैं। मैं जाकर कोर्ट में कह देता हूं, आसामी का कहीं पता नहीं है। इस तरह ये भी बच जाते हैं और मैं भी जी रहा हूं। साथ ही हाकिम, पेशकार, वकील, मुख्तार, एटर्नी—ये सब भी जीते हैं।"

सदानन्द ने कहा, "मगर आपने यह कैसे जाना कि ये भी भीख मांगते हैं?"

हजारी ने कहा, "भला मैं नहीं जानूंगा? इनके यहां मुझे रोज आना जो पड़ता है। मैंने अपनी आंखों देखा है कि ये जात-भिखारी हैं।"

"ऐसी बात?"

"हां। ये उस टोले के लोगों जैसी भीख नहीं मांगते। इनका पेट थोड़े में नहीं भरता है, इसलिए ये लोग लाख-लाख की भीख मांगते हैं। ये मकान की भीख मांगते हैं, मोटर की भीख मांगते हैं, औरतों की भीख मांगते हैं—

कर सीधे पोर्टिको में । उनकी गाड़ी के स्टार्ट होने की आवाज़ सुनाई पड़ी। दरवान ने फाटक खोल दिया। धुआं छोड़ती हुई गाड़ी बाहर चली गई।

नयनतारा जाग ही रही थी। निखिलेश के कमरे में आते ही पूछा, "क्या हुआ ? चला गया।"

निखिलेश ने कहा, "हां, बला टली। तीन हज़ार से कम में नहीं छोड़ा। बोला, आजकल ज़रा अभाव चल रहा है। मैंने भी देखा, पुलिस वालों को नाराज़ करने से लाभ नहीं···"

नयनतारा ने कहा, "जाने दो, सो रहो। कल फिर पार्टी है—"

कमरे की बत्ती गुल हो गई। सारा नवाबगंज सो गया। लेकिन अंधेरे कमरे में भी बूढ़े हुज़ूर की आंखों में नींद नहीं। हर्षनाथ चक्रवर्ती की विधवा से छुटकारा मिला। वंशी ढाली ने चुपचाप उसका काम तमाम कर दिया। अब कोई चिन्ता नहीं। कल प्रथम की पार्टी में मुख्य मन्त्री को आमन्त्रित किया गया है, मिस्टर सेन को। यू० एस० ए० के मिस्टर हैंडरसन को निमन्त्रण दिया गया है। मास्को के मिस्टर नोवीकोव को भी न्योता दिया गया है। सभी अपनी-अपनी मिसेज़ के साथ आएंगे। नवाबगंज में अब किसीको न्योतना बाकी नहीं रहा। जितने भी वी० आई० पी० हैं, सबको। यहां तक कि ज़रा ही देर पहले जो आदमी तीन हज़ार रुपया ले गया, वह मिस्टर सामन्त भी अपनी श्रीमती के साथ आएगा।

कि चौधरी जी आए।

बूढ़े मालिक ने पूछा, "कौन ?"

चौधरी जी ने कहा, "मैं—"

बूढ़े चौधरी ने पूछा, "क्या खबर है, मुन्ना भाग तो नहीं गया ?"

"जी नहीं, खाने-पीने के बाद उसे बहूरानी के कमरे में पहुंचाकर हम चले आए।"

बूढ़े हुज़ूर इससे भी निश्चिन्त नहीं हुए। पूछा, "लेकिन यह बताओ न कि कमरे में जाकर उसने अन्दर से छिटकिनी लगाई या नहीं ?"

"लगाई।"

खैर। अब बूढ़े मालिक ने राहत की सांस ली। अब कोई खतरा नहीं। कभी निखिलेश शराब की दूकान पर पिकेटिंग करके जेल गया था। पुलिस की लाठी खाई थी। दिनों तक उसे काफी दुःख था। देश के स्वाधीन हो जाने के बाद बहुतों को बहुत कुछ मिला, एक उसीको कुछ नहीं मिला। अब वह अफसोस जाता रहा। अब उसे कोई दुःख नहीं। अब बूढ़े चौधरी के पोते ने सुहागरात में अपने कमरे को अन्दर से बंद कर लिया है। अब नई बहू के रूप को देखकर वह भूल जाएगा। अब नरनारायण चौधरी अपने बेटा-पोता आदि के क्रम से वंश-परम्परा में अमर रहेंगे, अनंतकाल तक अपनी रक्तधारा में अखंड परमायु लाभ करेंगे। अक्षय, अव्यय, अम्लान होकर विराजते रहेंगे वह।

लेकिन उस समय उन्हें यह पता नहीं था कि उनका वंशधर अपने सोने के कमरे को खोलकर सबकी नजर बचाकर विशाल विश्व-ब्रह्माण्ड के उन्मुक्त आकाश के नीचे किसी दिन फिर उनके लिए कांटों की सेज बिछाएगा। उन्हें नहीं मालूम था कि बहुत दिनों के बाद एक दिन उनका पोता थिएटर रोड के एक नये मकान में जाकर नये सिरे से फिर अपनी सुहागरात मनाएगा। हां, सुहागरात ही तो। नयनतारा के थिएटर रोड वाले मकान में उस दिन फूलों की सेज की ही तो तैयारी हुई थी। शराब और खाने का जितना प्रबंध था, फूलों का प्रबंध उससे कुछ कम नहीं था।

कलकत्ता के एक छोर से उस समय नरनारायण चौधरी का वंशधर ठीक वैसे ही पैदल चला आ रहा था। साथ में था हजारी बेलीफ। सियालदह स्टेशन में उतरते ही हजारी ने पोटली से उस्तरा निकालकर अपनी दाढ़ी बना ली थी।

वे लोग जितना ही दक्खिन की ओर बढ़ने लगे, उतने ही अच्छे-अच्छे रास्ते, उतने ही बड़े-बड़े मकान। इधर भिखमंगों का वैसा उत्पात नहीं था। इधर बड़ा बाजार और सियालदह की तरह शोरगुल नहीं।

सदानन्द ने कहा, "इधर तो खासा एकांत है हजारी बाबू, भिखमंगों का तो उत्पात इधर नहीं है।"

हजारी ने कहा, "आप कह क्या रहे हैं, इधर भिखमंगे नहीं हैं? पता है आपको, इस टोले में जितने भिखमंगे हैं, उतने दुनिया में कहीं नहीं हैं?"

"ऐसा?"

"अरे साहब, ये जो हैं, ये और किस्म के भिखमंगे हैं।"

सदानन्द ने कहा, "मतलब?"

"मैं कोर्ट का प्यादा हूं, मैं इन सबको पहचानता जो हूं। इन सबके ही नाम सम्मन है।"

"अच्छा। तो आप इनपर सम्मन तामील क्यों नहीं करते?"

हजारी ने कहा, "क्यों तामील करूं? फिर मेरा पेट कैसे चलेगा? ये हमें पांच-दस रुपये घूस जो दे दिया करते हैं। मैं जाकर कोर्ट में कह देता हूं, आसामी का कहीं पता नहीं है। इस तरह ये भी बच जाते हैं और मैं भी जी रहा हूं। साथ ही हाकिम, पेशकार, वकील, मुख्तार, एटर्नी—ये सब भी जीते हैं।"

सदानन्द ने कहा, "मगर आपने यह कैसे जाना कि ये भी भीख मांगते हैं?"

हजारी ने कहा, "भला मैं नहीं जानूंगा? इनके यहां मुझे रोज आना जो पड़ता है। मैंने अपनी आंखों देखा है कि ये जात-भिखारी हैं।"

"ऐसी बात?"

"हां। ये उस टोले के लोगों जैसी भीख नहीं मांगते। इनका पेट थोड़े में नहीं भरता है, इसलिए ये लोग लाख-लाख की भीख मांगते हैं। ये मकान की भीख मांगते हैं, मोटर की भीख मांगते हैं, औरतों की भीख मांगते हैं—

परमिट लाइसेंस और पद्मश्री-पद्म भूषण की भीख मांगते हैं। आप क्या समझते हैं, ये उन लोगों जैसे टुच्चे भिखमंगे है ?"

फिर बगल के एक मकान की ओर उंगली दिखाकर कहा, "यह देखिए, यह जो मकान देख रहे हैं, यह भी एक भिखारी का मकान है। इसका नाम है ग्रीन पार्क—"

"ग्रीन पार्क ? माने ?"

"यहां रुपयों और औरतों की भीख चलती है। इसके अन्दर जाइए, तो देखेंगे, कतार से कमरे हैं। यह बनर्जी साहब की अपनी भीख की जगह है। यहां औरतों को ललकारकर बनर्जी साहब खुद भीख मांगने आते हैं। असल में इसके मालिक बनर्जी साहब ही हैं, पर इसकी देखभाल करती है मानदा मौसी।"

मानदा मौसी। नरनारायण चौधरी का पोता चौंक उठा। यह नाम बड़ा जाना-पहचाना-सा लगा। मानदा मौसी, जिसने उसकी चरण-पूजा की थी, वह यहां क्यों आई ? कैसे आई ?

"चलिए-चलिए। यहां से चले चलिए…"

सदानन्द ने फिर भी नहीं छोड़ा। बोला, "चला क्यों जाऊं ? आप पहले मुझे बताइए कि यहां क्या होता है ?"

हजारी बेलीफ ने कहा, "अरे साहब, मैं अब आपसे तर्क नहीं कर सकता। उससे तो आप मुझे तीन रुपये दे दीजिए, मैं बाज आया सम्मन तामील करने से, अपनी राह लगूं…"

हजारी वहां से आगे बढ़ चला। सदानन्द भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ आगे बढ़ने पर दूसरा एक रास्ता। उसके बाद एक और। उसके बाद फिर एक बड़ा रास्ता। चलते-चलते वे जैसे सारी दुनिया की ही प्रदक्षिणा कर रहे हैं।

हजारी ने कहा, "मुझसे तो अब चला नहीं जाता साहब, और कितनी दूर है ?"

सदानन्द ने कहा, "बस, आ पहुंचे। वही तो सामने…"

सामने ही रास्ते पर यहां से वहां तक गाड़ियों की भीड़ लगी थी। एक मकान के सामने बत्तियों की सजावट थी। दूर तक रोशनी ही रोशनी हो रही थी। यही तो थिएटर रोड है। यही शायद नयनतारा का मकान है।

सदानन्द फाटक के सामने जाकर खड़ा हुआ। एक दरवान एटेनशन की अदा में खड़ा था। आस-पास और भी बहुत-से लोग थे। रास्ते के सब लोग मजा देखने के लिए खड़े थे।

सदानन्द के सामने जाते ही दरवान ने उसे हटा दिया, "यहां से हट जाओ, भागो, दूर हटो—"

हजारी भी पीछे था। वह भी हटकर खड़ा हो गया। बगल के एक आदमी से पूछा, "यह मकान किनका है साहब, किन साहब का मकान है ?"

जो लोग रास्ते में भीड़ देखते ही खड़े हो पड़ते हैं, यह आदमी वैसों में से

ही था। वह भी शायद मजा ही देखने के लिए वहां खड़ा हुआ था।

वह बोला, "यह तो बनर्जी साहब का मकान है—"

बनर्जी साहब का मकान है—यह बात कानों में पहुंचते ही सदानन्द जरा सचेतन हो उठा। तो, यही नयनतारा का मकान है। उसने अच्छी तरह से चारों तरफ देखा। इतना विशाल मकान। इतना विलास, इतनी तड़क-भड़क। सदानन्द मन-ही-मन खुश हुआ। अच्छा ही हुआ। नयनतारा को अब अभाव का रोना नहीं रह गया। अब आराम की गिरस्ती है। लेकिन घर में यह जशन कैसा है? इतने अतिथि-अभ्यागत किसलिए आए हुए हैं।

आगे जाया नहीं जा सकता। कोई उसे अन्दर जाने नहीं देगा। इस मकान में आज उसके लिए प्रवेश-निषेध है। नयनतारा से एक बार, सिर्फ एक बार भेंट हो जाती, तो अच्छा था। महज भेंट कर लेता उससे। जरा पूछ लेता कि वह कैसी है? सदानन्द ने उसका कौन-सा सर्वनाश किया है? अपने जीवन का सर्वस्व उसे देकर उसने कौन-सा अपराध किया है? और नहीं तो बेवजह उसके खिलाफ शिकायत क्यों?

अचानक दरबान शोर कर उठा, "हटो, हटो यहां से—"

वह हंटर लिए भीड़ की ओर बढ़ा। भीड़ हट गई। तब तक सों-सों करती हुई एक गाड़ी सीधे अन्दर बगीचे में चली गई। बाहर की रोशनी की झलक गाड़ी के अन्दर पड़ते ही सदानन्द ने देखा, गाड़ी में एक महिला बैठी हुई है। मानदा मौसी है न? पन्द्रह साल के बाद इसे देखा, फिर भी पहचानने में कोई कठिनाई नहीं हुई। अब सिर के बाल कुछ सफेद हो गए हैं और साड़ी भी कीमती है, सफेद। गाड़ी पर आराम से पीछे टिककर रानी की तरह बैठी हुई थी। मानदा मौसी को इतने रुपये कहां से हो गए? और यह नयनतारा के यहां ही क्यों आई। नयनतारा से उसका कैसा सरोकार? उसे देखते ही दरबान ने अदब के साथ सलाम बजाया। अरे! कालीघाट की उस गंदी बस्ती के खपरैल की गरीबी से यह किस सीढ़ी के जरिए थिएटर रोड की इज्जत की चोटी पर आ गई? किस चीज की बदौलत?

हठात् तब तक दूसरी गाड़ी आई।

सदानन्द अनमना-सा था। दरबान की डांट खाकर फिर खिसक गया। यह कौन?

सदानन्द के अचरज का ठिकाना नहीं रहा, यह समरजीत बाबू का वह लड़का था। वही, महेश का बड़ा भैया जो। ये लोग इस मकान में क्यों? सारे ही लोग क्या नयनतारा को पहचानते हैं? नयनतारा से इनका कौन-सा सम्बन्ध है?

सदानन्द की नजरों के सामने से ही एक-एक करके गाड़ियां अन्दर आने लगीं। और उसे लगने लगा, वह पन्द्रह साल पहले के अपने नवाबगंज वाले मकान के सामने ही खड़ा है। हूबहू वैसी धूमधाम, वैसी ही रौनक। उस दिन उसका ब्याह था। दरवाजे पर एक बहुत बड़ी बत्ती। आस-पास के सभी गांव के लोग न्योता खाने आ रहे थे।

हज़ारी वेलीफ ने दरवान से पूछा, "यहां क्या हो रहा है दरवान जी ?"

दरवान को उस समय बात करने की फुरसत नहीं थी । वह बड़े लोगों को सलाम ठोंकने में ही व्यस्त था ।

बगल के एक आदमी ने कहा, "अजी पार्टी हो रही है, पार्टी ।"

"काहे की पार्टी ?"

"लड़के का जन्म दिन है ।"

लड़के का जन्म दिन । यह सुनकर ही सदानन्द को बड़ा अच्छा लगा । उसे यह सोचने से ही अच्छा लगा कि नयनतारा सुखी हुई है, नयनतारा के घर बसाने की साध पूरी हुई । जो घर-गिरस्ती वह उसे नहीं दे सका, निखिलेश ने दी । सदानन्द के बदले निखिलेश ने नयनतारा की सभी आकांक्षाएं पूरी कीं । खैर, करे, किसी एक ने नयनतारा की साध मिटाई, सदानन्द को इसीकी खुशी थी ।

हज़ारी ने कहा, "आप दाढ़ी क्यों नहीं बनाते हैं, यह मैं कह नहीं सकता । आप दाढ़ी नहीं बनाते हैं, इसीलिए आपको अन्दर नहीं जाने दे रहा है । मैं तो इसीलिए पोटली में दाढ़ी बनाने का सामान लेकर ही निकला करता हूं ।"

अबकी एक बड़ी ही लम्बी गाड़ी आई । ऐंबेसी की गाड़ी । गाड़ी के अन्दर जो बैठे थे, साहब थे । बगल में उनकी मेम साहब । वही एक गाड़ी नहीं, और भी बहुत से साहब आए, मेम साहब आईं । सदानन्द को लगा, नयनतारा के बेटे के जन्म दिन में सचमुच ही बड़े ज़ोर-शोर की तैयारी की है । लेकिन वह ग्रीन पार्क । आज का यह समारोह किसके पैसे से है ? यह उसके उपार्जन का रुपया है । ग्रीन पार्क का रुपया नहीं है, तो इस घर में मानदा मौसी क्यों आएगी ? मानदा मौसी से इस घर का नाता ही क्यों जुड़ेगा ?

सदानन्द को सारी ही चीज़ें कैसी तो रहस्यमय लगने लगीं । जिस कलकत्ता में इतने भिखमंगे हैं, जिस कलकत्ता में अभावों को इतनी हाय-तौबा है, उस कलकत्ता में लड़के के जन्म दिन में इतनी धूमधाम क्यों ? इतनी फिज़ूलखर्ची, बेकार की इतनी बरबादी किसलिए ?

एक-एक गाड़ी आने लगी और दरवान जी गाड़ी के सवार को सलाम बजाने लगे । अगल-बगल खड़े लोग गाड़ी के अन्दर के ऐश्वर्य की प्रचुरता का अनुमान लगाने लगे । लेकिन बाहर के लोगों को टीमटाम की ऐसी नुमाइश दिखाने के लिए ही क्या सदानन्द ने नयनतारा को इतना रुपया दिया था ? नयनतारा से क्या उसने रुपयों के इसी उपयोग की आशा की थी ?

सदानन्द को इसके साथ ही नवाबगंज के दूर से देखे दृश्य की याद आ गई । क्या हो गया यह ! उसने तो उस दिन यही सोचा था कि आदमी आदमी बने । उसने कभी भी तो यह नहीं कहा कि तुम्हारा यह समाज मेरी इच्छा के अनुसार चले । अर्थ को तो उसने मात्र उपकरण ही सोचा था । उसने सोचा था, उस उपकरण से मनुष्य के जीने का मसला ही हल हो । उसने यह तो नहीं चाहा था कि उपकरण ही मुख्य हो । सबकी महज़ यही शिकायत थी कि रुपयों की कमी की वजह से ही मनुष्य की सारी सत् प्रचेष्टाएं नष्ट हुई जा रही हैं ।

किसीको विद्या चाहिए, किसीको मुक्ति, किसीको सेवा। और किसीको चाहिए ज्ञान। इन्हीं चीज़ों को पाने के लिए ही तो अर्थ चाहिए। जैसे, अन्न। अन्न तो खाने के ही लिए है। अन्न को निगलना ही तो अन्न की उपयोगिता है। लेकिन इसके बजाय अन्न को कोई बदन में लगाए तो उसे तो जूठन कहेंगे। उसके लिए रुपयों ने सारे नवाबगंज को जैसे उच्छिष्ट बनाया, वैसा ही तो नयनतारा के यहां भी हुआ। यहां भी लग रहा है कि नयनतारा के ऐश्वर्य ने नयनतारा को जूठन बना दिया है। लेकिन सदानन्द ने क्या यही चाहा था?

सदानन्द जितना ही सोचने लगा, उसे उतनी ही तकलीफ होने लगी।

हज़ारी ने कहा, "सोच क्या रहे हैं जनाब! चलिए-चलिए। देख तो चुके—"

सदानन्द ने कहा, "मगर नयनतारा से भेंट किए बगैर कैसे जाऊं?"

"लेकिन दरबान हमें अन्दर तो नहीं जाने देगा। देख नहीं रहे हैं, कलकत्ता के सब बड़े-बड़े लोग आ रहे हैं, यहां हम जैसे गरीबों को क्यों घुसने देगा!"

सदानन्द ने कहा, "जो भी हो, मैं अन्दर जाऊंगा। नयनतारा से मिले बिना मैं जाने का ही नहीं।"

"मगर घुसने न दें, तो?"

सदानन्द ने कहा, "आप मेरे पीछे-पीछे रहिए, जैसे भी होगा, मैं अन्दर जाकर ही रहूंगा। मेरा नाम सुन लेने पर नयनतारा ना नहीं करेगी, ज़रा ही देर को सही, मिलेगी ज़रूर।"

हज़ारी ने कहा, "तो फिर उधर के फाटक से चलिए—ज़रा उधर से कोशिश कर देखें—"

और हज़ारी उस तरफ को बढ़ गया।

नवाबगंज में बरवारी-थान में उस समय भी निताई हालदार की दूकान आग की ऊंची लपटों में जल रही थी। बहुत दिन पहले उसी दूकान के चौंतरे पर बैठकर, सब तास खेला करते थे। लेकिन अब उन लोगों की उम्र हो गई। वे लोग उस ज़माने के आदमी, आज के इस युग के नये लोगों के लिए बिलकुल ही अजाने हैं। इन पन्द्रह वर्षों के अरसे में नवाबगंज में जो लोग पैदा हुए हैं, उनका भूत नहीं, वर्तमान भी नहीं, शायद भविष्य भी नहीं है उनका। परन्तु उन लोगों ने यह ख्याल किया कि जिनपर उनके आदमी बनने की जिम्मेदारी है, वे लोग निर्विकार हैं। नियम से उन्हें तनखाह नहीं मिलने पर वे लोग जुलूस निकालते हैं। आसमान की ओर दाएं हाथ का घूसा तानकर नारे लगाते हैं। और, सवेरे जब स्कूल-कालेज जाते हैं, तो वहां उन्हें पढ़ाने वाला, समझाने वाला कोई नहीं होता। फिर जिस दिन इम्तहान देने बैठते हैं, उस दिन निरे असहाय-से बगल में बैठे मित्र की कापी पर नज़र डालकर मुसीबत से बचने की नाकामयाब कोशिश करते हैं।

मनुष्य के इतिहास में कोई-कोई ऐसा युग आता है, जब समाज संसार का प्रत्येक आदमी अपने को ही ठगकर एक अजीब-सी खुशी हासिल करता है। और ठगने-ठगाने की उस प्रतियोगिता में शिकस्त खा जाने पर ही सब आत्म-हनन का रास्ता अख्तियार करते हैं। यह युग भी शायद वैसा ही है। प्रवंचना करते-करते जब पकड़ाई पड़ जाने की नौबत आती है, तो हाथ के करीब अपना जो बर्तन-बासन मिलता है, उसे भी तोड़फोड़ कर वह अपनी कमी का क्षोभ मिटाता है। चीज की कमी होने से ही आदमी उसे धोखा-धड़ी से पूरा करना चाहता है। यहां भी ठीक वही बात हुई है। धोखा देने के कारबार में कोई किसीसे उन्नीस नहीं। नवाबगंज के लोग इस समय इस धोखे की होड़ में पागल हो उठे हैं। कालेज में पढ़कर पास करने से ही अगर विद्वान बना जा सकता है, तो वही करेंगे। और पास करने से ही अगर नौकरी मिल सकती है, तो वही करेंगे। सीधे तौर से अगर पास नहीं कर सकते तो छिप-छिपाकर चोरी से पास करेंगे।

शुरुआत इसीसे हुई थी। फिर उसीकी छूत अस्पताल को लगी। रोगियों को दवा देने से डाक्टरों के पल्ले क्या पड़ता है? वही दवा अगर बाहर बेच दी जाए तो नकद पैसे हैं। पन्द्रह साल पहले नवाबगंज में जब अस्पताल खुला, तो वह आशीर्वाद था, आज वही अभिशाप बन गया।

वही अभिशाप, अभिशाप ही शायद उस दिन एकाएक बारूद बनकर लहक उठा। कहां से जो छिप-छिपकर दल के लोग आकर वहां जमा हुए थे, किसीको खाक भी पता नहीं चला। जब पता चला, तब तक अभिशाप की वह आग स्कूल और कालेज-भवन से बढ़कर अस्पताल में लपटें लेने लगी थीं। इधर जब नवाबगंज जलकर राख हो रहा था, उधर दस कोस के फासले पर जिला अधिकारी महोदय अपनी पत्नी के साथ सिनेमा देखने गए थे। नज़दीक में चौकीदार था। उससे पांच कोस के फासले पर थाना। थाने के आगे डी० एस० पी० और डी० एस० पी के बाद एस० पी०।

बरवारी-थान में उस समय हाट लगी थी। कलकत्ता से झुंड के झुंड भेंडर लोग आए थे। वे रेल-बाज़ार स्टेशन से जैसे नवाबगंज आया करते थे। सीधे चले आए। यहां से सवा रुपये सेर निनुआ खरीदकर कोले मार्केट में ढाई रुपये सेर बेचेंगे। सिर्फ निनुआ क्यों, कोंहड़ा, बैंगन, लतों की डंठलें, लौकी, सब यहां से शहर के बाज़ार में जा पहुंचती हैं। हाट खासी जम रही थी। अचानक हलचल मची। सबकी नाक में आकर धुआं लगा। सभी लोग अपने-अपने घर से निकल आए। क्या हुआ है जी? यहां क्या हुआ है?

बिहारी पाल और भी बूढ़ा हो गया था अब। आंखों से ठीक-ठीक देख नहीं पाता। वह झटपट फिर अपनी दूकान में लौट गया। बोला, "कैलास, दूकान का दरवाज़ा बंद कर दो, स्कूल में आग लग गई है—"

जैसे दूकान का दरवाज़ा बंद कर देने से ही आग को रोका जा सकता है। लेकिन ज़रा ही देर में फिर खबर आई कि अस्पताल में आग लगी।

"तो ? अब क्या होगा ? ओ कैलाश, परमेश, ऐ दीनू···"

जिसे है, चिंता उसीको है। जिसे नहीं है, उसे कोई चिंता नहीं। बिहारी पाल की अवस्था अब और भी अच्छी हो गई थी। लड़का नहीं, कोई लड़की नहीं—सिर्फ बूढ़ा और बूढ़ी। अस्पताल उनके घर के सामने ही है। चौधरियों का उतना बड़ा मकान ही अब अस्पताल हो गया। कभी यह घर कितना जमा-जमाया था। और, अस्पताल बन जाने के बाद से तो और भी गुलजार हो गया था।

दुकान बंद करके कैलाश ने कहा, "जरा मैं भी अपने घर हो लूं पाल बाबू, मेरे घर का छप्पर तो फूस का है।"

फूस का छप्पर तो गैर गमी का है। जब पक्के का घर ही जल सकता है तो फूस के छप्पर के लिए मिनट-भर ही बहुत है।

भेंडर लोग अपनी सानी टोकरियां लिए ही भाग रहे थे। परमेश मौलिक से भी अब वहां खड़ा रहते न बना। आग की लपटें कि घर को मुड़ जाएंगी, पता नहीं जा सकता। जब तक दिन था, फिर भी आंखों से इधर-उधर नजर आ रहा था। लेकिन अंधेरा उतर आते ही सब धुंधला हो गया। आग की दहकती लपटों से पास का आदमी भी बीभत्स-सा लगने लगा, देखकर डर हो आता।

डाक्टर साहब तब तक साइकिल लेकर निकल चुके थे।

बिहारी पाल ने उनको दूर से ही पहचान लिया। जोर से आवाज दी, "ऐ डाक्टर साहब, कहां चले ?"

डाक्टर शहर का था। पैसा कमाने के लिए उसने यहां नौकरी कर ली थी। परिवार शहर में ही था। रोज साइकिल से आया-जाया करते थे। अभी देखा कि विपत्ति सिर पर है, तो साइकिल से शहर की ओर चल पड़ा। बोला, "आप लोग भी भाग जाइए पाल बाबू, बचना चाहते हों तो भाग जाइए···"

बिहारी पाल ने कहा, "मेरा तो घर यहीं है डाक्टर साहब, मैं कहां भागूं ?"

मगर यह सुनता कौन है और उत्तर ही कौन देता है ! या कि डाक्टर साहब ने कोई उत्तर दिया हो, पर किसीके कानों नहीं पहुंचा। केवल डाक्टर साहब ही नहीं, स्कूल-कालेज के शिक्षक भी बाहर निकल पड़े थे।

बिहारी पाल ने उनमें से एक को पहचाना। पुकारकर कहा, "ऐ तारक, तारक ! आग किसने लगाई ?"

तारक स्कूल में जितना नहीं पढ़ाता है, उससे ज्यादा लड़कों को पढ़ाया करता है। एक दर बांध दी है, पास कराने के सौ रुपये। उसके कोचिंग स्कूल में जो पढ़ेगा, वही पास।

वह भी भाग रहा था। दौड़ते हुए बोला, "नक्सल—"

"नक्सल माने ?"

माने नहीं बताया जा सका। तारक मास्टर तब तक ओझल हो चुका था। इस तारक मास्टर ने कोचिंग चलाकर अस्सी बीघा जमीन, बीवी के लिए पचास तोले सोने का गहना और नवाबगंज में दो मंजिला मकान बनवा

लिया था।

लेकिन उधर से कौन लोग तो दौड़ते हुए आ रहे थे। रात के अंधेरे में उनकी गतिविधि छाया-मूर्तियों-सी लग रही थीं। उधर से इधर को आते और इधर से उधर जाते। विहारी पाल कभी मकान के भीतर जाता और कभी वाहर आता। कहीं पाट की आढ़त में आग लग गई तो क्या होगा!

विहारी पाल की पत्नी आंखों से ठीक देख नहीं पाती। वह करीब आकर बोली, "अजी ओ, खड़े-खड़े देख क्या रहे हो? जल मरना है क्या?"

विहारी पाल ने कहा, "आढ़त में दस हजार रुपये का पाट है, उसका क्या होगा?"

स्त्री ने कहा, "पहले पाट कि पहले ज़िन्दगी?"

विहारी पाल ने कहा, "तो चलो—"

"हां, चलो। कौन जानता था कि सदा हम लोगों की यह गत करेगा! किसने जो उसे यहां स्कूल-कालेज—अस्पताल खोलने को कहा था, क्या जानें! मैं उसी समय समझती थी कि उसने काम यह अच्छा नहीं किया—इलाके के लोगों की भलाई करने के लिए उसे सिर की कसम किसने दी थी?"

"भागिए, भाग जाइए—सी० आर० पी० आ रही है, सी० आर० पी० आ रही है—"

कहते-कहते जाने कौन लोग तो तीर की तरह अंधेरे में गायब हो गए। यहां से बीस कोस दूर, जव ज़िलाधिकारी के पास खवर पहुंची, तव तक नवाव-गंज का जो सत्यानाश होना था, वह हो चुका था। उनके सिनेमा से लौटने के पहले ही उनकी कई वार खोज की जा चुकी थी। किसीको पता नहीं था कि वह कहां गए हैं। एस० पी० ने वहुत वार टेलीफोन किया।

"नवावगंज? यह कहां है?"

एस० पी० ने कहा, "वह यहां से बीस कोस दूर है। कलकत्ता से और भी पुलिस फोर्स मंगाने की ज़रूरत है।"

उसी समय कलकत्ता टेलीफोन किया गया। मुख्यमन्त्री मिस्टर सेन काम-काज चुकाकर राइटर्स विल्डिंग्स से उठ पड़े थे। पी० ए० ने फोन पकड़ा। पी० ए० ने कहा, "अभी तो वह वाहर जा रहे हैं, कल दिन में रिंग कीजिएगा—"

मजिस्ट्रेट ने कहा, "काम वड़ा अर्जेंट है। फौरन नवावगंज के लिए सी० आर० पी० को भेजना है। सारा नवावगंज जल रहा है।"

आखिर मिस्टर सेन ने फोन पकड़ा। बोले, "एकाएक वहां आग लगाने की क्या वजह हो गई?"

मजिस्ट्रेट ने कहा, "वह मैं खुद जाकर इनवेस्टिगेट करता हूं। उससे पहले मुझे फौरन सी० आर० पी० फोर्स चाहिए। यहां की पुलिस भेजी गई है, लेकिन लगता है कि उनसे कुछ हो नहीं सकेगा।"

मिस्टर सेन ने कहा, "अच्छा, मैं आर्डर दे देता हूं। रात चाहे जितनी भी हो, आप मुझे रात में ही सूचना दीजिए—"

मिस्टर सेन ने टेलीफोन रख दिया। उसके बाद पी० ए० से कहा, "मैं जरा थिएटर रोड जा रहा हूं। मिसेज बनर्जी के यहां। टेलीफोन आ जाए तो आप मुझे वहीं रिंग कीजिएगा—"

इतना कहकर मिस्टर सेन चले गए।

मिस्टर सेन जब मिसेज बनर्जी के यहां थिएटर रोड के मकान में पहुंचे तो तब तक वहां बहुत लोग पहुंच चुके थे। उपलक्ष्य चाहे जो भी हो, असली बात थी सामाजिक मिलना-जुलना। और ऐसे ही मिलने-जुलने में उच्चाकांक्षी लोग अपनी मंजिल की ओर बढ़ जाते हैं। इसी उपाय से इस शहर के और भी बहुतेरे लोग क्षमता के ऊंचे स्वर्ग पर पहुंचकर चिरस्मरणीय हो चुके हैं। इसी तरह से उस जमाने में कोई राय साहब बना, कोई राय बहादुर बना। एक बार फिर यह सब हो जाए तो वंशानुक्रम से आपके उत्तराधिकारियों तक वह नियामत पहुंच जाएगी। ब्रिटिश का वह अमल जरूर नहीं रहा। न रहे, उससे कोई नुकसान भी नहीं हुआ। हम लोगों ने अपने लिए आदमी के उस स्तर-विभाग को अभी तक बरकरार रखा है। गणतन्त्र के उपासक होने के बावजूद हमने आदमी आदमी के वैषम्य को नकारा नहीं है। राय साहब, राय बहादुर के बदले हमने पद्मश्री-पद्म भूषण का प्रवर्तन किया है। पर विषमता के इस घेरे को फांदकर सबसे ऊपर उठना क्या आसान है? इसीलिए तो मैंने यहां मकान बनवाया है, थिएटर रोड में। जिससे आप मुझे अपने स्तर पर प्रोन्नत करें। इसीलिए तो नैहाटी के मध्यवित्त परिवेश को छोड़कर हम यहां चले आए। यहां नहीं आने से आप ही क्या हमारी पार्टी में आते? फिर तो टालीगंज, यादवपुर, श्याम बाजार, बाग बाजार जैसी जगहों के साधारण लोग भी अपने बच्चों के जन्म दिन की पार्टी में आपको निमन्त्रित करते। फिर?

माला बोस तब से है। सच पूछिए तो नयनतारा के उत्थान के इतिहास के शुरू से ही। वह भी आज आई है। कभी एक ही दफ्तर में अगल-बगल बैठकर दोनों ने नौकरी की है। नयनतारा जबसे इस मुहल्ले में आई, तभी से आना-जाना है। मकान बनाते वक्त भी बहुत बार यहां आई है। मकान के प्लान से लेकर गृह-प्रवेश और उसके बाद नयन-दी का लड़का होना—सब उसने देखा है। यहां जब-जब भी पार्टी हुई, नयनतारा ने माला को न्योता दिया है। और माला भी हर बार आई है, उसने कोई रवीन्द्र-संगीत गाकर सुनाया है। शहर के गणमान्य लोगों से परिचय करने का माला को बड़ा शौक है। एक-एक जाने-माने व्यक्ति से उसका परिचय हुआ है और वह कृतार्थ हो गई है। सबसे ज्यादा लोभ उसे मिनिस्टरों से परिचय करने का है।

"तू कोई गीत गा बहना!"

"गीत?"

माला गाती तो है, पर आज जैसी बड़ी पार्टी में गाना क्या आसान काम

ने कहा था, "नहीं। इस बार एवसी के बहुत-से लोग आ
है। मिस्टर हेंडरसन आ रहे हैं, मिस्टर नोवीकोव आ रहे

टर सेन···"
न कौन ?"
ख्यमन्त्री।"
रही हो ?"
, झूठ कह रही हूं ? सभी श्रीमतियों के साथ आएंगे···देख
र भी काकटेल है। इस वार भी अच्छी ड्रिंक्स का इंतज़ाम

हा, "मैं वह सव नहीं पिऊंगी नयन-दी, मेरा सिर चकराता है।"
ने कहा था, "शुरू-शुरू में सवको वैसा ही होता है, दो-चार
वाद देखना, कितना अच्छा लगता है।"
व लोग देख जो लेंगे।"
ं देखेगा। मैं तो कोल्ड ड्रिंक के साथ थोड़ी-थोड़ी जिन मिलाकर
झेंगे, तू कोल्ड ड्रिंक पी रही है···"
की पार्टी में सदा ऐसा ही होता है। औरतें साफ्ट ड्रिंक लेती
सी जिन मिलाई हुई होती है। पार्टी खत्म होने के वाद घर
आराम से सोती हैं। तव लगता है कि कल की शाम वड़े आनन्द

दिन भी आई थी। उसके पति मिस्टर वोस भी आए थे।
वी० आई० पी० यहां आएंगे, यह मौका भी भला हाथ से
। इससे उनके वोर्डिंग हाउस की इज्ज़त वढ़ेगी। कलकत्ता शहर
ने से कितनी तरह की मुश्किलें आती हैं, इसका पता है कुछ।
इन परिचयों से वहुत सुविधा हासिल की जा सकती है।
मिस्टर सेन आ पहुंचे। वेस्ट वंगाल के चीफ मिनिस्टर। उनके
ही हाथ जोड़कर नमस्कार करने का नाटक शुरू हो गया।
र वैरा-वावर्ची और अन्त में मकान मालिक तक।
-नमस्कार-नमस्कार···"
र्जी विलकुल दुतल्ले के हाल में थी। तव तक माला वोस ने
दिया था। गला ऐसा कांपने लगा कि वेहोश हो जाने की
ाए, वह यही ठीक नहीं कर पा रही थी। नयनतारा ने कहा,
ी गा न···"

"रवीन्द्र संगीत गाऊं? कल एक नया रवीन्द्र संगीत सीखा है मदन-दी···"

"ठीक है, ठीक है, वही गा। रवीन्द्र संगीत तो साहब लोग सब पसन्द करते हैं। टैगोर सांग यह दो, सात सुन साफ। गा, शुरू हो जा···"

हारमोनियम वह अपने घर से ही ले आई थी। गाने की वैसी आदत तो नहीं। फिर भी जब-तब पों-पों करती रही है।

माला गाने लगी :

"ओ बेदरदी, और तीर भी हैं क्या तरकश में।"

माला के पति को कैसा तो लगने लगा। माला ने आखिर यह क्या गाना शुरू कर दिया। मिसेज बनर्जी पास खड़ी थीं। उसने उन्हीं से कहा, "माला ने यह क्या शुरू कर दिया? आज आपके बच्चे का जन्म दिन है, खुशी का दिन है, आप उसे दूसरा कोई गीत गाने को कहिए मिसेज बनर्जी···"

मिसेज बनर्जी ने कहा, "हुआ ही क्या है मिस्टर बोस! यह भी टैगोर सांग है···"

माला आंखें बंद किए गा रही थी :

"ओ बेदरदी, और तीर भी हैं क्या तरकश में।
ताक हृदय को मारोगे मेरे अंतस में।"

मिस्टर और मिसेज हैंडरसन गायिका की ओर देखते हुए गीत सुन रहे थे। दोनों ही के हाथ में गिलास थे। मिसेज बनर्जी की नजर उधर पड़ गई। देखा, गिलास खाली हैं। वह फौरन गई और बैरे से लेकर उन्हें दो भरे गिलास दिए।

मिसेज हैंडरसन ने हंसकर गिलास को लिया। बोली, "टैगोर सांग है?"

"जी। कैसा लग रहा है?"

"वेरी गुड।"

कहकर वह फिर गायिका को देखती हुई गीत सुनने लगी।

उत्साह पाकर माला गाती जा रही थी :

"मैं भागी रहती, मूदे आंखें
आंचल से अपना मुंह ढांके।"

"अरे, आपका गिलास खाली क्यों मिसेज नोवीकोव? और एक गिलास लीजिए—"

मिस्टर और मिसेज नोवीकोव, दोनों ने फिर गिलास लिए। दोनों ही ध्यान से गीत सुन रहे थे। नयनतारा को सबकी तरफ निगाह रखनी पड़ रही थी। मिस्टर बनर्जी आज के आयोजन के होस्ट थे। उनकी भी नजर सब तरफ थी। मिस्टर और मिसेज सामन्त भी आए थे। कल ही रात जो इस घर से वह रुपये ले गए, उसका चिह्न मात्र भी उनके चेहरे पर नहीं था। गाने का बड़ा लुत्फ ले रहे थे।

हठात् मिस्टर और मिसेज सेन के हाल में आते ही मिसेज बनर्जी आगे बढ़ गई। बोली, "नमस्कार, नमस्कार! इतनी देर हो गई?"

एंवेसेडर लोग भी अपनी पत्नी सहित आगे वढ़ आए। सबकी नज़र उस समय उन्हीं दोनों पर थी। अभी तक गीत सुनने में उनकी तन्मयता में कोई कमी नहीं थी, पर सेन साहव के आते ही वह ध्यान मिट्टी में मिल गया।

सबके मुंह पर एक ही सवाल, "इतनी देर हो गई ?"

मिस्टर सेन ने सबको एक ही जवाव दिया, "एक ज़रूरी ट्रंक काल आ गया।"

ट्रंक काल। मिसेज़ वनर्जी एक वैरे को साथ ही ले आईं। उसके आगे ट्रे। एक ट्रे में कतार से सजा हुआ गिलास। दूसरे की ट्रे में स्नैक्स।

"लीजिए मिसेज़ सेन, लीजिए—"

मिस्टर सामन्त नज़दीक आए। उन्हें देखते ही मिस्टर सेन ज़रा वगल में जा खड़े हुए। आवाज धीमी करके वोले, "नदिया के ज़िलाधिकारी ने अभी टेलीफोन किया—"

इसके वाद दोनों में जाने क्या वातें हुईं। वह सव कोई सुन नहीं पाया। मगर ज्यादा देर नहीं। उधर मिसेज़ वनर्जी की व्यस्तता और वढ़ गई थी। कभी इनके पास जाती, कभी उनके पास जाकर खड़ी होती। हर ओर निगाह रखनी थी। उसके घर में आज जो इतने अतिथि, इतने गण्यमान्य व्यक्ति आए थे—यह मिसेज़ वनर्जी के वहुत दिनों के कला-कौशल का फल था। पूरे पन्द्रह वर्षों की अथक साधना से सम्मान के इस शिखर पर पहुंची है वह। किसी समय वहुत-वहुत लांछना, वहुत-वहुत वेइज्ज़ती उसे सिर झुकाकर सहनी पड़ी थी। नवावगंज में अपनी ससुराल में अपमान की हद नहीं थी। आज, इतने दिनों के वाद वह उसका वदला चुका सकी है, यह क्या कुछ कम गर्व की वात है ! उस समय की सारी लानत-मलामत को इस काकटेल के प्रलेप से वह पोंछ पाई, यही क्या कम है ! आज उसे देखकर यह कौन कह सकता है कि यही उस दिन की वह वेवस नयनतारा है ! एक दिन अपनी ससुराल के सारे प्रतिवादों को ठुकराकर वह घरवालों के सामने से सिर ऊंचा करके चली आई थी—उस दिन किसीने यह सोचा भी था कि इतने दिनों के वाद वही मिसेज़ वनर्जी वनकर अपने थिएटर रोड के मकान में वह काकटेल पार्टी दे सकेगी। आज के इन गण्यमान्य अतिथियों ने उस दिन की नयनतारा को नहीं देखा था। देखा भी होता तो पहचान नहीं पाते। या जो नयनतारा चप्पल पहनकर नैहाटी से डेली पैसेंजरी किया करती थी, आज उस नयनतारा को भी तो कोई नहीं पहचान सकेगा। लेकिन यह भी तो कुछ एक दिन में नहीं हुआ है। यहां आने पर ही उसे क्या कुछ कम अध्यवसाय करना पड़ा है। इसके लिए उसे कितना अपव्यय करना पड़ा है, कितनी खुशामद करनी पड़ी है, यह कोई नहीं जानता और चूंकि नहीं जानता है, इसीलिए उसकी वैसी कृच्छ्र साधना आज सार्थक हुई, प्रतारणा सुन्दर हुई। कलकत्ता के अभिजात समाज में मिसेज़ वनर्जी की आज इसीलिए इतनी इज्जत है।

माला वोस घुमा-फिराकर गीत की कड़ियां दुहरा रही थी :

"मैं भागी रहती, मूंदे आंखें,
आंचल से अपना मुंह ढांके
कहीं लगे आघात अचानक इसमें
ओ बेदरदी और तीर भी है क्या तरकस में।"

मानदा मौसी मिसेज बनर्जी के पास आई। बोली, "दीदी आपको कोई बुला रहा है—"

"मुझे? बुला रहा है? कौन बुला रहा है? कहां?"

"अब्दुल ने अभी कहा—"

"कहां है अब्दुल? उसे मेरे पास बुला लाओ तो।"

मानदा मौसी के कहते ही अब्दुल ने आकर कहा, "मधु कह रहा था, मेम साहब को कोई बुला रहा है—"

"मुझे बुला रहा है? कौन है? नाम क्या है उसका? मुझको किसलिए बुला रहा है? तू मधु को मेरे पास भेज दे—"

तब तक मिसेज बनर्जी दूसरी तरफ लपकी। मिसेज सामन्त अकेली खड़ी थी। अकेले रहना ठीक नहीं। वह मिसेज सामन्त के पास जाकर बोली, "अकेली क्यों खड़ी हैं? आइए, आइए···"

खींचकर वह उसे औरतों की तरफ ले गई। ले जाकर सबसे परिचय करा दिया। ये हैं मिसेज सामन्त और ये हैं मिसेज सिन्हा, दीक्षित, और ये हैं···"

उसके बाद बगल की ओर देखकर बोली, "अरे मिस्टर सामन्त, आपको सब कुछ ठीक से मिल रहा है न? टिकिया कबाब लिया?"

"हां, लिया। बड़ा लजीज बना है।"

"प्लीज, जरूरत हो तो मांग लीजिएगा। अकेली मैं सब तरफ देख नहीं पा रही हूं—"

उधर उस तरफ से सदानन्द सीढ़ी से ऊपर आया। साथ-साथ हजारी बेसीक। उसी सीढ़ी से कोई-कोई नीचे उतर रहा था। सभी व्यस्त। किसीको किसीकी तरफ देखने की फुरसत नहीं। बेहिसाब लोग आए हैं, उनके अनुचर भी अनगिनती। अनुचरों को अवश्य रास्ते पर गाड़ी में ही रहना था। पर किसी-किसीको अन्दर आने की भी जरूरत थी। वैसे ही किसी एक को सदानन्द ने बुलाया। कहा, "क्यों भैया जरा बनर्जी साहब की मेम साहब को बुला दोगे?"

"मेम साहब को?"

सदानन्द ने कहा, "हां मेम साहब को।"

उस आदमी ने कहा, "आप ऊपर जाकर मधु से कहिए—"

मधु। यह फिर कौन? लेकिन बैरे को उस समय यह सब सुनने की फुरसत नहीं थी। वह सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

ऊपर और भी अनेक अनचीन्हे लोग आ-जा रहे थे। सदानन्द चारों तरफ नजर दौड़ाने लगा। नयनतारा के घर के साज-संजाम कैसे हैं! सदानन्द ने जिन्दगी में ऐसा सजा-सजाया घर नहीं देखा। नयनतारा के नैहाटी वाले किराए के

मकान की भी याद आई। वह घर और यह घर। इसका फर्श कैसा ! दीवालें कैसी ! और यह रोशनी !

सदानन्द ने एक दूसरे आदमी को पकड़ा। बोला, "सुनो भैया, जरा अपनी मेम साहब को बुला दे सकोगे ?"

"मेम साहब को ? अच्छा, बुला देता हूं..."

"तुम्हारा नाम क्या मधु है ?"

बैरे ने कहा, "मैं मधु को बुलाए देता हूं..."

और वह पलक मारते ही कहां गायब हो गया। सदानन्द समझ गया, इस घर का हर कोई आज व्यस्त है। नयनतारा के लड़के का जन्म दिन है। वह भी बच्चे को आशीर्वाद कर जाएगा। इतने-इतने लोग बच्चे को आशीर्वाद करने आए हैं, वही क्यों बाकी रह जाए ?

लेकिन कहां, किसीने मेम साहब को खबर नहीं दी। ठीक ही तो, खबर भी दे तो क्या ! नयनतारा भी तो उतनी ही व्यस्त है। उसने आज इतने लोगों को आमंत्रित किया है। उसे तो पहले उन्हीं लोगों का ख्याल रखना है। सदानन्द तो आज यहां अनाहूत है। वह तो आज यहां अनावश्यक है।

बरामदे को पार करके ज़रा उत्तर की ओर जाते ही बहुतेरों के गले की आवाज़ सुनाई पड़ी। किसी औरत के गले का गीत सुनाई पड़ा। गीत के शब्द कुछ-कुछ कानों में आने लगे :

"मैं भागी रहती मूंदे आंखें,
आंचल से अपना मुंह ढांके
कहीं लगे आघात अचानक इसमें।"

सामने ही एक बहुत बड़ा हाल। लोगों की भीड़ वहीं थी। सदानन्द धीरे-धीरे एक खिड़की के पास जाकर खड़ा। खिड़की का कांच बंद, पर सदानन्द ने कांच से झांककर अन्दर देखा। उफ्, इतने आदमी ! सबके हाथों में गिलास। क्या तो पी रहे हैं लोग। रह-रहकर लोग गिलास से घूंट ले रहे हैं। शराब ही होगी। न भी हो शायद। कि नयनतारा पर नज़र पड़ गई। बड़े दिनों के बाद उसे देखा। पन्द्रह वर्षों के बाद। मगर कहां, पन्द्रह साल के लम्बे अरसे में नयनतारा तो ज़रा भी नहीं बदली है। उम्र जैसे और कुछ कम ही हो गई है। और बनी-ठनी कितनी है ! हिलती-डोलती हैं, घूम-घूमकर सबसे बात कर रही है, कंधे पर से साड़ी का आंचल खिसक पड़ता है। साड़ी ही क्यों, अपने आपको भी मानो नहीं संभाल पा रही है वह। तो क्या नयनतारा ने भी लोगों की तरह शराब पी है।

तब तक वही मानदा मौसी दीख गई। जिसे उसने मोटर से यहां आते देखा था। उसी मानदा मौसी ने जाकर नयनतारा से जाने क्या कहा ! सुनकर नयनतारा उलटकर खड़ी हो गई। बोली, "मुझे बुला रहा है ? कौन ? कहां ?"

"अब्दुल ने कहा—"

"कहां है अब्दुल ? बुलाओ तो उसे—"

लेकिन एक जगह खड़ी रहकर ज्यादा बोलने का वक्त भी था नयनतारा

को ? बोलते-ही-बोलते दूसरी तरफ चली गई। सदानन्द की नजर एकाएक समरजित बाबू के लड़के सुशील सामन्त पर पड़ गई। वही, जिसे महेश बड़े भैया जी कहता था। और, उसीके उस तरफ एक छोटी-सी वेदी पर बैठकर एक महिला गा रही थी :

"चोटों से डरती हूं इसीलिए तो
जल-जल उठता हृदय हमारा यह जो"

निखिलेश दौड़ता हुआ मिस्टर सेन के पास पहुंचा।

"आपका टेलीफोन है सर !"

"टेलीफोन !"

मिस्टर सेन के चेहरे के भाव से ही समझ में आया कि वह मानो इस टेलीफोन का ही इंतजार कर रहे थे। नदिया के जिलाधिकारी ने सूचना देने को कहा था। अब तक सी० आर० पी० के लोग वहां जरूर भेज दिए गए होंगे। मिस्टर सेन ने कलाई की घड़ी को देखा। जाने में देर भी कितनी लगेगी। बहुत ज्यादा तो दो घंटा।

"हैलो।"

उधर नवाबगंज का आसमान आग की लपलपाती लपटों से लाल हो उठा था। लोकल पुलिस गई थी, पर वह कुछ कर नहीं सकी, लौट आई। निताई हालदार की दुकान का कुछ भी सामान निकाला नहीं जा सका। किसी दिन उस दूकान के चौंतरे पर बैठकर लोगों ने कितना अड्डा मारा था। आज आग की लपटों से भड़भड़ाकर वह भी बैठ गया। भड़भड़ाहट की वह आवाज सुनकर कौन लोग तो हो-हो करके हंस उठे। जैसे उन्हें इसकी बड़ी खुशी हुई। गांव के लोगों की ऐसी तबाही हो तो इतनी खुशी किन्हें ? कौन हैं ये लोग ? कौन लोग इतना हंस रहे हैं ? इतने बड़े सर्वनाश के ऊपर उठकर किन लोगों के उल्लास की यह ध्वनि सारे आकाश को उच्चकित कर रही है ? कौन हैं ये ? कौन ?

अंधकार की ओट लिए जो लोग अब तक दौड़-धूप कर रहे थे, रात ज्यादा बढ़ते ही उन्होंने छाती फुलाकर सबके सामने हरकत शुरू कर दी। आज तक हम लोग बहुत बरदाश्त करते रहे। कभी बूढ़े मालिक के डर के मारे हम लोग सिर नहीं उठा सकते थे। महज एक बात पर हम घर-द्वार, खेत-खलिहान सब छोड़-छोड़कर दर-दर मारे फिरे, फांसी लगाई, पागल होकर रास्तों में ठोकरें खाते फिरे। बंशी ढाली की कुल्हाड़ी हमारे माथे पर पड़ी। हम लोग मुंह सीकर सहते रहे। अब पासा पलट गया है। अब हम जी उठे हैं। जिस गांव में एक दिन किसीने भी हमारे लिए जरा भी हमदर्दी नहीं दिखाई, हमारे आंसू से किसीका कलेजा नहीं पिघला, बूढ़े मालिक के अत्याचार पर कानी उंगली उठाकर भी किसीने विरोध नहीं किया, आज उसी गांव के लोगों को किए का सूद समेत बदला सिर-आंखों उठाना होगा। इसी गांव में नहीं, इसके पास के गांव में, उसके पास के पास के गांव में, उसके बाद सारे बंगाल से बाहर सारी दुनिया में हम अपने उन बूढ़े मालिकों के

पाल बहुत डर गया। "कौन हो जी तुम लोग ? कौन, कौन दौड़ते हुए जा रहे हो ?"

वे लोग रुक गए। उनकी शक्ल देखते ही विहारी पाल का दिमाग चकरा गया। विहारी पाल को लगा, मानो कपिल पायरापोड़ा उसके सामने खड़ा दांत निपोरकर हंस रहा है।

"कपिल ? तू है ?"

जाने दूसरा कौन तो बगल से और भी ज़ोर से हंस उठा। विहारी पाल ने उसकी तरफ देखा कि बोल उठा, "मुझे पहचान रहे हैं पाल बाबू ?"

"कौन है तू ?"

"मैं माणिक घोष हूं। और मेरे पास यह इसे जो देख रहे हैं, यह है फटिक नाई..."

विहारी पाल का सिर घूम गया। वह वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा।

काकटेल ने हाल में तब तक लोगों को नशे से और भी चूर कर दिया था। अब शायद नयनतारा को जरा फ़ुरसत मिली। निहायत ही मामूली-सी फ़ुरसत। इसी मौके से जो कहना हो, कह लो। बेकार के लोगों से बात करने की मुझे फ़ुरसत नहीं है।

"कहां ? कौन बुला रहा है मुझे ? कौन है ?"

मधु ने कहा, "जी ये हैं—"

हाल की उस दमकती रोशनी से बाहर आने पर शुरू में जरा कैसा तो लगा था। उसके बाद सामने खड़े आदमी की कांटेदार मूंछ-दाढ़ी से भरा चेहरा देखकर नयनतारा अवाक् रह गई। यह आदमी उसे क्यों मिलना चाह रहा है ? डेकोरेटर का आदमी है क्या ? रुपया मांगने आया है ?

नयनतारा उसके पास जाकर बोली, "अभी कोई भुगतान नहीं होगा। पैसों के लिए अभी क्यों आए ?"

बोली और तुरन्त ही मानो वह अपनी गलती समझ गई। बोली, "अरे, तुम।"

सदानन्द ने कहा, "हां, मैं। आ गया फिर—"

"लेकिन—"

सदानन्द ने कहा, "तुम बहुत व्यस्त हो—"

नयनतारा ने कहा, "हां। मेरे प्रथम का जन्म दिन है न, इसीलिए—"

"प्रथम ? यानी ?"

"मेरा लड़का।"

मैं फिर भी तुम्हारे बच्चे को आशीर्वाद देता हूं। वह सुखी हो—"

सदानन्द और भी कुछ कहने जा रहा था, पर नयनतारा को उधर जल्दी थी। बोली, "आज घर में बहुत सारे लोग आए हैं, मेरे सिवाय इन सबको देखने वाला कोई नहीं है। खैर, तुम किसी और दिन नहीं आ सकते? ठीक आज ही आए?"

सदानन्द ने कहा, "तुमसे एक बात करनी थी···"

नयनतारा ने कहा, "आज ही?"

"हां। इसी वक्त। फिर शायद कभी मौका नहीं मिले। शायद अब कभी हमारी भेंट ही न हो।"

नयनतारा ने कहा, "तो, कल किसी भी वक्त आओ न। जब भी चाहो मैं सब समय यहीं रहूंगी। उस समय अपने पास काफी समय भी रहेगा। एकान्त में अच्छी तरह से बातचीत होगी—"

"नहीं। कल तो मुझे समय नहीं है। यही आज का आना ही मेरा अन्तिम आना है।"

नयनतारा ने कहा, "कल न सही, परसों ही आओ—"

सदानन्द ने कहा, "आज तुम मेरे लिए ज़रा भी समय नहीं दे सकती?"

नयनतारा ने कहा, "मेरी हालत तो अपनी आंखों ही देख रहे हो। चीफ मिनिस्टर आए हैं, एंबेसेडर लोग आए हैं, पुलिस कमिश्नर आए हैं—और भी कितने-कितने लोग आए हैं। सभी गण्यमान्य व्यक्ति हैं। उन सबों की ओर नज़र रखने के लिए तो बस, एक मैं ही हूं—"

सदानन्द ने कहा, "ये सब लोग मुझसे बेशक बड़े आदमी हैं। तुम्हारे लिए तो उन्हींको पहले देखना उचित है—"

नयनतारा ने कहा, "तुम ऐसी बात क्यों कर रहे हो? लगता है, तुम नाराज़ हो गए।"

सदानन्द ने कहा, "नाराज़? मेरे नाराज़ होने से किसीका क्या आता-जाता है? नाराज़गी की बात नहीं, तुम सिर्फ यह बताओ, तुम सुखी हुई हो? क्योंकि सच पूछो तो तुम्हारे सुख के लिए ही मैं एक दिन अपना सर्वस्व तुम्हें दे गया था—"

नयनतारा को कैसी तो ऊब-सी लगने लगी। बोली, "कहा तो, वह सब बात करने का अभी मेरे पास समय नहीं है। मगर तुमने वही बातें शुरू कर दीं। फिर कभी आना न, तब सब कुछ बताऊंगी—"

नयनतारा के आंख-मुंह में खीज झलक आई। जैसे, सदानन्द वहां से चला जाए, तो वह जी जाए। वह मानो आज यहां सदानन्द की मौजूदगी को पसन्द नहीं कर रही थी।

"लेकिन, तुम सुखी हुई या नहीं, इतना भी बताने का वक्त आज तुम्हें नहीं है?

अचानक उपर से मिस्टर सेन आ गए। बातचीत में बाधा पड़ गई। मिस्टर सेन के आते ही नयनतारा के चेहरे पर फिर खुशी की लहर खेल गई।

नयनतारा चौंक उठी। बोली, "अरे, आप अभी ही चले जाएंगे।"

मिस्टर सेन ने कहा, "टेलीफोन पर अभी-अभी बात हुई। नदिया ज़िले में बड़ी गड़बड़ी मच गई है···गोली चल गई है, काफी लोग हताहत हुए, मुझे अभी तुरन्त फिर रायटर्स विल्डिंग्स जाना होगा···"

"नदिया ज़िले में? कहां?"

"बताया न, नवाबगंज में। वह वावैला वहां से आसपास के गांवों में भी फैल गया है सुना—"

सदानन्द अब तक चुप था। अब उससे रहा नहीं गया। बोला, "नवाबगंज में?"

इतनी देर के बाद चीफ मिनिस्टर ने उसकी ओर देखा। पहले मानों उन्होंने उसे देखा ही नहीं था। चेहरे पर कांटों-सी मूंछ दाढ़ी—कौन है यह?

सदानन्द ने कहा, "नवाबगंज के नरनारायण चौधरी को आप लोगों ने गिरफ्तार किया? वहां के वही सबसे बड़े गुनहगार हैं।"

मिस्टर सेन अवाक् रह गए। यह आदमी कह क्या रहा है?

"जी हां। उसी नरनारायण चौधरी के चलते ही वहां आज इतनी गड़बड़ी है। वहां के कपिल पायरापोड़ा ने उन्हींकी वजह से फांसी लगा ली थी। पागल हो गया था, माणिक घोष। उन्हींके चलते फटिक नाई राह का भिखारी बन गया था। आप लोगों ने उनको पकड़ा?"

चीफ मिनिस्टर और भी हैरान रह गए। उन्होंने सदानन्द से कुछ न कहकर मिसेज़ बनर्जी से पूछा, "यह आदमी कौन है?"

मिसेज बनर्जी ने कहा, "वह कोई नहीं है। आप उधर चलिए···"

और वह मिस्टर सेन को लेकर हाल की ओर जाने लगी। लेकिन ज़रा ही दूर जा पाए थे कि पीछे से अचानक एक तीखा आर्तनाद सुनाई पड़ा। जैसे कोई अमानुषिक पीड़ा से छत-तोड़ने जैसा चीत्कार कर उठा।

दोनों ने ही पीछे पलटकर ताका। पलटकर जो देखा, तो दोनों ही चौंक उठे। देखा, वह आदमी एक तेज़ उस्तरे से पागल की नाईं बगल के एक आदमी को चीरे डाल रहा है। और उस आदमी की चीख से सारा घर भी जैसे आर्तनाद कर रहा है।

चीख सुनकर हाल के सभी लोग दौड़े आए। क्या हुआ? कौन इस तरह से चीख उठा? आज तो मिसेज़ बनर्जी के बेटे का जन्म दिन है। ऐसे शुभ दिन में ऐसी रुलाई क्यों? चीख क्यों? आर्तनाद क्यों? मिस्टर और मिसेज़ हैंडरसन, मिस्टर और मिसेज नोवीकोव, मिस्टर और मिसेज़ सामन्त, मानदा मौसी, माला बोस—सबके सब दौड़ते हुए आ पहुंचे। क्या हो गया? क्या हुआ वहां?

सारा बरामदा भीड़ से खचाखच भर गया। सबने देखा, वह जगह लहू से सराबोर हो गई है। मैला कुरता वाला एक आदमी हाथ में उस्तरा लिए खड़ा है। चेहरे पर कांटों जैसी दाढ़ी-मूंछ। उस्तरा लहू से रंगा हुआ। पास ही में

फर्श पर मरता हुआ-सा पड़ा एक आदमी ।

मिस्टर सेन ने उस आदमी का हाथ पकड़ लिया । सभी आवेश में आ गए । मिस्टर बनर्जी तो यह दृश्य देखकर अवाक् । उसने मानो उस आदमी को पहचाना ।

मिस्टर सामन्त के नजदीक आते ही मिस्टर सेन ने उसका हाथ छोड़ दिया ।

"तुमने इस आदमी का खून किया ?"

सदानन्द ने फिर आंखों सामन्त के चेहरे की तरफ देखा । कहा, "हां ।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

सदानन्द ने कहा, "नाम बताने से आप मुझे नहीं पहचानेंगे ।"

"फिर भी अपना नाम बताओ ।"

"मेरा नाम सदानन्द चौधरी है ।"

"कहां रहते हो ? घर कहां है तुम्हारा ?"

"नवाबगंज ।"

"नवाबगंज ? नदिया जिले का नवाबगंज ? तुम्हारे पिता का नाम ?"

"हरनारायण चौधरी ।"

"और यह कौन है ?"

सदानन्द ने कहा, "इसका नाम भी सदानन्द चौधरी है ।"

"एं ! तुम दोनों का एक ही नाम है ?"

सदानन्द ने कहा, "हां । यह और मैं एक ही हूं । यह मेरी छाया है । यह सारी जिन्दगी मेरे साथ घूमता रहा, मुझे जीवन-भर जलाता रहा । मेरे विवेक की भांति जीवन-भर यह मुझे पीड़ा ही देता आया । मैं उसके साथ ही आज यहां आया । यही मुझे यहां ले आया । यह मुझे यहां नहीं ले आता तो अपनी नजरों से मुझे यह सब नहीं देखना पड़ता । आज तक मैं मजे में था, मुझे कोई तकलीफ ही नहीं थी । लेकिन उसने मुझे यह सब क्यों दिखाई ? नहीं दिखाता तो मैं तो कुछ भी नहीं जान पाता । मैं तो बल्कि यही जानता कि नवाबगंज में लोग सुख से रह रहे हैं । उन्हें अस्पताल से दवा मिल रही है, स्कूल-कालेज में पढ़कर लोग इन्सान बन रहे हैं । मुझे जरा भी खबर नहीं होती कि मिन्टो रोड में नयनतारा के लड़के के जन्म दिन पर इस कदर शराब का फव्वारा छूट रहा है, मैं यह भी नहीं जानता कि मेरे ही पैसों से ग्रीन पार्क में ऊंची कीमत पर औरतों का मांस बिक रहा है…"

बोलते-बोलते उसकी सांस जैसे बन्द हो आई । वह हांफने लगा ।

थोड़ा दम लेकर वह फिर कहने लगा, "आप लोग मुझे गिरफ्तार कर लीजिए । दया करके आप लोग मुझे गिरफ्तार कर लीजिए । मैं स्वयं कबूल करता हूं कि मैंने उसका खून किया है । मैं कबूल करता हूं कि मैं मुजरिम हूं ।"

मिस्टर सामन्त सदानन्द का हाथ जोर से पकड़े ही हुए थे । कहा, "लेकिन तुम यहां आए ही क्यों ? मिसेज बनर्जी के यहां तुम किसलिए आए ? यहां

क्या काम था तुम्हें ? किसने तुम्हें यहां आने को कहा था ?"

सदानन्द ने कहा, "यह बात आप लोग मिसेज़ बनर्जी से ही पूछिए।"

"क्यों मिसेज़ बनर्जी, आप इसे पहचानती हैं।"

तब तक मिस्टर बनर्जी बोल उठे, "नहीं-नहीं मिस्टर सामन्त, हम में से कोई भी इसे नहीं पहचानता। कौन है यह ? यहां क्यों आया ? हमने तो इसे नहीं बुलाया।"

सदानन्द बोल उठा, "जी, ये सच ही कह रहे हैं। इन लोगों में से किसी-ने मुझे नहीं बुलाया है। हम इनके कोई नहीं हैं। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यही आदमी मुझे यहां ले आया था। इसीने लाकर मुझे यहां यह सब रवैया दिखलाया। मैंने इसीलिए इसका खून किया। मैं आपसे विनती करता हूं, आप मुझे गिरफ्तार कीजिए। मैं मुजरिम हूं।"

"लेकिन इस मामूली-से कारण से ही तुमने इसका खून किया ?"

सदानन्द ने कहा, "आप इसे मामूली कारण कहते हैं ? पता है आपको, इस आदमी ने मेरा कितना बड़ा नुकसान किया है ? इसी आदमी ने मुझे यह दिखाया कि सच्चाई पाप है, इसी आदमी ने मेरी आंखों में उंगली गड़ाकर दिखाया कि आदमी पर विश्वास करना पाप है, अन्याय के खिलाफ सिर उठा-कर विद्रोह करना पागलपन है। असल में विश्वास कीजिए, उसीकी बात ठीक है, मैंने ही पाप किया है। आदमी का विश्वास करके मैंने पाप किया है, मनुष्य को प्यार करके मैंने पाप किया है, आदमी पर दया करके मैंने पाप किया है, अब मैं अपने इस पाप का प्रायश्चित करने को तैयार हूं—आप मुझे गिरफ्तार कीजिए, फांसी दीजिए, मैं मुजरिम हूं···"

मिस्टर सामन्त ने पास ही किन लोगों को इशारा किया। वे लोग आकर उसे गिरफ्तार करने लगे। लेकिन उसके पहले ही नयनतारा सदानन्द को ओट करके सामने खड़ी हो गई। उसके बाद दोनों हाथ फैलाकर उसने मिस्टर सामन्त की ओर देख करके कहा, "इन्हें गिरफ्तार मत कीजिए मिस्टर सामन्त !"

सब लोग दंग रह गए। मिसेज़ बनर्जी यह क्या कह रही हैं ?

"आप क्यों रोक रही हैं मिसेज़ बनर्जी ? यह तो एक ऐंटी-सोशल है, भैगाबोंड है—"

नयनतारा ने कहा, "प्लीज मिस्टर सामन्त, इन्हें गिरफ्तार न कीजिए, उनका कोई दोष नहीं है, कोई दोष नहीं है उनका।"

"उनका कोई दोष नहीं है तो फिर किसका दोष है ?"

इस बात का जवाब सदानन्द ने दिया, "सब दोष मेरा है, आप मुझे गिरफ्तार कीजिए, आप मुझे फांसी दीजिए, मैं ही मुजरिम हूं—मैंने आदमी का विश्वास किया था, मैंने आदमी को प्यार किया था, मैंने अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई थी, मैंने लोगों के उपकार के लिए अपना रुपया दूसरे को दान किया था। आज के लोगों की निगाहों में इससे बड़ा पाप दूसरा नहीं। मैंने वही बड़ा पाप किया था···"

बलिपकर नयनतारा को झटकते हुए सदानन्द ने स्वयं ही सामन्त की ओर बढ़ने की कोशिश की।

लेकिन नयनतारा तो भी सबकी ओर ताकती हुई निहोरा-विनती करती चली जा रही थी, "नहीं-नहीं मिस्टर सामन्त, आप इन्हें छोड़ दीजिए, आप लोग चाहें, तो सब कुछ कर सकते हैं। इसके लिए जितना भी रुपया खर्च हो, मैं दूंगी—इन्हें छोड़ देने के लिए मैं अपना सब कुछ देने को तैयार हूं—कहिए, क्या चाहिए आपको? कितना रुपया चाहिए?"

लेकिन उसकी बात अनसुनी करके सदानन्द कहने लगा, "नहीं-नहीं, नयनतारा की कोई भी बात सही नहीं, वह मेरी कोई नहीं, मैं भी नयनतारा का कोई नहीं हूं—मेरा बस एक ही परिचय है, मैं मुजरिम हूं। मैंने आदमी का विश्वास किया था, मैंने आदमी को प्यार किया था, मैंने चाहा था कि मनुष्य का मंगल हो, लेकिन इन पन्द्रह वर्षों में मैंने जाना, मनुष्य को प्यार करना, मनुष्य का भला चाहना, मनुष्य के लिए शुभकामना करना पाप है। मैं इसीलिए आज पापी हूं, मैं इसीलिए आज अपराधी हूं, मैं इसीलिए आज मुजरिम हूं—आप लोग मुझे मेरे पापों की सजा दीजिए, मुझे फांसी दीजिए—"

और नयनतारा को ढकेलकर सदानन्द खुद ही आगे बढ़ गया। पुलिस के लोग पकड़कर रास्ते की ओर ले जाने लगे।

मिस्टर सेन उस समय तक भी अवाक् हो गए थे। बोले, "मिसेज बनर्जी, आप सच-सच तो कहिए, यह कौन है?"

नयनतारा से और सहा नहीं गया। बोल उठी, "उन्हें आप लोग सजा मत दीजिएगा मिस्टर सेन, सजा मत दीजिएगा। आप स्वयं जरा समझाकर कह दीजिए—"

"लेकिन आप सच तो कहिए, यह आपके कौन हैं?"

"वे मेरे पति हैं।"

कहना था कि सारे परिवेश की आबहवा में बिजली-सी कौंध गई।

मिस्टर बनर्जी अब तक कुछ बोल नहीं रहे थे। वह चुप खड़े थे। अब उन्होंने हाथ पकड़कर नयनतारा को खींचना चाहा। बोले, "कर क्या रही हो तुम? पागलपन क्यों कर रही हो?"

लेकिन इसके पहले नयनतारा बेहोश होकर फर्श पर गिर पड़ी। आंसू की बाढ़ में उसके चेहरे का मेकअप-फेस्टर धुल-धुलाकर जाने कहां बह गया। लेकिन तो भी उसके कानों में सदानन्द की बातें गूंजती रहीं—"मैं मुजरिम हूं, मैंने मनुष्य का विश्वास किया था, मैंने मनुष्य को प्यार किया था, मैंने लोगों के लिए शुभकामना की थी—मैंने चाहा था कि लोग सुखी हों, मैंने चाहा था कि मनुष्य का भला हो। लेकिन इन पन्द्रह वर्षों के बाद मैंने जाना कि आदमी का विश्वास करना, आदमी को प्यार करना, मनुष्य का भला चाहना पाप है—मैं इसीलिए आज पापी हूं, मैं इसीलिए आज अपराधी हूं, मैं इसीलिए आज मुजरिम हूं, आप लोग मुझे मेरे पापों की सजा दीजिए, मुझे फांसी दीजिए—"

उस दिन जो लोग भी वहां थे, सबके सब स्तंभित से खड़े थे। परन्तु माला बोस के गाए हुए गीत की वह कड़ी मानो उस समय भी हवा में तैर रही थी :

"ओ बेदरदी, और तीर भी है क्या तरकस में।"

उसके बाद ? मगर उसके बाद भी तो एक उसके बाद रह सकता है। वही उसके बाद की ही कहूं। आज से एक हज़ार नौ सौ तिहत्तर साल पहले तब के मनुष्य की धरती ने जैसे दूसरे एक सदानन्द को समसामयिक समाज से बिलकुल खत्म करके अपने आपको खतरे से खाली समझता था, उसके इतने दिनों के बाद आज के मनुष्य की धरती भी उसके अन्य एक उत्तरसूरी मुजरिम को दंड देकर अपने को खतरे से खाली समझकर निश्चिन्त हो गई। बूढ़े मालिक, छोटे चौधरी, और प्रकाश मामा की दुनिया एक नये भरोसे से फिर से उज्जीवित हो उठी—नवाबगंज के स्कूल-कालेज-अस्पताल में नये सिरे से फिर से अराजकता की बाढ़ बहने लगी। साथ-ही-साथ लाखों-लाख कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष और फटिक नाई की जमात बूढ़े मालिक की दया पर अपने आपको सौंपकर अस्तित्व को कायम रखने की अप्राण चेष्टा से क्षत-विक्षत होने लगी। थिएटर रोड के भवनों में काकटेल पार्टी की महफिल में कलकत्ता के गण्यमान्य व्यक्ति फिर जुटने लगे। एक हज़ार नौ सौ तिहत्तर साल पहले सब कुछ जैसा चल रहा था, इतने दिनों के बाद फिर हूबहू उसी तरह से सब कुछ चलने लगा। लेकिन इन सब कुछ की हाड़ में आकाश-वातास-अंतरिक्ष से उस समय भी एक जने की क्षीण कंठ ध्वनि केवल प्रेम की वाणी सुनती रही। उस वाणी को किसीने शायद ही सुना, शायद ज्यादातर लोगों ने नहीं सुना। परन्तु उस निपीड़ित, लांछित मुजरिम के कहते जाने का कभी विराम नहीं। वह कंठ बोलता ही चला—तुम लोग भले होओ, तुम लोग सुखी होओ, तुम लोग आदमी का विश्वास करो, तुम लोग आदमी को प्यार करो, तुम सबका कल्याण हो, तुम लोगों का शुभ हो, तुम लोगों की जय हो···

सर्वेत्र सुखिनः संतु । सर्वे संतु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यंति । मा कश्चित् दुःखं माप्नुयात् ॥

० ० ०

मुद्रक : के० के० प्रिंटर्स, दिल्ली